आदित्य ग्रन्थमाला – पुष्प ५

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र

(आत्मकथा)

भाग २

(उपभाग १ व २)

हीरालाल शास्त्री

तथा

अपनी कहानी, अपनी जबानी

सौ० रतन शास्त्री

१ ९ ७ ४

प्रकाशक
आशुतोष शास्त्री,
अनुपम प्रकाशन मन्दिर प्रा० लिमिटेड,
शास्त्री सदन
खेजडे का रास्ता, चादपोल बाजार,
जयपुर-३०२००२

प्रथम सस्करण
अक्टूबर, १९७४
मूल्य चालीस रुपये

मुद्रक
वैशाली प्रिंटिंग प्रेस
घी वालों का रास्ता,
जौहरी बाजार,
जयपुर-३०२००३

(पहले आठ पृष्ठ और पृष्ठ सख्या ३६१-३८८ तक अजमेरा प्रिंटिंग प्रेस, घी वालो का रास्ता, जयपुर-३ मे छपे)



निवेदन

कई एक उतार चढाव आने के बाद प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) के उपभाग १ व २ तथा सौ० रतन शास्त्री की "अपनी कहानी, अपनी जबानी" प्रकाशित होने के लिए आज प्रस्तुत है।

जीवनकुटीर, वनस्थली,
प्र० भाद्रपद शुक्ल, १५, स २०२१ वि
१ सितबर, १९७४

—हीरालाल शास्त्री

प्रकाशक की ओर से

चार वर्ष से कुछ अधिक समय पूर्व अगस्त, १९७० में हमने पण्डित हीरालाल शास्त्री की आत्मकथा 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' (उसे अब प्रथम भाग कहेंगे) का प्रकाशन किया था। अनुभव की कमी के कारण उसका विज्ञापन नाम मात्र को भी नहीं हुआ फिर भी उसका चतुर्मुख स्वागत हुआ और माग बनी रही।

उसके बाद की चार साल की अल्प अवधि मे शास्त्रीजी के पास बहुत कुछ नवीन तथ्य कथ्य हो गया। प्रथम भाग मे छूट गयी कुछ बाते तथा सामग्री और नवीन सामग्री मिलाकर पाठको की सेवा मे पेश करने योग्य काफी सामग्री हो गयी। यह सामग्री भाग २ के रूप में प्रस्तुत है। इसमे ३१ अगस्त, १९७४ के बाद के दो मास का टिप्पण और जुड गया है। इस प्रकार 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' के इन दो भागो में शास्त्रीजी के प्राय ७५ वर्षों का प्रामाणिक लेखा जोखा प्रस्तुत हो गया है जो कि राजस्थान और देश के अर्वाचीन इतिहास की एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य कडी भी है।

'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' के इस भाग २ का महत्व और भी बढ गया है। श्रीमती रतन शास्त्री ने संक्षेप में 'अपनी कहानी, अपनी जबानी' लिखने का आग्रह स्वीकार किया है। इस 'कहानी' को भी उनकी इच्छानुसार इसी के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। बिना इस 'कहानी' के शास्त्रीजी का 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' अधूरा रह जाता। राजस्थान के महिला वर्ग के राज्य के सार्वजनिक जीवन में योगदान की कुछ झलक इसमे मिलती है। परन्तु शास्त्रीजी के विशाल और बहुमुखी व्यक्तित्व के निखार के लिए बहुत हद तक उत्तर-दायी और संकल्पित कर्तव्य धर्म परायण अविस्मरणीय सन्नारी का सजीव चित्रण उनकी "अपनी जबानी" प्रस्तुत हो गया है।

आज की कठिन परिस्थितियो मे वैशाली प्रिन्टिंग प्रेस के श्री वी. पी. सिन्हा और व्यवस्थापक श्री देवराज गुप्ता ने तथा अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स के श्री रमेशचन्द्र अजमेरा ने इसका मुद्रण सम्पन्न करवा दिया जिसके लिए उन्हे साधुवाद है।

आशा है 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' के भाग २ तथा श्रीमती रतन शास्त्री की "अपनी कहानी, अपनी जबानी" का सभी ओर स्वागत होगा।

—आशुतोष शास्त्री

समर्पण

हमारी वात्सल्यमयी माता

बाई

(रतनजी की मां और मेरी मां की स्थानापन्न श्रीमती लक्ष्मी रघुनाथ व्यास)

को

सेवा में

—हीरालाल शास्त्री

सम्मतियां

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) में एक तगड़ा, दबंग और आत्मप्रत्ययसम्पन्न व्यक्तित्व निखरता और खिलता हुआ दिखायी देता है। बीच बीच में आत्मदोषविष्करण भी है। पर उसमें औपचारिक विनयशीलता का दर्प नहीं है। ग्रन्थ के लेखक शास्त्रीजी की भाषा भी अपनी है, सहज सुन्दर। कहते हैं न—Style is the Man

—दादा धर्माधिकारी

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) एक सच्ची आत्मकथा है—एक ऐसे व्यक्ति की आत्मकथा जिसके अपने विचारों पर दूसरों की छाप बहुत कम पड़ी है, जो हमेशा कुछ कर गुजरने को तैयार है, जो स्वभाव से निर्भीक और फक्कड़ तबियत का है और जिसने राजनीति को अपनी जीवन साधना में बाधक नहीं होने दिया।

राजनीति के क्षेत्र में शास्त्रीजी लम्बे अर्से तक रहे, पर वहां भी वे अपने जीवन लक्ष्य की ओर सजग रहे। देश की विविध समस्याओं के प्रति वे आज भी सजग हैं और उनके दिल में उनका पूरा विश्वास है। वे मानते हैं कि भारत में उधार ली हुई राजनीति हमारे देश को वास्तविक अर्थ में समृद्ध और उज्जवल नहीं बना सकती।

—वियोगी हरि

भारतीय संस्कृति से हमें क्या क्या मिलता है इसका सार देकर शास्त्रीजी भविष्य के लिए जो प्रेरणा देते हैं उसमें उनकी स्वतंत्र दृष्टि स्पष्ट दिखायी देती है। इस जीवन वृत्तान्त से पाठक महत्व की प्रेरणा पा सकेंगे। भारत के लिए नवशिक्षा की योजना बनाने वाले और संस्था चलाने वाले लोगों को यह आत्मकथा अवश्य पढनी चाहिए। शास्त्रीजी ने अपना जीवन धन्य बनाया है।

समस्त जीवन की चिन्तनात्मक दौड़ लगाने वाला चौथा अध्याय अत्यन्त रोचक मालूम हुआ। चौथे और पाचवें अध्यायों को शास्त्रीजी ही लिख सकते थे। उनमें अलिप्त-भाव से चिन्तन की स्वतंत्रता व्यक्त करने में शास्त्रीजी ने हिम्मत से काम लिया है।

हिन्दी की और संस्कृत की कविता की कुछ पंक्तियां कण्ठ करने लायक हैं। कविता में से चुना हुआ भाग विद्यार्थियों और साहित्य-सेवियों को स्वतंत्र रूप में उपलब्ध होना चाहिए।

—काका कालेलकर

अनुक्रमणिका

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र

भाग २

(उपभाग १ व २)

तथा

श्रीमती रतन शास्त्री

की

"अपनी कहानी, अपनी जबानी"

पूर्वकथन

अक्षय तृतीया सं० २०२७ वि० (८ मई, १६७०) को मैंने अपना "प्रत्यक्षजीवन-शास्त्र" छपने के लिए प्रस्तुत किया था। ६ अगस्त, १६७० को पुस्तक छपकर मेरे हाथ में आ गयी। उसी दिन जोबनेर आकर मैंने पुस्तक की एक प्रति को अपने जन्म के स्थान पर अपनी माँ की याद में बने हुए मातृमन्दिर में माँ को अर्पण करके परमसुख का अनुभव कर लिया। अक्षय तृतीया (स० १६८६ वि०) को मैंने "बन्थली" गाँव में अपना चिमटा गाडा था। इसलिए अक्षय तृतीया को मैं अपना दूसरा जन्मदिन मानता हूँ।

मेरे पास बहुत सी अन्य सामग्री भी रखी हुई थी। जिसके आधार पर मैंने एक दूसरे ग्रंथ की रचना करने की कल्पना कर रखी थी। पर मेरी वह कल्पना मुझको पार पडती हुई नही दिखायी दी। मेरे एक कुगम यह भी रह रही थी कि "प्रत्यक्ष-जीवनशास्त्र" मे मैं अपने जीवन के एकाध प्रकरण को स्थान नही दे पाया हूँ। मेरी गत वर्ष की बीमारी के दिनों में चि० मदन (डॉ० मदनगोपाल शर्मा) ने मुझको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की अपनी इच्छा प्रकट की। तब चूंकि मुझे अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने की प्रणाली से एक प्रकार की चिढ है, मैंने मदन को टका सा जवाब दे दिया। फिर उसने कहा कि 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" के आधार पर मैं आपकी संक्षिप्त समीक्षात्मक जीवनी लिखकर आपको दूंगा। मैंने कह दिया-तेरी मर्जी।

चुनाचे मदन ने एक पुस्तिका की पाडुलिपि मेरे पिछले जन्मदिन (मार्गशीर्ष कृष्ण ६ म० २०२६) के अवसर पर मुझे पकडा दी। प्राय. उसी समय मेरा मन होने लगा कि प्रत्यक्षजीवनशास्त्र की रचना के समय के बाद के साढे तीन सालो का अहवाल भी मैं क्यों न लिख दूँ ? ऐसे सोचते सोचते आखिर मैंने प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के भाग २ को तय्यार कर दिया। दूसरी ओर मदन की पुस्तिका ने भी आवश्यक संशोधन परिवर्तन के बाद अपना पूर्ण रूप ले लिया। कई एक कठिनाईयो के कारण दोनो पुस्तकें एक अर्से तक प्रेस

में बिना छपी पडी रही। ऐसी हालत मे ग्रन्थ को अपटूडेट करने की दृष्टि से मुझको प्रत्यक्षजीवनशास्त्र भाग २ का उपभाग २ तय्यार करना पडा। साथ ही मदन ने भी परिशिष्ट भाग को बढाकर अपनी पुस्तक को अपटूडेट कर दिया।

मैंने प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) मे अपने पुरखा पारीक पुरोहित वश के सकराण्या जोशियो का जिक्र किया है। मेरा मन हुआ कि मैं अपनी वशावली का थोड़ा सा विवरण भी क्यो न छपवा दू। रावो की पोथियो से मैंने भाई गगाराम के द्वारा अपने वश का कुर्सीनामा उतरवाकर मगवा रखा था। उसके अनुसार जोबनेर के सकराण्या जोशी कोट हिसार नरदरगढ से आये थे। कुर्सीनामे मे पहला नाम चन्दाजी का आता है। बीच मे कुछ नाम छूट गये मालूम होते है। बहरहाल चन्दाजी के बाद क्रमश २ बालाजी, ३ उदेरामजी, ४ बीजाजी, ५ रेवाजी, ६ खीवाजी, ७. टीलाजी, ८. हरदासजी, ६ सागाजी, १० गूजरमलजी, ११ अरजनजी, १२ विसनजी १३ पनजी, १४ मगलजी, १५ श्रीनारायणजी (मेरे पिताजी) १६ हीरालालजी, १७ सुधाकरजी १८ सिद्धार्थजी के नाम हैं। ये १८ (सभवत कुछ ज्यादा) पीढिया हुईं। जिनका कुल समय ६०० सालो का तो मानना ही चाहिए। मैंने अपने पडदादाजी, दादाजी, पिताजी के नानेरो और सासरो का पता भी लगाया एव मेरी दादीजी और मां के नानेरो और पीहरो की भी। मैंने यथाशक्य यह खोज भी करायी कि हमारे वश के दूसरे कौन कौन से लोग इस समय कहां है।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) का उद्देश्य 'प्रत्यक्ष सत्य' का विवेचन, मेरी अपनी अनुभूति का परिदर्शन और अपने धारिन्य के निरूपण के अलावा प्रियजनो का रजन बताया गया था। प्रियजनो के रजन मे "स्वान्त सुख" भी अर्न्तहित हैं। और अपने विषय में बताते हुए उन दूसरे लोगो के बारे मे भी कुछ न कुछ बताने मे आ ही जाता है जिनसे मेरा अपने जीवन मे विशेष काम पड़ा। जो उद्देश्य 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, भाग १ का था सो ही इस भाग २ (उपभाग १ व २) का मानना चाहिए। ग्रन्थ के भाग २ के साथ उपभाग १ के उपभाग २ जोड देने से अब प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के दोनो भागों मे मेरे जन्म (नवबर, १८६६) से लेकर जुलाई, १९७४ तक के ७४।। सालो के इतिवृत्त का समावेश हो गया है।

श्री काका साहेब कालेलकर की प्रेरणा से सौ० रतनजी ने भी "अपनी कहानी, अपनी जबानी", कुछ स्वय लिखकर, कुछ दूसरों को बोलकर बताकर उनमे लिखाकर तय्यार करदी। चू कि रतनजी का और मेरा जीवन एक ही है उनकी कहानी को भी प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के भाग २ (उपभाग १ व २) के साथ नत्थी कर देना ठीक समझा गया है।

प्रेमीजनो का कुछ भी मनोरजन इस तमाम सामग्री को देख जाने से हो जाएगा तो हम दोनों कृतार्थ हो जाएगे। इतिशुभम्।

उपभाग १

जीवनवृत्त

जीवनवृत्त

प्रस्तावना

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) में जन्म १८९९ से लेकर १९७० के प्राय: मध्य तक का मेरा जीवनवृत्त प्रकाशित हो चुका है। बाद के साढे तीन सालों (अक्षय तृतीया सं २०२७ वि. से मार्गशीर्ष कृष्णा ६ सं २०३० वि. तक) का जीवनवृत्त प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के इस भाग २ (उपभाग २) में प्रकाशित होने जा रहा है। १ खासकर पिछले साढे तीन सालों में की गयी मेरी "सत्य की खोज" का परिणाम दिया गया है, २ "मेरा दूसरा जन्म" नाम से मेरे दिल के सख्त दौरे का विवरण दिया गया है, ३ "अंगीकृत काम" शीर्षक अध्याय में (अ) वनस्थली विद्यापीठ, (ब) मातृमन्दिर विद्यालय, जोबनेर और (स) लोकवाणी की बात है, ४. "अनंगीकृत काम" शीर्षक अध्याय में (अ) जयपुर में हाईकोर्ट बेंच, (ब) राजस्थान में शराबबन्दी, और (स) अखिल भारतीय सहमति मंच के बारे में लिखा गया है, और ५. "नया कार्यक्रम" शीर्षक अध्याय में मुख्यतया स्वाधीन ग्राम-नगर-संगठन के ब्यौरे के अलावा चुनाव प्रकरण का उल्लेख भी है। सचमुच पूछा जाए तो सम्बन्धित साढे तीन सालों के विवरण के तौर पर लिखने के लिए मेरे पास कुछ विशेष नहीं था। कुछ विशेष अंश होता भी तो वह मेरी "हार्ट अटैक, हार्ट फेल्योर" की भयंकर बीमारी में लुप्त हो गया। बहरहाल जो कुछ मेरे पास निकला उसी मैं पाठकों को भेंट करता हूं।

हीरालाल शास्त्री

जीवनवृत्त

सत्य की खोज

जाहिर हो चुका है कि मैं "प्रत्यक्षवादी" हूँ। जो प्रत्यक्ष है सो प्रत्यक्ष है। उस प्रत्यक्ष को कोई भ्रम बताए तो बताने वाला जाने। जो मुझे नित्य दिखायी देता है उसे कोई अनित्य कहे तो कहे। जो परोक्ष है, जो दिखायी ही नहीं देता है उसे निज की अनुभूति के बिना नित्य कैसे मान लिया जाए ? मैं एक जगह पूछ चुका हूँ —

अनित्य हो जीवन जो हमारा
तो नित्य क्या है यह तो बताओ ?
प्रत्यक्ष को नश्वर क्यों बताते
परोक्ष क्यों नित्य हमें बताओ ??

अपने वेदादिशास्त्रों में प्रज्ञान का, ब्रह्म का बहुत अधिक विवेचन किया गया है। प्रयुक्त शब्दों का थोड़ा बहुत अर्थ मुझ जैसे अपठित की समझ में भी आ जाता है। पर वास्तव में तात्पर्यार्थ क्या है सो जिनकी समझ में आया होगा आ गया होगा। गीता यह कह कर दूर हो जाती है :—

इन्द्रियाणि पराण्याहु-
रिन्द्रियेभ्य: परं मन:।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो
बुद्धे: परतस्तु स:॥

"यो वुद्धे. परतस्तु स" कहा कि बात खत्म हुई। श्री अरविन्द ने भी जितना सा मैं जानता हूँ भक्ति पर ही जोर दिया है। भक्ति से, श्रद्धा से तो कुछ भी माना-जाना जा सकता है, स्वत स्फूर्ति से किसी को आत्म साक्षात्कार हो जाता होगा तो वह भी अलग बात है पर आजकल मेरा ध्यान गहनतम विषयो को बुद्धि से समझने का यत्न करने की ओर है। जिसका फलाफल जैसा होगा सामने आ जाएगा।

मैं स्वय तो पूछता ही रह जाता हूँ :—

न आदि है तो नहि अन्त भी कही,
न कल्पना की कुछ बात है कही ?
विचार मेरा चलता नही कही,
मुझे बताओ यदि पता हो कही ??

और

अजान मैं हूँ मुझको पता नही,
सुजान जो हो उनको पता नहीं।
अनादि बोलें बिन अन्त बोले,
रहस्य क्या है कुछ भी पता नही।।

भर्तृ हरि ने कहा है —

दिक्कालाद्यनवच्छिन्ना-
नन्त चिन्मात्र मूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय
नम शान्ताय तेजसे।।

स्वानुभूति ही जिसका एकमात्र प्रमाण है—कहने ही तो "सातो ही स्याल कुँए मे गिर जाते है।" मैं तो यह कहता ही रहता हूँ कि पता नही कौन कितना जानता है, पर जिनने जान लिया है वह यदि मेरे सामने आ जाए तो भी मुझको बता देना, समझा देना उनके वस की बात नही हो सकती। मीठे-खट्टे का स्वाद खुद खाने से खुद के अनुभव में आ जाएगा, पर एक के द्वारा कोई सा भी स्वाद दूसरे को बताया नही जा सकता।

जो कुछ भी मेरे सुनने, पढने, देखने मे आया है उस पर से मैं तो खाक भी नही

ग्रौर गीता को थोडा बहुत देखा है। भविष्य में विशेष अध्ययन करके दर्शन के तत्व को ग्रात्मसात् करने का मेरा विचार है। पर मुझको विशेष ग्राशा नही कि बुद्धि के द्वारा मुझको परमतत्व का ज्ञान हो जाएगा। इसलिए मैंने एक बार तो हार कर यह भी कह दिया—

क्या खोजने को हम दूर जावें,
पडोस मे भीतर क्या न पावे।
अनन्त में ज्ञान किताक पावे,
क्यों ज्ञान के भार वृथा वढ़ावे॥

यों तो ग्रामतौर से सभी लोग राम का, भगवान का नाम लेते ही हैं, देवी का-भगवती का स्मरण भी करते ही हैं, पर कौनसा भगवान? कौनसी भगवती? कहां भगवान? कहा भगवती? यह पता जिस किसी को होगा उसी को होगा। गाधीजी ने एक बार कहा—भगवान "सत्य" है, फिर कहा—"सत्य" ही भगवान है। पर जैसे भगवान का पता नहीं, वैसे ही सत्य का कहा पता है? हम जिसे मान लें वही हमारे लिए भगवान, वही हमारे लिए सत्य। मुझ जैसा यही मान कर सतोष करता ग्राया है कि मेरे लिए तो मेरा सत्कर्म ही भगवान है।

यह सब कुछ होते हुए भी सत्य की-परमतत्व की—खोज को मुझे यथाशक्ति जारी रखना ही चाहिए। संभव है किसी दिन कुछ समझ में ग्रा जाए। कौन जाने "राई के ग्रोले ही पर्वत हो तो?" चलते चलते किसी दिन तो मजिल पर पहुँच ही सकते हैं। सुनाते सुनाते किसी दिन तो सुनाने वाले की सुनने वाला सुन ही लेगा, यदि कही वह छिपा बैठा होगा तो "कभी तो दीनदयाल के भनक परेगी कान।"

महात्माग्रों की बात बहुत सुनने मे ग्राती है, कुछ "महात्मा" मेरे देखने में भी ग्राये हैं। पहुँचवान् महात्मा ग्रर्थात् परमज्ञान को प्राप्त किये हुए महात्मा भी होते वताये-पर वे शायद अपने ज्ञान का प्रचार करते नही फिर सकते। दूसरे, सिद्धि प्राप्त लोगों की बात भी सुनी है। दूर पडी हुई वस्तु को मगवा लेना। एक वस्तु को स्पर्श मात्र से दूसरी वस्तु का रूप दे देना!! रोगी की ग्रोर देखकर, उसको छूकर निरोग कर देना!!! इत्यादि। ग्रौर जादूगरों की वात भी बहुत सुनी है—कभी थोडा बहुत जादू देखने में भी ग्राया है। पर जैसे जादू की वैसे ही "सिद्धि" की बात भी मेरी समझ मे तो ग्रायी नही है। हम जिस विषय को जानते नही, उसकी काट नही कर सकते सो उसे मान भी कैसे लें?

इस सारे झझट की कल्पना मे मुझको किसी प्रकार की तकलीफ या परेशानी महसूस होती हो सो बात नही है। मैंने तो इतना तो समझ ही रखा है, मान ही रखा है कि जैसा समझ मे ग्राता हो वैसा ग्रच्छा करना, फलाफल की चिन्ता नहीं करना, भीतर शान्ति रखना ग्रौर उसी में सुख का ग्रनुभव करना। अपनी जान मे बुरा सोचना नही, बुरा कहना नही, बुरा करना नही। इससे पहले जन्म हुग्रा था कि नहीं, इसके बाद पुनर्जन्म होगा कि नही, भूतप्रेत योनिया होती है कि नही, इस झमेले मे क्यो पडना है?

यह जो कुछ दिखायी देता है सो कैसे बन गया, यह अपने आप बन गया या किसी ने उसको बनाया है ? वैज्ञानिक लोग बड़ी खोज मे लगे हुए हैं—वे नित्य नयी खोज कर डालते है। पर एक बडे से बडे वैज्ञानिक ने यह कह दिया कि हम लोग–'कैसे' मे से बहुत बहुत थोडा जानते है, पर 'क्यो' सो बिल्कुल जरा सा भी नही जानते तो विज्ञान का किस्सा एक तरह से तो खत्म सा ही हो जाता है।

ऐसी हालत मे हर एक के पास अपना अपना महात्मापन है, अपनी-अपनी सिद्धि है, अपना-अपना जादू है और है अपना-अपना विज्ञान भी अर्थात् जिसकी पाँती जितना जो कुछ आ गया होगा ?

मैंने तो अपने अल्पज्ञान अथवा अज्ञान को (अपनी सत्य की खोज के परिणामो को) पिछले दिनो इस प्रकार कह डाला है —

(१)

कितना लघु बीज विशाल बना,
   वटवृक्ष कहाँ से हमें न पता।
किस चोज से रंग विरंग बना,
   यह मोर विचित्र ज़रा न पता॥
प्रकृती न पता नहि प्राण पता,
   नहि जीव पता नहि ईश पता।
नहि दृश्य पता न अदृश्य पता,
   हमको कुछ भी न रहस्य पता॥

(२)

नहि जानत त्याग-विलास कथा,
   नहि जानत है सुख-दुःख कथा।
नहि जानत जीवन-मृत्यु कथा,
   नहि जानत बन्धन-मोक्ष कथा॥
नहि जानत पूरब-जन्म कथा,
   नहि जानत उत्तर-जन्म कथा।
नहि जानत भूत-भविष्य कथा,
   नहि जानत अन्य अनेक कथा॥

(३)

बहु शास्त्र लिखा बहु तंत्र लिखा,
स्मृति-वेद-पुराण अनन्त लिखा।
बहु सूत्र लिखा बहु गीत लिखा,
उपनिषद् माहि बहुत लिखा।
कुछ बाँच लिया कहते सुनते,
कुछ भाँप लिया कुछ भान हुआ।
अनुभूति नही नहि भक्ति हुई,
नहि कर्म हुआ नहि ज्ञान हुआ॥

(४)

चमत्कारी सारी बहुत हम बाते सुन रहे,
अनेको ही सिद्धी-विषयक कथाएँ सुन रहे।
कई जादू टोणे सुन सुन थके से रह गये,
सभी ऐसी बाते बिन समझे-बूझे रह गये।

(५)

समता-शान्ति-प्रसाद मे निहित ब्रह्म का ज्ञान।
आत्म-एकता-मोक्ष का उनमे होता भान॥

: २ :

मेरा दूसरा जन्म ?

पूरा ठीक से पता नहीं कि क्या क्या कारण हुए होंगे २४-२५ मार्च, १९७२ की अर्धरात्रि में मुझे दिल का बेहद सख्त दौरा पड गया। मुझको अपने शरीर के बारे में फौलाद का होने का विश्वास, अभिमान था। ऐसे शरीर में अवस्थित मेरे हार्ट को भी स्वभावत बहुत मजबूत माना जाता था। न मेरे, न मुझे जानने वाले दूसरे लोगों की समझ में आया कि मैं और दिल का दौरा इन दोनों का कैसे सम्बन्ध हो गया होगा ? जैसे चमत्कारी ढंग से मुझे दौरा पडा वैसे ही चमत्कारी ढंग से मेरा इलाज भी एकदम निर्विघ्न हुआ। डॉक्टरों ने मुझे आदर्श पेशेण्ट करार दिया, क्योंकि मैंने उनके कहने के विपरीत तिल, राई भी इधर-उधर नहीं किया। जैसे हॉस्पिटल में रहा, वैसे ही जयपुर में घर पर रहा, वैसे ही फिर वनस्थली आकर रहा। डॉक्टरों से इजाजत लेकर मैं अहमदाबाद, बम्बई, बैंगलोर, मद्रास तक लम्बा दौरा भी कुशलक्षेम से कर आया। ११ महिनों में १३ बार कार्डियोग्राम लिया गया। हर कार्डियोग्राम पिछले से अच्छा आता गया। आखिर में मार्च, १९७३ के पहले हफ्ते में जो कार्डियोग्राम लिया गया वह शायद इतना बढ़िया था कि उसे देखकर डॉक्टर संघवी ने कहा कि अब आपको कार्डियोग्राम लिवाने की जरूरत नहीं है, चाहें तो ६ महिनें बाद लिवा लेना। धीरे-धीरे करके प्रतिदिन १, २, ३, ४ मील तक घूमना हो गया। भोजनादि में जो बन्दिशें लगायी गयी मैंने अपने आपको उनमें पूरे तौर पर बंधा हुआ रखा। मैंने अपने काम-काज को भी सीमित रखा और अति परिश्रम से भी अपने आपको बचाये रखा। मुझको बड़ा सन्तोष हो गया था और डॉक्टर संघवी भी बहुत खुश थे।

पर १२ मार्च को शाम के समय मुझको अचानक लगा कि मेरे सांस का मन्द मन्द सा उठाव होने लगा है और खांसी शुरु हो गयी है। यह वही दिन था जब मैं साल भर पहले वाराणसी में जबर्दस्त दरत और बुखार से पीड़ित हुआ था। बहुत थोड़ी देर में सब कुछ ठीक हो गया और मुझको सोचने जैसा, करने जैसा कुछ लगा ही नहीं। हरीश आदि ने रतनजी को मुझे बिना बताये ही जयपुर खबर कर दी थी सो वे रातों रात चलकर वनस्थली आ गयी। वे सवेरे अचानक दिखायी दी तो मैं बहुत चकराया। रतनजी के आग्रह से मुझको १३ मार्च को जयपुर जाना पड़ा, पर डॉक्टर को दिखाने की मुझको जरूरत नहीं महसूस हुई। दूसरे दिन १४ मार्च को रतनजी और सुधाकर ने मुझको बिना कहे ही डॉक्टर संघवी से बात कर ली। डॉक्टर संघवी ने उसी समय मुझको बुलवा भेजा। देखकर उन्होंने हुक्म सुनाया—आराम करो, घूमना बन्द करो, मालिश बन्द करो, अमुक दवा और ले लो। उसके बाद मैं अनेक बार डॉक्टर संघवी के पास जा चुका हूँ, पर अव्वल लगायी हुई बन्दिशें अभी तक ज्यों की त्यों कायम हैं। पता नहीं कब तक ये एक हजार बन्दिशें लागू रहेंगी? और कब तक ढेर सारी दवाएं जारी रहेंगी?

मेरा गर्व गल चुका था। पर मैंने यह मान लिया था कि कैसे ही मैं बच गया हूँ और मेरा दूसरा जन्म हो गया है। किसी अनुभवी मित्र ने कहा कि आपकी उम्र कम से कम १०-१२ साल बढ़ गयी है। मैंने समझ लिया था कि मुझको जिन्दगी भर सावधानी रखनी पड़ेगी, खाने-पीने की आजादी नहीं रहेगी। असीमित परिश्रम नहीं करना होगा, इत्यादि। पर दुबारा कुछ भी गड़बड़ हो सकती है और फिर से बन्दिशें लग सकती हैं यह कल्पना मैंने कभी नहीं की थी। पिछली बार ठीक हो जाने पर मेरी जबान से एक दिन निकल गया—यह तो मैं ठीक हो गया, बच गया—न बचता तो क्या गजब हो जाता? रतनजी को यह बात बहुत बुरी लगी थी। वे पहले ही बहुत डरी हुई थी, बाद में और भी ज्यादा डर गयी। मुझे ऐन १२ मार्च तक क्षण भर के लिए भी डर जैसा कुछ नहीं लगा था। पर मैं अब निश्चिन्तता का अनुभव नहीं कर रहा हूँ। किसी को पता नहीं कि स्वस्थ से स्वस्थ हार्ट में भी कब क्या हो जाए? जिसे एक बार जोर का "हार्ट अटैक" और डॉक्टरों की भाषा में "हार्ट फेल्योर" भी हो चुका है उसके हार्ट के बारे में क्या भरोसा किया जाए? जो हो, निश्चित न होते हुए भी मैं आश्वस्त हूँ कि मैं अपने बाकी कामों में से कुछ अनिवार्य कामों को तो जरूर इस जीवन में पूरा कर पाऊँगा।

हॉस्पिटल से घर पहुँचने पर मैंने अपनी बीमारी आदि के बारे में एक लेख जैसा लिखा था उसे मैं प्रेमी पाठकों के लिए ज्यों का त्यों नीचे उद्धृत कर देता हूँ।

"वनस्थली से हॉस्पिटल—हॉस्पिटल से नवजीवनकुटीर"

(जब मेरा दूसरा जन्म हुआ माना जा सकता है)

"आज मुझको हॉस्पिटल से घर आने की छुट्टी मिल गयी, इस शर्त के साथ कि मैं जिस तरह से हॉस्पिटल में रहता था, एक महीने तक उसी तरह मुझे घर पर रहना

होगा और किसी भी हालत में मैं जयपुर शहर के बाहर नहीं जाऊँगा। इसका मतलब घर मे नजरबन्दी" पैरोलपर यदा कदा जाँच के लिए हॉस्पिटल जाना होगा।

अनुमानतः ५-६ महीने हुए होंगे जब मैंने अपने शरीर को ठीक करने के लिए एक नया साधन अपनाया था। उसका नतीजा यह हुआ कि मेरा वजन १८० पौण्ड से घट कर १६४ पौण्ड हो गया। वजन को ठीक करने की कुछ कोशिश की गयी तो वह बढ़कर १७० पौण्ड तक पहुँचा। हॉस्पिटल मे दाखिल होने के दो हफ्ते बाद मेरा वजन घटकर १५४ पौण्ड हो गया।

अन्दाजन जनवरी मे मेरी कमर के बाँयीं ओर दर्द होने लगा था और बाँयें कन्धे मे झन-झन भी होने लगी थी। २२ जनवरी से २० मार्च तक अस्वस्थता और निर्बलता अनुभव करते रहने के बावजूद मैं बेहद दौड़-धूप करता रहा। १२-१३ मार्च की मध्यरात्रि को बनारस मे मुझको बड़े जोर के दस्त लगे और तेज बुखार हो गया।

बनारस से लखनऊ, दिल्ली, जयपुर होता हुआ मैं २० मार्च को वनस्थली पहुँचा। वहाँ पर मैं चारेक दिन ठीक-ठाक निभ गया। रतनजी आदि का अत्यन्त आग्रह था कि मैं अपना मेडिकल चेकअप करवा लूँ। पर मैं यही सोचता रहा कि मार्च समाप्ति के बाद धीरज से चेकअप करवाकर बाद मे आवश्यकतानुसार कार्य के साथ-साथ विश्राम कर लूँगा।

पर मेरा सोचा हुआ कुछ होने वाला नही था। २४ मार्च को रात मे मैं देर से भोजन करके लेटा। सदा की भाँति मुझको तुरन्त नींद नही आयी और साँस का वेग बढ़ने लगा। मैंने स्वरचित एकाध पद्य गुनगुनाना चाहा, पर आवाज नही निकली। साँस का वेग बढ़ता ही गया। मैं फर्श पर आकर पंखे के नीचे बैठ गया।

फिर आधे घण्टे तक संघर्ष करने के बाद मैं उठ रही सका और सरकता हुआ टेलीफोन के पास पहुँचा। ठीक से डायल तो हो गया, पर जबान बन्द हुई मालूम पड़ी। मैं न तो "शकु" शब्द ही बोल सका और न यही कह सका कि "इधर आना"। कैसे भी "शकु" समझ गयी कि फोन मेरा है और हरीश को साथ लेकर वह मेरे पास आ गयी।

अपने वनस्थली के डॉक्टर साहब १०-१५ मिनिट मे आ पहुँचे। उनके उपचार से मेरा साँस का वेग थम गया। सब लोगों को भेजकर मैं सो गया और मुझको दो ढाई घण्टे अच्छी नींद आ गयी। मेरी आँख खुली तो मुझको सामने सम्पत दिखायी दिया। मैंने उससे कहा- 'जयपुर के लिए मोटर लगवा।"

थोड़ी ही देर मे डॉक्टर राव दुबारा आ गये और उसी समय मैंने प्रोफेसर साहब, रामेश्वर, सज्जन, शकु, हरीश को बुलवा लिया। वहीं हुई हजामत बनाने मे मुझे शायद घण्टा भर लग गया होगा। प्रोफेसर साहब आदि से बात करके हाथ-पाँव धोकर, कपड़े बदल कर मैं जयपुर के लिए रवाना हो गया।

मैंने खासतौर से डॉ० राव, रामेश्वर और हरीश को साथ में लिया। मैं एकदम प्रसन्नचित्त डॉ० एल० एम० सघवी के यहाँ पहुँचा। डॉ० सघवी ने देखा तो मेरा ब्लड-प्रेशर बहुत ठीक निकला। पर कार्डियोग्राम देखकर डॉक्टर साहब बोले "हार्ट अटैक है, तुरन्त हॉस्पिटल पहुँचिए मैं भी कपड़े पहिन कर आ रहा हूँ।" "हार्ट अटैक" सुनकर मुझे हँसी सी आ गयी।

हॉस्पिटल पहुँचे तो मेरे लिए पहियेदार कुर्सी तैयार मिली। मैंने कुर्सी पर बैठने से इनकार किया। पर मैं डॉक्टरों के वश में हो चुका था। मुझको डॉ० भण्डारी के वार्ड से लगे हुए जरा से कमरे में लिटा दिया गया और हुक्म सुना दिया गया, "हिलो-डुलो मत्ती, बोलो नही।" मैं यह सब कुछ समझा तो नही, पर मुझे तामील करनी पड़ी।

मैं वनस्थली से पेशाब करके रवाना हुआ था। बाद मे कई घण्टो तक मैंने पेशाब को रोके रखा जिससे मेरा पेशाब बन्द हो गया। कॉटेज नं० ८ मे मेरा डेरा लगा। रामेश्वर, हरीश, डॉक्टर राव, सुधाकर, सोहन आदि सभी मेरे पास थे। दिल्ली फोन से खबर मिलने पर रतनजी, मोहन और श्याम भी आ पहुँचे और कॉटेज मे घर बस गया।

पेशाब रुकने से मुझको बेहद तकलीफ हुई। डॉक्टरों ने हारकर कैथेटर लगाकर पेशाब कराया। उस समय मैंने देखा कि मेरे कमरे में डॉक्टरो की फौज खडी है। डॉ० सघवी आदि के चेहरे उदास दिखलायी दे रहे थे। ऐसी कमजोरी आ गयी कि मैंने दूसरो के सहारे के बिना पलग पर उठकर बैठने मे अपने आपको असमर्थ पाया।

ऐसी हालत मे भी मैं यही सोचता समझता रहा कि मेरा शरीर वज्र का है, मेरे 'हार्ट अटैक' हो नही सकता। पर मेरे सोचने समझने की क्या कीमत हो सकती थी? पलग पर लेटे-लेटे ही मलमूत्र त्यागना पडा, पानी तक से अरुचि हो गयी। दूध, छाछ, फल के रस तक से नफरत हो गयी। 'ब्लडशुगर' बढने के साथ-साथ यूरीनल ट्रैक्ट में इनफैक्शन हो गया था।

और किसी तरह का कम्प्लीकेशन नही हुआ। तीन-चार दिन निकल गये तब डॉक्टर संघवी आदि के चेहरों पर रौनक दिखायी देने लगी। पूरा एक महीना निकल गया, मैं कुछ खाने-पीने, थोडा घूमने लगा। कार्डियोग्राम उत्तरोत्तर अच्छे आते गये। चेस्ट के ऐक्सरे भी अच्छे आये। प्रॉस्टेट भी ठीक ठाक पायी गयी। ब्लडशूगर कन्ट्रोल मे आ गयी।

९ मई को चौथा कार्डियोग्राम चाहिए जैसा आ गया जिसे देखते ही डॉ० सघवी ने बहुत खुश होकर कह दिया कि अब शास्त्रीजी को कल घर जाने की छुट्टी है। मैंने ७ मई को सवेरे ७-५५ पर कॉटेज के कमरे से निकलकर ५-६ बीमारों को देखा। फिर गुरु वाले छोटे कमरे से विदा लेकर वापिस आया। आखिर ८-२५ पर कॉटेज से विदा हो गया।

फिर देव दर्शन करता हुआ और डॉक्टर सघवी के घर की कार्डियोग्राम मशीन से विदा लेता हुआ मैं १०-२५ पर नवजीवनकुटीर आ गया। मुझे बडी देर से मालूम पडा कि दिल का दौरा बडे जोर का था। सख्त दौरे के बावजूद मे सही सलामत हॉस्पिटल पहुँच गया और वहाँ कोई खास विघ्न नही आया, यह सब कुछ चमत्कार जैसा हुआ है, ऐसा डॉक्टरो का कहना है।

आयी ठिकाने अब अक्ल मेरी,
जो गर्व मेरा गल ही गया है।
आगे रखूंगा सब सावधानी,
जो भी भया सो शुभ ही भया है।

हॉस्पिटल मे पड़े रहने के दिनों में गुनगुनाते-गुनगुनाते मेरे द्वारा नीचे लिखी काव्य-रचना हो गयी, जो ऊटपटाग होने हुए भी ग्रर्थहीन नहीं कही जा सकती। अंग्रेजी मे शायद ऐसी कविता को ही पैरोडी कहते हैं। इस कविता से मेरा, डॉक्टरो का तथा और भी कई लोगों का बहुत मनोरंजन हो चुका है। आगे भी सुहृदयों का मनोरजन होता रहे इस खयाल से मैं अपनी उस कविता को नीचे दे रहा हूँ :—

दिल का दौरा? दिल के लहरें?

(१)

वनस्थली में रात को, लेटा खाना खाय।
सास अचानक बढ गया, नीद अवाज न आय ॥१॥

तुरंत डॉक्टर आ गये, तुरत किया उपचार।
सास वेग गायब हुआ, सोया बिना विकार ॥२॥

उठा निपट कर शेव कर, जयपुर पहुँचा आय।
दिल का दौरा था मुझे, झटपट दिया बताय ॥३॥

हॉस्पिटल मे आ गया, "कमरी" दिया लिटाय।
"छकड़ी" माँही डाल कर, कॉटिज पटका लाय ॥४॥

मै तो आया स्वस्थ था, रक्खे शान्त विचार।
डॉक्टरो की फौज ने, किया मुझे बीमार ॥५॥

(२)

हिलो मत डुलो मत, पड़े ही रहो।
मिलो मत हँसो मत, अड़े ही रहो ॥६॥

पढ़ो मत लिखो मत, न सोचो न ध्याओ।
समाधिस्थ की सी, समाधी लगाओ ॥७॥

बोलो न चालो, न सुनो सुनाओ।
इशारों से सभी बात, जानो जनाओ ॥८॥

चिकना मीठा छोड़ दो, अरु छोड़ो नमकीन।
बाकी सारी छूट है, मत छूओ ये तीन ॥६॥

बाहर भीतर 'संतरी', बैठे खड़े अनेक।
मौसंबी दाडिम मिली, मिली "संतरी" एक ॥१०॥

पड़े — पड़े ही मल — मूत्र त्यागो।
स्नानादि का व्यर्थ विचार त्यागो ॥११॥

ऑक्सीजन लेते रहो, नाथ नाक में डाल।
कैथेटर करता रहे, बार-बार बेहाल ॥१२॥

दवा पर दवा, तुम लिये ही चलो।
सुई लगे तब न हर्गिज टलो ॥१३॥

(३)

नाड़ी देखो लंग अरु, ब्लड प्रेशर की चाल।
ई० सी० जी० से फरिश्ते, जानें दिल का हाल ॥१४॥

खून और पेशाब का, होय टेस्ट पर टेस्ट।
थर्मामीटर 'मुँह लगा,' लगता मुझको बेस्ट ॥१५॥

आज सुना होगा अभी, ई०एस०आर० कमाल।
'मूढ़ों का मूढ़ा' मुझे, नहीं बैठना ढाल ॥१६॥

देवदूत आते रहे, प्रातः सायंकाल।
मैं उनसे पूँछू नहीं, क्या है मेरा हाल ॥१७॥

(४)

वात करें वे एक सौ, जान मुझे अनजान।
हाँ हूँ मै करता रहूँ, इसमे क्या नुकसान ॥१८॥
'चिकित्सक नमस्तुभ्यं, क्षपिताशेषमानव।
त्वयि विन्यस्तभारोऽयं, कृतान्तः सुखमेधते' ॥१६॥
असी हँसी झूठी करी, म्हारी राखी सार।
चिकित्सको थांको घणो, मानू मैं आभार ॥२०॥
पण अब थे वेगा करो, दर्शण देणा बन्द।
थाका दर्शण बन्द हो, तो बीमारी बन्द ॥२१॥

(५)

दिल को दोरो सख्त छो, झिलबो हुयो कमाल।
जैपर पूंच्यो कुसल सूं, सो भी हुयो कमाल ॥२२॥
बिना विघ्न बढिया चल्यो, छह हफ्ता उपचार।
साता पूछण आ गया, प्रेमी एक हजार ॥२३॥
अस्पताल छुट्टी करी, घर में पूग्यो आय।
नजर कैद पण हो गयो, घर का पहरा माय ॥२४॥
अकल ठिकाणे आ गयी, निकल गयी गुंज्याम।
रखणो पड़सी जापतो, अर आतम विस्वास ॥२५॥

नोट.—इस ऊटपटाग कविता की रचना १४-४-७२ से ५-५-७२ तक के समय मे हॉस्पिटल मे बिस्तर पर पड़े-पड़े हो गयी। 'कमरी' का अर्थ छोटा कमरा। एक 'सन्तरी' का अर्थ पहरेदार, दूसरी का अर्थ छोटा सन्तरा। थर्मामीटर मुँह मे लगाने मे जोर नही आता है और "मुँह लगे" लोग अच्छे लगते ही हैं। ई० एस० आर० का अच्छा परिणाम आने पर मुझको मूढे पर बैठने की इजाजत मिलने वाली थी, पर इजाजत उस दिन नही मिली तो मैंने अंगूर खट्टे बता दिये। संस्कृत का श्लोक (स० १६) बाहर से लिया हुआ है जिसका तात्पर्य यह है कि चिकित्सक पर अपना भार डालकर यमराज मौज मे रहता है।

यह सब कुछ होना था सो हो गया। पर मुझे लगता है कि इस डरावने विघ्न के बाद मेरी टूटी हुई उम्र की रेखा जुड़ गयी है और मेरी उम्र बढ़ गयी है। पूरी सावधानी के साथ निभते रहना, जोखिम उठाये बिना जितना बने उतना काम करते रहना-बस यही करने का है, क्योंकि यही डॉक्टरो की राय है और यही रतनजी आदि का हुक्म है।

: ३ :

अंगीकृत काम

मेरे अङ्गीकृत कामो मे वनस्थली विद्यापीठ का प्रमुख स्थान है सो ही पिछले साढे तीन सालों मे रहा। *विद्यापीठ के १६७०-७१ के कार्य विवरण मे मैंने निम्न टिप्पणी लिखी थी* :—

गहरे विचार के बाद मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली की नकारात्मक ढग से आलोचना करने से कोई लाभ नही है। वर्तमान स्थिति मे इस राष्ट्र-निर्माण-कारी शिक्षण-कार्य मे दिलचस्पी रखने वाले हर व्यक्ति को अपनी शक्तिभर कुछ न कुछ ठोस काम करना चाहिए। मेरे विचार मे आदर्श शिक्षाव्यवस्था वह होगी जिसमे अधिकाश शिक्षार्थियो को *माध्यमिक या उच्च माध्यमिक स्तर के बाद किसी न किसी उत्पादक कार्य* का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाए ताकि लडके और लडकिया राष्ट्र की सम्पदा बढाने वाले कामो मे लग सकें। यह तभी संभव होगा जब कि देश की शिक्षा और अर्थव्यवस्था मे सामजस्य हो। तथाकथित उच्चशिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक युवजनो मे से उन्ही को विश्वविद्यालय मे प्रवेश की अनुमति मिलनी चाहिए जो व्यावहारिक और उत्पादक कार्य के लिए निर्धारित कठिन परीक्षा को उत्तीर्ण करने के पश्चात् उसके लिए योग्य समझे जाएं। इस सबके लिए शिक्षा के पूरे ढाचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा, लेकिन ऐसा परिवर्तन शिक्षा को विशेष महत्व का विषय न समझने वाले सत्ताधारी शायद ही कर सकें।

इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि दृढनिश्चयी और अग्रगामी व्यक्ति शैक्षणिक पुनर्निर्माण के कार्य मे अपने खुद के बलबूते के अनुसार कम ज्यादा जैसा भी हो सके हिस्सा बटाए। जहा तक वनस्थली की बात है, यहा पर छोटे रूप मे ही सही जो कुछ सभव और व्यावहारिक था उसे करने का प्रयत्न किया गया है। विद्यापीठ की योजना है कि निकट भविष्य मे ही कुछ ऐसे उद्योगो का विकास किया जाए जो कुशलतापूर्वक सीख लेने पर लडकियो के लिए घर पर रहते हुए भी पूरे समय का या आशिक रोजगार दे सके। तब सबधित लडकियो को विश्वविद्यालयो मे जाने की जरूरत मालूम नही होगी। वनस्थली मे शीघ्र ही एक गृहविज्ञान महाविद्यालय भी स्थापित किया जाएगा जिसका भी एक लक्ष्य लडकियो को उत्पादक धधो मे शिक्षा प्रदान करना भी होगा। साथ ही शारीरिकशिक्षा के डिप्लोमा व डिग्रिया देने की व्यवस्था भी की जाएगी, जिससे ऐसी शिक्षिकाए तैयार हो सकें जो भारतीय महिला-समाज को शारीरिक क्षमता और स्वास्थ्य को सुधारने के लिए लगन से कार्य कर सकें। उपरोक्त तीनो प्रयोजनाए विद्यापीठ मे शिक्षण व प्रशिक्षण के वर्तमान व्यवस्था के साथ मिलकर वनस्थली की मेरी कल्पना को पूर्ण कर देती है। इसके अलावा मैं चाहूंगा कि विद्यापीठ मे जोबनेर स्थित मातृमन्दिर जैसा प्रौढ–शिक्षा का केन्द्र भी हो और मेरी कल्पना के अनुसार समय आने पर जोबनेर मातृमन्दिर सभवत वनस्थली के लिए फीडर सस्था का काम भी दे सकता है।

इस समय वनस्थली वित्तीय सकट का सामना कर रही है जिस पर हमेशा की तरह विजय प्राप्त कर ली जाएगी और जिसके लिए किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप विद्यापीठ के कार्यकर्त्ताओ को और नया बल, नयी सहनशक्ति मिल सकेगी। मैंने यह बात बार-बार कही है कि वनस्थली के साथ राजस्थान सरकार का वैसा सहानुभूतिपूर्ण विशेष व्यवहार नही रहा है जिसके लिए वनस्थली सदैव पूर्णतया योग्य रही है। पर मुझे लगता है कि अब स्थिति मे कुछ परिवर्तन हुआ है और नवम्बर के मध्य मे राजस्थान के वित्तमत्री और शिक्षामत्री के आगमन के विशेष कार्यक्रम का सस्था को पूरा-पूरा लाभ मिलेगा। इसके कुछ समय बाद ही राज्य सरकार की सहमति मे भारत सरकार द्वारा नियुक्त समिति विद्यापीठ की वित्तीय स्थिति पर विचार करने के लिए वनस्थली आएगी। मुझे पूरा विश्वास है कि यह समिति ऐसी अच्छी रिपोर्ट देगी जिसमे वनस्थली की वित्तीय स्थिति में ठोस सुधार के लिए व्यावहारिक सुझाव होंगे। मुझे आशा है कि केन्द्र एव राज्य सरकार से अपेक्षित अनुदानों से और अपनी खुद की आमदनी और चन्दे से विद्यापीठ न केवल अपने व्यापक वर्तमान स्थानाभाव को दूर कर सकेगा बल्कि अपनी विकास परियोजनाओ के लिए भी नये भवन बना सकेगा।

वनस्थली की छात्रासख्या मे अपेक्षित से अधिक तीव्र गति से वृद्धि हुई है। मेरा खयाल था कि कुल छात्रासख्या १६०० हो जाने के बाद इस पर कुछ रोक लगानी होगी, लेकिन इसी समय छात्रासख्या १६५१ तो हो ही चुकी है। इस सख्या मे वे ३४८ विद्यार्थी भी सम्मिलित हैं जिनमें से कुछ थोडे से तो वनस्थली ग्राम के हैं और बाकी यहां पर काम करने वाले अपने संरक्षको के साथ विद्यापीठ केम्पस में रहते हैं। मुझे लगता है कि विद्यापीठ

को ग्रन्ततोगत्वा छात्रावासों में १६०० तक छात्राओं का प्रवेश मान लेना होगा और तब कुल संख्या २००० तक जा सकती है जिसके आगे जाना बहुत जोखिम भरा हो सकता है। आजकल भी भिन्न-भिन्न आयु की और भिन्न-भिन्न पारिवारिक परिस्थितियां अर्थात् भिन्न-भिन्न वित्तीय साधन व सांस्कृतिक मानदंड वाली छात्राओं के लिए जो अलग-अलग भाषाएं बोलने वाली हैं, अलग-अलग मजहबों को मानने वाली और अलग-अलग जातियों की हैं, और अलग-अलग प्रदेशों से आती हैं व्यवस्था करना एक बड़ा भारी काम है। खासतौर से इसलिए भी कि पुराने जीवनमूल्य गायब होते जा रहे हैं और उनके स्थान पर नये जीवनमूल्य प्रतिष्ठापित होते हुए नहीं दिखायी दे रहे हैं। जीवनमूल्यों के बारे में जो कुछ छात्राओं के संदर्भ में कहा गया है वह कार्यकर्त्ताओं पर भी लागू होता है। विद्यापीठ के कुछ पुराने कार्यकर्त्ताओं के लिए अब भी जीवनकुटीर की लगन और सेवाभाव वाली भावना मार्गदर्शक के रूप में काम करती है। लेकिन नये कार्यकर्त्ताओं से, जिनकी संख्या विद्यापीठ के विकास के साथ काफी बढ़ती गयी हैं, यह अपेक्षा नहीं रखी जा सकती है। कुछ भी हो, यह विद्यापीठ का सौभाग्य है कि इसके पास अनेक सचमुच अच्छे महिला और पुरुष कार्यकर्त्ता हैं।

वनस्थली विद्यापीठ शहर के ध्यान बंटाने वाले शोरगुल और अन्य बुराइयों से दूर ग्रामीण क्षेत्र में स्थित है। फिर भी विद्यापीठ देश के रहन-सहन के बदलते हुए तरीकों की तरफ से आंख नहीं मूंद सकता। जो हो विद्यापीठ का भारतीय शील व मर्यादा के नियमों का सख्ती से पालन करने का आग्रह बना हुआ है एवं बना रहेगा और अपनी अन्य खास बातों में से सिर्फ दो ही बातों को गिनाया जाए तो विद्यापीठ का खादी और शाकाहार पर कायम रहने का प्रयत्न भी बना रहेगा। व्यक्तिशः मैं ज्यादा छुट्टी और ज्यादा लम्बे अवकाश के पक्ष में नहीं हूँ। मुझे लगता है कि शिक्षणकार्य में लगे हुए बहुत से लोगों के लिए यह छुट्टियों का मामला निहित स्वार्थ जैसा बन गया है। विद्यापीठ यह भी कोशिश कर रहा है कि देश में प्रचलित सभी मजहबों के बारे में संस्था की बढ़ती हुई जनसंख्या को आवश्यक जानकारी प्राप्त हो और सभी यह समझ सकें कि हर युग और हर देश में आधारभूत जीवन-मूल्य और आचरण के समान नियम प्रचलित रहे हैं। कुछ लोगों के लिए किसी भी सिद्धान्त को न मानना भले ही सबसे बड़ा सिद्धान्त हो सकता है, लेकिन वनस्थली में तो कुछ मूलभूत सिद्धान्तों को हमेशा की तरह मानने और उनका पालन करने का आग्रह बना ही रहेगा। संभवतः इधर-उधर थोड़ा बहुत परिवर्तन-संशोधन तो हो सकता है, पर वनस्थली अपनी किसी मूलभूत बात को कभी नहीं छोड़ सकती। ऐसा कोई कानून नहीं हो सकता जिसमें संसार में से बुराई का लोप ही कर देने की क्षमता हो। कानून बरकरार है, पर इसके बावजूद अपराध होते रहते हैं। परन्तु इस कारण से कानून को समाप्त नहीं किया जा सकता। उपसंहार के तौर पर मुझे यह कहते बहुत खुशी है कि देश में चारों ओर अस्वस्थ वातावरण के बीच वनस्थली वर्त्तमान संक्रमणकाल में यथाशक्य अच्छी तरह से निभ रही है।

बाद मे १६७१-७२ के कार्य-विवरण मे मेरे द्वारा निम्न टिप्पणी लिखी गयी :—

जैसा कि ३६ वे वार्षिक कार्य-विवरण मे अध्यक्षीय टिप्पणी मे इंगित किया गया था। गत वर्ष के प्रारम्भ मे विद्यापीठ वित्तीय सकट का सामना कर रहा था। यह सकट तब से निरन्तर गहरा होता जा रहा है।

१४ नवम्बर, १६७१ को राजस्थान के वित्त एव शिक्षा मन्त्रियो के आगमन के फल-स्वरूप ३ लाख एव ७५ हजार के अनुदान स्वीकृत हो सके जिससे इस सकट मे कुछ राहत मिली।

उपरोक्त अनुदानो मे २ लाख ५० हजार रुपये मार्च, ७२ की समाप्ति तक प्राप्त हो गये थे, लेकिन शेष १ लाख २५ हजार रुपये सरकार द्वारा दिये जाने बाकी हैं।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त समिति १ व २ जनवरी, १६७२ को वनस्थली आयी थी और आशा है कि समिति का प्रतिवेदन शीघ्र ही सरकार को प्रस्तुत कर दिया जाएगा।

विद्यापीठ के ६ लाख रुपये के पिछले घाटे के मुकाबले भारत सरकार ने ३ लाख रुपये व राजस्थान सरकार ने १ लाख रुपये के अनुदान दिये थे, शेष २ लाख रुपया भारत सरकार से प्राप्त होना बाकी है।

आशा है कि राजस्थान सरकार कुछ और विषयो को अनुदान के लिए शीघ्र ही अनु-मोदित कर देगी। ऐसा होने पर वार्षिक आवर्तक अनुदान मे काफी वृद्धि हो सकेगी।

२०० लडकियो के निवास के लिए एक उपयुक्त छात्रावास के निर्माण हेतु ७ लाख रुपये के अनुदान के लिए आवेदन पत्र शीघ्र ही भारत सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

इन सब के बीच विद्यापीठ अपने आपको वित्तीय विपत्ति के कगार पर पा रहा है। अत्यन्त दुःख की बात है कि अन्य कठिनाईयो के अलावा कई भवनों का निर्माणकार्य बीच मे ही रुक गया है।

इनका परिणाम यह हुआ कि विद्यापीठ अपने कई कार्यकर्ताओ के और छात्राओ के लिए रहने के स्थान की व्यवस्था नही कर सका है और छात्राओ की संख्या भी १६५१ मे बढ कर केवल १६७५ ही की जा सकी है।

साथ ही सोचे हुए नये कामो को यथा-शिल्पमन्दिर, व्यायाममन्दिर, वनस्पति विज्ञान व जीव विज्ञान मे एम० एससी०, होम साइन्स मे बी० एससी०, एम० एससी० धीरे-धीरे ही हाथ मे लिए जा सकेंगे।

इसमें से हर एक काम परिस्थिति अनुकूल होने पर हाथ मे लेना ही है क्योंकि ये काम वनस्थली की सोची हुई तस्वीर को पूरा करने के लिए जरूरी हैं।

लेकिन वनस्थली के सामने तात्कालिक कार्य विद्यापीठ की वित्त व्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान करना है। जिसके लिए नीचे वर्णित लगन पूर्वक किये गये प्रयत्नो की आवश्यकता है।

जिन कुछ राज्यो से अभी तक कुछ विकास अनुदान नही मिले हैं उनसे इसके लिए अनुरोध किया जा रहा है। कुछ राज्यो को वार्षिक अनुदान बढाने के लिए कहा जा रहा है।

विद्यापीठ ने अपने खेती के काम को बडे पैमाने पर बढाने की योजना बनायी है जिसके लिए श्री अर्जुन अग्रवाला से प्राप्त स्वैच्छिक एवं उदार सहायता उल्लेखनीय है।

जयपुर स्थित वनस्थली की जमीन पर किराये की आमदनी देने वाला मकान बनाने के सम्बन्ध में कार्यवाही जारी है। आय बढाने की अन्य योजनाएँ भी क्रमश हाथ मे ली जाएगी।

उदाहरण के तौर पर ऊनी खादी का काम राजस्थान खादी बोर्ड व उद्योग विभाग के सहयोग मे हाथ मे लिया गया है और आशा है कि यह काम समय पाकर आमदनी का अच्छा जरिया बन जाएगा।

विद्यापीठ द्वारा जयपुर मे उद्योग व कला की एक अखिल भारतीय प्रदर्शनी का आयोजित करने का प्रस्ताव है और वनस्थली में बडे पैमाने पर आयुर्वेदिक रसायनशाला शुरू करने का भी विचार है।

और आखरी उपाय जो कि उपरोक्त से कम नही है विद्यापीठ के कार्यकर्त्ताओ द्वारा जनता मे बडा चन्दा प्राप्त करने के लिए पूरी लगन के साथ प्रयत्न का आरम्भ है।

यद्यपि विद्यापीठ, इस क्षण, कठिन वित्तीय स्थिति मे से गुजर रहा है लेकिन सभी कठिनाईयां कार्यकर्त्ताओ की अदम्य निष्ठा से हल हो जाएगी, यह विश्वास है।

इस टिप्पणी के अन्त मे एक और विषय की ओर, जो कि राष्ट्रीय महत्व का है, संकेत करना उपयुक्त होगा। यह विषय है, देशव्यापी एव असीम विद्यार्थी असन्तोष।

इस समस्या का एक सम्भव उपाय यह हो सकता है कि व्यावहारिक शिक्षा के साथ-साथ देश के युवकवर्ग के लिए राष्ट्रीय-स्तर पर उत्पादक कार्यों की सम्भावनाएँ प्रस्तुत की जाए।

फिर १९७२-७३ के कार्य-विवरण मे मेरी निम्न टिप्पणी प्रकाशित हुई :—

युनिवर्सिटी ग्राट्स कमीशन की ओर से उठायी हुई महाविद्यालयो को 'स्वायत्त-महाविद्यालय" बनाने की चर्चा राजस्थान विश्वविद्यालय मे भी चली है, पर पता नही उक्त विचार मे कितनी प्रगति हुई है और वह कहा तक पहुँचेगा। इधर, राजस्थान माध्यमिक शिक्षामडल भी कुछ विद्यालयो को "स्वायत्तता" देने पर गम्भीरता से विचार कर रहा लगता है। मजे की बात यह है कि जहा इस प्रकार की आशाए लगायी जा रही हैं वही माध्यमिक शिक्षामडल व विश्वविद्यालय की खुद की स्वायत्तता पर सरकार की ओर से आच आने का खतरा भी दिख रहा है। वनस्थली विद्यापीठ के लिए किसी न किसी प्रकार की स्वायत्तता के लिए हम खोज करते रहे है, यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मेरा खयाल है कि देश मे शिक्षा की भयकर रूप मे बिगडी हुई स्थिति मे किसी भी शिक्षण सस्था के लिए वास्तविक या उपयोगी स्वायत्तता का उपभोग असम्भव जैसा है। वास्तव मे देखा जाए तो देश की शिक्षाप्रणाली मे आमूलचूल क्रान्ति होने की आवश्यकता है।

देश की कई एक गैर सरकारी शिक्षणसस्थाओ मे व्याप्त जिन अस्वस्थ स्थितियो की चर्चा सुनी जाती है उनके बारे मे मुझे कोई प्रत्यक्ष जानकारी करने का अवसर नही मिला है। लेकिन मुझे मालूम हुआ है कि राजस्थान सरकार मे कुछ लोग गैरसरकारी सस्थाओ की "गडबड" को ठीक करने की फिक्र मे लगे है। इस बात में अन्देशा है कि कही यह "गडबडी दूर करने की प्रक्रिया" सस्थाओ पर नौकरशाही के शिकजे को और कडा न कसदे। अगर सरकार गैरसरकारी शिक्षणसस्थाओ के लिए आवश्यक धन का कुछ भाग देती है तो उसे यह देखने का अधिकार होना चाहिए कि सार्वजनिक धन प्राप्त करने वाले लोग उस धन का ठीक-ठीक उपयोग करते हैं या नही। साथ ही विश्वविद्यालय व शिक्षा-मडल को यह देखने का अधिकार होना चाहिए कि निर्धारित शैक्षणिक मानदण्डो का निर्वाह होता है या नही। बाकी इसके अलावा शिक्षणसस्थाओ को प्रयोग व सुधार के लिए प्रयत्न करने की हक के तौर पर, पूरी स्वतत्रता होनी चाहिए।

जहा तक वनस्थली विद्यापीठ का सवाल है विद्यापीठ एक राष्ट्रीय सस्था है जिसका पोषण इसके खुद के लगनशील कार्यकर्त्ताओ द्वारा हो रहा है। ऐसी स्थिति मे विद्यापीठ कभी भी जरूरत से ज्यादा जोश दिखाने वाली किसी भी बाहर की एजेंसी को एक सीमा के बाहर नही जाने दे सकती। विद्यापीठ का हिसाब किसी भी दाता द्वारा ही नही बल्कि पब्लिक के किसी भी व्यक्ति द्वारा जब चाहे तब देखा जा सकता है। इसी प्रकार सरकार तो अवश्य ही जैसे चाहे वैसे ही सस्था के हिसाब की जाच करवा सकती है। लेकिन वनस्थली सरकार के प्रतिनिधि बने छोटे दिल वाले कर्मचारियो के द्वारा उपस्थित की जाने वाली असुविधाओ से तग होती जा रही है। विद्यापीठ ने सचमुच मे, कभी भी सरकारी अनुदान की विशेष पर्वाह नही की है। और अगर अनुदान के साथ बेहूदा व अस्वीकार्य शर्ते लगने लगें तो विद्यापीठ क्षण भर मे ऐसे अनुदान का परित्याग कर सकता है। अनुदान मिले या न मिले, वनस्थली सदैव स्वतन्त्र व बन्धनमुक्त बनी रहेगी।

खुशी की बात है कि भारत सरकार वनस्थली को हर सभव प्रकार से मदद करती रही है। केन्द्र द्वारा नियुक्त जयरामन समिति (जिसमे राजस्थान के शिक्षाआयुक्त भी सदस्य थे) ने सुझाव दिया था कि वनस्थली विद्यापीठ और उसके परिसर के विकास के लिए मास्टर प्लान तैयार करने के लिए एक दूसरी समिति नियुक्त की जाए। विद्यापीठ इस दूसरी समिति की नियुक्ति की प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी नियुक्ति के मामले में जाहिर है कि राजस्थान सरकार को पहल करनी होगी। मास्टर प्लान के बनाने में विद्यापीठ समिति की पूरी मदद करेगा और योजना के दोनो मुख्य साझीदारो-भारत सरकार व राजस्थान सरकार-को अपना योगदान देना भी विद्यापीठ का कर्तव्य होगा। निश्चित है कि मास्टर प्लान में विद्यापीठ के शीघ्रभावी समग्र विकास का समवेश होगा।

आज देश जिन कठिन परिस्थितियो मे से गुजर रहा है उनके परिणामस्वरूप प्रस्तुत कठिनाईयो का विद्यापीठ अपने तरीके से यथाशक्य मुकाबला कर रहा है। हर साल यहा इतनी अधिक छात्राए आ जाती हैं कि उनके लिए स्थान आदि की व्यवस्था करना असभव हो जाता है। देश मे उपलब्ध योग्य व्यक्तियो मे से आवश्यक सख्या विद्यापीठ के हिस्से मे भी आ ही जाती है। विद्यापीठ के कार्यकर्त्ता इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि नीची से नीची लेकर ऊची से ऊची कक्षा तक सस्था की पचमुखी शिक्षा को लागू करके उसका सर्वागसम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जा सके। विद्यापीठ को यथासम्भव सभी उपाय करके अपने वित्तीय मामलो मे अनुकूलता मिल जाने की आशा है। विद्यापीठ सरकार का, जनता का और साथ ही छात्राओ के सरक्षको का भी अपने इस विशिष्ट राष्ट्रीय आयोजन मे सहयोग आमन्त्रित करता है।

उक्त तीनो टिप्पणिया अपनी कथा स्वय कह देती है। जहा तक भौतिक विकास का सम्बन्ध है वनस्थली ने सदा की भाति पिछले तीन सालो मे सन्तोषजनक प्रगति की है। बिना किसी विशेष प्रयत्न के छात्राओ की और कार्यकर्त्ताओ की सख्या बढती रही है। मकान भी थोडे बहुत बढे हैं, पर पैसे आदि की कमी मे जितने मकानो की जिस समय आवश्यकता रही उतने मकान उस समय नही बन पाये। देखने मे विद्यापीठ केम्पस बहुत बडा लग सकता है, पर कार्यकर्त्ताओ के और छात्राओं के निवासो के अलावा दूसरे कामो के मकानों की कमी की वजह से सभी सम्बन्धित लोगों को बेहद तकलीफ रही है। पिछले साल में कई एक ऐसे कारण उपस्थित हो गये कि रुपये पैसे की आमद कम हुई और उसकी चाल धीमी भी रही। राजस्थान सरकार से रुके हुए कुछ अनुदान मिल चुके है, कुछ और मिलने की आशा है। भारत सरकार द्वारा नियुक्त कमेटी ने अच्छी रिपोर्ट पेश की थी, पर उसके स्वीकृत होने में बडी देर लगी और जो अनुदान मजूर हुए उनका रुपया बहुत देर से हाथ मे आया। सम्भव है विद्यापीठ के विकास के लिए मास्टर प्लान बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार की कमेटी के सुझाव के अनुसार राजस्थान सरकार के द्वारा एक दूसरी कमेटी बनाने की शुरुआत की जाए। आजकल निर्माण का काम कुछ तेजी से चल रहा है, पर वह पैसे की कमी मे व लेबर की कठिनाई से किसी भी समय धीमा पड सकता है और एकदम ठहर भी सकता है। जो निर्माण कार्य हाथ मे लिया हुआ है उसके अलावा गृहविज्ञान मन्दिर (होम सायन्स-

कॉलेज), शिल्पमन्दिर (पोलीटेकनिक), शारीरिकशिक्षा महाविद्यालय, अच्छा हॉस्पिटल, बैंक भवन, डाक-तार-टेलीफोन भवन, स्टाफ क्वार्टर आदि-आदि के निर्माण की निश्चित आवश्यकता है। उद्बोधन मन्दिर का काम पहले से बने हुए मकान मे शुरू कर दिया गया है और ऐसा ही निश्चय संग्रह मन्दिर (म्यूजियम के लिए) के विषय मे भी कर लिया गया है। बाकी उक्त कामो के लिए लाखो रुपया चाहिए जिसे जुटाने की कोशिश चल रही है।

आमदनी के जरियो मे एक तो चन्दे के काम को तो सीमित कर देने का विचार है। उसके मुकाबले मे विद्यापीठ ने अपनी स्वतन्त्र आमदनी को बढाने की योजनाएं बनायी है। भारत सरकार, राजस्थान सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अलावा देश की सभी राज्य सरकारो से मिलने वाले अनुदानो मे समयोचित वृद्धि कराने के प्रयत्न चल रहे है। और आखिर मे छात्राओं के सरक्षको का भी नैतिक कर्तव्य है कि वे विद्यापीठ की उदारतापूर्वक सहायता करे।

वनस्थली मे किसी प्रकार का शिक्षाशुल्क नही लिया जाता और जो पैसा छात्रावास-शुल्क के रूप मे छात्राओ से मिलता है वह उन्ही के भोजनादि मे खर्च हो जाता है। ऐसी हालत मे छात्राओ के घरो से किसी न किसी रूप में कुछ न कुछ पैसा और आना चाहिए जिससे केम्पस का उत्तरोत्तर विकास करने मे मदद मिल सके। वनस्थली विद्यापीठ के प्रारम्भ मे बहुत थोडा छात्रावास-शुल्क छात्राओ से लिया जाता था। उन दिनों मे सब चीजें बहुत सस्ती मिलती थी और रहन-सहन का स्टैंडर्ड भी मामूली था। बाद मे धीरे-धीरे एक ओर स्टैंडर्ड भी बढा और दूसरी ओर महगाई बहुत ज्यादा बढ गयी। ऐसी हालत मे छात्रावास-शुल्क को बढाने के सिवाय कोई चारा नही था। फिर भी छात्रावास बजट मे भी घाटा रहने लगा है जिसकी पूर्ति शुल्क बढाकर के ही करनी होगी। कम साधन वाले घरो से आने वाली योग्य छात्राओ की यथाशक्ति छात्रवृत्तियां देकर वनस्थली की भावना की रक्षा करली जाती रही है। परन्तु पब्लिक चन्दा कम लाया जा सके, विद्यापीठ के व्यापारिक विभागो से पर्याप्त आमदनी न हो सके, सरकारो से भी जितना चाहिए उतना पैसा नही मिले तो अन्त मे जाकर उन लोगो पर ही भार डालना होगा जिनकी लडकियां वनस्थली मे सर्वांगसम्पूर्ण शिक्षा पाती हैं। इसमे वनस्थली के भावनाप्रधान कार्यकर्त्ताओं का भी क्या वश चलेगा?

पर ऊपर की सब बातें मामूली है। रुपया दुःख-सुख कही से भी आ ही जाएगा, जैसे अब तक आता रहा है। मकान भी जैसे तैसे बनते ही रहेंगे। नये-नये काम भी शुरू होते ही रहेंगे। छात्राएं भी आती रहेंगी। देश में जैसी मानव सामग्री उपलब्ध है उसके अनुसार वनस्थली को कार्यकर्त्ता भी मिलते ही रहेंगे। बाकी असली सवाल तो शिक्षाक्रम का है। देश मे जो शिक्षाप्रणाली चालू है उससे किसी को-सरकार तक को-भी सन्तोष नही है। जो कोई बोलते है वे वर्त्तमान शिक्षाप्रणाली की शिकायत करते है और उसमे सुधार की आवश्यकता बताते हैं। मेरी राय मे शिक्षाप्रणाली मे सुधार का सवाल नही, जरूरत है शिक्षा के क्षेत्र मे क्रान्ति करने की शिक्षा मे आमूलचूल परिवर्तन करना पडेगा और

शिक्षा को देश की अर्थरचना के साथ जोड़ना पड़ेगा। यह काम उन सत्ताधारियों से तो शायद ही हो सकेगा जो विद्यार्थियों का, अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति की खातिर शोषण करने में लगे हुए हैं। सत्ताधारी कुछ नहीं करेंगे तो उन असत्ताधारियों से भी क्या होने वाला है जो विद्यार्थियों का शोषण करने में सत्ताधारी से पीछे नहीं है। बाकी बचते हैं, वे भले आदमी जिनके सामने और कोई दृष्टि व हेतु नहीं है और जो सच्चे दिल से, अपनी सूझबूझ के अनुसार शिक्षा क्षेत्र में क्रान्ति कराना चाहते हैं। पर उन लोगों के पास में सैंक्शन क्या है? जो लोग अच्छी-अच्छी बातें बता सकते हैं, सुझाव दे सकते है और उनसे जितना सा बने उतना सा कर सकते हैं। वनस्थली विद्यापीठ के सामने यही परेशानी है और मुझे खुद को सबसे बड़ी यही तकलीफ है। जब शुरू किया था तो सोचा था कि वर्तमान सिस्टम से दूर रहेंगे। पर दूर कैसे रहते? चालू परीक्षाओं को न अपनाया जाता तो वनस्थली में शिक्षा पाने के लिए कौन सी लड़किया पहुँचती? चालू परीक्षाओं को अपनाने के बाद यही बचा कि जो काम उन परीक्षाओं के शिक्षाक्रम में नहीं है, पर जो शिक्षा की दृष्टि से अनिवार्यतया आवश्यक है, उनको वनस्थली सिस्टम में अलग से जोड़ा जाए। वनस्थली की यही कोशिश रही है। आजकल बात चल रही है ऑटोनामस स्कूलों की और ऑटोनामस कॉलिजो की। वनस्थली ने एक बार सोचा था कि डीम्ड यूनिवर्सिटी का स्टेटस प्राप्त करके स्वतंत्र हो जाया जाए। पर बाद में समझ में आया कि डीम्ड या कोई भी यूनिवर्सिटी बन जाने से कुछ बनने वाला नहीं है। यूनिवर्सिटी बनकर वनस्थली अपना शिक्षाक्रम और उस पर आधारित अपनी परीक्षाएं जारी करने की कोशिश करती और उसमें सफल भी हो जाती तो उन परीक्षाओं को मान्य कौन सी यूनिवर्सिटीयां कर देती, और मान्यता बिना परीक्षाएं पास करने का उत्साह किस लड़की को होता? लगभग यही बात ऑटोनामस स्कूलों और कॉलिजों की योजना पर लागू होगी। देश में जो ढर्रा पड़ा हुआ है उससे बाहर कोई भी कैसे चला जाएगा? किसी भी यूनिवर्सिटी या बोर्ड किसी कॉलेज या स्कूल को ऑटोनामी मिलेगी तो आखिर उस यूनिवर्सिटी या बोर्ड की मर्यादा के अन्तर्गत ही तो होगी? वह तो घाणी के बैल की तरह चक्कर काटने जैसा ही होगा, इससे ज्यादा शायद ही कुछ हो सके। वनस्थली में पंचमुखी शिक्षा का कार्यक्रम चला रखा है- किताबी पढ़ाई तो यूनिवर्सिटी या बोर्ड के शिक्षाक्रम के अनुसार या थोड़े बहुत नये स्वतंत्र शिक्षाक्रम के अनुसार हो जाएगी पर बाकी चारों नैतिक, शारीरिक, व्यावहारिक और कलात्मक पक्षों को प्रतिष्ठित स्थान मिलना बहुत मुश्किल होगा। दूसरी बात है लड़के-लड़कियों की भीड़ को विश्वविद्यालयों में घुसने से रोकने का। वह काम कैसे होगा, जब तक युवक-युवतियों के सामने कोई दूसरे द्वार खुले हुए नहीं होंगे? इसका मतलब है शिक्षा क्षेत्र और आर्थिक क्षेत्र दोनों में मिली हुई क्रान्ति हो। और वह न हो तो जितना जो कुछ अपने स्वतंत्र प्रयत्नों से हो सके सो वनस्थली भी करती रहे और उसी से सन्तोष मानती रहे। उत्पादक और कमाई के दोएक कामों के व्यावहारिक शिक्षण की दृष्टि से कुछ फैक्टरियों जैसे काम वनस्थली में चलाने की मेरी कल्पना भी चल रही है।

जैसा मैंने कहा वनस्थली विद्यापीठ किसी सयोग से मेरे जीवन का मुख्य काम बन गया है सो आगे भी बना करेगा। मेरा सब कुछ वनस्थली को अर्पण है। दूसरे कामों का विचार भी मैं बहुत करता रहा। पर पिछले साल की घातक सिद्ध हो सकने वाली बीमारी ने मुझको एक प्रकार से अपग बना दिया है। तो फिर ऐसी हालत में मैं कितने भी जोर-शोर से विचार करू-आखिर कर कितना सकू गा ?

मातृमन्दिर विद्यालय

मेरा दूसरा अगीकृत काम है जोबनेर का मातृमन्दिर विद्यालय। मातृमन्दिर में प्रौढ महिलाओं और छोटे बच्चों का शिक्षण हो रहा है और वह सब काम अच्छा चल रहा है। उसे पिछले साल से थोड़ा बहुत बढ़ाया है। सम्भव है उसका कुछ और विस्तार भी हो जाए। मातृमन्दिर के १६७०–७१ के कार्यविवरण में इस प्रकार लिखा गया था :—

"अन्त में कहना न होगा कि नवम्बर, १६५६ से शुरू होकर यह स्वल्प प्रयास आज तक ठीक-ठाक निभ गया है जिसका यत्किंचित लाभ जोबनेर नगर को मिला है। पडित हीरालाल शास्त्री की पूज्य माताजी उन्हें १५-१६ महीने का छोड़ गयी थी। स्वर्गीय रावल नरेन्द्रसिंहजी ने शास्त्रीजी को वाजिब कीमत पर एक मकान दे दिया था। शास्त्रीजी ने अपने जन्म के स्थान को उक्त मकान में शामिल करके उसका परिवर्द्धन कर दिया और फिर उन्होंने अपनी पूज्य माताजी के प्रति सुप्त भावना को इस मातृमन्दिर के रूप में प्रकट कर दिया। इस प्रकार इस प्रयास के मूल में मातृभक्ति की प्रबल शक्ति है, तभी तो शास्त्री परिवार अपने पास विशेष साधन न होते हुए भी इस शिक्षा-यज्ञ में आहुति दिये जा रहा है। इस पुनीत कार्य में समस्त जोबनेर का सहयोग मिले यही हमारी कामना है, यही हमारी प्रार्थना है।"

उक्त रिपोर्ट के बाद मातृमन्दिर का काम मुख्यतया वनस्थली विद्यापीठ के सहयोग से चलता रहा है। जोबनेर से न कोई सहयोग मिला है, न उसके मिलने की आशा है। अस्तु।

मातृमन्दिर को धीरे धीरे वनस्थली विद्यापीठ से बाकायदा जोड़ देने का विचार है। उस हालत में काफी सुविधा हो जाएगी। बाकी समाज कल्याण मडल से जो सहायता मिली है वह नगण्य सी है जिसको बहुत प्रयत्न करने पर भी बहुत बढ़ने की सभावना मुझे नहीं लगती है।

लोकवाणी

मेरा एक अगीकृत काम लोकवाणी दैनिक था। पिछले सालों में लोकवाणी को बेहद तकलीफों का सामना करना पड़ा और अब जाकर उन तकलीफों का अन्त होना कुछ कुछ दिखायी देने लगा है। बीच बीच में 'जीवन सन्देश' जैसे साप्ताहिक निकाल कर सतोष मान

लेना चाहा। पर वह काम भी प्रेस के अभाव में चल नहीं सका। हर महीने घाटा भरने को पैसा चाहिए था सो नहीं जुटाया जा सकता था। अब सुधाकर का विचार है कि एक ठीक ठाक सा प्रेस लगाया जाए। प्रेस के जम जाने से धीमे धीमे अखबार का काम हाथ में लिया जाए और उसे पिछले अनुभवों से लाभ उठाते हुए आगे बढाया जाए। कल्पना तो है कि एक दिन ऐसा आए कि एक दैनिक पत्र पहले से भी बहुत ज्यादा शान के साथ नये और विकसित रूप में प्रकट हो। पर देखा जाए कब तक क्या होता है और कुछ होता भी है या नहीं। देश भर में स्वतंत्र अखबारों के लिए कुछ उज्ज्वल भविष्य इस समय तो दिखायी दे रहा है। प्रेस में जो बाधा दिखायी देती है वह लेबर की ओर अखबार में दिक्कत आएगी कि उसे सिद्धान्तों के अनुसार चलाना असंभव नहीं तो बहुत मुश्किल तो होगा ही सही। लोकवाणी का प्रकाशन बंद करने का कम से कम एक कारण तो यही हुआ कि उसे मिशन के तौर पर, अमुक सिद्धान्त के आधार पर चलाने की कोशिश की गयी। जाहिर है ऐसी बातों का यह जमाना नहीं है।

: ४ :

अनंगीकृत काम

हाइकोर्ट बेंच का प्रश्न

मेरा तरीका शुरू मे लेकर आज तक यह रहा है कि मैं अपनी शक्ति के अनुसार किन्ही एक या दो कामो को ही अपनाता हूँ और अपने अगीकृत कार्यो मे नुकसान करके किसी भी दूसरे काम मे हाथ नही डालता हूँ। यहा तक कि जब मै जीवनकुटीर (वनस्थली) के काम मे रम गया तब उस समय के ब्रिटिश भारत मे चलने वाली किसी हलचल मे जा कूदने के लिए मैने अपने मन को चचल नही होने दिया। दूसरे, मै केवल दिखावे के लिए और नाम कमाने के लिए किसी काम मे नही पडा करता। तीसरे, सब कामो को सर्वोपरि नैतिक तराजू पर तोलने की मेरी आदत रही है। जब १६४२ मे जयपुर प्रजामण्डल ने एक बार महाराजा से समझौता कर लिया तो मैने उसे आगे होकर किसी भी कीमत पर तोडना नही चाहा। जब कुछ उतावले साथियो से तग आकर मैं सर मिर्जा इस्माइल को यह लिखने को मजबूर हो गया कि महाराजा और प्रजामण्डल के बीच हुए समझौते को निभाना मेरे बस की बात नही है तो मुझको बेहद दुख हुआ था। पर उन्ही उतावले साथियो ने और भी ज्यादा उतावल करके मुझे उस कठिन स्थिति मे से निकाल लिया। जब मेरे तीनो बडे साथियो के अनुरोध पर सरदार पटेल ने मुझ पर राजस्थान के एकीकरण का भार डाल दिया तो मैं उसी काम मे तल्लीन हो गया और प्रांतीय काग्रेस कमेटी के अपने मित्रो को लाड लडाकर खुश करते रहने के लिए मेरे पास फुर्सत नही रही। मैं यदि अपनी "रक्षा" के लिए काग्रेस के साथियो को खुश करने मे लग जाता तो राजस्थान के एकीकरण का काम ठप्प हो जाता।

इस हिसाब से जब कभी मुझसे किसी संस्था या संगठन में शामिल होने को कहा जाता है तो मैं तुरन्त इनकार कर देता हूँ। मेरे जीवन में कभी एकाध बार ऐसे मौके जरुर आ गये जब मैं आगे होकर अमुक काम में हिस्सा बटाने को तैयार हो गया। ऐसा ही एक काम जयपुर मे हाईकोर्ट की बैंच की स्थापना का था। वैसे मेरे विचार कोर्ट मात्र के खिलाफ हैं। मैं कल्पना करता रहता हूँ कि जैसे कोर्ट आजकल हैं जिनमे कभी कभी न्याय चाहने वाले के मर जाने के बाद फैसले होते हैं वैसा कोई एक भी कोर्ट न हो तो किसका क्या बिगड़ जाए ? इस विचार के अनुसार मैं सोचता हूँ कि अमुक जनता से अमुक कोर्ट जितनी दूर हो उतना ही अच्छा और कोर्ट छाती पर ही आ बैठे तो जनता को चाहिए कि वह उसे दूर ढकेल कर खुद भी मौके पर से दूर हो जाए। पर मैं जानता हूँ कि दुनिया मेरे या मुझ जैसे किसी के विचारो से तो चल नहीं सकती। इसलिए मुझ जैसो को भी व्यावहारिक दृष्टि से, जनता की खुद की मानी हुई सुविधा-असुविधा की दृष्टि से, जनता की इच्छा की दृष्टि से ही सोचना पड़ता है। इस निगाह से राजस्थान की राजधानी जयपुर मे हो गयी तो जोधपुर में हाईकोर्ट का हैड क्वार्टर कायम करने में और जयपुर में हाईकोर्ट की बेंच रखने में कोई अनौचित्य नही था। जयपुर में हाईकोर्ट की बेंच न होने से राजस्थान के अधिक आबादी वाले पूर्वी जिलों की जनता को बड़ी असुविधा हो जाती। हाईकोर्ट बेंच को जयपुर से हटाना किसी भी हालत मे न्याय सगत नहीं था, जब कि हाईकोर्ट के लिए जयपुर में नया भवन तक बन चुका था। इसलिए जब १९५८ में हाईकोर्ट बैंच की पुन. स्थापना के लिए आन्दोलन उठा तो मैं स्वत. उसकी मदद करने को तैयार हो गया। प्रधानमंत्री पंडित नेहरु से मेरा लंबा चौड़ा पत्र व्यवहार हुआ जिसकी आखिरी मंजिल पर पंडितजी ने मुझको एक प्रकार की कारुणिक असमर्थता प्रकट करता हुआ पत्र लिखा। 1958 का आन्दोलन सफल नही हो सका, केवल उन्ही राजनीतिक कारणो से जिनसे बेंच जयपुर से हटायी गयी थी। १९७० मे दुबारा आन्दोलन उठा तब मैंने नीचे लिखे अनुसार नोट तैयार करके राष्ट्रपति गिरि, प्रधानमंत्री इन्दिरा गाधी, केन्द्रीय गृहमंत्री चव्हाण, राजस्थान के मुख्यमंत्री सुखाडिया के पास अपने पत्रो के साथ भेजा। राष्ट्रपति ने मेरे पत्र का ठोकठाक सा जाब्ते का उत्तर भेजा। प्रधानमंत्री और गृहमंत्री ने मेरे पत्रों की सिर्फ पहुँच लिखवाने की ही कृपा की। और राजस्थान के मुख्यमंत्री ने तो पत्र की पहुँच लिखना भी जरुरी नही समझा।

मेरा नोट

The day before yesterday there was a big rally from the rural areas of eastern Rajasthan and a memorandum of the needs and demands of the people of that region was presented, in the absence of the Rajasthan Chief Minister, to the President of the Rajasthan Pradesh Congress Committee at a mass meeting in Jaipur. One of the demands included in the memorandum was about the restoration of the Jaipur bench of the Rajasthan High Court which was abolished several years ago Regarding the restoration of the Bench the Jaipur lawyers submitted a memorandum

to the President of India during his recent visit to Jaipur. I understand the President gave the lawyers a very sympathetic hearing A deputation of the people of eastern Rajasthan including the lawyers, I hear, will now aproach the Chief Minister of Rajasthan, the Prime Minister of India and the Union Home Minister

It may be recalled that there was in 1958 a people's agitation for the restoration of the Bench. The idea was to get back the facility which was rightly given to the most populous parts of Rajasthan by keeping a Bench of the Rajasthan High Court at Jaipur, the main Court having been shifted to Jodhpur On the other side it was argued that in pursuance of the Law Commission's recommendation there should be one unified High Court in the whole State of Rajasthan. In no other state however, the Law Commission's recommendation appears to have been acted upon. By singling out Rajasthan for this special treatment the people of the State's eastern districts were put to great unnece-ssary inconvenience, without any additional advantage having been offered to the people of Jodhpur and the western districts.

In regard to the Jaipur agitation of 1958 it was wrongly represented to the central authorities including the Prime Minister Pandit Jawaharlal Nehru that it was only a local lawyers' affair who were putting up a show of agitation for the sake of their own benefit. The truth was that it was a people's agitation from all points of view and it was a peaceful agitation throughout except a few stray untoward incidents which should be regarded excusable in any movement involving thousauds of people In this connection I had a prolonged correspondance with Pandit Nehru who, though apparently not satisfied about the movement being peaceful and legitimate, had come round to the view that the people's feeling was there, that is, it was not only a lawyers' affair.

I take the liberty of reproducing below, in full, Pandit Nehru's last letter (of August 16, 1958) to me on the subject .—

"I have your letter of the 16th August about the Jaipur agitation. I need not tell you that I am greatly distressed at it. But I can not understand what I can do in the matter. I think it is a bad and a mad agitation and wholly unjustified. Even so, because people feel about it, I would like to help where I could, but I just do not know how I can help. I would, of course, see you if you so wish, but that too will not be helpful."

"In any event, this matter is both constitutionally and otherwise in the charge of the Home Minister, Pantji. I cannot bypass him."

Later, I pleaded with Panditji that it was not at all intended that Pantji should be bypassed. Panditji on his part, must have had a word with Pantji who, it appears, could not be pursuaded to change his stand. Surely, there was something in the internal situation of Rajasthan owing to which Pantji perhaps thought that it was risky to restore the High Court Bench to Jaipur.

Now, after twelve years, the issue has again been raised by the Jaipur District Rural Congress Committee, the Jaipur City Congress Committee and the Jaipur Bar Association. It is significant that quite a large number of M.L.A.'s and several M.P.'s and even some Ministers and the President, Rajasthan Pradesh Congress Committee are associated, this time, with the demand for the restoration of the Bench. The whole situation seems to be full of potentialities. For one thing, continued frustration of the people may lead to the strengthening of divisive forces in Rajasthan, too. For another, the State's stability might be disturbed. Any way, bitterness will surely follow in the wake of unsatisfied desires and aspirations of the people who regard their demand just and fair. All this should not be allowed to happen. The authorities (both State and Central), should, in my opinion, deal with the question in a sympathetic and liberal manner. What is most important is that there should be no political considerations in the present case which is only one of the convenience of a very large section without causing the least inconvenience to any other section of the people. I trust public representatives of the western region will, in the interest of Rajasthan as a whole, not make it an issue of prestige and they will not stand in the way of their brethren of the eastern region getting their due. With good will on all sides the government and the people should and, I trust, will be able to find a just solution of the problem.

राष्ट्रपति का उत्तर

(९.८.७०)

I thank you for your letter of the 6th of June together with its enclosure. I have no doubt that the Government will give due consideration to this matter.

With kind regards,

जैसा कि मैंने अपने नोट में प्रतिपादित किया है। जयपुर में हाईकोर्ट बेंच की पुन. स्थापना एकदम उचित थी। मैंने इसी कारण से अपने आपको तैयार किया था कि जरूरत पडेगी तो मैं बेंच आन्दोलन में अपनी पूरी शक्ति के साथ कूद पडूँगा। पर न जाने क्यों आन्दोलन करने वाले ढीले हो गये। सम्बन्धित लोगों के ढीले हो जाने के बाद मैं अपना कोई आग्रह रखता तो "मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त" वाला मामला हो जाता।

अब फिर हाईकोर्ट बेंच का मामला उठाया गया है, जो किसी न किसी रूप में चल ही रहा है। पता नही इन सब कोशिशो का कब क्या नतीजा आएगा क्योकि एक ओर तो केन्द्रीय सरकार का रुख साफ नही है और दूसरी ओर राज्य सरकार मे और विधायकों में भी आपसी खींचतान चल रही है। बेंच का विरोध करने वालो के पास कोई सिद्धान्त नही है, मुझको तो दूर से "हम बडे" की बात दिखायी देती है। जो हो, आजकल मेरा स्वास्थ्य ऐसा नही है कि किसी भी बाहर के काम मे सक्रिय हिस्सा ले सकूँ। मेरा स्वास्थ्य ठीक होता तो मै अबकी बार भी मदद करने को तैयार हो जाता। क्योंकि जयपुर हाई-कोर्ट बेंच की स्थापना से मेरा खुद का सबध था और बैंच का हटाया जाना और सब तरह से बेजा होने के साथ साथ मुझ पर अलग से व्यक्तिगत असर डालने वाली बात भी थी। मैं चाहता हूँ कि जयपुर मे हाईकोर्ट बेंच की पुन स्थापना की जाए। इसमे राज्य की जनता के बहुमत का आदर होगा और सबधित जनता को सुविधा मिलेगी और किसी का कोई नुकसान नही होगा।

राजस्थान में शराब बन्दी

भाई गोकुलभाई भट्ट के नेतृत्व मे राजस्थान मे शराबबदी करवाने के लिए एक बार पहले प्रयत्न हुए थे जिनके फलस्वरूप राजस्थान सरकार ने कुछ जिलो में शराब-बंदी लागू करते हुए वचन दिया था कि अमुक तारीख से पूरे राजस्थान मे शराबबदी कर दी जाएगी। उस वचन का भग हुआ और गोकुलभाई अनिश्चितकाल के लिए उपवास पर बैठ गये। उपवास पर बैठे गोकुलभाई को गिरफ्तार करने का नाटक करके राजस्थान सरकार ने उनके साथ मूर्खतापूर्ण अभद्र व्यवहार किया। उन दिनो पहले तो मै हॉस्पीटल मे था, फिर घर पर चला गया तो वहा भी हॉस्पीटल की सी कैद मे ही मुझको रखा गया था। उस हालत मे भी मैंने १६ मई, १६७२ को नीचे लिखे अनुसार वक्तव्य प्रसारित किया –

"राजस्थान मे राज्य सरकार द्वारा शराबबन्दी के पूर्व घोषित निर्णय को बदलने के कारण जनता के निष्ठावान और नि स्वार्थ सेवक श्री गोकुलभाई भट्ट ने आज आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया है। त्यागी और तपोनिष्ठ राष्ट्रसेवक गोकुलभाई का आमरण अनशन करना साधारण बात नही है।

"नशाबन्दी भारतीय सविधान सम्मत बात है। कांग्रेस की सदस्यता के लिए यह एक खास शर्त रही है। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम मे इसका खास स्थान था। गाधीजी को राष्ट्रपिता मानने वाले और पल-पल पर उनकी दुहाई देने वालों के लिए नशाबन्दी कार्यक्रम को छोड़ना अत्यन्त बुरी बात है।

"राजस्थान मन्त्रिमण्डल नशाबन्दी के पक्ष में तो है, लेकिन आबकारी की आय बन्द होने से होने वाली हानि बरदाश्त करने की ताकत अपने आप में नहीं पाता। राजस्थान के अरबों के बजट में दस पांच करोड़ रुपयों की क्या गिनती है? चालू साल का २८ करोड़ का घाटा ५८ करोड़ का हो गया बताया। ओवर-ड्राफ्ट एक अरब तक पहुँच गया बताया। राज्य पर अरबों रुपयों का कर्ज है। यह इतना बड़ा खड्डा कैसे भरा जाएगा? जिन उपायों से यह खड्डा भरने वाला हो उन्हीं से आबकारी की आय का जरा सा घाटा भी क्यों नहीं पूरा किया जा सकता?

"माना कि केवल कानून से शराबबन्दी नहीं हो सकती। इसलिए विधायकों व अन्य समाजसेवियों को सक्रिय होना चाहिए। पर केवल समाजसेवी कानून की मदद के बिना कुछ विशेष नहीं कर सकते। जिस प्रकार चोरी आदि जुर्मों की रोकथाम के लिए कानून जरूरी है उसी प्रकार नशाबन्दी के लिए भी कानून की आवश्यकता है। समाज-सेवियों को जनता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। पर जब सरकार नशे-बाजी और जुआखोरी आदि के माध्यम से पतन के द्वार खोल रही हो तो केवल लोक-सेवकों से क्या हो जाएगा?"

मुख्यमंत्री को तार

साथ ही मैंने नीचे लिखे अनुसार दो तार राजस्थान के मुख्यमन्त्री को भेजे :—

(I)

Let us recognise Gokulbhai is country's most selfless devoted worker of highest integrity and cause of prohibition was dearest to Gandhiji's heart. Gokulbhai's life is infinitely more precious than few crores supposed loss of which Rajasthan can bear much more easily. If given chance I can show how to adjust this said loss. As against any other crime law is necessary against evil of drinking, also. Pursuading people against drinking is duty of all public servants not excluding ministers and legislators. If God forbid Gokulbhai goes down many like me will have no interest in life. For my-self I must have immediately joined Gokulbhai but for after-effects of my dangerous heart attack I implore you and through you Prime Minister to regard this matter as most serious and do needful before it is too late. No Government worthy of name dare break promise solemnly made

(II)

Continuation my yesterday's telegram nothing could be more graceless and childish than arrest of Gokulbhai at mid night on charge of attempting suicide Government spokesman's comparison between Centre's changing its mind about prince's purses and State Government's break of promise about prohibition is most absurd. Government's arguement is its inability to bear financial loss. Oppestion arguement is Government can easily make up few crores loss. Removal to hospital can not save Gokulbhai. Government must therefore announce total prohibition immediately I do not know how otherwise Government can show its face to people

इसके अलावा मैंने प्रधानमन्त्री को नीचे लिखे अनुसार पत्र दिया :—

'यह पत्र गोकुलभाई के अनशन के सिलसिले मे है। दिल का सख्त दौरा पड़ने पर डेढ महीना हॉस्पिटल मे रहने के बाद नजरबन्द जैसा न होता तो मैं खुद आपके पास दौड़ा आता।'

"शराबबन्दी सविधान सम्मत है। अपनी मनकी भावना नशाबन्दी के पक्ष मे है और राजस्थान सरकार ने १ अप्रेल, ७२ से पूरी नशाबन्दी लागू कर देने के लिए वचन दे दिया था।"

"राजस्थान के अरबो के बजट मे पांच दस करोड की क्या गिनती हो सकती है ? राज्य की खराब वित्तीय स्थिति शराब की पापमयी आमदनी को बनी रखने से कितनी सी सुधर जाएगी।"

"शराब की आमदनी से भले काम करने की अपेक्षा भले कामो को न किया जाएगा तो उससे गरीब जनता का जरूर ही ज्यादा भला होगा। शराब तो गरीब के लिए मौत से बढ़कर है न ?"

"गोकुलभाई जैसा वफादार काग्रेसजन न सिर्फ आज नही है, बल्कि पिछली कई दशाब्दियों मे राजस्थान मे नही हुआ। इतना सच्चा, इतना त्यागी सेवक मेरी जानकारी मे दूसरा कोई नही है।"

"गोकुलभाई का जीवन अमूल्य है, बहरहाल कुछ करोड़ से बहुत ज्यादा कीमती। गोकुलभाई ने अपने मित्रो के वचनभंग का प्रायश्चित करने के लिए अपनी जान की बाजी लगायी है।"

"क्या आप गोकुलभाई की प्राणरक्षा और राजस्थान सरकार की वचनरक्षा के लिए थोड़ा समय नही निकाल सकती ? आपका भरोसा सम्बन्धित सभी लोगो को है और सभी को (मय-गोकुलभाई के) आपका फैसला मान्य हो सकता है।"

पर मेरा मन नहीं हुआ इन्दौर जाने का। श्री के० जी० सध्यदेन का पत्र मेरे पास आया उसका नीचे लिखे अनुसार उत्तर मैंने भेज दिया और। जैसा कि मैंने पत्र मे लिखा था उसके अनुसार एक लेख लिख कर सम्मेलन के सोविनिर मे छपने के लिए भेज दिया था। सम्भवतः आजकल भी सहमति मन्च कुछ हलचल तो कर रहा है।

श्री के जी सध्येदन को लिखा गया मेरा १६. ६ ७१ का पत्र—

Thanks for your letter of June 10 regarding the Convention of National Consensus, India proposed to be held at Indore from August 8 to 11, 1971.

Shri Rameshwar Totla has been good enough to send me all the material about the Convention. But, for my part, I am sorry I am not yet been able to persuade myself to think that I could make any useful contribution to the deliberations of the Convention.

My own thinking is that the party in power is primarily responsible for all the ills prevailing in our country. Corruption at the top flows down to the bottom and if those in authority have no qualms about right or wrong, if they adopt all possible unfair means to serve their purpose, if there is the widest gap between what they say and what they actually do, then for whom it will be possible to save the nation ? As said in the Gita, what a high up does is copied by the common man.

I have agreed to write an article for the Convention Souvenir in which I will deal with the subject in some detail. What, however, is the use of my or anybody's writing an article or some good people arriving at a consensus, unless we have the sanction to get our views accepted by people who wield power to which they are determined to cling as long as they can and by any means what soever. All the same, it may all be for the good, if fairminded people express their considered views : the common man will be enlightened to some extent. But ultimately, the common man shall have to rise in rebellion against the evil forces ruling and there by ruining the morals of the nation.

To this end, I have resolved to devote the rest of my life with all the energy and strength at my command.

: ५ :

नया कार्यक्रम

मेरी यह कल्पना तो १९१७-१८ से हो गयी थी कि मैं किसी ग्राम में अपना आश्रम बनाऊंगा और ग्रामवासियों की सेवा करता हुआ उनकी जागृति की अलख जगाऊंगा। आखिर १९२९ के पूर्वार्द्ध में मैं अपने उस सपने को साकार करने के लिए वनस्थली ग्राम में जाकर बस गया। जीवनकुटीर नाम की संस्था की स्थापना हो गयी। जीवनकुटीर का जीवन कठिन कठोर था और जीवनकुटीर के साथियों ने ७॥ साल तक अत्यन्त आर्थिक कष्ट और कठोर परिश्रम का जीवन बिताया। इन्हीं दिनों बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय की "आनन्द मठ" नाम की पुस्तिका कहीं से मेरे हाथ लग गयी। मैंने उसको एक बार, अनेक बार पढ़ा और लगा मैं उसे अपने साथियों को भगवत् कथा के तौर पर सुनाने। आनन्द मठ में माता की सेवा में लगे हुए सन्तान सम्प्रदाय के जीवन ने हम लोगों को बेहद प्रभावित किया। और हम में से कई एक "वन्दे मातरम्" का गुंजार करने लगे। मैं खास तौर से "गोपाल गोविंद मुकुन्द शौरे, हरे मुरारे मधुकैटभारे", को मन ही मन गुनगुनाता रहने लगा।

सन्तान सम्प्रदाय की लूटमार करने की और मुसलमानों का खण्डन और अंग्रेजों का पक्ष जैसा करने की बातों को मैं पसन्द नहीं कर सकता था। पर घर बार छोड़ने वाले उन सन्यासियों के त्याग, साहस और माँ की सेवा में बलिदान होने की भावना ने मुझे पागल जैसा बना दिया। आगे चलकर इसी बीज में से जीवनकुटीर-वनस्थली का फक्कड़ सम्प्रदाय प्रकट हो गया। फक्कड़ की कल्पना तो जोरदार थी, पर हम जीवनकुटीर के साथियों में एक

को छोड़कर सब या तो पहले से घरबारी थे या बाद मे बन जाने वाले थे। इसलिए फक्कड़ सम्प्रदाय का नारा हमारे उत्साह को बढाने वाला भले ही था, पर हम उसे अपने जीवन मे पूरे तौर पर चरितार्थ नही कर सके। कमाई धन्धे मे नही पडना और कही से ही जो कुछ मिल जाए उसी से अपना जीवन निर्वाह कर लेना और कष्टमय जीवन मे सुख का अनुभव करना इत्यादि बातें तो हम लोगो में थी। उस समय के हम लोगो मे से कुछ ने आगे तक उन बातो को काफी निभाया।

बीच मे १२–१३ सालो तक मुझे वस्तुत रचनात्मक राजनीति की धुन लगी रही। मेरी राजनीति जनता के लिए कुछ कर गुजरने की साध तक ही सीमित थी।

घटना चक्र घूमता गया और १९४८ में मैं जयपुर राज्य का मुख्यमन्त्री बन गया। फिर राजस्थान के एकीकरण का काम मेरे सिर पर आ गया। अपने मुख्यमन्त्री बनने का अफसोस मुझे आज तक है। मैं उन दिनो जब खुद 'राज' बन गया था। तब भी मैं "राज" का खण्डन ही किया करता था, न केवल खानगी बातचीत मे बल्कि यदा कदा आम सभाओ में भी। मुख्यमन्त्री बने रहने के "लक्षण" मुझ में नही पाये गये और १९५१ के शुरु होते ही उस जजाल से मेरी मुक्ति हो गयी। तीनेक साल के मेरे मुख्यमन्त्रीत्वकाल मे बिगड़ी हुई वनस्थली विद्यापीठ की हालत को ठीक-ठाक करने मे मुझे लग गये।

१९५४ मे मेरे धैर्य का बाध टूट गया और जीवनकुटीर की रजतजयन्ती के साल मे मैंने नवजीवनकुटीर कायम करने की ठान ली। नवजीवनकुटीर का कार्यक्रम भी जनता को जगाने का था–प्रचारात्मक, शिक्षणात्मक, रचनात्मक, सेवात्मक, आन्दोलनात्मक और सघर्षात्मक। शुरु-शुरू मे वह विविध कार्यक्रम अच्छा चलने लगा और मेरे पडौस मे कुछ साथी फिर से इकट्ठे हो गये। जीवनकुटीर के ज्यादातर साथी इधर उधर हो चुके थे और कुछ तो मुझको नापसन्द कर चुके थे, क्योकि मुझ जैसे साथी के पास-पड़ौस में उनका कुछ काम बनने वाला नहीं था।

१९५४ मे मैं १४-१५ दिन तक विनोबाजी के साथ पद यात्रा में भी रहा और भूदान कार्यक्रम के तत्व को मैंने समझ लिया पर विनोबाजी से मैं अपने खुद के लिए पक्का व्यावहारिक कार्यक्रम नही निकलवा पाया। दूसरी तरफ वनस्थली विद्यापीठ का काम भी ऐसा साबित हो रहा था कि उसमें से मैं अपने आपको निकाल नही पा रहा था। १९५७ से १९६२ तक मैं लोकसभा मे जाकर फिर एक बार जाहिरा तौर पर राजनीति में फसने को हो गया था, पर मै उसमे मे भी बच निकला। क्योकि न तो मेरा मन लोकसभा के काम मे था, और न मैं अपने आपको उस समय जोर पकड रही गन्दी राजनीति मे पडने के लायक अपने आपको समझ पा रहा था।

इस तमाम लम्बे अर्से मे वनस्थली तो मेरे दिल मे बसी हुई ही रही और वनस्थली विद्यापीठ का विकास कुछ ऐसी तेजी से होने लगा कि मै उस काम से छुटकारा पाने के बदले

उसमें ज्यादा से ज्यादा फंसता रहा। ऐसे करते कराते १९७० का समय आ गया। साल के शुरू में ही मैंने अपना 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' लिख डाला। जिसमें मैंने अपनी उन पुरानी तरंगों को, अपने उस पागलपन को कई प्रकार से उडेल करके रख दिया। और मुझको ऐसा लगने लगा कि अब तो मैं पूरे तौर पर अपनी कल्पना के क्रान्तिकारी कार्यक्रम को मजबूती से पकड लूंगा।

देश की खराब स्थिति का नक्शा मेरे दिमाग में खिंच रहा था जिसे मैंने अपने "किं कर्तव्यम्" नाम की जरासी पुस्तिका में पेश कर दिया। उक्त पुस्तिका में मेरी तड़प का नक्शा भी पेश हो गया। इस उधेड़ बुन में से स्वाधीन ग्राम-नगर-संगठन की योजना प्रस्फुटित हो गयी। देश की स्थिति के विषय में लिखते लिखते मैंने आगे लिखा:—

"पंचायत राज का बहुत हल्ला-गुल्ला हुआ, पर उससे फायदे के बदले नुकसान ज्यादा हुआ मालूम होता है। विकास योजनाओं का लाभ भी शकास्पद है। पंचायतें राज की छोटी मोटी कचहरियां जैसी मुझे लगती हैं। सामुदायिक विकास की योजनाओं ने चोरी करने वालों को नये नये मौके दे दिये। जनता स्वावलम्बी होने के बजाए परमुखापेक्षी बन गयी है। ऐसी हालत में स्वराज शब्द सर्वसाधारण के लिए बेमानी हो गया है।

"तब फिर किं कर्तव्यम् ? सर्वसाधारण जनता को राजतन्त्र की जकडबन्दी और राजनीतिक दुरुपयोग से मुक्ति कैसे दिलायी जाए ? जो लोग जिन राज चलाने वालों की घोर निन्दा करते हैं उनको उन्हीं के पीछे दौडना पड़ता है, मामूली बोलचाल में उन्हीं की चिलम उनको भरनी पडती है। इस बेढब स्थिति में रास्ता कैसे निकले ? एक ओर थोथे नारों का मायाजाल, दूसरी ओर नाना प्रकार के स्वार्थसाधन का चक्रव्यूह।

"मैंने जितना सोचा है, उसके अनुसार हमें जड़ को पकड़नी होगी, सब कुछ सीधे ग्राम में और नगर में शुरू करना होगा और सर्वत्र भले, ईमानदार और नि:शुल्क सेवा करना चाहने वाले व्यक्तियों की खोज करनी होगी। स्थानीय कार्यकर्ताओं के बिना ठोस काम नहीं हो सकता, बाहर के पैसे की मदद से कुछ किया जाएगा तो उससे जन-समुदाय का फायदा न होकर नुकसान हो सकता है।

"प्रत्येक पंचायत क्षेत्र में तथा प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र में अपनी स्वाधीन सभा होनी चाहिए। फिर प्रत्येक विधान सभाई क्षेत्र में, प्रत्येक संसदीय क्षेत्र में, प्रत्येक राज्य क्षेत्र में अपनी अपनी सभा होनी चाहिए, आखिर में भारतीय क्षेत्र की एक सभा हो सकती है। पर अपने को जड से शुरू करना है। फिर जहां तक पहुंच सकेंगे पहुंच जाएंगे। काम वहीं हो पाएगा जहां स्थानीय शक्ति का उदय होगा।

"उक्त सभाओं का गठन स्वाधीन होगा। अर्थात् राज्य के किसी कानून के तहत में नहीं होगा। सभाओं का कार्य संचालन संगठन के अपने खुद के संविधान और नियमोपनियमों

के अनुसार होगा। इस सगठन को राज के पास भिक्षा का पात्र लेकर नहीं जाना होगा। हमे जन-समुदाय को उसके हक का अहसास कराना होगा और अपने हक के लिए जरूरत पडने पर मुकाबला करना सिखाना होगा।

"इस ग्राम-नगर-सगठन के अगो मे से लोकशिक्षरा को सबसे पहले अपने हाथ में लेना होगा। शिक्षित हुए बिना जनता जागृत नही हो सकती। जागृत हुए बिना वह सगठित नही हो सकती। सगठन के बिना जरूरत पड़ने पर सघर्ष की स्थिति नही बन सकती। और सघर्ष के बिना सच्ची लोकसत्ता जनता के हाथ में नही आ सकती। सच्ची लोकसत्ता के बिना स्वराज का कोई अर्थ नही हो सकता।

"लोक शिक्षण के अलावा दूसरा काम होगा सभी केन्द्रो मे सुरक्षा दल का संगठन करना। हर जगह प्रशिक्षित युवको की टुकडियां होनी चाहिए जो ग्राम की, नगर की सुरक्षा के काम मे पूरा योगदान दे सके और कभी मौका आ जाए तो इसमे भी बढ़कर काम कर सके। सुरक्षा दलो का गठन हो जाए तो जनता मे सचमुच जान आ सकती है। स्वराज आने के बाद से जनता पहले से ज्यादा निर्जीव हो गयी है।

"आजकल गाव-गाव मे, घर-घर मे आपस के झगड़े बहुत बढ गये हैं। झगड़े कराने वालो की कही भी कमी नही है। लोगो को समझाना होगा कि वे अपने विवादो व झगडो का निपटारा अपनी अपनी सभाओ मे ही कराने और सरकार के द्वारा सगठित पुलिस, कोर्ट-कचहरी, ग्रामपचायत, न्यायपचायत मे पुकारने को न जाए। ऐसा हो जाए तो किसी को रिश्वत देने लेने की जरूरत ही क्यो पडे?

"जनता की शिक्षा, चिकित्सा, पानी, बिजली, सडक, रोटी-कपडा, मकान व भूमि आदि की आवश्यकताओ की ओर स्वाधीन सगठन को पूरा ध्यान देना होगा। सत्तापार्टी इन कामों को वोट के बदले मे रिश्वत के तौर पर करती देखी गयी है। इससे सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया है। जनता को अपनी आवश्यकताओ और मागो की पूर्ति करानी होगी तो उसे अन्ततोगत्वा सघर्ष का रास्ता अपनाना होगा।

स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन पक्षातीत होगा। उसका किसी पार्टी विशेष से या व्यक्ति विशेष से न राग होगा न द्वेष। पर सगठन चुनावो से अपने आपको अलग नहीं रखेगा। उसे जनता द्वारा समर्थित भले और योग्य उम्मीदवारो की मदद करनी पड़ेगी। और जब किसी एक की मदद की जाएगी तो सामने वाले दूसरे की काट करने से बचा नही जा सकेगा। बहरहाल चुनावों मे जनता का मार्गदर्शन करना होगा।

'ग्रामसभा मे जो सेवक चुने जाएं उनका चारित्र्य शुद्ध हो और उनकी ईमानदारी असन्दिग्ध हो। वे दूसरो की तरह अपनी रोजी खुले तरीके से कमाकर खाने वाले हो। उनमे लीडरी की बू न हो और वे किसी की गुलामी दलाली करने वाले न हों। ऐसे सेवकों

का ही ग्राम चुनावों में समर्थन किया जाना चाहिए जो देश व राज्य के हितों को ध्यान में रखते हुए अपने क्षेत्र की सेवा ईमानदारी से करे।

"सिद्धान्त यह है कि शक्ति भीतर से पैदा होनी चाहिए। शक्ति ऊपर से आरोपित नहीं की जा सकती। जिसका सत्ता से कुछ भी लगाव होगा, जिसका कुछ भी काम सत्ता से होगा उसे डर लगेगा कि कहीं सत्ताधारी नाराज हो जाएं और उसके काम को बिगाड दे। स्वार्थबुद्धि वाला सोचेगा कि कहीं उसकी स्वार्थसाधना में विघ्न न आजाए। इस काम के लिए चाहिए जोखिम उठाने वाले निडर और बहादुर लोग।

"मैं मानता हूँ कि देश में भले आदमियों की कमी नहीं है। पर ज्यादातर भले आदमी बहुत कुछ साधनहीन या चुपचाप रहने वाले है। जो सतुने वाले हे और जो किसी पराये बल से कुछ बोल सकते हैं वे उसी बल के वशीभूत है, वे किसी न किसी 'सिद्ध के साधक" बने हुए हैं। उनका ध्यान होता है अपना काम बनाने व अपनी तरक्की कर लेने की तरफ, भले ही वह तरक्की अपने भाईयों पर छुरी चलाने से हो।

"मुसीबत यह है कि अपने देश में देशभक्ति की कमी है। किसी बडे संकट के समय में तो हम लोग जोश में आ सकते है, पर बाद में वह जोश ठडा हो जाता है। व्यक्ति सबसे पहले अपनी सोचता है फिर अपने ग्रूप की, फिर अपनी पार्टी की और देश का नम्बर यदि आता है तो सबसे आखिर में। होना चाहिए यह कि देश का हित सर्वोपरि माना जाए। पर कई लोगों के सामने तो देश का या समाज का अस्तित्व ही नहीं है।

"ऐसी हालत में भारत की प्रथम आवश्यकता है कड़ा अनुशासन और मजबूत हुकूमत। विचारधारा ठीक, आजादी ठीक, अधिकार ठीक। परन्तु सबसे पहले प्रत्येक को देश में सम्पत्ति का उत्पादन बढाने में सहयोग देने का जो मूल कर्तव्य है उसका पालन करना पडेगा। दूसरे देशों की मदद को दूसरे नम्बर रखते हुए समूचे राष्ट्र को अपनी शक्ति माल की पैदावार बढाकर सम्पन्न बना लेना होगा।

"अपने जीवनभर के अनुभव के आधार पर मैं जानता हूँ कि उपर्युक्त कल्पना को अमल में लाना कितना मुश्किल है, एक बार तो नामुमकिन जैसा यह काम मुझे लगता है। कस्बों और शहरों में यह काम ज्यादा मुश्किल होगा और वहा पर कार्यक्रम को वहां की परिस्थिति के अनुसार चलाना होगा। और अवश्य ही ग्राम और नगर दोनों की दृष्टि से ही वर्तमान व्यवस्था को बदलने की योजना बनाकर अमल में लानी होगी।

"वस्तुत: यह वर्तमान सत्तातन्त्र को उलटने की और सच्चे स्वराज की बीज योजना है। मेरी कल्पना का स्वराज व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर आधारित होगा। एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता दूसरे व्यक्ति की स्वतन्त्रता में बाधक नहीं होगी, किसी की भी स्वतन्त्रता देशहित के विपरीत नहीं जाएगी। देशहित को हानि पहुंचाने वाले को दंडित होना पडेगा। दंड के बिना अनुशासन की मर्यादा बने रहना शायद संभव न हो।"

स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन का सविधान बन गया जिसमे गाव से लेकर राष्ट्र तक की सघटना तक की कल्पना करली गयी। संगठन के कार्यक्रम की रूपरेखा नीचे लिखे अनुसार बनी :—

१ वाचनालयो और प्रौढ कक्षाओ के द्वारा लोकशिक्षण की व्यवस्था करना।

२ पुलिस पर निर्भर रह बिना स्थानीय सुरक्षा की एवं सरकारी कोर्ट-कचहरी आदि के आधार के बिना जनता के झगडो व विवादो को आपसी समझौते से निपटाने का प्रयत्न करना।

३ जनशक्ति के आधार पर सरकारी लगान या कर मे से जनता के कामो के लिए उचित हिस्सा प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

४ जनता को शिक्षा, चिकित्सा, पानी, बिजली, सड़क, रोटी-कपड़ा-मकान व भूमि आदि की आवश्यकताओ और समस्याओ की जानकारी सरकार को कराकर उससे उनकी पूर्ति और हल कराने का यत्न आवश्यकता पड़ने पर सघर्ष का मार्ग अपना करके भी, करना।

५. दलबन्दी व दलगत राजनीति से दूर रहते हुए ग्रामपचायत, नगरपालिका आदि के चुनावो को निर्विरोध कराने का प्रयत्न करना, पर जहा (खास कर बड़े चुनावो मे) यह सभव न हो वहा जनता द्वारा समर्थित अच्छे व योग्य उम्मीदवारो का समर्थन करना।

उपर्युक्त कार्यक्रम को अमल में लाने के बारे मे मैंने नीचे लिखे अनुसार योजना प्रस्तुत की थी :—

१ गाव गाव मे और मोहल्ले मोहल्ले मे लोकशिक्षण केन्द्र स्थापित किये जाएगे, ऐसे केन्द्र जो स्थानीय जनता मे से आगे बढे हुए उत्साही कार्यकर्ताओ की जिन्दादिली से चलेंगे। सगठन सम्बन्धित कार्यकर्ताओ के खुद के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगा और लोक-शिक्षण की सामग्री जुटाने मे उनका मार्गदर्शन करेगा। लोकशिक्षण केन्द्रों के द्वारा विशिष्ट वाचनालयो-पुस्तकालयो के अलावा आवश्यकतानुसार प्रौढ़ कक्षाएं भी चलायी जाएगी। लोकशिक्षण केन्द्रो को सार्वजनिक प्रवृत्ति के मूल स्थान बनाने की कोशिश भी की जाएगी। कार्यकर्ता अपनी नि शुल्क सेवा देंगे और केन्द्रो का बाकी तमाम खर्चा, कम हो या ज्यादा, सम्बन्धित जनता उठाएगी।

२. (अ) स्थानीय सुरक्षा के लिए गाँव गाँव मे और जहाँ तक हो सकेगा नगरो मे भी "स्वाधीन सुरक्षादला" का सगठन किया जाएगा जिनमें साधारणतया १८ साल से ३० साल तक के युवक नि. शुल्क सेवा के लिए दाखिल किये जाऐंगे। सुरक्षा दल के सदस्यों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी। प्रशिक्षण आदि का तमाम खर्चा सम्बन्धित

जनता करेगी। जैसी कि आशा है सुरक्षा दलो का काम जब अच्छा चल निकलेगा तब स्थानीय सुरक्षा के लिए पुलिस की मदद चाहने की खास जरूरत ही नही रहेगी। बल्कि मौका आने पर सुरक्षा दल पुलिस के काम से बढ़कर भी काम कर सकता है।

(आ) जनता के आपसी झगडों व विवादो को निपटाने के लिए सम्बन्धित कार्यसमिति एक उपसमिति बना देगी जो फरीको को समझाने बुझाने की पूरी कोशिश करेगी। यह काम आसान नही होगा, क्योंकि स्वराज के बाद आपसी झगडे टटे बहुत बढ गये हैं और भोले बन्धुओं को आपस मे लडाने वाले और आपस की लडाई मे से कमाखाने वाले दलाल लोग हर जगह पैदा हो गये है जिनका पालन-पोषण सत्तापक्ष के उन "नेताओ" के द्वारा होता है जिन्हे खुद को दलालो के द्वारा बहुत कुछ मिलता दिखायी देता है।

३. समय आने पर जनता के द्वारा सरकारी कर या लगान मे से अपने हिस्से कि मांग सरकार से की जाएगी। यह काम मुश्किल होगा। और इसे सफल बनाने के मार्ग मे अनेक कानूनी और व्यावहारिक कठिनाइया आएंगी। उन सब कठिनाईयो का क्रमशः सामना करना होगा और अन्ततोगत्वा उन्हे जीतना होगा। सच्चे स्वराज की कई चाबिया हैं जिनमे से सबसे ज्यादा महत्व की चाबी यह है।

४ शिक्षा, चिकित्सा, पानी, बिजली, सडक जैसे काम उतने मुश्किल नही लगते हैं। परन्तु सत्तापक्ष इन कामो को वोट की एवज मे जनता को रिश्वत देने के रूप मे करते देखा गया है। इस प्रकार जनता को बिगाडने का सबसे बडा जिम्मा सत्तापक्ष का आता है। सत्ता मे यह पार्टी है या वह पार्टी इससे कोई मतलब नही है। जो सत्ता मे होगा वही ऐसा कर सकता है। इसलिए जनता को अपनी वास्तविक शक्ति का और अपने अधिकार का भान होना जरूरी है। सत्तापक्ष जनता की वाजिब माग की पूर्ति ठीक से न करे तो जनता को ललकारना पडेगा। भूमि की समस्या का हल ग्रामदान के कार्यक्रम के द्वारा करने की कोशिश हो रही है जिससे स्वाधीन सगठन को ओर से यथाशक्य सहयोग दिया जाएगा। रोटी-कपडा-मकान के सवाल बडे है और उनको हल कराने मे समय लगेगा। बेकारी और अर्द्धबेकारी मिटानी होगी। घर घर मे छोटे छोटे उद्योग चालू करने पड़ेंगे और जनता की जरूरत के माल का उत्पादन बढाना होगा। देश की शिक्षा प्रणाली और अर्थ रचना का समन्वय होगा।

५. इस सगठन के कार्यक्रम मे चुनावो को ऊँचा स्थान नही रखा गया है। किसी छोटे से चुनाव का भी इस जमाने मे निर्विरोध होना बहुत मुश्किल ही नही बल्कि नामुमकिन जैसा है। फिर भी जितनी हो सके उतनी कोशिश निर्विरोध चुनाव कराने की की जाएगी। बाकी खास बात मतदाता को समझाने और शिक्षित करने की होगी कि वह लोभ-लालच के वशीभूत होकर, भयभीत होकर, जाति व मजहब के लिहाज मे आकर दलालो के बहकाव का शिकार होकर और पार्टियो के घोषणा पत्रो की खोखली बातो के भुलाव मे पडकर सही स्थिति को समझे बिना अपना मत किसी को भी न दे। लेकिन जाहिर है कि

केवल खयाली बातें समझाने से काम नही चलेगा। इसलिए इच्छा से या अनिच्छा से कहना ही पडेगा कि स्थानीय जनता द्वारा समर्थित अमुक उम्मीदवार दूसरो के मुकाबले मे अच्छा है और उसे वोट देना चाहिए। परन्तु जब एक उम्मीदवार को अच्छा बताने गये कि दूसरे को बुरा बताने की नौबत आ जाएगी। और पार्टियो के घोषित और दिखायी देने वाले सिद्धान्तो की आलोचनात्मक चर्चा भी करनी पडेगी। स्वाधीन सगठन का मुख्य उद्देश्य लोकशक्ति को जाग्रत और सगठित करने का है। पर प्रत्यक्ष अनुभव की बात यह है कि चुनाव और वोट के मामले मे उदासीन रहने से लोक शक्ति सही रास्ते को छोडकर इधर उधर जा सकती है। इस खतरे को देखते देखते पार्टियो के, खासकर, सत्तापार्टी के माया-जाल का चित्र सामने उभर आएगा। ऐसी हालत मे सत्ताधारी की अनीति व भ्रष्टाचार की एव उसके द्वारा किये जाने वाले सरकारी कर्मचारियो और साधनो के दुरुपयोग की चर्चा करनी पड जाएगी। सत्तापक्ष के जो उम्मीदवार साधनहीन बताये जाएगे उनके चुनावो मे लाखो रुपये खर्च होने की टीका भी करनी पडेगी। देखा गया है कि सत्तापार्टी उन्ही लोगो से करोडो रुपया ले लेती है जिनकी निन्दा करने से वह कभी थकती नही और सत्तापार्टी को रुपया देने वाले लोग दिये हुए सारे रुपयो को अपने अपने माल की कीमत बढाकर, उपभोक्ताओ पर बरसा देते है। और भी कई बातें होगी जिनका खडन करना जरूरी होगा। स्वाधीन सगठन का किसी पार्टी से खास मेल या खास विरोध नही होगा, वह तो वर्तमान पार्टीसिस्टम और चालू चुनाव पद्धति के ही पक्ष मे नही है। फिर भी जब किसी एक उम्मीदवार का समर्थन और दूसरे की काट की जाएगी तो उसमे गलतफहमी हो जाने का अन्देशा जरूर हो सकता है। इस कठिन स्थिति मे उचित निर्णय करने के लिए बडी हिम्मत की जरूरत होगी।

अपने विचारो के अनुसार सगठन कार्य शुरू करने के लिए मैंने निवाई तहसील (जिसमे वनस्थली भी शामिल है) और फुलेरा तहसील (जिसमे मेरा जन्मस्थान जोबनेर है) को चुना। मैने सितम्बर, १९७० मे दोनो तहसीलो का धुआधार दौरा किया। मुझको लगा कि लोग मेरी नयी बात सुनने के लिए बहुत तैयार हैं। साथ ही मैने देखा कि जहा तहा पार्टी के लोगो के कान खडे होने लगे हैं। दोनो तहसीलो के कुछ पचायत क्षेत्रो मे सभाये भी बन गयी और काम के आगे बढने की सूरत पैदा हो गयी। पर उसके कुछ समय बाद ही लोकसभा के चुनाव आ गये। चुनावो में मेरी कोई दिलचस्पी नही थी। चुनावो मे होने वाले हथकडो से मुझको बडी नफरत थी। पर एक तो यह आजमाने के लिए कि देखें बिना टके पैसे के चुनाव प्रचार का क्या नतीजा आता है, दूसरे एक व्यक्तिगत मोह के कारण मैंने लोकसभा के दो उम्मीदवारो का समर्थन करने का फैसला कर लिया। यहा पर मैं यह बतादू कि जिसको नयी काग्रेस कहा जा रहा था उससे मुझको बड़ी भारी चिढ थी–जिस तरह से वह बनी उसमे मुझको घोर घृणास्पद अनैतिकता दिखायी दे रही थी। उसके साथ ही मैं पुरानी कॉग्रेस को असली काग्रेस मानता था। पुरानी कांग्रेस के साथ जिनका मेल था उन उम्मीदवारो का साथ देना मुझको उचित लगा और सत्ता का मुकाबला करने की धुन तो मेरी थी ही। जिसे मैंने व्यक्तिगत मोह कहा वह बात यह

थी कि जयपुर के महाराजा मानसिंहजी से मैं अपना प्यार का संबंध मानता था। उनका विदेश में अचानक देहान्त हो गया था। मुझे अपने तौर पर महसूस हुआ कि महाराजा की विधवा पत्नी राजमाता गायत्री देवी चुनाव में कहीं हार न जाएं। दूसरा उम्मीदवार था एक बैरवा भाई जिसके लिए मैंने सोचा कि एक ऐसे साधनहीन व्यक्ति को भी सहारा लगाना चाहिए। मैंने दोनों उम्मीदवारों की खातिर तूफानी दौरे किये और असंख्य भाषण दिये। मेरे दोनों उम्मीदवार नयी कांग्रेस पक्ष की जीत को उस हवा के मुकाबले में भी जीत गये। जिससे मुझको बड़ा सन्तोष हुआ।

पर मैं सोचने लगा कि इस प्रकार बिना-मतलब के और किसी उम्मीदवार के बिना कहे सुने ही ऐसे चुनाव संघर्ष में मुझे अपने आपको क्यों ढकेलना था। परिश्रम हुआ, गांठ का खर्च लगा, और मेरे नये कार्यक्रम में बाधा पहुंची। साथ ही कुछ लोगों को मेरे बारे में भ्रामक प्रचार करने का अवसर मिल गया। लेकिन जो भी हो, मैंने किसी ऐसे वैसे प्रचार की कभी परवाह नहीं की जो बात मुझे सही लगी उसे मैंने सदा ही निर्णय होकर अपनाया। और उसे अन्त तक पार भी पटका। परन्तु अन्ततोगत्वा मुझको अपनी यह गलती जैसी लगी। खासकर इस कारण से कि चुनाव के दिनों में मेरे कार्यक्रम में आये हुए विघ्न को मैं देर तक नहीं संभाल सका। इतने में दूसरे चुनाव आगये। तब तक मैं यह तय कर चुका था कि अपने से जितना हो सका उतना निभा दिया, साथ ही सत्ता के मुकाबले का जो अनुभव करना था कर लिया। अब दूसरी बार ऐसे झमेले में न पड़ना ही अपने लिए श्रेयस्कर है। और सच्ची बात यह भी थी कि जिन उम्मीदवारों का मैं तहेदिल से समर्थन कर सकूं वैसे उम्मीदवार भी कहां थे? किसी का विरोध की खातिर विरोध करना तो मेरा काम कभी था नहीं।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र तैयार हो रहा था उन्हीं दिनों में जोबनेर के कृषि कॉलेज की समस्या मेरे सामने लायी गयी। जोबनेर कॉलेज से एम० एससी० को कक्षाएं हटाकर उदयपुर ले जायी जा रही थी। जोबनेरवासी मेरे पास आये तो मैंने कॉलेज के काम को अपना लिया। नतीजा यह हुआ कि एम० एससी० के विषयों का उदयपुर और जोबनेर के बीच बटवारा करने का समझौता हो गया। कॉलेज के सिलसिले में जोबनेरवासी मेरे विशेष सम्पर्क में आये। और मैं सोचने लगा कि जैसा मैं ग्राम संगठन करवा रहा हूं वैसे ही नगर संगठन का काम जोबनेर में क्यों न किया जाए! ऐसा करते करते जोबनेर में नगरपालिका के चुनाव आ गये जिनमें दिलचस्पी लेने के लिए मुझे कहा गया। मुझको मोह हो गया कि यदि हो सके तो अपने जन्मस्थान जोबनेर में तो निर्विरोध चुनाव करा ही दूं। क्षणभर के लिए मुझको लगा कि सब लोग मेरे कहने में है और जोबनेर नगरपालिका के चुनाव निर्विरोध हो जाएंगे। पर बात इससे उल्टी निकली, न जाने कितने लोगों ने नामजदगी के पर्चे भर दिये। भले ही जीते तो वे ही उम्मीदवार जिनको मैंने नामजद किया था। पर काम एक दम बिगड़ गया और जोबनेर में भी वैसी ही पार्टीबाजी सामने आ खड़ी हुई जैसी किसी भी कस्बे में होती। इसका असर मेरे चित्त पर बहुत खराब पड़ा।

इतने अर्से तक वनस्थली के काम को ढीला छोड़ने के बाद मुझे उसको सभालने के लिए भी अपनी ज्यादा शक्ति लगानी पडी। जिन गाँवो मे ग्रामसभाएं बनी थी वहा के लोग भी, मुझे लगा कि ठडे पड रहे है। असल मे जैसा चाहिए वैसा प्राण स्वराज के बाद अपने देश मे कही दिखायी ही नही देता। सब लोग अपने-अपने मतलब को देखते हैं, बिना किसी मतलब के कोई भी आदमी कुछ भी तकलीफ क्यो करें। इस प्रकार करीब सालभर का समय निकल गया और मेरा नया कार्यक्रम पिछड़ गया।

जनवरी, फरवरी, मार्च, १९७२ के तीन महीनो मे मुझको वनस्थली के काम के लिए बेहद दौड़धूप करनी पडी। शरीर को ठीक ठाक करने की दृष्टि से एक प्रयोग करने के सिलसिले मे मेरे ज्यादा घी खाने मे आ गया। वैसे घी खाने का अभ्यास तो मुझे बचपन से ही बहुत था। साथ मे मधुमेह ने जोर पकड लिया। अन्त मे २४-२५ मार्च, १९७२ की अर्धरात्रि मे मुझे दिल का भयकर दौरा पडा। जिसका हाल इस पुस्तक के "मेरा दूसरा जन्म" नाम के अध्याय मे बताया गया है। उस दौरे को करीब सालभर हो चुका था और मै एकदम ठीक हुआ लगने लग गया था। पर न जाने किस कारण से १२ मार्च, १९७३ को एक बार फिर जरा सा सेट-बैक हो गया जिसकी वजह से मैं दुबारा कैद कर दिया गया हू। यह स्थिति मुझको बहुत अखरती है, पर इसका उपाय फिलहाल तो कोई नही दिखायी देता।

मुझको वनस्थली विद्यापीठ के काम की देखभाल तो आवश्यकतानुसार करनी ही पड़ेगी। प्रेस और अखबार के काम का काम भी सुधाकर के सुपुर्द मैंने ही किया था, इसलिए उस काम मे सुधाकर की थोडी बहुत मदद भी मुझको करनी पड़ेगी। अपने अंगीकृत कामो के अलावा किसी काम का जिम्मा लेने की मेरी आदत नही है। पर मैंने जिस नये कार्यक्रम को अंगीकार कर लिया था और जिसके लिए मैंने बड़ी-बड़ी बातें अपनी कलम से लिखी थी, अपनी जबान से निकाली थी, उसका क्या हो? इस विचार से मैं कई बार व्याकुल और विह्वल हो जाता हूं। मेरी कैसी भी हालत हो स्वास्थ्य की निगाह से, पर नये कार्यक्रम को सर्वथा छोड देना तो मुझको मजूर होना मुश्किल है। इस काम की मेरी शर्तें कडी है। थोडे बहुत सफर खर्च के अलावा किसी कार्यकर्ता के वेतनादि का खर्चा बाहर के रुपये से कभी नही करूगा। तो फिर नये कार्यक्रम को सम्भालेगा कौन, यानी जहा स्थानीय कार्यकर्ता मिल जाएगे वहा भी? इस सवाल का जवाब मैं आज नही देता हूं। मैं इस मामले का सब कुछ दिल-दर्द के साथ समय पर छोडता हूं।

ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका था उसके बाद श्री शोभालाल गुप्त और श्री चन्द्रभान शर्मा ने मेरे कार्यक्रम से मिलता जुलता कार्यक्रम चलाने का इरादा जाहिर किया था। उस सिलसिले मे इकट्ठे हुए पुराने-नये साथियो के लिए मैंने निम्न लेख लिख दिया था :—

लेख

कई सालो से मेरा विचार हो रहा था कि मैं वनस्थली विद्यापीठ आदि के कामो के अलावा नये-पुराने साथियो की मदद से ग्राम जनता को जागृत-शक्तिशाली और सगठित

करने के लिए कुछ न कुछ विशेष करूं। आखिर मई, १६७० में मैंने अपनी आत्मकथा-"प्रत्यक्ष-जीवनशास्त्र" में लिखा था :—

"मैं अपने बाकी समय को लगाना चाहूंगा, मुख्यतया सर्वोदय की लाइन पर लोक-शिक्षण करने, लोक को जागृत और संगठित करने, निर्बल को बलवान बनाने, नामर्द को मर्द बनाने, ग्राम जनता को छोटी मोटी हर एक बात के लिए "नेताओं" के न चिपकने की विद्या सिखाने में और आखिर जनता में बुराई का डटकर मुकाबला करने की शक्ति पैदा करने मे।"

फिर मई, १६७१ मे मैंने अपने लेख "किं कर्त्तव्यम्" मे लिखा था .—

"जो हो, यह है वह स्थिति जिसमे मुझ जैसे अल्पप्राण का कुछ कर गुजरने का विचार है। मेरा इरादा सीधे पहाड़ पर बिना रास्ते चढ़ने का है, घने बीहड़ जंगल मे विचरने का है, नदी के प्रवाह के मुकाबले मे चलने का है, समुद्र मे कूद पड़ने का है, जलती हुई आग मे अपने आपको झोंक देने का है।"""""मैं अपने को सर्वोदय की विचारधारा के नजदीक पाता हूं। पर मैं किसी 'वाद' से बंधा हुआ नही हूं। मुझे किसी पार्टी का सदस्य नही रहना है। मुझे किसी भी हालत मे किसी चुनाव में खड़ा नही होना है। मुझे पार्टी, पद, पावर, पैसा, प्रसिद्धि कुछ नही चाहिए।"

"ऐसी भावनाओं और तरंगो को लेकर "स्वाधीन ग्राम-नगर-संगठन" की मेरी कल्पना हुई और हम, ब० ना० खोराजी आदि साथियो ने जोर-शोर से काम शुरू कर दिया। निवाई और फुलेरा तहसीलो के तूफानी दौरे किये गये। कई एक पंचायत क्षेत्रों मे स्वाधीन ग्रामसभाओं का संगठन हो गया। बीच मे ही एक बार बरसात के मौसम का और दूसरी बार आम चुनावों का विघ्न आ गया। तब मैंने सोचा कि चार छः महीने लगाकर बनस्थली विद्यापीठ की वित्तीय स्थिति को ठीक करके मैं निश्चिन्त हो जाऊं। उसी सिलसिले मे बड़ी भारी दौड़ धूप करते करते मार्च, १६७२ मे मुझको अचानक "हार्ट-अटैक, हार्ट फेल्योर" का घातक जैसा दौरा पड़ गया। सबको आश्चर्य हुआ कि मुझ जैसे को दिल का दौरा कैसे पड़ा, डॉक्टरों को आश्चर्य हुआ कि ऐसा सख्त दौरा पड़ने पर भी मैं बच कैसे गया।

"आजकल मुझको घर के भीतर कैदी की तरह रहना पड़ रहा है। मेरे मिलने-जुलने, बोलने-चालने, चलने-फिरने, खाने-पीने और काम-धाम सब पर एक हजार बंदिशें लगी हुई हैं। यदा कदा सिर्फ "पैरोल" पर ही मेरा बाहर निकलना होता है। कुछ समय पहले भाई शोभालालजी गुप्त और चन्द्रभानुजी शर्मा का मुझसे मिलना हुआ। उन्होंने स्वाधीनता सेनानियो-सैनिकों के संगठन की अपनी कल्पना मुझको बतायी। मैं तड़प ही रहा था कि क्या मैंने सोचा था और क्या यह मेरे शरीर का हो गया है। दोनो साथियो को अपने सुझाव देते हुए मैंने बता दिया कि मैं सक्रिय होकर दौड़-धूप जैसा कोई काम तो कर नही सकूंगा, बाकी मैं पड़ा-पड़ा अपना सहयोग आप सब साथियो को देने की कोशिश करूंगा। मेरी हार्दिक शुभकामना आप लोगों के साथ है।

"आज ५ अगस्त, १९७३ को साथियो की इस सभा मे एक नये सगठन की योजना प्रस्तुत है। जाहिर है कि उक्त सगठन का सदस्य बनकर कुछ विशेष करने की मेरे शरीर की स्थिति नही है। पर मेरा घायल दिल साथियों के साथ होगा और मुझसे जो कुछ थोडा बहुत बनेगा सो मै जरूर करता रहूगा। इस शुभ अवसर पर मैं अपनी छोटी-छोटी छः पुस्तिकाएं भेंट करता हू, इस आशा से कि इनमे प्रकट किये गये विचारों मे से कुछ ग्रहण करने योग्य पाया जाए तो उसे अपनाया जाएगा एवं दृढ़ सिद्धान्त और कठोर अनुशासन के साथ जन-शक्ति को शिक्षित-जागृत-सगठित करने का ठोस प्रभावकारी काम करने का यथा शक्ति यत्न किया जाएगा। जय जन-जनार्दन!"

बहरहाल मुझको आशा नही है कि जैसे कार्यकर्ता मेरी कल्पना मे हैं वैसे दो चार कार्यकर्त्ता भी मिल जाएगे और कोई क्रान्तिकारी काम आगे कर सकेंगे। क्रान्तिकारी काम के लिए तो किसी अवतार की ही प्रतीक्षा करनी पड़ेगी!

———

उपभाग १

: २ :

विचार-सार

विचार-सार

प्रस्तावना

विचार-सार में यत्किंचित् अध्यात्म, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति एवं सामाजिक शैक्षणिक विषयों के अलावा अपने देश की पांच नीतियों (१ धर्मनीति, २ अर्थनीति, ३ राष्ट्रनीति, ४ राजनीति और ५ प्रशासन नीति) के बारे में मेरे जो विचार हैं उनका बहुत संक्षिप्त सार दिया गया है। इस सार में पाठकों को मेरे मन की व्यथा खासतौर से देखने को मिलेगी।

हीरालाल शास्त्री

विचार-सार

जब से मैंने सूरत सम्भाली तभी से विभिन्न विषयो पर मेरे विचार चलते रहे हैं। पढ लिख जाने के बाद मैं अपने विचारो को गद्य मे अथवा पद्य मे लेखबद्ध भी करता रहा हू ।

(१) पहले साढे तीन सालो मे मेरा ज्यादा विचार आत्मतत्व के बारे मे चला है। यों तो सस्कार वलात् और सहज भाव से भगवान् का, भगवती का नाम मेरी जबान पर आता ही रहता है यहा तक कि भगवती की मूर्ति से तो मैं कभी कभी बातें भी करने लग जाता हू । कभी कभी अदृश्य भगवान् को मैं परोक्ष फटकार सुनाने लगता हू । यथा .—

किमु आस करें इससे उससे हम आस करे न विसंभर से

और कभी मै कहता हूं यह काम है सो मेरा नही भगवान का ही है । यथा —

न काम मेरा भगवान का है,
चिन्ता मुझे क्यो भगवान को हो ।
संकोच क्यों हो मुझको जरा भी,
संकोच हो सो भगवान को हो ।

कभी मै भगवती की जय बोलने लगता हूं यथा .—

अयि जगज्जननी जनरन्जनी,
भगवती भवती भयभन्जनी ।
सुरसुधा सकलासुरमर्दिनी,
जयतु देवि ! सदाशिवसंगिनी ।

यह सभी कुछ होता रहा है, पर मेरी समझ में यह आज तक नहीं आया है कि जिस भगवान् या भगवती की बात मैं करता हूं वह है कहां और उसका स्वरूप क्या है ? उसे अनादि बता दिया, अनन्त बता दिया, निराकार बना दिया, निर्विकार बना दिया, त्रिगुणातीत बता दिया, और न जाने क्या-क्या बता दिया। पर असल बात तो यह है कि यह सब कुछ बुद्धि से मेरी समझ में नहीं आया है। श्रद्धा से कुछ भी माना जा सकता है, भक्ति हो तो फिर कुछ करने धरने को बचता ही नहीं है, जरासी मूर्ति को साक्षात् भगवान् माना जाता है, उसे स्नान कराया जाता है, उसे खिलाया पिलाया जाता है, उसे सुलाया जाता है, उसके पीछे पागल हुआ जाता है। पर बुद्धि को काम में लेना शुरू किया कि सब कुछ अनिश्चित सा हो जाता है। शायद इसीलिए कहा गया कि "यो बुद्धे: परतस्तु स:"।

इसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति, उसकी स्थिति और उसका लय भी मेरी समझ में नहीं आया है। न जन्म मेरी समझ में आया, न मृत्यु। मुझको यह सोचने में मजा आता रहा है कि बड़ी से बड़ी हस्ती के भी प्राण निकल जाने के बाद उसकी कुछ भी गति दुर्गति हो सकती है या किसी के मर जाने के बाद उसका गुणगान किया जा सकता है, उसे सिर पर बिठाया जा सकता है। मृतकों का श्राद्ध भी किया जाता है, पर जो मर गया उसे क्या मतलब ऐसी किसी भी बात से, कोई कुछ भी करे उसके नाम से, उसकी बला से ? इसलिए मेरे जमी हुई है कि "जब तक जीवना तब तक सेवना"।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की मुझको विशेष जानकारी नहीं है, पर जितना सा मुझे जानने को मिलता रहता है उसके आधार पर मेरे विचार तो चलते ही रहते हैं। पाकिस्तान बना तो मुझे बहुत बुरा लगा, इतना ज्यादा कि मैंने कई सालों तक पाकिस्तान का नाम नहीं लिया। पाकिस्तानी पंजाब वालों ने पूर्वी बंगाल का शोषण किया तो उन्होंने बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया। और अपने को अलग कर लिया। तब मैंने सोचा पाकिस्तान के साथ यही होना था। मैं आगे सोचता हूं—हुआ क्या है, होगा तो अब ? यानी भविष्य में पाकिस्तान के और भी टुकड़े होंगे। इससे अपने को कुछ मिले या न मिले, पर अलग होने वालों की उत्तरोत्तर और भी अलग होते रहने की प्रक्रिया जारी रहे तो यह ठीक ही है। बंगला देश अपने को कब कितना निहाल करता है सो अपने देखने की बात होगी।

आजकल खासकर अमेरिका, रशिया और चीन की भी नीति अपने अपने प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने की है। कोई भी देश किसी भी दूसरे देश पर उपकार नहीं कर सकता। चलती है सो डण्डे के जोर की चलती है, जो शान्ति की बात करते हैं वे मुझको झूठे लगते हैं। लड़ाई न करने में किसी को अपना फायदा लगता होगा तो वह लड़ाई नहीं करेगा, या किन्हीं को भी लड़ा भिड़ाने में अपना लाभ होता दिखायी देगा तो समर्थ देश यह खेल मजे से खेल लेगा। वियतनाम में इतना हत्याकांड हो गया तो अमेरिका को क्या ? उसके अपने कुछ आदमी मर गये तो उनका फिक्र उसे हुआ। सारे दक्षिण-पूर्व एशिया में यही नाटक खेला जाता रहेगा तो उसमें भी शायद अमेरिका आदि की कुछ न कुछ स्वार्थसिद्धि हो ही जाएगी ? यही बात पश्चिम एशिया पर लागू होती है। और अमेरिका ईरान और इजरायल का इतना पक्ष

क्यों करता है ? पाकिस्तान को मजबूत बनाने की फिक्र अमेरिका क्यो करता है ? रशिया भारत से दोस्ती क्यों रखना चाहता है ? अमल मे वह एक दूसरे का मुकाबला करने का खेल है। भारत अमेरिका के आगे हाथ भी पसारे, और उसे बुरा भी कहता रहे ? नेपाल भारत मे मदद लेता रहे और समय समय पर अकड़ता भी रहे। जरासे इजरायल की ताकत और हिम्मत को देखकर आश्चर्य होता है, उसे अमेरिका का सहारा तो है ही। महायुद्ध में हुई भयकर बर्बादी के बाद जर्मनी और जापान की तरक्की दाद देने लायक है। ब्रिटेन और फ्रान्स ने महायुद्ध के बाद अपने को ठीक ठाक कायम रख लिया सो भी छोटी बात नही है। दक्षिण अमेरिका की, अफ्रीका की, दक्षिण-पूर्व एशिया की, पश्चिम एशिया की स्थिति बहुत उलझी हुई मुझे लगती है। इस नक्शे मे भारत की स्थिति क्या है ? आजादी के छब्बीस सालो में भारत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्या कर पाया सो गहराई से सोचने की बात है।

(३) सामाजिक-शैक्षणिक मामलो मे भी मेरा बहुत सोच विचार चलता रहा है। भारत मे शिक्षा मुझको 'दुहागिन' की बेटी जैसी लगती है। विद्यार्थियों का राजनैतिक दुरुपयोग तो सत्ताधारी क्या, असत्ताधारी क्या-सभी पार्टियां करती हैं। बाकी विद्यार्थियो को, युवको को दिशा बताने का, उन्हे रोजगार लगाने का कोई पक्का काम नही हुआ है। असख्य कमेटियाँ-कमीशन बने, उन्होंने तिरकी पाती पैवन्द लगाने की सिफारिशें की सो भी मानी जाकर अमल मे नही लायी गयी। विद्यार्थियों में चारित्र्य और अनुशासन का ह्रास कहाँ से आया ? यह सब विद्या राजनीति के कर्णधारो से विद्यार्थियो ने सीखी है !

(४) मैं यह मानने वाला हूं कि स्त्री और पुरुष के बराबर अधिकार हो, सो अपने देश में है भी। पर स्त्री को पुरुष बनने की चेष्टा नही करना चाहिए। माता होने के कारण स्त्री की अपनी खास मर्यादा है, मातृत्व स्त्री का गौरव भी है। मातृत्व की मर्यादा की रक्षा करते हुए स्त्री कोई सा भी काम कर सकती है, भले ही वह फौज में भी जाए।।

(५) मुसलमानो के साथ पक्षपातरहित व न्याययुक्त व्यवहार होना चाहिए, पर उनको सिर पर चढाया जाना न उनके हित मे है, न राष्ट्र के हित मे। अलबत्ता किसी पार्टी को वोट मिल सकते है, मुसलमानो की खुशामद करने से, यह सौगन्ध खाने से कि मुस्लिम कानून मे दखल नही दिया जाएगा और उर्दू की तरक्की के लिए सब कुछ किया जाएगा। हिन्दी और उर्दू वास्तव मे एक ही है, उनको और भी मिला देना अच्छा है, न कि उनकी घुड़दौड की तैयारी करवाना। जैसे मुसलमानो का धर्मशास्त्र है वैसे ही हिन्दुओं का धर्मशास्त्र भी तो है। एक को चाहे जितना छेड़ा जाता रहा और दूसरे को छुआ तक नही गया, सो कहा का न्याय है।

(६) मैं मानता हूँ कि हरिजनों को लगातार दिया जाने वाला सरक्षण उनको पगु बनाये रखने का सबसे अच्छा उपाय है, पर जिनको वोट चाहिए उनको हरिजनो के वास्तविक हिताहित से क्या मतलब है ?

(७) किसानों-मजदूरों का दर्जा आज के जमाने में सबसे ऊंचा है, पर उन दोनों को चाहिए कि वे राष्ट्र के हित का भी ध्यान रखें। पहले से ही कम होने वाले उत्पादन को और भी कम कर देना मजदूरों का धर्म नहीं हो सकता।

(८) पूंजीपति से एक ओर काला रुपया वसूल करके उसका खजाना देना और दूसरी ओर उसे निरन्तर उठकर गालियाँ देना—यह तमाशा भी देखने लायक है।

(९) मुझे लगता है कि सबसे ज्यादा मुसीबत आज के जमाने मे मध्यम वर्ग की और उसके साथ ही बुद्धिजीवी समाज की है। भारतीय (या कहिए किसी भी) समाज में इन दोनों का अच्छा स्थान रहा है सो बना रहना चाहिए। पर समाजवाद के नशे में मध्यम वर्ग की कमर तोडी जा रही है सो बहुत बुरा लक्षण है।

(१०)-(११) नौकरशाही का नाम देकर राज कर्मचारियों को बुरा बताने की प्रवृत्ति को मैं बहुत बुरी मानता हूँ। कहते हैं सिविल सर्विस को 'कमिटेड' होना चाहिए, पर जो सर्विसेज को कमिटेड बनाना चाहते हैं वे पहले अपनी पार्टी के लोगों को सभाल तो करलें कि उनमे से कितने कमिटेड हैं। और कमिटेड किस बात से? किसी महत्वाकांक्षी एकाधिकारी की सनक से? सिविल सर्विस को क्या चलायी, जुडिशियरी तक को कमिटेड देखना चाहने वाले लोग भी इस देश मे है। इस "कमिटेड" प्रकरण का खास मतलब देश को चुपके-चुपके कम्यूनिज्म की तरफ घसीटने का मालूम पड़ता है। अच्छा हो यदि अपने यहा भी सत्तापार्टी के कर्णधार अपने भीतरी मन्तव्य को साफ-साफ बतावें। ऐसा हो जाए तो सत्ताधारी पार्टी का भारी भरकम शरीर जरूर ही हलका हो जाए।

(१२) और पत्रकारों को तो कमिटेड होना ही चाहिए! यह हवा इस देश को कहां ले जाकर छोडेगी? ऐसी हवा से हमारे जनतन्त्र का क्या होने वाला है? और इससे किस प्रकार का समाजवाद आएगा?

अपने देश की पांच नीतियों का चित्र मेरे सामने हैं। (१) धर्मनीति, (२) अर्थनीति, (३) राष्ट्रनीति, (४) राजनीति और (५) प्रशासन नीति।

(१) जाविते के धर्म का लोप सेक्यूलर स्टेट ने कर दिया और तात्त्विक धर्म का लोप स्वय नेता लोग तेजी से कर रहे हैं। आमतौर से नेताओं की नीति यह है कि उचित अनुचित किसी भी उपाय से उनका खुद का काम बनना चाहिए। आज की दुनिया मे नैतिकता जैसी पागलपन की बातों के लिए कोई स्थान नहीं है। कहते हैं सदाचार सहिता बननी चाहिए। जब बिना बनाये ही दुराचार सहिता चल रही है तो सदाचार सहिता का क्या काम है? सबसे ज्यादा भयकर बात यह है कि हम लोग अपने आपको भूल गये हैं। हम विदेशों के नक्काल बन गये हैं। हमको उन जैसा दिखना चाहिए, चाहे जेब मे पैसा हो या न हो और चाहे विदेशियो का वर्तन-व्यवहार एकदम खोटा हो। उदाहरण के लिए, अपने यहा "ऊंचे सर्किलो" मे शराब पीना एक फैशन हो गया है। हम माडर्निज्म के नाम

पर अपनी तमाम संस्कृति को भूल गये हैं, उसे हम जाने अनजाने में नष्ट किये जा रहे हैं। हमने अपना खानपान छोड़ा, वेशभूषा छोड़ी, अपनी भाषा छोड़ी, अपने सारे रहन सहन का तरीका छोड़ा, हमने अपने चारित्र्य की शुचिता छोड़ी! और हमने अपनाया क्या—एक थोथी शान, राष्ट्रहितविरोधी स्वार्थपरता, देशभक्तिहीन पदलिप्सा, एक दूसरे को गिराने की प्रवृत्ति और हर तरह का मिथ्याचार!

(२) हमने सही अर्थनीति भी नहीं अपनायी। गांधीजी का विचार तो हमने कभी का छोड़ दिया था। हमने अपने देश की, अपनी जनता की प्रतिभा को भी भुला दिया। जो पंचवर्षीय योजनाएं हमने बनायी उनका कुछ लाभ मिला होगा तो वह ऊंचे तबके के लोगों को मिला होगा। आखिर में हमने "गरीबी हटाओ" का नारा लगाया। क्या गरीबी को एक जगह से हटाकर दूसरी जगह ले जाना है? किसी एक की गरीबी हटाकर किसी दूसरे के सिर पर थोपना चाहते हैं हम? गरीबी को हटाने के बजाय मिटाने की बात करनी चाहिए थी। जो लोग गरीबी हटाने की बात कर रहे हैं, उनकी खुद की गरीबी तो हट ही गयी है। बाकी जिनके पास उन्होंने गरीबी पहुंचा दी उनका भगवान मालिक है। राजा-रईसों की एक नयी बिरादरी बन गयी है। ये लोग अपने ठाट-बाट के रहन-सहन के द्वारा प्रतिक्षण गरीब की गरीबी हटाने की फिक्र में दुबले होते जा रहे हैं। क्या अपने साधनहीन देश की झूठी शान दिखाने के चक्कर में आकर अपनी सादगी को तिलांजलि दे देनी चाहिए थी? राष्ट्रीयकरण के नाम पर सरकारीकरण के गोरखधंधे में अपनी शक्ति लगा रहे हैं। सब कुछ सरकार को करना चाहिए? जिन बड़े-बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया है उनमें करोड़ों का घाटा हर साल होने की शिकायत है। नोट छापकर और उधार का रुपया लाकर हम कीमतें घटाने जा रहे हैं! कुछ लोगों को नौकरियां देने की योजना बनाकर हम बेरोजगारी मिटाने जा रहे हैं! चोर बाजारी करने वालों का रुपया लेकर, अपना राजनीति का काम बनाकर हम चोरबाजारी बंद करने जा रहे हैं! अपनी असफलताओं का जिम्मा दूसरों पर डालकर हम अपनी रक्षा कर लेना चाहते हैं! अपनी पार्टी में बड़े-बड़े भूस्वामियों को इकट्ठा रखकर हम भूमि सुधार करना चाहते हैं! हम भूमिहीनों को जमीन देना चाहते हैं! राजाओं की प्रीवीपर्स के मुश्किल से दो-चार करोड़ बचाकर हम बड़े भारी क्रान्तिकारी दिखायी देना चाहते हैं!

(३) हम अपनी राष्ट्रनीति का लेखा-जोखा देखते हैं तो एक ही बात सामने आती है, अपने भिखमंगेपन की। जिन दिनों हमारे पास अपनी फिक्र करने का भी सामर्थ्य बहुत कम था, उन दिनों हम दूसरों की हिमायत पर दौड़ा करते थे। जिनका विश्वास हमें हर्गिज भी नहीं करना चाहिए था, उनका जरूरत से ज्यादा विश्वास करके हम धोखा खा गये और दुनिया के सामने बेवकूफ बन गये। हमने अपने एक छोटे पड़ौसी को नाराज कर दिया, उसके यहां के कुछ लोगों को न केवल शरण बल्कि प्रोत्साहन देते हुए दिखायी देकर। अपने घर को ठीक से नहीं संभाल पा रहे हैं। विघटन की शक्तियां भीतर ही भीतर खुराफात करती हुई दिखायी दे रही हैं। एक राज्य के दो हिस्सों के लोग अपने लिए अ

अलग दो राज्य चाहते हैं। पर अपन उनको दहला रहे हैं। क्या जरूरत पड़ी है जो साथ नहीं रहना चाहते हैं उनको साथ रहने के लिए दबाने की ? यही आवाज दूसरी जगह भी उठेगी तो उठ जाएगी। तब क्या गजब हो जाएगा ? बहुत बड़े-बड़े राज्य किसी संयोग से या भूल में बन गये थे तो उनके छोटे-छोटे दो या दो से अधिक हिस्से कर देने में आखिर क्या नुकसान है ? राज्यों को कड़े शिकंजे में फंसे हुए रखने की अपनी नीति भी लाभदायक सिद्ध नहीं होने वाली है। मुझे तो कई बार अपने राज्य-नगरपालिका जैसे दिखायी देने लग जाते हैं। बेचारों को हर घड़ी दिल्ली की दौड़ में लगा रहना पड़ता है तो अपने राजकाज को संभालने की फुर्सत ही उनको नहीं मिलती।

(४) अपने यहां की राजनीति तो नफरत करने लायक सूगली हो गयी है। चुनावों में हम लोग किसी प्रकार के औचित्य की मर्यादा का पालन करने की जरूरत नहीं समझते। राजकीय साधनों का दुरुपयोग आजादी के साथ किया जाता है। जाति की काट करते करते हम लोग जाति के आधार पर टिकट बांट देते हैं। पूंजीवाद का खंडन करने वाले हम चोर बाजारी करने वालों को टिकट दे देते हैं। चुनावों के लिए करोड़ों रुपया इकट्ठा किया गया सो कहां से, किन से मिला ? उस रुपये का हिसाब कहां है ? आयकर वालों के पूछने पर हम कुछ लाख का हिसाब बनाकर बरी हो गये। कानून कहता है कि एक उम्मीदवार अपने चुनाव में इससे ज्यादा खर्च न करे, पर उस मर्यादा में रखने वाले उम्मीदवार कई होंगे तो कितने होंगे ? जब जरूरत पड़ी तो हमने दल बदल के जघन्य कृत्य को खूब बढ़ावा दिया। जब अपना काम निकल गया तो दल बदल के विरुद्ध बात करने लग गये। हमने दूसरी पार्टियों के साथ कई बार न्यायोचित व्यवहार नहीं किया। पार्टी के भीतर भी हमने जहां जिसको चाहा थोप दिया। इसमें भी अपना कोई प्रयोजन तो रहा होगा ? बड़ी बड़ी और ज्यादातर झूठी बातें बनाकर हमने अपने पुराने साथियों को निकाल फेंका और उनकी एवज में आये कौन ? वे ही जो पार्टी के सिद्धान्तों के हिसाब से किसी मसरफ के नहीं हो सकते। पार्टी में झूठे सदस्य बना लेना तो अपने यहां बहुत मामूली बात रही है। हमने ऐलान किया कि पंचायतों के चुनाव पार्टी के आधार पर नहीं होंगे, पर हमने इस ऐलान का पालन इसका पूरा उल्लंघन करके ही किया और इस प्रकार हमने पंचायतराज को नष्ट होने की तरफ ढकेल दिया। और यह तो हमारा तरीका ही है कि कहना कुछ और करना कुछ ! हमारा विश्वास नारेबाजी में ज्यादा है। वोट लेने की खातिर चाहे जो सच्चा-झूठा नारा लगा देना, और हर किसी से चाहे जो कुछ वादा कर लेना यही हमारा तरीका वोट बटोरने का रहा है।

(५) अपनी प्रशासननीति की खास बात यह है कि पार्टी के लोग प्रशासनिक मामलों में जा बेजा दखल देते ही रहते हैं। राजकर्मचारी तंग आ जाते हैं। जिन लोगों को हम अपना मानते हैं, वे सरकारी रुपया लेकर उसे चुकाने का नाम तक न लें तो उनका हम कुछ नहीं बिगाड़ते देते। इसलिए कर्मचारियों के सामने हमारी प्रतिष्ठा बहुत गिर गयी है। जो कर्मचारी खुद चालाक है वे हमको उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं, पर जो

भले और निष्पक्ष कर्मचारी है उनको अपनी भलमसी और निष्पक्षता का दड भोगना पडता है। हम राजकर्मचारियो के भ्रष्टाचार की शिकायत करते हैं, पर हम यह नही सोचते कि भ्रष्टाचार के सबसे बडे पुरस्कर्ता हम खुद हैं। ऐसी हालत मे अपने यहा प्रशासन नाम की चीज बाकी नही रहने वाली है।

इस प्रकार मैने अपने कुछ विचारो का सार पेश कर दिया है। अपने यहा की नीतियो के बारे मे मैंने जो कुछ कहा है उससे मेरे दिल के दर्द को पहिचानना चाहिए। किसी की काट करने के लिए मैंने कुछ नही कहा है। मेरी जैसी-जैसी प्रतिक्रियाए होती रही है उनका दिग्दर्शन मात्र मैंने कराया है। जो स्थिति है उसका इलाज तो कोई क्रातिकारी अवतार होगा तब जाकर होगा। जो अधिकार लिये बैठे हैं उनसे कुछ भी बनने की आशा मुझको नही है। वे जो कुछ भी करें उससे देश की हालत हर्गिज सुधरने वाली नही है। मैं खुद अपने आपको कुछ करने की स्थिति मे नही पाता हू। जो हो, मुझको यह विश्वास जरूर है कि यह स्थिति बिगडते बिगडते जब बिगाड की अतिम मजिल पर पहुँच जाएगी तब उसका अस्त आना शुरू होगा। और आखिर किसी दिन तो अपन चाहते हैं वैसी स्थिति अपने को देखने को मिल जाएगी।

उपभाग १

: ३ :

अतिरिक्त सामग्री

अतिरिक्त सामग्री

प्रस्तावना

"अतिरिक्त सामग्री" में १. पिछले साढ़े तीन सालों की डायरियों के कुछ अंश दिये गये हैं, २. कुछ चुनी हुई नयी-पुरानी रचनाएं प्रस्तुत की गयी हैं, ३. महात्मा गांधी और विनोबाजी से हुए मेरे वार्त्तालाप का विवरण सार उपस्थित किया गया है, ४. मेरे लिखे हुए व मेरे पास आये हुए थोड़े पत्र दिये गये हैं, और ५. कुछ भाषणों का सार व कुछ लेख दिये गये हैं। इस अतिरिक्त सामग्री से पाठकों को कुछ ऐसी बातें मालूम हो जाएंगी जिनका समावेश "जीवनवृत्त" में नहीं किया जा सकता था।

हीरालाल शास्त्री

अतिरिक्त सामग्री

: १ :

मेरी डायरियों से

जयपुर, २२-७-७०

जोवनेर कॉलेज के काम के लिए बहुत टेलीफोन हुए। पहले तो जोवनेर से देवीलाल नागा का फोन आया, फिर जयकुमार जैन और हनुमान सैनी आये। मैंने शोभारामजी को फोन किया। फिर सत्यप्रसन्न भण्डारी को किया। सार यह है कि एम० एस० सी के विषयों के बटने की बात हो गयी। बटवारा ३१ जुलाई तक या उससे पहले ही हो जाए। डॉ० महाजनी। प्रसाद और सिंह के अलावा भण्डारी बैठे थे। महाजनी बाहर के विशेषज्ञ को चाहते है, किसी पटेल का नाम सामने है। भण्डारी ने मुझको बताया कि पटेल आवे या न आवे, विषयों का बंटवारा ३१ तक या उससे पहले जरूर हो जाएगा। यही हाल मैंने जयकुमार और हनुमान को बता दिया और यही बात देवीलाल नागा को व कजोड़ीलाल कामदार को कहदी।

जयपुर से वनस्थली, २७-७-७०

गवर्नर से जोवनेर कॉलेज की बात पूरे विस्तार से की वे महाजनी से बहुत नाराज है। मुख्यमन्त्री के बारे मे शिकायत है कि वे सब कामो को उदयपुर मे ही करना चाहते है। जोबनेर मे एम० एससी० खोलने की खुद डॉ० महाजनी ने इजाजत दे दी और खुद ही गड़बड़ करता है। मैंने कह दिया कि आप डॉ० महाजनी से कहदे कि विषयों का बंटवारा न्यायपूर्वक करादें। गड़बड़ हो गयी तो आपके द्वार पर आन्दोलन होगा जिसमें मुझे भी शामिल होना पड़ेगा सो मैं कभी नहीं चाह सकता। उन्होंने अपने सहायक से कह दिया कि डॉ० महाजनी

को फोन कर दो कि ३०-७ को प्लेन से उतरते ही सीधे मेरे पास आवे। मुझे इस बात से सन्तोष हुआ।

हटूण्डी से अजमेर-जयपुर, ६-१०-७०

हरिभाऊजी से बहुत सी बातें। मैंने कहा कि मैं विनोबाजी से मिल आऊंगा, सिद्धराज आदि से भी बात कर लूंगा। मैं ग्रामसभाओं में राजकीय अनुदान या कानून बिल्कुल नहीं चाहता। कांग्रेस वालों से मुझे सहयोग नहीं मिलेगा, वे मेरा विरोध करेंगे। मैं किसी पार्टी में नहीं जाऊंगा। मेरे पास जिनको आना होगा अपने आप आ जाएंगे। जिनको मुझे सहयोग देना चाहिए मैं खुशी से दूंगा, पर मुझे जो कुछ करना है सो अपने बलबूते पर करना है, भगवान भरोसे करना है। रुपये पैसे की तंगी भुगतने का मेरा पक्का विचार है।

बीकानेर पहुंचा, १७-१०-२७

रघुवरदयालजी के साथ घूमना हुआ। उन्होंने बताया कि खादी मन्दिर और एक दूसरी संस्था से लाख सवा लाख रुपया ग्रामदान के काम के लिए मिल गये हैं उनसे खर्चे का काम ठीक चलता है। ठाठ से खर्चा होता मालूम होता है। २०-२२ कार्यकर्ता खादी के हैं, ३५-४० दूसरे लगे हुए हैं, वेतन पर। खूब जीपें दौड़ती हैं। यह स्थिति हर कहीं नहीं हो सकती तो मेरी जैसी स्थिति भी हर जगह नहीं हो सकती। रघुवरदयालजी ने सुझाया कि २ लाख अपन लगादें तो २० लाख खादी कमीशन लगादे। उससे वनस्थली के लिए ऊन का काम इस क्षेत्र में हो सकता है। मुझे यह मुश्किल लगता है।

बीकानेर से गांवों में व वापिस, १८-१०-७०

सवेरे ५ बजे गावों के लिए निकल पड़े, दो जीपों में। सिद्धराज को मैंने अपने पास बिठाया। एक गंगाराम चौधरी भी साथ बैठा, उसने मेरी बड़ी तारीफ की-मेरे उन दिनों के पुराने भाषणों में से उसे कुछ याद था। सिद्धराज से बातें हुईं। इतना खर्चा होता है इसका क्या किया जाए? वह कहां से आवे? चुनावों में दिलचस्पी लेने से हम भी पार्टी वाले दिखने लग जाएंगे? पार्टी वाले गड़बड़ करके काम को बिगाड़ने की कोशिश करेंगे। न केवल पंचायत में बल्कि ग्रामसभा में भी घुसने की कोशिश वे करेंगे। उनके प्रति हम क्या रुख रखेंगे? कार्यकर्ता गांवों में से ही पैदा होने चाहिए, उनको पैसे देने लेने की कोई बात न रहे ऐसा मेरा खयाल है। चुनावों में प्रेरणा देने के बाद फिर हमको लिप्त नहीं होना चाहिए, ऐसा सिद्धराज ने कहा।

गावों को देखा। एकाध जगह में कूमाराम जाट जैसे कुछ जागृत लोग दिखायी दिये मुझे लगता है कि ग्रामदान क्या है, और ग्रामसभा क्या करेगी, इसकी रूपरेखा बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है। जो कार्यकर्त्ता भेजे गये हैं उनमें तो कुछ भी दम नहीं है। उनके भरोसे तो शायद ही कोई काम हो। उनकी ट्रेनिंग होना मुश्किल है। वैसों को ट्रेनिंग देना भी बेकार होगा। वे छोड़कर चल देंगे या रहेंगे तो भी किराये के टट्टू होंगे।

जयपुर, १८-५-७१

आज कार्यकर्ताओं की ठीक-ठाक सभा हो गयी। आठ जिलों के लोग हाजिर थे। ४-५ दूसरे जिलों के लोग आये हुए माने जा सकते हैं। जोधनेर में कोई नहीं आया न निवाई से। वनस्थली में भी अकेला जगदीश पहुंचा। कुल मिलाकर उपस्थिति ठीक-ठाक थी। काम एक घण्टा देर से शुरू हुआ और करीब तीन घण्टे लगे। सबको पहले जवानी बातें बतायीं फिर नया साहित्य भी कीमत से दे दिया, २७ आदमियों को। कुछ ने पुस्तकें भी खरीदीं। कुछ ने कहा कि हम तो सोच ही रहे थे कि क्या करना चाहिए, अब हमें मार्गदर्शन मिल गया।

वनस्थली, १८-८-७१

भागीरथजी, गंगादेवी, सावित्री, भारती का आगमन। ११½ बजे मुक्तद्वार पर पहुंचे। ५½ बजे स्वागतद्वार से विदा। रतनजी, सुशीला, श्याम, प्रो. सा आदि की मौजूदगी में भागीरथजी को वनस्थली का हालचाल बता दिया। गंगादेवी आदि बाई से मिली। बाद में पहले चक्कर में मैं और सुशीला साथ रहे। उन लोगों को वनस्थली का विस्तार बहुत ज्यादा लगा। शान्ता भवन को देखना बहुत अच्छा लगा। छोटी-छोटी बच्चियां बहुत प्रसन्न दिखायी दी, उनकी रसोई का भोजन भी चखा। गृहविज्ञान से ली हुई चीजें भी काम में आयीं। भोजन में रतनजी और मैं दोनों उनके साथ बैठे। फिर भागीरथजी को मैंने अपना नया कार्यक्रम बताया। सुधाकर के काम की बात भी, मोहन आदि की, सगाई सम्बन्ध की भी की दूसरे चक्कर में भी मैं साथ गया। सुशीला के अलावा शकु भी गयी। सीतारामजी की बात कई बार चली। उनका वनस्थली आना असम्भव जैसा लगता है। वे शोक के कारण भी आजकल परेशान रहते हैं। भागीरथजी दुबारा आ सकते हैं, वह भी दोचार दिन ठहरने के विचार से। आज का कार्यक्रम सब ठीक-ठाक हो गया।

वनस्थली, ८-११-७१

आज दिन भर का समय मेरे जन्मदिन और भय्याजी (सिद्धार्थ) की सगाई के समारोह में लग गया। अच्छे उत्साह और उल्लास का कार्यक्रम रहा। जयपुर से सिद्धराज, राधा कृष्णजी दजाज और वैद्य रामदयाल आये। गोकुलभाई नहीं पहुंच सके। परिवार के सभी लोग आ पहुंचे, सिर्फ मोहन नहीं पहुंच पाया। बरकत का आना नहीं हुआ। शोभारामजी का आना भी नहीं हुआ। देवीशंकरजी आदि भी नहीं आये। सगाई के दस्तूर के लिए त्रिलोकीनाथ आदि सभी आ गये। दुर्गालालजी बाढ़दार और बंशीलालजी नहीं आये। अपने द्वारकानाथजी का भवर जगन्नाथ आया। मेरी सालगिरह के सिलसिले में लोगों ने मुझको फूलमाला नारियल, फल, गजर आदि बहुत कुछ भेंट दिया। सगाई में २ रुपये भाड़शाही मंजूर किये गये।

वनस्थली, ५-१२-७१

कृपलानीजी सवेरे ८ बजे पहुँचे शाम को ६½ बजे वापिस हो गये। उन्हे रतनजी और भय्याजी लेकर आये। गोपाल उन्हे गाडी मे बिठाने के लिए गया। रामकृष्ण साथ आया साथ ही गया। दूसरी गाडी मे अशोक व सत्यनारायण आये। वे उसी गाडी मे वापिस चले गये। उत्सव मे उपस्थिति बहुत अच्छी हो गयी। शानदार रहा। कृपलानीजी को तकलीफ कम हो, इस खयाल से मार्चपास्ट के काम मे भागीरथजी ने साथ दिया। बाकी कृपलानीजी खुद भी प्रदर्शनी मे काफी घूम लिये। प्रदर्शनी देखली। खेल देख लिये। नृत्य अच्छा हुआ। कृपलानीजी बहुत अच्छा बोले। रतनजी का भाषण भी अत्यन्त सुन्दर हुआ। प्रो सा. का भाषण भी अच्छा हुआ। श्याम ने रिपोर्ट अच्छी सुनायी। मेरा भाषण भी ठीक-ठाक हो गया। कृपलानीजी ने लडकियो के द्वारा बन्दूक चलाने को ठीक नही बताया। मैने इस बात का जवाब दिया। ... . विदा का गीत बहुत पसन्द किया गया।

वनस्थली, २–१–७२

आज सवेरे उठा तो देर से ही, पर कमेटी वालो के लिए एक नोट लिख दिया। श्याम को दिखा दिया। वीरेन्द्र ने दो बार टाइप किया। श्याम, मानसिंह ने कल के सवालो के जवाब तय्यार कर लिये। कमेटी वालो को जबानी सुना दिये, फिर टाइप करवाकर उनको दे दिये। मेरा नोट भी कमेटी वालो को दे दिया। पहले उन लोगों को बाकी बचा हुआ दिखाने ले गये। हवाई जहाज का इतिहास बताया। वेद विद्यालय की स्थिति बतायी। बोटिंग करायी। बाद मे जरूरी बातचीत हुई। मेरे खयाल से उन लोगो के सवालों के ठीक-ठीक उत्तर मिल गये। प्रो० सा० ने शिक्षा सम्बन्धी बातें की-खासकर रसायनशास्त्र के बारे मे व शिक्षा महाविद्यालय के पुस्तकालय के बारे मे। मैंने कहा रुपये की कठिनाई होते हुए भी यहाँ पर शिक्षा के किसी काम को रुकने नही दिया जाएगा कभी भी। मकानों की बात तो अलग है, पर साधन सामग्री से वनस्थली बिल्कुल गरीब नही है। सभा मे मैंने बातचीत का सार बता दिया, जिससे कमेटी वाले प्रभावित हुए। जयरामन ने ठीक ठाक भाषण दे दिया, हिन्दी मे। उन्होंने भाषण मे सन्तोष प्रकट किया। रामसिंहजी ने तो कहा कि मेरे सन्तोष का कोई पार ही नही है। यह समझना चाहिए कि कमेटी का आना बहुत बहुत ठीक रह गया। भारत सरकार और राजस्थान सरकार दोनो से ही काम ठीक होना चाहिए।

वनस्थली से जयपुर, ८–३–७२

कमर के पडौस मे बहुत जोर का दर्द-महानारायण तेल की मालिश भी करवायी। एक बार तो मुझको अपने स्वास्थ्य के बारे में विशेष चिन्ता होने लगी थी। बाद मे भरोसा हुआ कि ऐसी कोई खास बात नही है।

जयपुर-हवाई अड्डे पर पहुँचकर देखा तो मालूम हुआ कि बरकत जोधपुर मे नही आ रहे है। उसके घर फोन करने से पक्का हो गया कि वे जोधपुर मे ही है। गगानगर नही जा रहे है, जोधपुर मे ही रहेगे। टैक्सी से जोधपुर जाने का फैसला कर लिया। ८½ बजे के करीब रवाना हो सके, पर सुधाकर फाइल भूल आया तो वापिस आना पडा। गाडी काफी धीरे चली। मैने घडी देखना ठीक नही समझा। मुझको यह खयाल हो गया कि सवेरा होते होते जोधपुर पहुँचेंगे।

जोधपुर से जयपुर-दिल्ली को, ९–३–७२

सारी रात कार से चलकर सवेरे ५½ बजे के करीब जोधपुर पहुँचना हुआ। त्यागीजी के यहाँ। वे तय्यार मिले। उनसे बहुत मामूली सी बातें। जल्दी जल्दी तैयार होकर बरकत के डेरे पर पहुँचे। थोडा इन्तजार करना पडा। उनके चपरासी ने उन्हे ८ बजे उठा दिया। बरकत बहुत ज्यादा थके मादे हो रहे थे। फाइल पर फौरन हस्ताक्षर कर दिये। हम लोग त्यागीजी के यहाँ से भोजन लेकर ८½ बजे रवाना हुए। अजमेर वेटिंग रूम मे भोजन कर लिया। ४½ बजे जयपुर पहुँच गये।

रामासहाय को फाइल देदी। श्याम, सुधाकर और मैं तीनों गये। उनसे दिल्ली की मीटिंग की सलाह भी कर ली।

वाराणसी, १३–३–७२

रात को १२ बजे के बाद बडे जोर का दस्त लगा। फिर २ बजे, ४ बजे, ६ बजे कुल मिलाकर ७–८ दस्त लग गये। बुखार भी हो गया। दोपहर के बाद पसीना आया तब लगा कि बुखार उतर रहा है। एक बार तो ऐसा लगा कि मुझसे उठा नही जा रहा है, खडे नही हुआ जा रहा है, चला नही जा रहा है, पेशाब नही किया जा रहा है, बैठा भी नही जा रहा है। दिन भर लेटा रहा-नीद खुब आती रही-बीच बीच मे नीद खुलती रही और फिर आती रही-इस प्रकार आराम खुब किया गया।

कमजोरी की हालत मे और दस्त से डरते-डरते कमलापतिजी त्रिपाठी के यहाँ गया। चुनाव मे जीतने वाले उनके लडके को आशीर्वाद दिया, उसके सिर पर हाथ रख दिया। २५ हजार वजट मे रख दिये गये बतावे-साधन सामग्री का अनावर्त्तक अनुदान भी दे देंगे। चन्दे की बात तो महीने भर बाद करेंगे।

लखनऊ से दिल्ली को, १५–३–७२

आज का मेरा दिन तो बीमारी मे ही गया। सवेरे ४ बजे के करीब जागकर बाथरूम गया तब ऐसा लगा कि कमर के पास का दर्द जैसे गायब हो रहा है। पर घूमने नहाने आदि की इच्छा नही हुई। कामकाज की सूची बनाली। डायरियां लिख ली। समाचार

पत्र देख डाले। भोजन ठीक-ठाक कर लिया। फिर आराम किया। आराम से उठकर पत्र लिख दिये। थोडा सा नाश्ता सा किया। उसके बाद लगा कि मेरा सीना रुका-रुका हो रहा है। दोनो भुजाओ मे दर्द सा। उलटी सी हो रही है। बडी बेचैनी सी। बैठा नही रह सका, लेटा नही रह सका। आखिर स्टेशन पहुँचे-वहाँ पर मोहन ने वैद्य की गोलिया दी। रतनजी के आग्रह से एक बोतल सोडावाटर की ली। सीने का तनाव कम हुआ। कुछ बुखार सा महसूस हुआ। ऐसा लगता रहा कि कही उल्टी न हो जाए। निमटने की इच्छा भी होती रही पर निमटने गया नही। जब गया तो दस्त हुआ नही। रात को देर तक नीद नही आयी।

जयपुर, २७–५–७२

गोकुलभाई ने प्रधानमत्री के अनुरोध पर अनशन तोड दिया। ऐलबर्ट हाल मे सभा हुई जिसमे बहुत लोग बोले बताये। करणभाई और सुशीला नायर भी। गोकुलभाई ने अपने भाषण मे मेरा जिक्र भी किया। गोकुलभाई को मोसम्मी का रस बरकत (मुख्यमत्री) ने पिलाया। कल रात को गजबहादुर का फोन गोकुलभाई के पास आ गया। फिर गोकुलभाई की बात खुद प्रधानमत्री से हुई, जिसमे प्र०म० ने बीच बचाव करने की हा कर ली बतायी। सुधाकर पर मनोहरसिंह मेहता के भाषण का असर अच्छा पडा है। शाम को सुधाकर सत्याग्रह समिति की बैठक के समय भी जा पहुँचा था। सिद्धराज तक की भी कुछ करने की तय्यारी नही मालूम पडी, राधाकृष्णजी बजाज की भी। गोकुलभाई पर इन लोगो की स्थिति का भी खास असर पडा होगा। अस्तु! गोकुलभाई का अनशन समाप्त हो गया सो सन्तोष की बात है। बाकी जो कुछ होगा सो होता रहेगा। मैंने तय किया कि अपने तार, पत्र, वक्तव्य सब कुछ प्रकाशित कर दिये जाए, भूमिका के साथ। अफसोस है कि मैं इससे ज्यादा कुछ नही कर सका, अपनी बीमारी की हालत मे।

वनस्थली, २३–६–७२

छोटे भय्याजी (आदित्य) को उनकी नवी साल गिरह पर १०० रुपये का नोट व ६ रुपये भाडशाही (५४ हु०)नये कपडे, आज के दिन का आशीर्वाद, बढिया चित्रित और फ्रेम किया हुआ। छठी सालगिरह का आशीर्वाद देना रह गया था सो नया तय्यार कराकर फ्रेम लगवाकर, सातवीं सालगिरह के आशीर्वाद को नया चित्रित करवाकर इस प्रकार सामान बाई के हाथ से दिलवा दिया। उस समय मैं भी बाई के कमरे मे जा घुसा। बाई के चेहरे को देखा। उनकी ठहरी-ठहरी आँखो को भी। मेरे आँसू आ गये सो मैं लपक कर बाहर आ गया। अपने कमरे मे आने पर भी मेरे आँसू आते रहे। बाई की तकलीफ को देखना मुश्किल है। जो देखते हैं वे धन्य है।

वनस्थली, १४–८–७२

आज प्रमुख कार्यक्रम मे मुझको बुलाने के लिए लड़कियाँ तीन बार आयीं। मैंने साफ इनकार कर दिया। मेरा मन बिल्कुल नही होता है। समारोह मे जाकर देर तक बैठना

अनुकूल नही पडता है सो तो है ही । पर मेरी दिलचस्पी भी कतई नही है । मेरी स्वाभाविक इच्छा होती है कि मैं अपने स्थान मे बाहर निकलूँ ही नही, घूमने के अलावा । वनस्थली मे रहूँ तो तब भी बाहर न जाऊँ । जयपुर मे भी डॉक्टर के अलावा और किसी के पास न जाऊँ । जोबनेर मे भी बाहर न निकलूँ । बाहर दौरे पर जाऊँ तब भी बहुत कम निकलूँ । तबियत ठीक न होने का कारण है ही मेरे सामने । जब भी बाहर निकलूँ तो अपवाद के तौर पर निकलूँ और अपवाद भी कम से कम करूँ ।

बम्बई, २७–१०–७२

डॉ० गोयल ने कार्डियोग्राम लिया । उसे फर्स्टक्लास बताया । शुरू का कार्डियोग्राम देखकर बताया कि बडा सख्त अटैक था । हार्ट अटैक तो शुरू मे हो चुका था और सास चढा सो 'हार्ट फेल्योर' का लक्षण था । हार्ट के बहुत कमजोर होने को 'हार्ट फेल्योर' बोलते हैं डॉक्टर लोग । बिल्कुल स्वस्थ आदमी के यानी जिसके कोई भी हार्ट की शिकायत न हो उसके भी अचानक 'हार्ट फेल्योर' हो सकता है । जिसके एक बार 'हार्ट अटैक' हो चुका है वह साव-धानी रखे तो उसके दुबारा और होने की सम्भावना कम रहती है । बाकी हार्ट का ठीक से पता नही चलता कि अचानक कब क्या हो जाए ।

वनस्थली, ४–१–७३

राजाजी (श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) की पुस्तके देखी, पन्ने उलटकर, थोडी-थोडी पढकर भी । रामायण, महाभारत का सार अच्छा लिखा है । कुछ उपनिषदो का महत्त्व भी लिखा है । गीता का भी । इनका सार रूप अच्छा समझ मे आ जाएगा । ब्रह्मसूत्र पर लिखा होगा तो उसका भी पता लगाएगे । विनोबाजी ने भी उपनिषदो के बारे मे लिखा है । सब कुछ देख लेने के बाद ही विनोबाजी के पास चलना ठीक होगा । कुछ सार की नयी बात प्रज्ञान के विषय की समझ मे आने की आशा मुझको नही है । धर्मनीति की स्थिति बहुत साफ हो जाएगी । इतना तो हो ही जाएगा कि मैं यह जान लूँगा कि प्रज्ञान के बारे मे गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र का कहना क्या है ।

वनस्थली, १२–१–७३

काका साहेब कालेलकर आदि आये, २ घण्टे के करीब ठहरे । शिक्षाकुटीर मे थोडी दूर मैं ले गया । काका साहेब ८८ वे साल मे है । उन्होने भाषण दिया । गाधीघर के चौक मे थोडे लोगो की सभा मे वे बोले–अब स्त्री को पुरुष से छीन कर नेतृत्व अपने हाथ मे ले लेना चाहिए । इसके कारण उन्होंने विचित्र से बताये । मैंने उसी समय कह दिया कि मैं काका साहब की इस बात को नही मानता हू । कल मैं एक छोटा सा लेख दूगा, वनस्थली समाचार मे । काका साहेब को मैंने वनस्थली का हाल बता दिया । रिपोर्ट आदि दे दी । उन्होंने साइट प्लेन आदि देखा । सभा मे बोले—मैं शास्त्रीजी के दर्शन करने को आया हू, हजार मील से । मैने उनसे जाते समय कहा कि साहित्य देखकर कुछ लिखिएगा । बोले-एक महीने मे लिखूगा

और फिर उनके चाहने पर प्र० जी० शा० की एक प्रति और तीन चित्र भी उनको दिये जिससे वे बहुत खुश हुए।

वनस्थली, १३-१-७३

कल मैं बहुत देर तक बात करता रहा। जोर जोर से भी बोला। काका साहेब कालेलकर बहुत कम सुनते है उनको सुनाने के लिए आखिर मुझको लगा कि सोने में मेरे कुछ दर्द हो जाएगा, पर दर्द हुआ नहीं। मुझे आशंका हो गयी और एक प्रकार का डर सा लग गया। जो सोने के समय तक बना रहा रतनजी को मैंने इस बात का थोड़ा सा जिक्र भी कर दिया। वे पूछने भी लगी, पर मैंने उनको विशेष कुछ नहीं बताया विशेष कुछ था भी नहीं सिवाय इसके कि मेरे मन में एक धड़का सा बन रहा। रात को जब चैन हुआ तब भी मैं शंकित सा रहा एक बार तो यह सोचा कि आज घूमने का काम न किया जाए, मालिश भी न करायी जाए। परन्तु पौनेएक घण्टा घूम लिया। और मालिश भी करवा ही ली। बाद में दिन भर में ठीक रहा। यह विचार जरूर बना कि मुझको सावधानी रखनी चाहिए किसी भी कारण से ऐसी स्थिति न बन जाए इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए।

वनस्थली, १२-३-७३

वनस्थली समाचार के लिए दिए जाने वाले अपने बड़े लेख को मैंने दो एक बार ठीक किया। इसी चक्कर में मैं भोजन के बाद आराम नहीं कर सका। शाम को कुछ लेटना चाहा था पर नींद आने की सम्भावना नहीं लगी। मेरे कुछ तो पेट में असर था, कुछ सर्दी का असर हो गया। कुछ ज्यादा परिश्रम भी हो चुका था। नतीजा यह हुआ कि मेरे थोड़ा थोड़ा सांस उठ गया तो काफी देर तक चलता रहा साथ में दस्त हुआ। खांसी भी हो गयी सो वह भी काफी देर तक चलती रही। एक तो लेसिक्स की टिकिया ली और चार टिकिया वैद्यजी वाली ली। धीरे धीरे सांस ठीक हो गया। खांसी भी बन्द हो गयी। कुछ आवाज पर भी असर हो गया। सुशीला, हरीश शकु, दया, रामेश्वर सज्जन आदि आ गये उनको चिन्ता हो गयी। अपने वाले डॉ० को भी बुला लिया। ब्लडप्रेशर ७५|१३४ आया वैसे भी देखने मे कोई गड़बड़ नहीं मालुम हुई। मैं सिर्फ दूध ही पीकर सो गया। बढ़िया नींद आयी। रामेश्वर आदि मेरे पास बने रहे। विचार तो मुझको भी आया, पर मैं समझ नहीं सका कि यह गड़बड़ क्यों हो गयी होगी। अति परिश्रम पहले भी कई बार हो चुका है, पर इतनी देर तक सांस फूला हुआ कभी नहीं रहा। न खांसी ही इतनी देर चली मुझे भरोसा है कि हार्ट पर तो खास असर नहीं हुआ है। दूसरे लोगों को चिन्ता विशेष हुई मालूम होती है।

वनस्थली १५-८-७३

मैंने जमकर जितने पत्र लिखने थे सब लिख डाले। तबियत ठीक रही, पर दस्त अभी तक समय पर नहीं लगने लगा है। वैसे पेट की हालत तो ठीक ही लगती है। शाम

को चौक मे पलग पर लेटा तब कुछ अच्छा नही लगा, पर उस समय थोडी देर नीद सी आ गयी। बाद मे तो ठीक ही रहा। आजकल मुझे शंका भी होने लगती है। हार्ट का काम बडा धोखेबाज है, न जाने कब क्या हो जाए ? डॉ० ने इतनी बन्दिशें दुबारा लगादी है सो मुझको अखरती है। जो भी हो डॉ० कहे उपरान्त चलना ठीक नही हो सकता कोई दूसरा प्रयोग भी डॉ० की राय के बिना नही किया सकता और डॉ० से पूछना मुश्किल और उनकी राय शामिल होना तो असम्भव ही है। डॉ० की खास-खास दवाओ को जारी रखते हुए चौबेजी वाला प्रयोग करके देखा जा सकता होगा तो सोचेंगे, रतनजी के अहमदाबाद से लौटने पर।

वनस्थली, २४-४-७३

सुशीला, शकु से ऑटोनामस स्कूल और ऑटोनामस कॉलेज के बारे मे बात हुई। सुशीला ने बताया कि स्कूल को ऑटोनामस बनाने में बडा जोर आएगा, काफी खर्च बढेगा, कॉलेज को ऑटोनामस बनाकर सफलता पूर्वक चलाना तो असम्भव जैसा लगता है। मैंने कहा कि ऑटोनामस स्कूल की जो रूपरेखा तय्यार होकर मेरे सामने आयी है उसमे तो मुझे कुछ विशेष दम नही लगा। वह तो पुराने ढाँचे की नकल जैसी मुझको लगी। वह प्राय वही है, थोडे बहुत अन्तर के साथ। बाकी पुरानी और नयी के गुणो मे कोई अन्तर नही है। ऐसी हालत मे हमको ऑटोनामस स्कूल और कॉलेज के चक्कर मे सोच समझकर ही पडना चाहिए। जिन कारणो से हमने डीम्ड युनिवर्सिटी बनवाने की कोशिश को छोडा वही कारण ऑटोनामस स्कूल-कॉलेज के सामने मे लागू होते है। हमारी जिस योजना मे अपनी पूरी पचमुखी शिक्षा को पूरा, कम से कम यथोचित, स्थान न मिले उसके लिए हमको क्यों परिश्रम करना चाहिए क्यो शक्ति और क्यो रुपया खर्च करना चाहिए ? इसके बजाए तो हम मौजूदा शिक्षाक्रम के साथ अपनी पचमुखी शिक्षा के अंगो को यथाशक्य स्थान देने के प्रयत्न मे अपनी शक्ति लगावे, लडकियो से कुछ ज्यादा काम कराए तो वह भी पचमुखी शिक्षा के सिलसिले मे ही करवाए। किताबी पढाई मे जो समय लगता है वही क्या कम है ? नाहक उसी सामान्य काम मे हम अपनी और लडकियो की शक्ति को क्यो लगाए ? सारी स्थिति पर पुनर्विचार करना होगा। हमको आश्वस्त होना चाहिए कि स्कूल या कॉलेज तक मे भी ऑटोनामी मजूर की जाए तो उसके परिणामस्वरूप अपनी पचमुखी शिक्षा पुस्तकीय शिक्षा के अलावा बाकी चारों अगो के शिक्षाक्रम को आज से अच्छा स्थान मिल जाएगा और पुस्तकीय शिक्षा मे आज के मुकाबले मे कम समय-शक्ति लगाने से अच्छा काम हो जाएगा। ऐसा न होगा तो फिर ऑटोनामी से हमे फायदे के बजाए नुकसान हो सकता है।

वनस्थली, २६-४-७३

प्रोफेसर साहब ने ऑटोनामस स्कूल के नये पाठ्यक्रमो के बारे मे उनकी व तिवारीजी आदि की जो बातचीत अजमेर मे हुई है उसका हाल बताया। प्रोफेसर साहब को सन्तोष मालूम होता है। राजपालसिंहजी को भी अजमेर ले गये थे। वे बचे हुए काम के लिए

अजमेर में ठहर गये हैं। आगामी सत्र से अपने उच्च माध्यमिक विद्यालय को ऑटोनामस स्कूल का दर्जा मिल सकता है। यह सब कुछ ठीक है, ऑटोनामी मिलना शायद अच्छा भी हो सकता है पर मुझे शक है कि यदि ऑटोनामी मिलेगी तो वह पुस्तकीय शिक्षा के सम्बन्ध में होगी। इसमें किसी का दोष भी क्या है। जो शिक्षा प्रणाली चालू है उनमें तो खास जोर पुस्तकीय शिक्षा पर ही है। मुझको अन्देशा है कि पुस्तकीय शिक्षा में शायद आजकल से भी ज्यादा समय देना पड़े और इसका नतीजा यह आ जाए कि पंचमुखी शिक्षा के दूसरे चारों अंग उसने नुकसान में रह जाएं। विशेष परिश्रम और खर्चा हो तो उसका अपने विचारों के अनुसार अपने को लाभ भी तो मिलना चाहिए? मेरी समझ में अपनी पंचमुखी शिक्षा के बाकी के चारों अंग असल में जीवन के ही अंग हैं और उनको अनिवार्यतया शिक्षा-काल में ही नहीं बल्कि जीवन भर चलना चाहिए।

वनस्थली, १२ मई १९७३

श्याम ने बताया कि कोई शिक्षणसंस्था भी आमदनी के लिए व्यापार करेगी तो उस पर भी टैक्स लगेगा। ऐसा बिल लोकसभा के सामने आया हुआ है। यदि ऐसी ही बात इसी रूप में आएगी तो अपनी कई योजनाएं खटाई में पड़ सकती हैं। अपने को या तो बिल में संशोधन कराने की कोशिश करनी पड़े या अपनी योजनाओं को छोड़ देना पड़े। वनस्थली भवन के मकानों के किराये पर शायद यह कानून लागू न हो। अपने पास एक तो लड़कियों में कुछ ज्यादा पैसा वसूल करने की बात है। बाकी अपने पास कमाने वाले आदमी भी नहीं है। कमाई के कामों में सफलता मिलना भी आसान नहीं है। तो फिर अपने को क्यों अफसोस होना चाहिए? जिन कार्य पर टैक्स लगने वाला हो उसे करेंगे ही नहीं या उस कानून में संशोधन कराने की कोशिश करलें। वह कोशिश भी संभवतः पार पड़ सकती है। देखा जाएगा।

वनस्थली, २ जून, १९७३

मेरा विचार बहुत चलता रहता है कि मुझे खुद को कोई तकलीफ हो तो उसकी विशेष चिन्ता मैं नहीं करता। पर मेरी तकलीफ के कारण मेरे प्रियजनों को तकलीफ हो जाएगी, इस बात की चिन्ता मुझको सताती रहती है। मैं दुनिया में न रहूं तो इसका भी मुझको कुछ ख्याल नहीं होता है। पर बाई, रतनजी आदि सब पर क्या बीते यह कल्पना करने से मैं सिहर उठता हूं। आजकल मैं कुछ डराडरा रहने लग गया हूं। गत १२ मार्च को जो गड़बड़ हुई वह न होती तब तो मैं अब तक निर्भय हो जाता और सावधानी बरतता हुआ निभता रहता। पर आजकल तो रोजाना ही रात को पलंग पर लेटने से लेकर नींद आने तक मेरे मन में डर सा बना रहता है। वैसे तो थोड़ा बहुत "हरि ॐ" "ॐ नमः शिवाय" "हे भगवती" आदि कर लेता हूं पर चित्त जैसा चाहिए वैसा शान्त नहीं रहता है।

जयपुर, ४ अगस्त, १९७३

डॉ० सघवी को मैंने बता दिया कि मुझे कोई शिकायत या कमी जैसी भी नही लगती है। उन्होंने दवाओं का वही क्रम जारी रखने को कहा है, आधी लेमिक्स सहित। व्यायाम के लिए घूमना बन्द रखने पर फिर जोर दिया है। मैंने उनका मतलब समझने की कोशिश की। उन्होंने जो कुछ कहा उस पर से मै यह समझा कि मेरे खून की चाल (फेफडे से दिल मे खून के जाने की चाल) शायद धीमी है। व्यायाम जैसा कुछ करने से वह चाल और भी धीमी हो सकती है? इसलिए व्यायाम की टाल करनी चाहिए। आखिर वे इस बात पर आये कि १५ *मिनट चलकर ५ मिनट बैठ जाऊं और १५ मिनट मे वापिस आ जाऊं। तब* मैंने कहा कि ८-८ मिनट चलकर ५-५ मिनट बैठ जाऊ और एक बार लेट भी जाऊ तो उसमे क्या फर्क पड जाएगा? इसका समाधान कारक जवाब वे नही दे सके।

वनस्थली, १७ सितम्बर, १९७३

अखबारो मे एक दम रगी रगायी खबरें आती है जिन्हे पढने को मेरा जी नही चाहता। सत्ताधारी लोग अपने मुह मिया मिट्ठू बनते है। गेहूँ के सरकारीकरण की विफलता को मजूर नही करते हैं और चावल का सरकारीकरण नही कर रहे हैं और कहते हैं कि सरकारीकरण की नीति को हमने छोडा नही है। यह तो ऐडजस्टमेंट किया है हमने। *सब लोग डरते हुए मालूम होते हैं। इन्दिरा के सामने किसी की हिम्मत ही नही है।* इन्दिरा दिनेशसिंह को निकालने पर तुली हुई मालूम होती है। इस मामले मे भी किसी ने चू ही नही की है। कितना पतन हो गया है लोगो का।

आज रतनजी को मैंने सुनारा बाबा से हुई प्राय सभी बातो से वाकिफ किया। *उनको डर यह है कि प्रेत-योनि के सपर्क से अपना कोई अनिष्ट न हो जाए। मैंने विश्वास-*पूर्वक उनको बताया है कि अपना अनिष्ट कोई करना चाहे तो भी कर नही सकता। अपन क्या कम शक्तिशाली है? दूसरे, बाबा को हम बुलाने नही गये, वह अपने आप आया और हमने उससे सहायता नही मागी, उसने अपने आप सहायता पहुँचाने को कहा। मै अध्ययन करना चाहता हूँ और यह देखना चाहता हूँ कि अदृश्य की जिस सहायता की कल्पना मुझको होती रहती है वह कदाचित् बाबा के माध्यम से अपने को मिल सकती है क्या? बाकी बाबा की कोई सी एक बात भी सच्ची न निकले तो अपना क्या बिगडने वाला है?

कलकत्ता से रवानगी, २२ अक्टूबर, १९७३

प्रफुल्लबाबू का विजयाभिनन्दन का पत्र वनस्थली आया था। उसकी नकल कलकत्ता आयी। प्रफुल्लबाबू के नम्बर का पता लगाकर फोन किया तो साधना से बात हुई। प्रफुल्लबाबू वहा थे नही। वे घर पहुँचते ही मेरे पास दौडे आ गये। उन्होने बताया कि उनका और साधना का जनवरी से वनस्थली आकर रहने का विचार है। पक्की बात कुछ समय के बाद बताएगे। भागीरथजी को भी यह तजवीज पसन्द है। सीतारामजी के

सामने यह बात नहीं आयी। अपनी ओर से तो प्रफुल्लबाबू और साधना से कहा हुआ था ही।

जयपुर, ३ नवम्बर, १९७३

सुभद्रकुमार से बहुत देर तक बातें होती रहीं। पाटणीजी की याद में। स्मृति मन्दिर के लिए सेठजी (अर्जुनलालजी), सेठजी (जमनालालजी) और पाटणीजी के चित्र ला देने का जिम्मा उसको दिया। वीरेश्वरजी महाराज, दुर्गाप्रसादजी महाराज, मधुसूदनजी महाराज, पुरोहितजी साहब (गोपीनाथजी), स्वामी लक्ष्मीरामजी सहित आठ चित्र हो जाते हैं। ९ चित्र लगाने हैं। नवां चित्र किसका होना चाहिए? सुभद्रकुमार ने कहा कि सेठीजी का चित्र मिलना मुश्किल होगा। शास्त्री भवन के एक कमरे को ही फिलहाल स्मृति मन्दिर का रूप दे देना है।

वनस्थली, ८ नवम्बर, १९७३

बोर्दियाजी (केसरीलालजी, अध्यक्ष, माध्यमिक शिक्षा मंडल) आये। उनके साथ प्रभुलालजी पारीक और एक चतुरसिंहजी भी आये। बाद में मुझको मालूम हुआ कि चतुरसिंहजी महेन्द्रसिंहजी के भेजे हुए हैं और बी० एड० के प्रवेश की स्थिति देखने के लिए आये हैं। मुझे यह तो मालूम था नहीं और मैंने उनके सामने ही बड़ी सख्ती से कह दिया कि कैसे आदमी को शिक्षाआयुक्त बनाकर बिठा दिया है। प्रायवेट संस्थाओं में बहुत बेजा दखल देने की कोशिश महेन्द्रसिंहजी कर रहे हैं।

बोर्दियाजी बाद में मुझसे बोले कि मैंने भी महेन्द्रसिंहजी से कहा है कि आप स्कूलों के काम में ज्यादा दखल देते हो सो ठीक नहीं है। बोर्दियाजी से मैंने कहा कि आप ऑटोनामस स्कूलों की बात करते हैं सो ठीक ही है। आप इस काम को पक्का कर जाना, ऑहदे से हटने से पहले पहले। बाकी मेरी राय में ऑटोनोमी का विशेष अर्थ नहीं होगा। खुद भारत सरकार ही कितनी सी ऑटोनोमस है? राजस्थान सरकार बिल्कुल नहीं है, वह तो नगरपालिका जैसी है। जब तक शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हो तब तक ऑटोनोमी का कुछ मतलब नहीं हो सकता। बोर्दियाजी ने कहा कि आपके यहां तो बहुत अच्छा हाल है। आपके और रतनजी के बाद प्रेमन रायनजी है, उनके बाद सुशीला, दिवाकर-शकुन्तला हैं। मैंने कहा चौथी पीढ़ी भी तैयार हो रही है। बोर्दियाजी ने यह भी कहा कि वनस्थली के कॉलेज में कई एक बहुत योग्य आदमी हैं।

: २ :

नयी पुरानी रचनाएं

क्रान्ति-भक्ति-वचन

(१)

हम राम कहे हम कृष्ण कहें,
    हम शंभु कहे हम देवि जपे।
हनुमान कहे बहु नाम कहे,
    जनता जनता दिन रात जपे,
जनको जगदीश्वर मान रहे,
    जनरंजन का हम काम करे।
जनता वसती हमरे दिल मे,
    जनता दिल मे हम वास करे ॥

(२)

नवजीवन हो नवचेतन हो,
नव प्रान भरे जय राम हरे।
नवभक्ति जगे नव कर्म करे,
नव ज्ञान भरे जय शंभु हरे।
नव निर्भयता नव साहस हो,
नव स्फूर्ति भरे जय कृष्ण हरे।
खुश हो अपना बलिदान करे,
नवशक्ति भरे जय देवि हरे ।।

(३)

यह कोटिमुखी जनता कहती,
जन पाच बसे परमेश्वर है।
हम दूसर नाम असंख्य भजें,
जनता खुद ही जगदीश्वर है।
हम बात करें बम ऐटम की,
बम आतम को न पुकार रहे।
जन जाग उठे सुहि विष्णु उठे,
मधु-केटभ पाप पछार रहे ।।

(४)

पितु मात गुरु हम देव गिने,
हम पूजन शीश नवा के करें।
गुरु शिष्य कु प्यार दुलार करें,
सब शिष्य गुरु सनमान करें।
गुरु को बहु आदर मान मिले,
सब साधन राज-समाज मिले।
सब शिष्य युवा जब होइ तभी,
उनको मनमाफिक काम मिले ।।

(५)

जितनी जग नारि उसे जननी,
भगिनी बिटिया हम मान रहे।
वह आदिम शक्ति की पुंज उसे,
हम देविक रुप में पूज रहे।
वह धर्म व शील कि रक्षक है,
वह पाप समूह विनाश करे।
गिरते नर को बु उबार रही,
खुद गर्त मे वो कबहूँ न गिरे।

(६)

तनशक्ति लुटी मनशक्ति लुटी,
धनशक्ति लुटी जनशक्ति लुटी।
सब धर्म लुटा सब कर्म लुटा,
सब मान लुटा सब शान लुटी।
पहले अंगरेज बुरे लगते,
कहते हम थे यह लूट रहे।
अब तो कहना पड़ता हमको,
हमको घर के यह लूट रहे ।।

(७)

यह फूट हमें कमजोर करे,
हम एक रहें मजबूत बनें।
तब मात करें सबको छिन में,
भिड़ जाएं मुकाबिल में कितने।
झगडा न करे यदि हो झगड़ा,
उसको मिल बैठ सलाम करें।
हम कोर्ट अदालत जाइं नहीं,
हम रिश्वत की जड़ काट धरे ।।

(८)

कइ वाद सुने कइ पारटिया,
सब नारुं का शोर बुलंद करें।
दलितो अरु अल्पमतो व स्त्रियों,
अरु जाति व धर्म का नाम धरे।
भन्न नाम धरे इसका उसका,
पर वोट तमाम बटोर धरें।
सबको अपना हक फर्ज मिले,
हम पद्धति वोहि कबूल करे।।

(९)

यह राज नही अपना लगता,
परराज इसे हम मान रहे।
यह शासन है मरता गिरता,
कुइ कानून को नहि मान रहे।
इस शासन की परवाह बिना,
हम संघटना करले अपनी।
हर गाव सभा मजबूत बने,
तब होय हकूमत भी अपनी।।

(१०)

सब खेत परिश्रम जो करते,
हम जीत किसानुं कि चाह रहे।
सब मील परिश्रम जो करते,
हम जीत मजूरूं कि चाह रहे।
दिन रात हिफाजत जो करते,
हम जीत जवानुं कि चाह रहे।
जिनसे कल की हम आस करें,
हम जीत युवाउं कि चाह रहे।।

(११)

सब भूमि बंटे तब भूमि बिना,
कुइ आज रहे नहि काल रहे।
जिसमें अपने जितना निपजे,
उस पै कर का नहि भार रहे।
करका बड भाग तु गाव लहे,
उसका कुछ भाग समाज लहे।
कम से कम कानुन हो अपने,
कम से कम कोर्ट कचेरि रहे।।

(१२)

सब भेद मिटे सम भाव बने,
सब माल बढ़े सबको हि मिले।
सब काम करे रुजगार करे,
सबको सबका सतकार मिले।
सब फर्ज करे अपना अपना,
सबको अपना अधिकार मिले।
सब भाति विकेन्द्रित हो रचना,
सबको निज राज सुराज मिले।।

(१३)

हम बेखटके अरू निर्भय है,
हम सेवक है खुदगर्ज नही।
हम साफ खरी सब बात करें,
हमको कुछ लाग लपेट नहीं।
हम काम भला दिन रात करें,
हम लीडर नाहि दलाल नहीं।
तकलीफ पड़े कितनी हमको,
हमको उसकी परवाह नहीं।।

(१४)

नहिं सोच करें नहिं फिक्र करें
हम स्वस्थ रहें हम मस्त रहें।
हम कष्ट परिश्रम से न डरें,
हम चुस्त रहें नहिं सुस्त रहें।
जब लौं यह सांस चले तब लौं,
शुभ कर्म में ही लवलीन रहें।
विसवास करें पुखता अपना,
हम आखिर राम-भरोस रहें।।

(१५)

हम मार छलांग पहाड़ चढ़ें,
वन बीहड़ में निरभै विचरें।
नद-बाढ़ मुकाविल में झपटें,
हम कूद समुद्र बीच परें।
परवेश करें जलती अगनी,
जनता-जगदीश पुकार रहें।
हम शासन-के धन के बल को,
प्रभु के बल से ललकार रहें।।

(१६)

जन शक्ति भरे जनक्रान्ति करें,
इस शासन को उलटें न टरें।
निज के भुज के बल से उपजे,
उस ही धन का उपयोग करें।
कहुँ मागन की नहिं आदत हो,
मिल जोर लगा अधिकार करें।
जन सेवक जो नर हैं बनते,
सब गर्ज उठे "न करें तु मरें"।।

मेरे ७३ वें जन्मदिन के अवसर पर
(मार्गशीर्ष कृष्णा ६, सं० २०२८ वि०)

मेरी वर्तमान मनः स्थिति

(१)

तन को हम स्वस्थ जरूर रखें, मन को मजबूत जरूर रखें ।
अलमस्त रहें हर हालत में, इतना हम ध्यान जरूर रखें ।
इक शक्ति रमी कण में अणु में, उसकी पहिचान जरूर रखें,
इस बार बहत्तर पार हुए, हम शाश्वत ध्यान जरूर रखें ।।

(२)

कुछ चाह नही कुछ माग नही, कुछ भी शिकवा फरियाद नही ।
कुछ रोप नही कुछ मोद नही, कुछ आस नहीं अवसाद नही ।
कुछ ताप नही अनुताप नही, कुछ दाद नहीं प्रतिवाद नही ।
कुछ सीख नही उपदेश नही, कुछ हास्य नही व विवाद नही ।।

(३)

अपनी कुछ ग़र्ज रहा न करे, जग के हित की सब ग़र्ज रहे ।
जगसेवक है हम पै जग के, हितसाधन का नहि क़र्ज रहे ।
जन को अपना हक़ मालुम हो, जन के दिल मे निज फ़र्ज रहे,
जन ही खुद सोच इलाज करे, तब शेष नही कुइ मर्ज रहे ।।

(४)

यदि तर्क वितर्क उठे मन में, उन पै हम ग़ौर किया हि करे ।
परवाह ज़रा पल को न करें, परिपालन धर्म सदा हि करें ।
हम सोचत है सुइ होवत है, खुद का विश्वास रखा हि करें,
हम स्वार्थ मनोरथ छोड चले, तब काम समस्त हुआ हि करें ।

(५)

दल के विष से हम दूर रहे, अधिकार न मान हमें चहिए ।
नहिं दाम चहें नहि नाम चहें, नहिं शोकत-शान हमे चहिए ।
शुभ कर्म करे शुभ शब्द कहे, शुभचिन्तन नित्य हमें चहिए ।
शुभ मे हम लीन सदैव रहे, शुभ केवल एक हमे चहिए ।।

स्फुट कामनाएं

१. वनस्थली के कार्यकर्त्ता भाई-बहिनों के लिए

जन का धन का नहि साधन था,
इक भाव बना दिल में तब ही ।
अपना कुछ तो बलिदान हुआ,
यह स्थान बना व बढा तब ही ।।
अपना सब दे इसको इसने,
कम से कम ले व चहें तब ही ।
यह लायक हो अपने सबके,
इसके हम लायक हों तब ही ।।

२ छात्राओं के लिए

यह स्कूल नहीं अपना घर है,
यह होटल नाहि दुकान नहीं ।
सब शिष्य नहीं समझो धन को,
अपने घर में कुइ खान नहीं ।।
सत कर्म करे तन से मन से,
निज कर्म बिना अधिकार नहीं ।
गुरु के प्रति आदरभाव रहे,
कबहूँ घटिया व्यवहार नहीं ।।

३. रतनजी के और अपने खुद के प्रति मेरा विश्वास

(हम दोनो एक दूसरे को "मा" से सम्बोधित करते है)

मा और सा दो दिखते भले हों,
सा एक ही है इसमें शुबा क्या ?
सा एक है तो अलगाव "सा" का,
कभी न होगा इसमें शुबा क्या ?

४ परिवार के और निकट के व्यक्तियों के लिए

वनस्थली शिक्षण स्थान ऊँचा,
पैदा हुआ है परिवार में से।
सो खून-पानी अरु खाद-हड्डी,
पाता रहेगा परिवार में से ।।

५ वनस्थली के आर्थिक साधनों के बारे में

सदा मिले पब्लिक से सहारा,
दे राज्य सारे इमदाद अच्छी।
कमी रहे सो करलें कमाई,
फूले फलेगी हर साल अच्छी ।।

मेरी सर्वोपरि कामना

विरक्ति आसक्ति नहीं हुआ करे,
न मोह हो ना ममता हुआ करे।
स्वकर्म आसक्ति बिना हुआ करे,
कभी न आशा फल की हुआ करे ।।

अन्य छन्द

(१)

वो क्रान्ति का तत्व कहा छिपा है,
खोजूं कहा मैं मुझको बताओ ।
ईमानदारी दिल की सचाई,
दीखे कहीं तो मुझको दिखाओ ।।

(२)

सत्कर्म शक्ती फिर शब्द शक्ती,
है ध्यान शक्ती फिर आत्मशक्ती ।
करुँ न बोलूं न जराक सोचूं,
पूरा करे काम अवश्य शक्ती ।।

(३)

ये सृष्टि मे रूप अनन्त कैसे,
पैदा हुए सो नहि जानते है ।
जो प्राणि-अप्राणि असंख्य उनको,
उत्पत्ति को ना पहिचानते है ।।

(४-५)

वो नीमपत्ता जब भी बनादे,
गुलाब का फूल जभी बनादे ।
या आमका वो फल जो बनादे,
जौ का जवारा जब भी उगादे ।।
मनुष्य का बाल जभी बनादे
या मोर का पंख जभी बनादे ।
चीटी जरा सी जब भी बनादे,
विज्ञान ज्योती अपनी जगादे ।।

(६)

चले न दूजा चल एकला रे,
बिना सहारे निभ एकला रे ।
करे न दूजा कर एकला रे,
राजी हमेशा रह एकला रे ।।

(७)

मजल है दबते कबहुं नही,
निडर है डरते कबहूं नही ।
अडिग है चिकते कबहूं नही,
कठिन है झुकते कबहूं नहीं ।।

(८)

मै मोर को नित्य निहारता हू,
कैसो छटा है रंग की विरंगी ।
कहा छिपे थे रंग ये अनोखे,
कहा छिपे पाव तथा किलंगी ।।

(९)

वो भी सदा सा यह भी सदा सा,
सा एक ही हैं नहिं दो कभी सा ।
सा मे घटे सा बच जाए सा ही,
सा मे जुड़े सा बन जाए सा ही ।।
(सा (यानी रतनजी) के जन्म दिन पर)

(१०)

मनुष्य मे क्या पशु पक्षि में क्या.
मत्स्यादि मे क्या फल फूल मे क्या ?
है जन्म होता अरु मृत्यु होती.
जाना किसी ने यह भेद हे क्या ?

(११)

एक मोह कर्षत इधर
उधर दूसरा योग,
नवल वधू के सामने.
कैसा योग वियोग !!

(१२)

अयि जगज्जननी जनरंज्जनी
भगवती भवतो भयभंज्जनी ।
सुरसुधा सकलासुरमर्दिनी
जयतु देवि ! सदाशिव संगिनी ।।

(१३)

कर्मशक्ति का असल मे,
होता हल्का ध्यान ।
शब्दशक्ति भी न्यून है,
चिन्तन शक्ति महान ।।

(१४)

अकल मे कुछ खास जमा नही.
नहि हुआ कुछ ज्ञान मुझे अभी ।
पर यही मन शान्त रहे सदा,
न कुछ और मुझे चहिए कभी ।।

(१५)

सुभावना से सुविचार होवे,
विचार अच्छा शुभ शब्द लावे ।
सुशब्द बोले शुभ कर्म होवे,
सुकर्म अच्छा परिणाम लावे ।।

(१६)

अनुकूल कुहे प्रतिकूल नही,
कुछ और नहो तो तटस्थ रहें,
सबके हम मित्र सदैव रहें,
न कठोर रहे मजबूत रहें ।।

कुछ पुरानी रचनाएं

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) में जीवनकुटीर के जमाने के कुछ गीत छप चुके हैं। मुझे सुझाया गया कि कुछ गीत इस भाग २ में भी देने चाहिए। इसलिए नीचे लिखे अनुसार कुछ गीत और दिये जाते हैं—

सपनो आयो

(इस ४० वर्ष पुराने गाने में विप्लव का चित्र खींचा गया है। विप्लव से बहुतों को तकलीफ होती है और उसके सभी परिणाम अच्छे हों सो बात नहीं है। लेकिन जर्जरित इमारत के गिरे बिना नयी रचना होना असभव जैसा होती है। इस गीत में पुरानी रचना के स्थान पर नयी रचना का सपना देखा गया है यही आशय प्रलय का, विप्लव का अथवा क्रान्ति का हो सकता है।)

सपनो आयो एक घणो जबरो रै, सपनो आयो ॥
काली पीली आंधी उठी,
चाल्यो सूंट घणो जबरो रै, सपनो आयो ॥१॥
थल को होगयो जल, थल जल को,
संपट पाट घणो जबरो रै, सपनो आयो ॥२॥
डूंगर टूट जिमी में मिल गया,
देख्यो ख्याल घणो जबरो रै, सपनो आयो ॥३॥
चोरस भोम में डूंगर बण गया,
माया जाल घणो जबरो रै, सपनो आयो ॥४॥
टीवा ऊठ नदी वै लागी,
फैल्यो पाट घणो जबरो रै, सपनो आयो ॥५॥

पिया वाण पड़ी या कांई

(इस गाने मे किसान स्त्री अपने पति को मीठा उपालभ देती है और उसे जोश दिलाती है। वह पति से पूछती है कि "तुम डरने का कारण न होते हुए भी क्यो डरते हो? कोई डरानेवाली चीज असल मे नही है तब भी क्यों डरते हो? तुम जिन्दा दिल होकर मुर्दे से क्यों डरते हो? सिंह होकर गीदड से क्यो डरते हो? इतनी ज्यादा तादाद मे होकर थोड़े से लोगों से क्यो डरते हो? घर के मालिक होकर किसी से भी क्यो डरते हो? सबको अन्न खिलाने वाले होकर भूखे लोगो से क्यों डरते हो?" फिर वह कहती है कि "सच्चे होकर झूंठे से और खरा सोना होकर नकली लोगो से क्यो डरते हो?" अन्त मे उसे जोश आजाता है और वह कहती है कि "खरी कमाई करने वाले निठल्लो से, साहूकार होकर चोरों से और सन्मार्ग पर चलने वाले होकर पापियो से क्यो डरते हो?")

एजी बिना बात क्यों डरपोजी, पिया वाण पड़ी या काई।
पिया जिन्द भूत कुण देख्या,
एजी छाया सूं क्यो डरपोजी, पिया वाण पडी या काई ।।१।।
पिया जिन्दा दिल थे जवरा,
एजी मुरदा सूं क्यों डरपोजी, पिया वाण पडी या काई ।।२।।
पिया सिंघ जस्या थे सवला,
एजी स्याला सूं क्यों डरपोजो, पिया वाण पड़ी या काई ।।३।।
पिया आपा वोला सारा,
एजी थोड़ा सूं क्यो डरपोजी. पिया वाण पड़ी या काई ।।४।।
पिया आपां घर का मालिक,
एजी पैला सूं क्यों डरपोजी, पिया वाण पड़ी या काई ।।५।।
पिया सवका छां अन्दाता,
एजी भूखा सूं क्यो डरपोजी, पिया वाण पडी या कांई ।।६।।
पिया आपा विल्कुल साचा,
एजी झूंठा सूं क्यों डरपोजी, पिया वाण पड़ी या काई ।।७।।
पिया खरा तप्या थे सोना,
एजी नकल्यां सूं क्यो डरपोजी, पिया वाण पडी या कांई ।।८।।
पिया खरी कुमाई खावा,
एजी ठालां सूं क्यों डरपोजी, पिया वाण पड़ी या काई ।।९।।
पिया साहूकार सदा का,
एजी चोरा सूं क्यो डरपोजी, पिया वाण पड़ी या काई ।।१०।।
पिया गेले गेले चाला,
एजी पाप्यां सूं क्यो डरपोजी, पिया वाण पड़ी या काई ।।११।।

म्हे आज बोलां छां

(यह अर्से से दबी हुई जनसमूह की वाणी है। जनसमूह अब उठ खडा होना चाहता है। वह अपने दिल के दर्द की बात कहने के साथ साथ अपनी ललकार भी सुनाता है और चेतावनी भी देता है। यह कहा गया है उनसे जिन पर जनसमूह को दबाये रखने का जिम्मा है। पाचवें अन्तरे मे तीन मेंढको की उपमा दी गयी है जिनमें से एक सबसे ऊपर होने से खुशी जाहिर करता है और बीच वाला उदासीन भाव रखता है, लेकिन तीसरा दोनो के नीचे दब जाने से अपना दु ख प्रकट करने के लिए मजबूर होता है।)

दुखभरी आवाज सूं म्हे, आज बोला छां।
जोर की ललकार सूं म्हे, आज बोला छां ॥१॥

बैठ्या बैठ्या ठेठ सूं म्हे, थारी रचना देखली।
देखता म्हे धापगा जद, आज बोला छा ॥२॥

पिसता पिसता आज ताईं, म्हा को चुरकट हो लियो।
फाटगो यो कालजो जद, आज बोला छा ॥३॥

मायली तो माय म्हा के, बारली बारे रही।
कल्लावै या आतमा जद, आज बोला छा ॥४॥

टर्रकटम ऊपरलो बोल्यो, बिचला के तो खुशी न गम।
निचला छा सो "दबे तो हम" म्हे, आज बोला छा ॥५॥

जूती सूं चिथ जावै जद तो, माटी भी माथे चढै।
आखर तो छां आदमी म्हे, आज बोलां छा ॥६॥

चोरी अर सिरजोरी थाकी. सारी दुनिया देखली।
थाका हिया की फूटगी सो, आज बोलां छा ॥७॥

चोखा छा अर भोत सारा, ताकत पण बिखरी हुई।
ताकत को अन्दाज कर म्हे, आज बोलां छा ॥८॥

चाली जतरै चाल लीनी, अब नही या चाल सी।
दीखै कोने चालती जद, आज बोला छां ॥९॥

भोत होगी भोत होगी, अब थे आख्या खोलल्यो।
नातर थे पछतायस्यो म्हे, आज बोला छा ॥१०॥

उलटैली अर थाका माथा, ऊपर होकर जायली।
सुणल्यो या चेतावणी म्हे, आज बोलां छा ॥११॥

नारी मरदाणी

(इस गाने मे घर की स्वामिनी का आह्वान किया गया है। उसे इज्जत आबरू की अमर निशानी बताया गया है। उसमे कहा गया है—"गरीबी के कारण खाली हुए अपने घर को देखो। घर मे खाने को अनाज नही है और तब भी वोहरे का दबाव कर्जा चुकाने के लिए है, सो देखो। तुम्हारे दिल के टुकड़े बच्चे बार बार आकर रोटी मागते हे और भूखो मरते रोते हैं। वे ही तुम्हारे बच्चे सर्दी के मारे कापते हैं। तुमने खुद फटा हुआ लहगा पहन रखा है जिससे लज्जा को भी लज्जा आती है। पुरुष का दिल धड़कता है। वह घर के भीतर शेर बन जाता है लेकिन घर के बाहर मिट्टी जैसा हो जाता है। पति देव ने हाथो मे चूड़िया पहनली हैं, सो अब तो तुम ही अपनी ताकत से घर की लाज रखो।)

नारी मरदाणी तू आबरू की अम्मर सैनाणी। नारी मरदाणी ।।

खाली होगो टापरो सो देख लै ए मरदाणी।
आंख्या खोलर-आंख्या खोलर झाक, तू ई के कानी झाक
अब तो घर के कानी झाक, नारी मरदाणी ।।१।।

नाज बीत्यो पीसणो जद पीसैं काई मरदाणी।
घर मे कोनै घर में कोनैं नाज, जब भी लेणा की छे दाब,
जद भी बोरा को छैं दाव, नारी मरदाणी ।।२।।

छोरा-छोरी वावड़ वावड रोटी मांगे मरदाणी।
भूखा रोवैं-मरता रोवैं नार थारा कालजा का टूक,
थारा हिवड़ा का ये टूक, नारी मरदाणी ।।३।।

दावा मे ये थर थर धूजै, थारा टाबर, मरदाणी।
सी सरदी तू सी सरदी तू रोक, याका तन पर लत्तो नांख
अब तो यांका तन ने ढाक, नारी मरदाणी ।।४।।

लीरक लीरा घाघरियो तू पैरया डोलै, मरदाणी।
लाजा मरगी लाजा मरगी लाज, थारा नागा तन नैं देख
थारो डोल उघाड़ो देख, नारी मरदाणी ।।५।।

मूछयांला को कालजो तो भार्‌यो धड़के मरदाणी।
घर कै भीतर घर कै भीतर नार यो तो बण जावे छैं नार
यो तो घर कै बारैं गार नारी मरदाणी ।।६।।

ढोलाजी तो हातां चुड़लो पैर लीनों मरदाणी।
थारा घर की थारा घर की लाज, तू तो हिम्मत करके राख,
अब तो मरदी करकै राख, नारी मरदाणी ।।७।।

संकल्प

(यह ग्राम जनता के लोगो की घोषणा है। यह उनका दृढ सकल्प है जिसे पूरा करने के लिए जरुरत पडने पर उनको अपनी जान तक दे देने की तैयारी है।)

सही नमूनो सेवा को म्हे पेसकर देस्यां।
स्वारथ अवसरवाद को म्हे अन्त कर देस्या ।।१।।
स्वराज तो आगो बतायो चैन पण दीख्यो नही।
गाव गाव में साचल्लो सुराज कर देस्यां ।।२।।
सब कन्ने धन धरती होमी कोई खाली रे नही।
धन धरती की पाती मे म्हे न्याय कर देस्या ।।३।।
किसाण हो मजदूर हो वा अदवीचल्ला लोगहो।
दब्या हुवा वा सगला नै म्हे न्हाल कर देस्या ।।४।।
घणा जणा ठाला फिरै रुजगार वाड़ी छै नही।
रोटी अर रुजगार का म्हे ठाठ कर देस्यां ।।५।।
कोई की जागीर चाली कोई कै निकलै नयी।
नयी निकलती जागीरां पर रोक कर देस्या ।।६।।
ठालप का ये कारखाना स्कूल अर कालेज छै।
कुमाई की विद्या को विसतार कर देस्या ।७।।
कोई नै हलका गिणे छै कोई नै न्यारा गिणे।
आपसरी में भाया को म्हे प्यार कर देस्यां ।।८।।
अंग्रेज तो आगा गया पण साथ देसी रे गया।
या सावा ने सिखार हिन्दी त्यार कर देस्यां ।।९।।
चुणावा मे जीत देखी पीसा अर पाखण्ड की।
अस्या निकरमा कायदा नै रद्द कर देस्या ।।१०।।
झूठो साचो काम सारो वोटा के ताईं करै।
वोटा का लैलोटा मे म्हे चोट कर देस्या ।।११।।
चढा उत्तरी ख्याल खेलता बीका की घोडी चढ्या।
असवारां की करकरी म्हे स्यान कर देस्या ।।१२।।
माय मैला ऊजल धोल्या ज्यो रिसवत लेता फिरै।
पकड पकड एकेक नै म्हे पार कर देस्या ।।१३।।
सत्य सांती असतर म्हा का बमगोला को डर नही।
देस मे परदेश मे परचार करदेस्या ।।१४।।
निरभै होकर आगै वढस्या सामी ज्यो चट्टान हो।
ठोकर दे चट्टान चकनाचूर कर देस्या ।।१५।।
पक्का म्हा का चित्त मे यो होगयो संकल्प छै।
कुरवान ईं कै वासतै जी ज्यान कर देस्यां ।।१६।।

मेरी अनाधिकार चेष्टा

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला, या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेत पद्मासना।
या ब्रह्माच्युत शंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मा पातु सरस्वती भगवती जाड्याधिकारापहा ।।

यह सरस्वती वन्दना है। छन्द के दूसरे चरण में जो "वीणावरदण्डमण्डितकरा" पद है उससे इतना ही मालूम होता है कि सरस्वती ने अपने हाथ में वीणा ले रखी है। वास्तव में सरस्वती के चारों हाथों में चार चीजें होनी चाहिए—जो उपर्युक्त पद को इस प्रकार बदलने से हो सकता है।

वीणावरदाक्षपुस्तकधरा

जिसका अर्थ होगा एक हाथ में वीणा है, दूसरे हाथ में वरदान की मुद्रा है, तीसरे में माला है, चौथे में पुस्तक है।

कभी कभी पुरानी रचनाओं के साथ इस प्रकार की अनाधिकार चेष्टा, धृष्टता करने की मेरी पुरानी आदत है।

: ३ :

वार्तालाप विवरण

(१)

हीरालाल शास्त्री की महात्मा गांधी से मुलाकात

सेवाग्राम २०-१-४५

ही० शा० ने २०-१-४५ को दिन के ११ बजे बाद बापूजी से सेवाग्राम में मुलाकात की। श्रीमती जानकी देवी बेजाज और रतनजी भी थी। ही० शा० ने बापूजी से अपना देर से *मिलना होने का जिक्र किया और फिर एक मित्र ने जो समाचार कहलवाये थे सो* बापूजी से कहे। बापूजी का मौन था, इसलिए उन्होंने प्रारम्भिक समाचारो को सिर्फ सुन लिया। बाद मे बापूजी ही० शा० के प्रश्नो के उत्तर लिखते गये।

ही० शा० जयपुर राज्य प्रजामण्डल किसानो की सेवा करता रहा है। आजकल कोई किसान पचायत जैसी सस्था नही है। राज्य के पास किसानो की वकालत प्रजा-मण्डल ने की है और इस काम मे उसे सफलता भी मिली है। कल को वह वकालत विफल हो जाए और सत्याग्रह की नौबत आजाए तो प्रजामण्डल क्या करे? आपने एक बार कहा था कि किसानो को अपने आर्थिक प्रश्नो के लिए अपने निज के बल पर सत्याग्रह करना चाहिए? तो क्या सत्याग्रह करने के लिए *प्रजामण्डल किसानों को अकेला ही छोड दे?*

बापू — आसान बात है प्रजामण्डल में से ही सत्याग्रह सभा खड़ी हो जिसका काम जेल जाना भी होगा। इसमें ज्यादातर किसान होंगे लेकिन वह किसानों की अलग सभा नहीं होगी। प्रजामण्डल अपनी मर्यादा में मदद देता रहेगा।

ही० शा० - आपकी समग्र ग्रामसेवा की कल्पना सुन्दर है। पर हमारी कठिनाई यह है कि काम करने वालों की संख्या थोड़ी है। कार्यकर्ता कहां से आएंगे ? एक गांव में एक ही कार्यकर्ता का बैठना ठीक होगा ? वह कार्यकर्ता चालू राजनीति में भाग लेगा या नहीं ? उदाहरण के लिए, क्या वह प्रजामण्डल वर्किंग कमेटी में लिया जा सकता है ? शहर और कस्बे से कार्यकर्ता जाता है वह कितना भी प्रयत्न गांव वालों में मिल जाने का करे, पर गांव वाले उसे अपने जैसा एक नहीं मानते, ऐसा मेरा अनुभव है और शायद यही अनुभव वर्धा के ग्रामसेवा मण्डल का है ?

बापू— आपकी संस्था को ही ऐसे आदमी तैयार करना है। एक गांव के लिए एक आदमी होता है। उसको गांव में ही डट जाना है। दूसरा काम उससे न लिया जाए। इसलिए वह वर्किंग कमेटी में भी नहीं लिया जाएगा। ५ वर्ष के बाद तो उसे भी देहात से गुजारा करना होगा। तब भले ही देहाती न माने लेकिन वह देहात का ही सेवक तो माना जाएगा ही।

ही० शा०—मैंने वनस्थली विद्यापीठ का हाल संक्षेप में बतलाया। उन्होंने वनस्थली के बढ़ते हुए आर्थिक भार की ओर संकेत किया और घनश्यामदासजी लड़कियों से ज्यादा पैसा वसूल करने की जो योजना बताते हैं उसका जिक्र भी किया। बाद में यह पूछा कि विद्यापीठ में बुनियादी तालीम का कितना असर किस प्रकार लिया जाए ? जयपुर राज्य के रुख का जिक्र भी ही० शा० ने किया और सर मिर्जा इस्माइल के रतनजी के पास आए हुए पत्र को तथा रतनजी के उत्तर को पढ़कर सुनाया। सब हाल सुनकर—

बापू— ने इशारे में सर मिर्जा को लिखे गये पत्र को बहुत अच्छा बतलाया और फिर लिखा—

जब तक पैसे बाहर से लाओगे और प्रलोभन होंगे तो १००० लड़कियां भी आएंगी। लेकिन यह सब मैं निकम्मा मानता हूँ। सच्ची बात ही यह है कि या तो लड़कियां अपना खर्च लायें या वहीं मेहनत करके अपना खर्च निकालें। उससे तीसरा मार्ग नहीं है। आज लड़कियाँ तैयार नहीं होती डीगलियां तैयार करते हो। मैंने बहुत सुना है तुम्हारी संस्था के बारे में। मैं जानता हूँ कि तुम्हारी शक्ति का दुर्व्यय होता है।

ही० शा०—बापूजी, यह तो बड़ी सख्त राय आपने लिखी है। आपने वनस्थली जाने का वादा किया था। आपने कहा था—जहां कैलाश होगा, वहीं शंकर पहुँच जाएंगे।

इसलिए आप एक दिन वनस्थली चलो और अपने हाथ से उसका जैसा चाहो कायापलट करदो। पर एक बात तो बताओ—लड़कियाँ अपने घर से पैसे ले आएगी तब तो संस्था निर्दोष हो जाएगी क्या ?

बापू— ने इशारे से बतलाया कि उन्हें अपना वादा याद है और फिर लिखा—अपने पैसे लाएगी तो इतनी तो निर्दोष होगी कि तुम्हारी व्यर्थ मेहनत बच जाएगी। ऐसी २–३ ही आने वाली हैं। यह पेच है।

ही० शा०—घर से खर्च लाने वाली भी सैंकड़ों आ सकती हैं—

बापू— करके देखो। पता चल जाएगा। तुम्हारा काम ही तब दूसरा होगा। यह अनुभव लेने की बात है।

ही० शा०—इस मामले में तो बात बहुत करनी होगी। इस प्रकार मैं बारम्बार सवाल पूछता रहूँ और आप उत्तर लिखाते रहें तो आपको बड़ा कष्ट होगा। आप जब बोलने लगेंगे तब मैं महीने दो महीने बाद फिर आजाऊँगा।

बापू— यहाँ रहोगे तो मैं रात्रि को एक घण्टा दे दूँगा। तब बोलूँगा।

ही० शा०—ने अपने आत्म सतोष के लिए "एक बात और पूछ लेता हूँ" यह कह कर अगस्त, १६४२ से लेकर बाद तक जो घटनाएं जयपुर के राजनैतिक क्षेत्र में घटती रही उनका ब्यौरा बापूजी के सामने पेश किया। बापूजी सुनते रहे। अन्त में ही० शा० ने पूछा जयपुर प्रजामण्डल ने जो कुछ किया, क्या उसमें कुछ अनुचित था ?

बापू— मेरा आज कुछ कहना व्यर्थ है। फिर भी कह सकता हू कि जो कुछ आपने किया उसमें मैं कुछ अनुचित नहीं पाता।

ही० शा०—तो अब आपसे मिलने के लिए कब आऊँ ? आज तो नहीं कल आ जाऊं क्या ?

बापू— कल इतवार है। सोमवार को ८ बजे आओ।

इस मुलाकात में १½ घण्टा लगा। ही० शा०, रतनजी आदि को बड़ा सतोष हुआ। देर हो चुकी थी इसलिए बापूजी के यहां भोजन करके ही० शा० आदि आश्रम से विदा हुए।

हीरालाल शास्त्री की महात्मा गांधी से मुलाकात

सेवाग्राम २२-१-४५

(रात को ८ बजे से ९ बजे तक)

प्रारम्भ मे बापूजी के मौन छोडने मे कुछ मिनट बाकी थे। तब तक ही०शा० ने वनस्थली विद्यापीठ के काम का बयान किया। पचमुखी-नैतिक, शारीरिक, बौद्धिक, गृहस्थ और कला शिक्षा का क्रम कैसे चलता है सो कहा।

मौन खुलने पर बापू ने कहा—

आपने सुनाया वह करीब-करीब सब हाल मै जानता हूँ। यहां बैठे काफी लोग मुझे सब प्रकार की खबरें सुना जाते है। मैंने तो रामदास की लडकी सुमित्रा को शिक्षा के लिए कही भेजने की बात निकली तब उसे वनस्थली ही भेजने की राय दी थी। परन्तु देवदास ने घनश्यामदास की सूचना के अनुसार उसे पिलानी भेजा। मुझे कहा गया कि वनस्थली का भोजन भी पिलानी से कुछ कड़क है। असल मे सुमित्रा को तो पिलानी का भोजन भी कडक पड़ता है।

रतनजी—मैंने पिलानी का भोजन देखा है। वहाँ थोडा दूध अधिक दिया जाता है और कोई फर्क नही है।

बापू—मैं समझा। सुमित्रा की बात तो मैने इसलिए निकाली कि मैने वनस्थली के बारे मे अच्छा ही अच्छा सुना है और मेरा अभिप्राय भी अच्छा ही है यह मैं तुमको बतादूं। फिर भी (ही०शा० को) मैं आपकी तरफ से जो अपेक्षा रख रहा हूँ, वह यह नही कि इस प्रकार की सस्था का सचालन आप करे। ऐसी सस्थाए तो हिन्दुस्तान मे कई है। घनश्यामदास ऐसी कोई सस्था चलाए तो मै आपत्ति न करूंगा। क्योंकि आपके ऐसे कार्यकर्ताओ मे उनका शुमार नही। उनके पास धन है उसमे से कुछ वे ऐसे कामो के पीछे लगाते है। परन्तु आपके बारे मे तो आपको कई बार देखने से और जमनालाल ने शुरू से आपके लिए मुझे जो कुछ कहा था (सब मुझको बराबर याद है) उस पर से मुझ पर और ही प्रभाव पडा है। जमनालाल दिव्य पुरुष था। उसने मुझे कहा था, हमारा राजस्थान पिछडा हुआ है। अच्छे कार्यकर्ता बहुत कम है। तब भी उन इने गिनो मे हीरालाल शास्त्री जैसा सच्चा, बहादुर और कुशल कार्यकर्ता मैने दूसरा नही देखा। और जमनालाल का वचन मेरे

लिए तो हमेशा बडी बात रही। उनको मनुष्य की बड़ी परख थी और काम की लगन थी। वे तो मर गये। काम के बोझ से ही मरे, ऐसा मानता हूँ। आखिरी दिनों में उनको गौ सेवा की बडी लगन रही। उनकी आखिरी दिनों की डायरी से इस बात का प्रमाण मिलता है। गोपुरी बनाकर वहीं काम करते करते मरने को बैठ गये। मौत उनको पेड़ी के मकान में गयी। उनके कथन के आधार पर मैंने माना है कि ऐसी संस्था चलाते रहना यह आपका काम नहीं हो सकता।

ही०शा०—मैंने कभी न सोचा था कि आप मुझसे इतनी बडी अपेक्षा रखते होंगे। मैं सचमुच इस बोझ से आज अपने आपको दबा हुआ पाता हूँ।

बापू—मैं तुमसे अपेक्षा तो रखता हूँ।

ही०शा०—वनस्थली जैसी संस्थाएं भारत में कई हैं यह आपने कैसे कहा ? कौनसी संस्थाएं ऐसा काम करने वाली हैं ?

बापू—बहुतेरी है। मैं ठीक नाम लेकर नहीं बता सकूंगा। यह भी हो कि आपकी संस्था में चलता है ठीक वही शिक्षणक्रम इन सब संस्थाओं में ठीक उसी ढंग में नहीं चलता होगा। परन्तु आप दे रहे है वैसी शिक्षा या करीब-करीब वैसी, वही बातें कहीं एकाध दो कम कहीं अधिक परन्तु वही बाते देने वाली कई संस्थाएं देश मे बता सकता हूँ। बड़ोदे की संस्था में करीब-करीब सब यही— एक घुड़सवारी छोड़कर दिया जाता है यह मैंने देखा है। उनके दोष भी मैं जानता हूँ परन्तु दोषों की चर्चा में अभी न पड़ूंगा।

तुम्हारे यहाँ घुड़सवारी, साईकिल, भाला, बरछी, ऐसा ऐसा सामान है लेकिन वह कुछ भी मुझे नहीं लुभा सकते। खादी, हरिजन इत्यादि भी है। परन्तु मेरी नजर में वह सब ऊपरी ऊपरी है। क्योंकि यह सब चीजें घर तक पहुँचने वाली नहीं। संस्था में लड़कियां हरिजनों को छुए, उनके साथ रहें, परन्तु घर जाकर या ससुराल जाकर थोड़े ही हरिजनों को अपने घर बुलाने वाली हैं ? कई एक तो खादी भी छोड़ देती हैं। यह तो तुम्हारी संस्था में अपने दिल के माफिक कुछ बाते मिल जाती है इसी लोभ से खादी पहन लेती है और हरिजनों को भी छू लेती हैं। परन्तु वे चीजें भीतर तक नहीं पहुँची है। सुमित्रा को ही देखो न ? उसने मुझे कहा मुझे वनस्थली जाना है क्योंकि वहां घुड़सवारी सिखाते हैं। और पिलानी भी जाना है क्योंकि वहा संगीत अच्छा है। यह तो हुआ मेरी पोती का हाल। वह भी कहा मेरी सुनने को तय्यार है ?

बिल्कुल साफ दिल लडकी है। परन्तु वह मेरे पास बहुत रही है ऐसा नही, लेकिन रामदास तो रहा न ? बडा सरल और चतुर लडका है। लेकिन वह भी अब मेरे पास नही रहता। यहा का तेज उससे बरदाश्त नही होता और यहा की त्रुटिया भी। परन्तु मुझे तो दुनिया को साथ लेकर चलना है। इसलिए त्रुटिया बरदाश्त करके भी आश्रमवासियो को निभा लेता हूँ। असल बात यह है कि रामदास मेरे साथ इतना रहकर अपने बच्चो को चालू प्रवाह की शिक्षा देना चाहता है।

मैने कहा आजकल का वायुमण्डल और ही है। यहाँ के महिला आश्रम का दृष्टान्त मेरे सामने है। विनोबा ने उसे ठीक मेरे सिद्धान्त पर चलाना शुरू किया। तब लडकिया जाने लगी। जमनालाल ने भी आपत्ति की और कहा—जिन लोगो ने पैसा दिया है उन्होंने और खयाल से दिया है। इसलिए मुझे तो चालू प्रवाह मे रह कर ही उसे चलाना चाहिए। *विनोबा निकल गये। संस्था आज चलती है, लेकिन उससे क्या निकलने* वाला है ? अभी मै उधर चार दिन रहकर आया। शिक्षक-शिक्षिका, लडकिया सब की बाते सुनकर आया। एक शिक्षिका (मीरा) बाल शिक्षिका का काम करती है परन्तु वह बेचारी बाल शिक्षा क्या जाने ? वैसे तो वह मोंटिसरी वर्ग मे जाकर कुछ सीख आयी है सही। ऊपरी ऊपरी २-४ बाते पकडली होगी ? परन्तु माटेसरी का हार्ट थोडे किसी ने पकडा है ? मैने तो स्वय उससे बातें की है, इसी से यह कह सकता हूँ।

असल बात यह है कि भारतवर्ष को एक सदेशा दुनिया को देना है—अहिंसक समाज रचना का प्रयोग करके दिखाना है। यह यदि सही है तब *हमारी शिक्षा मे बुनियादी क्रान्ति करके ही वह होना है। मेरी यह बात* घमण्ड की बात हो सकती है। कोई कह सकता है हम कौनसा सन्देशा देने काबिल है ? हमारी कायरता देखो न ? फिर अस्पृश्यता जैसे बड़े दोष भी हमारे मे पडे हैं। लेकिन यह सब होते हुए भी मेरी मान्यता है–दावा है कि भारतवर्ष अनोखा मुल्क है और उसके पास दुनिया के लिए सन्देशा है। इसलिए हमको हमारी शिक्षा को भी अनोखे ढग से बनाना होगा। तुम्हारे यहा की हरेक लड़की अपने शिक्षा को खर्च की एक एक कोडी अपने बूते पर कमाले तब ही वह मेरी कल्पना मे जो शिक्षा है वह हुई—यही नयी तालीम है।

ही०शा०—परन्तु ऐसा स्वावलबन कही हो भी पाया है क्या ? यहा सेवाग्राम मे तालीमी सघ मे भी यह कहा चलता है ?

बापू—न चलता हो, इसकी मुझे फिक्र नहीं। मैंने तो अपनी बात आर्यनायकम् को समझादी। मेरा खयाल है वे समझ गये हैं। इसी से मैंने सारा काम उन्हें सौंप दिया। मेरा काम मार्ग दिखाने का है। वे दोनों इसके पीछे फकीरी लेकर बैठ गये हैं। वे सब कुछ सही करते हैं यह तो मैं न कहूँगा मैं जानता हूँ उनमें भी त्रुटियां हैं। मेरे में भी है। बिना त्रुटियों का कौन है? जिन जिन में त्रुटियां देखूं उन्हें निकाल दूं तो कोई न बचेगा, सबको मुझे निकाल देना होगा। और खुद को भी निकाल देना होगा। लेकिन मुझे तो दुनिया को लेकर चलना है। और जो रास्ता मुझे सच दीखता है उस पर उसे चलाना है। इसी से गुणग्राही बन कर बैठा हूँ और जितने मेरे प्रयोग में साथ देने आते हैं उन्हें शामिल कर लेता हूँ। फिर भी यहां चल रहा है वह 'नयी तालीम' है वैसा भी मानकर चलना जरूरी नहीं। नायकम् ने तो मैंने चाहा उससे कहीं अधिक कर डाला। एकदम सात साल के अभ्यासक्रम का प्रयोग शुरू किया और देश-भर में उसका प्रचार करने का भी साहस किया। इसमें सरकार की मदद भी ली। उस वक्त तो कांग्रेस सरकार थी। पीछे कांग्रेस को राज-तन्त्र छोड़ना पड़ा। परन्तु सरकार ने प्रयोग चालू रखा और बिहार प्रान्त में कुछ काम भी हुआ है लेकिन मेरी कल्पना का पूरा प्रयोग अभी तक कहीं नहीं हुआ।

मेरी योजना में उद्योग ही शिक्षा का माध्यम है और शिक्षा स्वावलम्बी हो यह ध्येय है। यह विचारधारा मैंने आगाखां महल में ईजाद की। और वहीं मुझे इस बात का भी दर्शन हुआ कि सात वर्ष की बुनियादी तालीम पर ही हमें न रहना चाहिए। बल्कि बालक गर्भ में आवे तब से बूढ़ा होकर मरे तब तक की शिक्षा की योजना हमें तय्यार करना चाहिए। बाहर आकर यह मैंने नायकम्जी को कहा। उन्होंने उसे पकड़ लिया और यह परिषद् बुलायी।

फिर भी यदि मेरी बात अभी व्यापक न होने पायी तो इसका मुझे दुःख नहीं। मुझे सब्र करना है। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि ईश्वर मेरा साथी है। तुम यहाँ बैठे हो, या यह स्वामी, नरहरि, प्यारेलाल बैठे हैं, इनके आधार पर मैं अपना काम नहीं चला रहा। ईश्वर ही मेरा आधार है उस पर मेरी श्रद्धा है। आज तक यह कहने का परिपाठ रहा कि ईश्वर सत्य है परन्तु मैं रोमेरोला से मिलने गया तब व्याख्यान देते हुए मैंने कहा कि सत्य ही ईश्वर है। दोनों में बड़ा फर्क है। सुनकर रोमेरोला नाच उठे। इसीलिए कहता हूँ जो सच बात है उसे चलाने वाला ईश्वर ही है। इसी से कहता हूँ कि सच्ची शिक्षा क्या है यह समझ लिया तब

फिर सख्या की ओर न देखो। सख्या की परवाह ही न करो। आज उल्टी गगा वह रही है। इससे हमारी सच्ची शिक्षा लेने वाले न मिलें, मां-बाप, लडके-लडकियां न भेजें और मौजूदा विद्यार्थी भी चले जाए तब भी फिक्र न करो। दस रहे तो दस ही को सिखाओ और आगे बढ़ो।

यह सब जो मैं कह रहा हूँ तुमको जँचे तब ही करना है अन्यथा नहीं। आश्रम की वहिनो की प्रार्थना मे श्लोक है :—

विद्वद्‌भि सेवितः पद्‌भि नित्यम रागद्वेषिभिः।
हृदये नाम्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत॥

मैंने तो कहा, परन्तु तुम्हारे हृदय ने उसे पहिचान कर पकड लेना है और अपना कर लेना है। यह न हुआ तो सीताराम पण्डित (रणजीत पण्डित के पिता) की सी गत होगी। वे बडे विद्वान थे। ग्रन्थ लिखे थे। अपना महल छोडकर कुटिया बाध कर रहे। परन्तु १९४५ मे मैंने सत्याग्रह आश्रम को नियमावली उनके पास भेजी तब उनके विचार इतने बदल गये थे कि मुझे लिखा 'अहिंसा परमो धर्म' में से 'अ' उड़ गया है। असल बात तो अहिंसा परमो अधर्म' यही है—हिंसा ही सच्चा धर्म है। फिर वनस्पति, पशु, पक्षी और मनुष्य के व्यवहार से यही प्रतिपादन करने लगे कि "जीवो जीवस्य जीवनम्" यही जीवन का नियम है और हिंसा के बिना दुनिया चल ही नही सकती। फिर तो वह कुटिया भी गायब हो गयी।

वैसे ही आज मैं अहिंसा की बात कर रहा हूँ। ७५ वर्ष की उम्र होते हुए भी मेरी बुद्धि कुठित नही हुई। मलेरिया के समय मेरी याददाश्त को चोट पहुँची थी, परन्तु मेरी आन्तरिक विचारधारा साफ चलती थी, बिल्कुल धुंधली नही हुई थी, आज मेरी स्मरणशक्ति कुछ कम हुई है, परतु इसे ईश्वर का अनुग्रह समझता हूँ कि स्मृति के बोझ से मुक्त होकर अधिक स्पष्ट दर्शन कर सकता हूँ। मुझे यह भी श्रद्धा है कि मेरी बुद्धि आखिर तक वैसी ही साफ रहने वाली है। फिर भी यदि कल मेरी मति पलट जाए और मैं कहने लगूं कि आज तक मैं अहिंसा-अहिंसा पुकारता रहा वह सब धोखा था, हिंसा ही असल चीज है तो यदि आज कहता हूँ वह मेरी बात तुम्हारे दिल मे असलियत में जम गयी होगी और उसे तुम अपनी बना चुके होगे तब तुम मेरा उस वक्त का कहना फेंक दोगे और मुझे कहोगे कि तेरी पुरानी बात को ही हम तो चिपके रहेंगे। आज जो कह रहे हो वह सब गलत है।

इसलिए तुम्हारी संस्था में जो परिवर्तन मैं चाहता हूँ वह तुम्हारे दिल मे चुभ गया हो तभी तुम उसे करना, वरना आज जो तुम्हारा चल रहा है वह भी वैसे तो अच्छा ही है उसमे भी राजी हूँ ऐसा समझो। इसका प्रमाण तो मैंने सुमित्रा का किस्सा सुनाकर दे दिया।

ही०शा०— आपकी बात समझ मे तो आती है। सवाल अमल मे लाने का है। सोचूँगा और कोशिश करूँगा। और क्या किया वह बताऊँगा।

बापू—बताने की जरूरत नही। मै तो तुमको कह चुका कि परिवर्तन न करोगे तब भी मैं तो राजी ही हूँ।

वनस्थली की बातचीत हो चुकने पर एक घण्टे में कुछ मिनट बच रहे थे। सुशीला बहिन ने बापूजी को याद दिलाया कि आप बहुत बोल चुके है। बापूजी ने कहा एक घण्टा देने की बात थी। फिर ही० शा० ने बापूजी से कुछ और सवाल पूछे जिनका सार इस प्रकार है.—

ही०शा०—आपने परसो यह तो बतला दिया था कि अगस्त आन्दोलन के सिलसिले मे जयपुर प्रजामण्डल ने जो कुछ किया उसमें कुछ अनुचित नही था। पर आपने बम्बई मे यह भी तो कहा था कि कही का प्रजामण्डल राज से न लडने का निश्चय करे तो उस हालत मे वहा के कोई लोग आन्दोलन मे भाग लेना चाहे तो उन्हे रियासत से बाहर आकर लेना चाहिए और प्रजामण्डल को परेशानी में नही डालना चाहिए?

बापू—जरूर कहा था।

ही०शा०—तब तो मेरे जिन साथियों ने प्रजामण्डल से बगावत करके जयपुर में झगडा फैलाया उन्होने ठीक नही किया?

बापू—इसमें क्या शक है? उन्होने ठीक नही किया। और बातचीत के द्वारा राज्य से जितना तुमने पा लिया वह तो पर्याप्त था। इससे ज्यादा तुम करने वाले भी क्या थे?

ही०शा०—सर मिर्जा जयपुर मे हैं। वे होशियार आदमी है, फिर भी उनसे कुछ अच्छा करवाया जा सकता है।

बापू—हाँ! यह आदमी खूब है। मैंने मैसूर मे उसे बहुत सख्त लिखा था, पर वह मुझे छोडता नही है।

ही०शा०—जेठालाल भाई के बारे में आपके मन में कोई भ्रम तो नही है ?

बापू—नही, कोई भ्रम नही। जेठालाल अच्छा आदमी है उसकी लगन बडी है पर वह अपने आपको कार्यदक्ष साबित नही कर सका।

ही०शा०—देशपाण्डेजी का क्या हो ? चर्खा सघ से अलग हो गये।

बापू—(दु-खित भाव से) मैंने उससे बहुत कहा, पर वह नही मानता मैं क्या करूँ ?

ही०शा०—एक आपका भक्त है। घनश्यामदासजी भी उसे जानते है। सिद्धराज उसका नाम है। वह आपकी सेवा में आना चाहता है।

बापू—वह यहा आकर क्या करेगा ? यहा आएगा तो जल्दी भाग जाएगा फिर भी उसे आना ही है तो उसे भेज दो। मै उसे टट्टी साफ करने का काम दे दूँगा। टट्टी साफ करने वालो को भोजन देना मेरे लिए मुश्किल नही है।

ही०शा०—राजपूताने मे हम लोग कार्यकर्त्ताओ का एक सगठन बना रहे है, देखिए कैसा होता है।

बापू—ठीक है, बनाओ।

ही०शा०—हमारे यहा राजस्थानी भाषा के लिए कुछ आन्दोलन उठा हुआ है। इसमे आपका क्या खयाल है ?

बापू—यह निकम्मी बात है। कल को कच्छ वाले कहने लगेगे कि उनके यहा कच्छी भाषा अलग होनी चाहिए।

ही०शा०—अलवर के भोलानाथजी मास्टर शिविर मे आये हैं। वे आपसे मिलना चाहते हैं। आप उन्हे थोडा समय दे दें।

बापू—मुझे याद है। भोलानाथ के पत्र मेरे पास आये थे। मैं उनसे मिल लूँगा।

ही०शा०—आप कभी वनस्थली तो आएगे ही पर इस समय तो क्या कहा जाए ?

बापू—आना चाहता हूँ पर यहा से निकलू तब तो कुछ हो। मै तो चुप रहता हूँ। मौन लेने के बाद एक घण्टे का समय आज मैने तुम्हे ही दिया है। डॉ० सैयद महमूद को भी नही दिया। इसमे मेरी बचत हो जाती है। नही तो मै किससे मिलूँ और किससे नहीं मिलूँ ?

ही०शा०—बापूजी, अब मैं छुट्टी लेता हूँ। समय भी हो ही चुका।

स्वामी आनन्द-अभी तो एक मिनट बाकी है।

जानकीदेवी-बापूजी आप थक गये होंगे ?

बापू—नहीं। ऐसे कार्यकर्त्ताओं से तो मुझे बात करनी ही पड़ेगी वे कब कब मेरे पास आते हैं—

ठीक ९ बजे ही०शा० आदि ने बापू से रुखसती।

नोट—१ बापूजी ने इस मुलाकात में अपना दिल खोलकर रख दिया था। उन्होंने एक स्थान पर ब्रह्मचर्य और विवाहित ब्रह्मचर्य का भी सुन्दर विवेचन किया था, पर वह प्रकरण लिखने से रह गया। मुलाकातों की यह रिपोर्ट नरहरि भाई, स्वामी आनन्द और ही०शा० के सहयोग से तय्यार की गयी थी।

२ इनका बहुत छोटा अंश प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) में छप चुका है। बाद में सोचा गया कि पूरे विवरण को प्रकाशित कर देना भी उचित और उपयोगी होगा।

(२)

हीरालाल शास्त्री का विनोबाजी से विचार-विनिमय

(१० से १४ तक और फिर १६ नवम्बर, १९७० को हुए वार्तालाप का सार)

नोट—आजकल विनोबाजी के कान बहुत कम काम करते हैं और वे अपनी आँखों को भी कम कष्ट देना चाहते हैं। फिर भी वे मेरे लिखे हुए नोट आदि को पढ़ते गये और मेरी बातों का जवाब देते गये। पढ़ने का बहुतेरा काम विनोबाजी ने गौतम (बजाज) से कराया और मेरे शब्दों को विनोबाजी के कानों तक पहुँचाने का काम भी गौतम ने ही किया, जो बड़ी योग्यता के साथ। आखिर में गौतम के माध्यम से ही विनोबाजी से इसके सम्बन्ध में काफी चर्चा भी हो गयी।

कई साल पहले मैं बिहार और बंगाल की पदयात्रा में विनोबाजी के साथ १४-१५ दिनों तक चला था। तब प्रतिदिन एक घण्टे की बातचीत के दौरान मैंने विनोबाजी की विचारधारा और उनके कार्यक्रम को समझने की कोशिश की थी। जो कुछ विनोबाजी से

मेरे जानने और समझ लेने मे आया उसे मैंने उन्हीं दिनो लेखबद्ध कर दिया था। अपने उन लेखो को मैंने हाल ही मे अपनी "लघु लेखमाला" मे छाप दिया। मैं बाबा के पास आ ही रहा था कि स्नेही हरिभाऊजी ने कहा कि "आप विनोबाजी के पास जाओ, उन्हे अपनी बात से सहमत कर लो, आपको (राजस्थान की) सर्वोदयी सेना मिल जाएगी।" हरिभाऊजी कहा जानते हैं कि कही पर कोई पहले से जुटी-जुटायी सेना मुझे दिखायी दे भी जाए तो वह सेना मुझे नही चाहिए। अस्तु। पिछले दिनो की मुलाकातो के सिलसिले मे विनोबाजी ने मेरे लेखो को देख-दिखाकर प्रमाणित कर दिया, सिर्फ एक स्थान पर "वर्ग समन्वय" के स्थान पर "वर्ग निरसन" बताया सो मैंने ठीक कर लिया। श्रीमती जानकी देवी बजाज के सामने मेरी आत्मकथा (प्रत्यक्षजीवनशास्त्र) की पुस्तक पडी थी। विनोबाजी को वह दिखायी दे गयी तो मुझे लगा कि उन्होंने उसे चाव से उठा ली। बाद मे मेरे पूछने पर वे बोले "मैं आपकी पुस्तक को सरसरी निगाह से देख गया हूँ। आपने बहुत अच्छा लिखा है"।

(२) मैंने विनोबाजी को अपने नये सकल्प बताये—

१—मुझे किसी पार्टी मे शामिल नहीं होना है और मुझे खुद को किसी भी हालत मे किसी चुनाव मे खडा नही होना है।

२—मैं अपने मित्रो से मिलने वाली सहायता को छोडकर वनस्थली परिवार से यथाशक्य यथोचित लेकर अपना गुजर करूंगा।

३—अपने नये कार्यक्रम के लिए राजस्थान के बाहर का कोई चन्दादाता मुझे आगे होकर सहायता देगा तो मैं उसे स्वीकार नही करूंगा।

४—राजस्थान के भीतर कोई खुशी से मुझे देगा तो मैं ले लूंगा, किसी से मांगूंगा नहीं।

५—वनस्थली आदि के लिए आइन्दा मैं पहले की तरह मांगता नही फिरूंगा, किसी विशेष अवस्था मे आवश्यक हो जाएगा तो सहारा लगा दूंगा।

मैंने पूछा नही, पर मेरा अनुमान है कि मेरे ये सकल्प विनोबाजी को स्वभावतः पसन्द आये होंगे। सच बात यह है कि मेरे इन सकल्पों को कभी से अमल मे आना चाहिए था। वनस्थली का प्रसग चलने पर विनोबाजी बोले —"आपने महिलाओं की सेवा का जो काम किया है उसकी तुलना महर्षि कर्वे के काम से की जा सकती है। आपकी सस्था नम्बर एक है। ऐसी सस्था मैंने दूसरी नही देखी।" इत्यादि।

(३) सिद्धराज ने मुझसे आपस मे मिलकर काम करने के बारे में जो कुछ कहा उसका हवाला देकर मैंने विनोबाजी को बताया कि ४२ साल पहले मैं अकेला ही वनस्थली

पहुँचा था। बाद मे रतनजी ने और मैंने अभिन्नभाव से अपना काम किया। फिर तो दर्जनो साथी उस पुराने जीवन-कुटीर के जमाने मे वनस्थली पहुँच गये और अब तो वहा पर सैकडो का समूह इकट्ठा है। बाबा ने अपने खुद के अमुक सूत्र का हवाला देते हुए कहा कि अव्वल अकेले काम शुरु करना ही अच्छा होता है। मैंने कहा—"जिस आदमी ने प्रजामण्डल-कांग्रेस के संगठन के काम मे जुटना और आखिर मे मुख्यमन्त्री तक बनना मंजूर कर लिया था वह किस मुँह से बोल सकता है ?" फिर मैंने विनोबाजी को बताया कि जमनालालजी के लाख आग्रह करने पर भी मैं गांधी सेवासघ मे शामिल नही हुआ। विनोबाजी बोले "मैं भी गाँधी सेवासघ का सभ्य नही बना और मैं उसमे जब कभी गया तो "असभ्य" सभ्य के तौर पर ही गया। मैंने कहा—बाबा आपकी क्या बात, आपतो महात्मा हैं। विनोबाजी को मैंने बता दिया कि मैंने सिद्धराज आदि को कह दिया है कि जो काम मैं कर सकता हूँ उसके लिए मेरा उनके हृदय मे रहने का और उनको अधिक प्रभावकारी काम की दिशा मे मोडने का भी मेरा विचार है।

(४) विनोबाजी बिहार को अपनी रणभूमि मानते है। मैंने उनसे कहा "बाबा, आप तो संत है, इसलिए मैं आपको सेनापति के योग्य नही मानता हूँ। आप सेनापतियो के आचार्य हो सकते हैं"। विनोबाजी ने कहा—"सेनापति पद के लिए आपने मुझे अयोग्य ठहरा दिया तो मैं खुद आचार्यपद के लिए अपने आपको योग्य नही मानता हूँ" क्योकि मैं तो "सूक्ष्म" की ओर जा रहा हूँ। "सूक्ष्म" मे जाने की "सूक्ष्म" बात तो बाबा खुद ही जान सकते हैं। बाकी मैं यह समझा कि विनोबाजी की इच्छा किसी कार्यक्रम की तफसील मे जाने की नही है। वे कहते है कि कोई आकर पूछेगा तो मैं अपना विचार उसे बता दूंगा। मैंने विनोबाजी को बताया कि मै तो एक "स्थूल" से हटकर दूसरे "स्थूल" की ओर जा रहा हूँ जब 'सूक्ष्म" मुझे दिखायी दे जाएगा तो मै उसमे ऐसा प्रवेश करूंगा कि वहाँ से फिर—"न निवर्त्तन्ते न निवर्त्तन्ते"। मैंने बाबा से कहा कि आपके पास-पडोस मे अंध परम्परा न पनप जाए। तब वे बोले कि उसी से बचने के लिए तो बाबा "सूक्ष्म" की ओर जा रहा है।

(५) विनोबाजी ने बताया कि बिहार में उनके सेनापति जयप्रकाश बाबू होगे। बाबा ने जयप्रकाशजी के त्याग, पदलिप्सा का अभाव, नम्रता आदि कई गुण बताते हुए एक गुण ऐसा बताया जिसकी जानकारी मुझे नही थी। वे बोले "जयप्रकाशजी ब्रह्मचारी है।" मैंने मन ही मन विस्मय के साथ सोचा शाबास। पर मैंने विनोबाजी से कहा—आपके सेनापति को "अव्यभिचारी" होना चाहिए—कम बोलने वाला, उसे अनेक कामो मे हाथ नही डालना चाहिए और हर मामले मे अपनी राय नही प्रकट करनी चाहिए"। मैंने थोड़ा सा ऐसा ही कुछ गोकुलभाई, सिद्धराज जैसो के बारे मे कहा। मैंने कहा—हम लोग अपना दिमाग साफ करके पूरी ताकत से और एकाग्रचित से क्रान्ति के इस एक ही काम मे जुट जाएँ, दूसरी सब बातो को भूलकर। हममे से किसी को भी कई घोडो की सवारी नही करनी चाहिए। मैं सोचता हूँ—"एकही साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।" मेरे खयाल

से बाबा तो इस बात को मानने वाले हैं ही। अन्त में बाबा ने कहा कि अब जयप्रकाशजी एकाग्रचित होकर एक ही काम में लग गये हैं जिससे मुझे बड़ा सतोष हुआ।

(६) मैंने विनोबाजी को बताया कि मुझे अब तक के भूदान-ग्रामदान-जिलादान-राज्यदान के काम में कच्चाई दिखायी देती है, अपना यह उत्तम काम मुझे अप्रभावकारी सा लगता है। मैंने यह भी कह दिया कि मुझे सुलभ ग्रामदान ग्रामदान के कार्यक्रम का प्राण सुखा देने वाला जैसा लगता है। विनोबाजी बोले—"अपने यहा "बोगस" काम भी हुआ है।" पर उन्हें इस बात का समाधान है कि आखिर काम तो हुआ है। सुलभ ग्रामदान के बारे में विनोबाजी ने स्पष्ट किया कि "सुलभ" की बात उनको बगाल में सूझी, सुलभ न किया जाता तो ग्रामदानो की सख्या ही नही बढती। उन्होने फिर कहा कि मेरा धैर्य तो असीम है, पर काल किसी का इन्तजार नही कर सकता। कम्यूनिज्म की बाढ बिहार की ओर बढने लगी है। हम उसे वहां न रोक सकेंगे तो फिर कोई ठिकाना नही होगा। विनोबाजी ने कहा कि ग्रामदान की मुख्य बात तो ग्रामवासियो का दिल जोडने की है और जमीन की सारी मिल्कियत गाँव की हो जाने की है सो दोनो काम सुलभ ग्रामदान से भी हो सकते हैं। बाबा ने यह भी समझाया कि सुलभ ग्रामदान पर पहुँचने में एक प्रकार के सत्याग्रह की सी प्रक्रिया हुई है।

(७) मैंने जोर देकर कहा कि पहले स्वाधीन ग्रामसभाओ का सगठन होना चाहिए जिसका सरकार मे या उसके कानून से कोई लेना देना न हो और बाद मे ग्रामदान का काम किया जाए। विनोबाजी बोले—"ऐसा करने से काम ज्यादा मजबूत होगा।" पर साथ मे उन्होने यह भी कहा कि जहाँ एक-एक परिवार के पास बहुत थोडी-थोडी जमीन हो वहां पहले भूमिहीनो को जमीन मिल जाने से उनका विश्वास बढ जाएगा और फिर ग्रामसभा का सगठन आसान हो जाएगा। परन्तु जहा जमीन काफी हो वहा पर पहले ग्रामसभाओ का सगठन करना ज्यादा अच्छा रह सकता है। ग्रामसभाओं को सरकार के द्वारा मान्य कराने न कराने के बारे मे विनोबाजी ने कहा कि सरकार को ग्रामसभा के सगठन की सूचना देने मात्र से मान्यता दे दे तो ठीक है, पर मान्यता के लिए हमे आजिज नही होना चाहिए।

(८) मेरी खुद की कल्पना यह रही है कि ग्रामसभाओं को सर्वथा स्वाधीन होना चाहिए, उन्हें सरकार या कानून की किसी भी प्रकार की सहायता का-मिलती हो तो सरकार की आर्थिक सहायता का भी-सहारा नहीं चाहिए। साथ मे कानून द्वारा सगठित पचायतें भी फिलहाल तो रहेंगी तो उनका उपयोग भी गाव की भलाई के लिए करना चाहिए। ग्राम-पचायतो का चुनाव निर्विरोध होना सर्वोत्तम है। विनोबाजी ने कहा कि निर्विरोध चुनाव होना ही ग्रामराज के सिद्धान्त के अनुकूल है। पर मैंने कहा कि कोशिश करने पर भी पूरा चुनाव निर्विरोध नहीं हो सके तो चुनाव के किसी हिस्से मे वोट पडना मजूर कर लेना पड़ेगा। विनोबाजी ने बताया कि एक ही जगह के लिए कई उम्मीदवार खड़े रह जाएं तो उनमे आपस मे फैसला करने को कहा जाए। यह न हो सके तो फिर वोट देने को कोई जावे ही नहीं। मैंने कहा-यह असम्भव जैसी बात है। तब विनोबाजी ने कहा कि फिर वोट पड़ने की हालत मे गाँव के मजूरशुदा उम्मीदवार को ही ६० प्रतिशत वोट मिलने चाहिए।

(९) अच्छे कार्यकर्त्ताओ की कमी की और उनके गुजारे की व्यवस्था का सवाल मैंने उठाया। मैंने कहा कि गांव का कार्यकर्त्ता गांव मे से ही निकल आएगा तब तो यह सवाल उतना बडा नही रहेगा। पर खासकर बीच के समय मे तो बाहर के कार्यकर्त्ताओ की जरूरत पडेगी ही नही। विनोबाजी ने बताया कि प्रत्येक गाव मे बैठने वाला एक कार्यकर्त्ता होना चाहिए। गांव मे एक घुमक्कड कार्यकर्त्ता और होना चाहिए जिसके जिम्मे पचासेक गॉव हो और जो २५ दिन तो घुमता ही रहे। गुजारे के लिए सबसे ऊँची बात तो यह है कि कार्यकर्त्ता को पैसा चाहिए ही नही, यानी उसे गॉव मे से ही अन्न-वस्त्रादि मिल जाए-गॉव वाले उसे गुजारे के लिए जमीन भी दे सकते है। दूसरे नम्बर-कार्यकर्त्ता का खर्चा गॉव उठा ले। और यह न हो सके तो कम से कम पैसे का इन्तजाम बाहर से हो। विनोबाजी ने बताया कि बगाल के कार्यकर्त्ताओ की स्थिति कम खर्चे मे काम चलाने की दृष्टि से बहुत अच्छी है।

(१०) मैंने विनोबाजी को बताया कि आपके ग्राम स्वराज्य कोष की बात मुझे पसन्द नही आयी। शासनतन्त्र को चलाने वालो की सहायता से मिलने वाला रुपया दान या साधारण चन्दे जैसा भी नही लगता। उसका तो वारफण्ड की वसूली का सा रूप हो जाता है। मैंने जोर दिया कि क्रान्तिवाहक कार्यकर्त्ता 'दुष्टान्नभक्षी" नही होना चाहिए। मैंने यह भी कहा कि पुण्य कार्य के लिए तो किसी का भी-वेश्या और लुटेरे तक का भी-चन्दा मजूर किया जा सकता है, पर शान्ति के काम के लिए ऐसा नही कर सकते। विनोबाजी ने इससे बिलकुल उल्टा मत प्रकट किया। वे बोले-पुण्य कार्य के लिए तो शुद्ध पैसा ही आना चाहिए-शराबबदी के काम मे शराब पीने वालो से मदद नही ली जा सकती। पर क्रान्ति के समुद्र मे गगा के साथ-साथ गन्दा नाला भी समा सकता है। विनोबाजी ने कहा-ग्राम-स्वराज्य कोष मे राष्ट्रपति ने सबसे पहले अपना चन्दा दिया, दूसरे राज्यकर्मचारियो ने दिया तो वे सब अपने हो गये। मैंने कहा चदादाता अपने हो गये या उन लोगो ने हम लोगो को किसी हद तक अपने वशीभूत कर लिया।

(११) ग्रामसभाओ के कार्यक्रम के बारे मे मैने कहा कि प्रत्येक ग्रामसभा को लोकशिक्षण, सुरक्षा, सामान्यशिक्षा, चिकित्सा और मामले-मुकदमो को कोर्ट-कचहरी मे जाने से रोकते हुए गॉव के गॉव मे निपटाने का कार्यक्रम हाथ मे लेना चाहिएगा। लोकशिक्षण, सुरक्षा, और मामले-मुकदमो के काम के लिए विशेष खर्चा नही चाहिए, पर शिक्षा व चिकित्सा के लिए खर्चा चाहिएगा और (सभवत बाहर के) कार्यकर्त्ताओ की जरूरत-भी होगी। विनोबाजी ने सरल और सस्ती चिकित्सा की तरकीब ताजा जड़ी-बूटियो का रस पिलाने की बतायी। मैंने कहा कि आजकल गॉव वालो का सतोष "सूई लगाये" बिना नही होता है और चिकित्सक कहा से मिलेंगे और कोई मिल भी जाएगा तो उसका गुजारा कैसे होगा? सो ही बात शिक्षा और शिक्षक के बारे मे है। बाबा ने कहा कि शिक्षक को ज्युडिशियरी की भांति स्वतत्र छोडते हुए उसका वेतन सरकार को देना चाहिए। मैंने कहा-यह असभव सी बात है। विनोबाजी ने पूछा-सरकार से गॉव के विकास के लिए सहायता

मिले तो आप मजूर करो या नही ? मैंने कहा-सरकार के पास सहायता देने को पैसे नही है, पर कुछ मिलेगा तो उसे पचायत (यानी स्वाधीन ग्रामसभा नही) स्वीकार कर सकती है। बाबा की राय मे (स्वाधीन) ग्रामसभा को भी सरकार की सहायता स्वीकार करनी चाहिए। पर मैं मानता हूँ स्वाधीन ग्रामसभा को सरकार सहायता देगी ही नही। ग्रामसभा के सामने रोटी-कपडा-मकान का कार्यक्रम भी आएगा सो कठिन भी होगा और सरल भी। ग्रामो के अलावा कस्बो और शहरो मे नगरसभा और मोहल्ला सभाए बनाने की योजना भी मेरे दिमाग मे है, प्रथमत विचार क्रान्ति लाने की दृष्टि से। जब मैंने कहा कि भारत मे केन्द्र को मजबूत रखना पडेगा तो विनोबाजी ने बताया कि सत्ता नीचे से ऊपर को ओर जानी चाहिए। केन्द्र के पास काम कम होंगे, पर नैतिक दृष्टि मे उसे जरूर मजबूत होना चाहिए। नीचे गाँव को भी मजबूत होना चाहिए। गाँव या गाँवों का समूह अपने स्थानीय उपयोग के लिए अपनी (जिन्सी) मुद्रा तक चला सकता है।

(१२) इस सब पर मे क्रान्तितत्व का सबसे बडा सवाल पैदा हो जाता है। यथा गाँव मे अमुक काम होना चाहिए जिसे करने का सरकार का कर्तव्य है। उस काम के लिए सरकार से कहा जाए। वह करदे तो ठीक है, नही करे तो सरकार का मुकाबला करके उसे मजबूर किया जाए। इसका फलितार्थ यह होता है कि स्वाधीन ग्रामसभा अपने गाँव के आवश्यक कामो के लिए उस पैसे को रोक ले जो सरकार के पास जाकर किसी दूसरी जगह दूसरे काम मे लग जाता है। निसन्देह यह सघर्ष का मार्ग है और सघर्ष ही मेरी राय मे क्रान्ति का मार्ग है। चाहे अहिंसा के सूक्ष्म सिद्धान्त के अनुसार हो, चाहे शान्ति के स्थूल मार्ग से हो, पर यह क्रान्ति का काम शाश्वत सघर्ष का काम होगा। यानी चुपके-चुपके और समझौतों से क्रान्ति नही आ सकती। हमारे सारे कार्यक्रम को प्रतिगामी बनाने वाले लोग भी देश मे हैं। इसलिए हमे कुछ विशेष करके दिखाना पडेगा। पर जाहिर है कि यह सब कुछ ग्रामों की सच्ची एकता और मजबूती पर निर्भर होगा। भारत मे कहने को स्वराज तो आया, पर क्रान्ति नही हुई। हम किसी से द्वेषभाव तो नही रखे, पर मैदान मे उतरते ही सत्ताधारी से हमारा महाभारत का सा मुकाबला तो अवश्य होगा, यह देवासुर सग्राम जैसा होगा। विनोबाजी क्रान्ति के लिए सघर्ष को अनिवार्य नही मानते। "अच्छा काम करने वाली सरकार से हम असहयोग क्यो करेंगे ?" बाबा ने कहा—"भारत मे साम्यवाद का, सम्प्रदायवाद का, बाहरी आक्रमण का आदि कई खतरे है सो उनका ध्यान भी हमे रखना होगा।" इस सिलसिले में मैं सोचता हूँ कि साम्यवाद और सम्प्रदायवाद को वर्तमान सत्ताधीशो से प्रोत्साहन मिल रहा है-बाकी देश की सुरक्षा के लिए तो सब कुछ कुर्बान कर देना पडे तो भी हमे खुशी से करना चाहिए।

(१३) स्वाधीन ग्रामसभा के सामने राज्य कर को रोकने मे पहले भी सरकार के साथ संघर्ष करने की स्थिति आ सकती है। सरकार लगान व्यक्तियों से वसूल करती है। ग्रामसभा का स्वतत्र सगठन हो जाएगा तब गाँव के सब व्यक्तियो का एक समूह हो जाएगा। जबकि गाँव कहेगा कि गाँव का यह लगान है सो ले लो सरकार कहेगी कि हम गाँव को

नही जानते, हम लगान लेंगे सो अलग-अलग खातेदारो से लेंगे । गॉव कहेगा कि हमारा यह गॉव तो एक हो गया है । गॉव लगान देने को तैयार है, लेना हो तो ले लो-नही तो अपने घर जाओ । इस खींचतान का मतलब मेरी राय मे होगा-झगडा, सघर्ष । विनोबाजी मानते है कि ऐसी स्थिति मे सत्याग्रह करना पड सकता है । मैं ग्राम पचायतो को सरकारी मान्यता दिलाने के खिलाफ इसलिए हूँ कि मान्यता पाने वाली ग्रामसभा पचायत जैसी हो जाएगी, पचायत जैसी ही क्या कानून के अन्तर्गत बनने वाली पचायत ही हो जाएगी । विनोबाजी को ग्रामसभा की कानूनी स्थिति हो जाने मे और उसके कानूनी ग्राम पचायत ही बन जाने मे और फिर सरकार की सहायता ले लेने मे भी आपत्ति नही है ।

१४—पचायत सगठन की सहज कमजोरी और चुनाव के कारण होने वाली असीम हानि को जानते हुए भी मेरा कहना यह है कि ग्रामदानी गावो के निवासियो को भी पचायती चुनावो का बहिष्कार नही करना चाहिए । मैं समझा कि विनोबाजी सभवत. इसमें सहमत होगे । पचायत भी एक हथियार है, जिसका बुद्धिमानी के साथ अच्छा उपयोग गाव की भलाई के लिए किया जा सकता है । स्वाधीन ग्रामसभाओ के सगठन से ग्राम पचायतो के निर्विरोध चुनाव मे बहुत मदद मिलेगी और पूरा निर्विरोध चुनाव नही होगा तब भी निर्विरोधता का वातावरण तो बनेगा और ग्रामवासियो को पता चल जाएगा कि गाव की सामूहिक भावना के विरुद्ध कौन जाना चाहता है और वह ऐसी हरकत क्यो करता है, किसके सहारे से करता है । इससे सबधित राजनैतिक पार्टी की पोल भी खुल जाएगी । जो झूठ, बेईमानी, भ्रष्टाचार आदि की पुरस्कर्ता और प्रवर्तक है, जो ऊपर से कहती है कि पचायतो के चुनाव दलीय आधार पर न हो, पर भीतर ही भीतर योजना बनाती है कि किस तरकीब से, किस पिछले द्वार से प्रवेश कर उनके "आदमी" पचायतो को हथिया ले ताकि ग्रामवासियो के वोटो का उपयोग आगे आने वाले आम चुनावो मे उनको मान्य प्रतिनिधियो के पक्ष मे हो जाए ।

१५—उपरिलिखित व्यावहारिक बातो के अलावा विनोबाजी से बीच-बीच मे सिद्धान्त चर्चा भी काफी हो गयी । बाबा ने क्रिया और कर्म का भेद बताया जिसे समझने की मैंने कोशिश की है । बाबा कहते हैं कि ज्यो-ज्यो अधिकारी व्यक्ति की क्रिया कम होती जाएगी, त्यो-त्यो उसकी कर्मशक्ति बढ़ती जाएगी । उदाहरण के लिए सभा मे पुलिस वाला डण्डे के जोर से शांति स्थापित करने की कोशिश करता है, दूसरा आदमी अपील करके करता है, तीसरा अपना भाषण शुरू करके शांति लाना चाहता है और चौथा (समर्थ व्यक्ति) प्लेटफार्म पर आकर चुपचाप खड़ा हो जाता है और सभा मे शांति हो जाती है । दूसरे, मैंने बाबा से कहा कि बकौल आपके अग्नि अपने तौर पर जलती है. फिर कोई उससे ताप ले, कोई रोटी सेंक कर खा ले, अग्नि को इस सबसे क्या मतलब ? सो ही बात सूर्य पर लागू की जा सकती है । बाबा को मैंने सुझाया कि आप जैसे सतो के लिए यह स्थिति ठीक हो सकती है. पर हम जैसे व्यावहारिक कार्यकर्त्ताओं को देखते रहना पड़ेगा कि हमारे कार्यकलापो का क्या फलाफल होता है । बाबा ने मजूर किया कि यह बात अग्नि और सूर्य

जैसे अकर्मयोगियो के लिए है, आप जैसे कर्मयोगियों के लिए नही। विनोबाजी ने एक मजेदार बात यह कही कि आप मानते हो कि "यह" ही है और बाबा मानता है कि "यह" भी है और "वह" भी है। मैने कहा—सतो की निगाह मे जैसा सोना वैसा ही पत्थर हो सकता है। पर हम जैसे सासारिक जीवो को सोने को सोना और पत्थर को पत्थर मानना पडेगा। मुझे नयी सी लगने वाली एक बात बाबा ने यह भी बतायी कि शुरू-शुरू मे श्रद्धा बुद्धि से शक्तिशाली होती है और आगे जाकर बुद्धि श्रद्धा से अधिक बलवती हो जाती है। बाबा ने दण्ड के द्वारा अनुशासन लाने की अपेक्षा निर्भयता के वातावरण को बनाये रखना, ज्यादा महत्वपूर्ण बताया।

१६—बिहार बगाल की पदयात्रा मे मैने विनोबाजी से बहुत कुछ सुना और उसे समझने, पचाने की कोशिश की। फिर मैने पुरी मे बाबा से कहा कि आप मुझे एक जिले का काम सभालने लायक मानते हो तो आप जिले के लिए अपना आदर्श कार्यक्रम बोल जाओ, मै उसे लिख लूगा। बाबा ने कहा—आप ही अपना लिख लो। मैने बाबा से कह दिया कि मेरी खुद की लिख लेने की स्थिति हो जाएगी तब मै आपके पास आकर बात करूगा। मै बीच के समय मे विनोबाजी से नवद्वीप मे भी मिला था। पर असल मे १४-१५ सालो के बाद मैं अभी बाबा के पास पहुँचा हूँ। बहुतसी बाते साफ हो गयी। पर कार्यकर्त्ताओ की कमी और उनके गुजारे की मुश्किल के विषय की मेरी खटक अभी नही निकली है। मेरे यह भी जमी हुई है कि बाहर की और ऊपर की सहायता जैसे ग्रामवासी को पगु और भिक्षुक जैसा, वैसे ही कार्यकर्ता को दीन और हीन भावना वाला बना देने वाली और कानूनी शिकजे मे ग्रामसभा का गला घुट जाने वाला है। जब मैने कहा कि 'वेलफेयर स्टेट" की बात रही होती है तो वे बोले-"वेलफेयर स्टेट" "इलफेयर स्टेट" और "इलफेयर स्टेट" "वर्स्ट फेयर स्टेट" होती है। बाबा कही बीच मे बोल गये कि हम अहिंसक होते तो रुपया पैसा लूटकर भी ला सकते थे। मै सोचता ही रह गया कि न जाने हमारी अहिंसा की या शांति की मर्यादा कब टूट जाए। मुझ जैसे के लिए अहिंसा के सूक्ष्म तत्त्व को जीवन के व्यवहार मे पक्का उतारना कभी सभव हो या न हो, पर मुझे भरोसा है कि स्वदेश भारत की प्रतिभा हमे शांति की उचित मर्यादा मे बने रखते हुए हमारी रक्षा करती रहेगी।

———

उपभाग १

: ४ :

पत्र व्यवहार

: ४ :

पत्र व्यवहार

हीरालाल शास्त्री का पत्र महात्मा गांधी की सेवा में

१३-५-४२

मेरे पास श्री किशोरलाल भाई के द्वारा आपका उपालम्भ आया था जिसका माफीनामा मैंने उन्ही के पास लिख भेजा था सो आपके देखने मे आ गया होगा ? श्री सोहनलालजी दूगड के यहा का विवाह ११ मई को हो गया। जिन रीतियो को धार्मिक समझा जाता है उनके सिवाय मेरी जानकारी मे और रूढियो का पालन प्राय. नही किया गया। कन्या ने पर्दा नही किया। वरकन्या के कपड़े खादी के नहीं थे। फतहपुर जाने पर मुझे मालूम हुआ कि वर कन्या की बिल्कुल सही उम्र का पता श्रीसोहनलालजी को भी नही था। मुझे कन्या पक्ष के लोगों ने कन्या का जन्म आषाढ कृष्णा १३ स० १९८५ का बताया है। यह बात सही हो तो कन्या की उम्र १४ वर्ष से १-२ महीना कम होती है। लड़का देखने मे स्वस्थ और तगड़ा मालूम होता है। उसकी उम्र १७ वर्ष या उससे कम हो तब भी वह देखने मे

तो १८-२० साल का सा लगता है। लेकिन मैं मानता हूँ कि लडकी का विवाह कम से कम दो साल ठहर कर होता तो अच्छा रहता और लडके के हक मे भी अच्छा होता, यदि उसका विवाह एकाध साल रुक सकता। मैंने अपने पत्र मे यह लिखा था कि "ऐसे धनिक के घर मे ऐसा विवाह होना राजस्थान के लिए अभूतपूर्व घटना होगी।" वरकन्या की उम्र कुछ कम होने का दोष होते हुए भी यह विवाह वास्तव में एक अभूतपूर्व घटना माना जा सकता है। श्री सोहनलालजी ने इस मामले मे बडा साहस दिखाया है और कन्या पक्ष के लोगो ने भी कई कठिनाइयो के बावजूद उनके साथ अच्छा सहयोग किया है। श्री सोहनलालजी ने २२,०००/- हजार के दान की घोषणा की। बाहर से जो थोडे से लोग आये उन्होने साधारण भोजन अवश्य किया, बाकी किसी तरह की जीमनवार मे एक पाई भी खर्च नही की गयी। इन सारी बातो पर से मैं यह नही कह रहा हूँ कि वर-कन्या की उम्र का पता लगाये बिना ही मैंने आपको लिखा उसमे मेरी तरफ से कोई गलती नही हुई। मैं अपनी गलती मान चुका हूँ और उसके लिए माफी चाह चुका हूँ। भाई लादूरामजी भी अपनी गलती महसूस करते हैं और वे भी माफी चाहते है। लादूरामजी ने मुझसे आकर कहा और मैंने उमग मे आकर आपको लिख दिया। अब मैं सोचता हूँ कि मै आपको न लिखता तो अच्छा रहता। खुद सोहनलालजी ही आपको लिखते और उन्ही के पास सीधा आपका उत्तर चला जाता तो मै इस प्रकार बीच मे नही फँसता और न सोहनलालजी को अन्यथा सोचने का मौका मिलता। खैर, जो कुछ भी होना था सो हो गया। मुझे इस बात का सतोष है कि मैंने जो कुछ किया वह सीधे सरल भाव से किया। सोहनलालजी भी सीधे सच्चे आदमी है। हम दोनों ने वस्तुस्थिति को सबके सामने साफ कर दिया। आपका आशीर्वाद पत्र न वहा पढा गया और न सोहनलालजी को दिया गया। और तरह से जो अच्छा विवाह हुआ उसमे उम्र सम्बन्धी जो कमी रही वह साफ तौर से प्रकट करदी गयी। मेरे सतोष के लिए यदि आप दो शब्द लिख भेज सके तो अच्छा ही है। आयन्दा ऐसे मामलो मे मैं ज्यादा सावधानी रखूगा।

महात्मा गांधी का उत्तर हीरालाल शास्त्रीके नाम

२१-५-४२

इतना परिताप अनावश्यक है। हम सावधान रहे। भूल तो सब से होती है। सोहनलालजी अच्छे तो हैं ही।

नोट—गांधीजी के हाथ से लिखे हुए कई एक पत्रो और कुछ अन्य टिप्पणियो का पुलिन्दा मेरी दिल्ली यात्रा मे एक तागे मे रह गया था सो खुब तलाश करने पर भी नहीं मिला। मेरे जीवन मे यह अत्यन्त दुःखदायी घटना हुई जिसे मै कभी नही भूल सकता।

आप अंग्रेजी का अंश का अर्थ जरुर किसी न किसी से सुन लीजिए—मूल अंग्रेजी जैसा मजा तो नही आएगा, पर काम चल जाएगा। अंग्रेजी पत्रो मे आपको मेरे संघर्ष का सम्यक् दर्शन होगा।

नये कार्यक्रम के लिए रुपया मेरे पास नही है। राजस्थान के बाहर न किसी से मागना, न स्वीकार करना। राजस्थान के भीतर बिना मागे मिल जाय तो ले लेना।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री सीताराम सेकसरिया के नाम

३-२-७१

आपका २६-१-७१ का पत्र मुझे कल यहां पर मिला।

रुपये मागते समय मैं कभी किसी से दब गया हूँगा, यह मुझे याद नही है। जिसे मान भग कह सकते है ऐसा भी इतने लबे समय मे और देश भर मे दो चार से ज्यादा मौकों पर नही हुआ होगा। मन मे किसी ने कुछ भी सोचा होगा, मेरे पीठ पीछे कुछ भी कह दिया होगा सो मेरे सामने कभी प्रत्यक्ष हुआ नही है। आप जरुर कभी कभी कुछ न कुछ लिख देते है जिससे लगता है कि कोई न कोई व्यक्ति आपके सामने कुछ न कुछ कह देते होगे। आपने भी मुझको यह बात कभी साफ शब्दो में बतायी नही है, न मैंने ही आपसे पूछने की कभी खास फिक्र की है। मान अपमान के मामले मे मेरा चिन्तन यह है —

चाहे नही नाम न मान चाहे,
ऐसे जनों का अपमान क्या हो?
सर्वस्व की आहुति दे चुके हो,
ऐसेन की शौकत शान क्या हो?

मैं कोई अपनी कम शान रखने वाला नही हू, पर जब मुझे मेरा फर्ज लग जाता है तो मैं सारी शान को ताक मे रख देता हूँ। पर सामने वाले के दर्प के सामने मुझे अपने जीवन मे एक बार भी झुका हुआ याद नही है। मैंने चन्दा मांगना मान अपमान के कारण बन्द नही किया है, इसलिए किया है कि राजसत्ता के साथ-साथ मुझे धनसत्ता से भी ऊपर उठ जाना है। कल-परसो मैंने एक नया पद लिखा है सो इस प्रकार है :—

सबल है दबते कबहूँ नही,
अडिग है चिकते कबहूँ नही।
निडर है डरते कबहूँ नही,
कठिन है झुकते कबहूं नही॥

फक्कड़ पंथ चलने वाला नहीं है, यह सबक तो मैं कभी का सीख चुका हू। जिनको मैं फक्कड बनाना चाहता था वे मेरे "गुरुपीर" निकले उनके मुकाबले मे मैं बेवकूफ साबित हुआ। मैंने प्रत्यक्षजीवनशास्त्र में लिखा है कि मैं अपनी गिनती 'मूर्खों मे करता हू। आजकल मेरा ध्यान यह है—

चले न कोई चल एकला रे,
जले न कोई जल एकला रे।
करे न कोई कर एकला रे,
मरे न कोई मर एकला रे॥

मेरी एक खास बात यह है कि मुझे जो कुछ ठीक और जरूरी लगता है मैं वही करने लगता हूँ। नाप तौल करने की आदत मेरी नही है। इसलिए मेरे सामने जोखिम का सवाल ही पैदा नही होता है। हालांकि मैं जानता हूँ कि मैं तो एडी से चोटी तक जोखिम मे फंसा पडा हूँ। इसमे जीवनकुटीर, वनस्थली विद्यापीठ, राजनीति, रुपया पैसा, किसी से बिगाड हो जाना आदि सभी कुछ शामिल है। वनस्थली की ओर शिक्षायतन की स्थिति मे बहुत फर्क है, यह हम सबको नही भूलना चाहिए। मैं अपने बडे सहायक "मित्रो" का सहारा टूटने के समय एक बार घबड़ाया था, फिर वह चुनौती मुझे अपने आप स्वीकार हो गयी और भगवती ने मेरी लाज, आन, बान शान रख दी।

जिस राज से बगाल की, कलकत्ते की यह हालत हो रही है उस राज का विरोध करना मेरा फर्ज है। हिमालय की चोटी से कोई अपनी (खोखली) विचारधारा का हल्ला भले ही करे, पर जब मैं किसी को झूठ, बेईमानी मे गर्क समझूं तो मुझे सच्ची बात कहनी ही पडेगी। पिछले सालो मे मैं ने राग द्वेष से ऊपर उठने की कोशिश जरूर की है, और लगता है कि मुझे कुछ कामयाबी भी शायद हुई है। बहरहाल किसी का अनिष्ट मैं नही चाहता हूँ। इस देश मे किसी बडे दोषी को दण्ड कभी मिलता ही नहीं है, पर न्याय मे कभी दोषी को दण्ड मिल ही जाता दीखे तो मुझे उस दोषी पर दया सी आने लगती है।

"हम तो उनमे हैं—' वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसमादपि।" मेरे विरोधी भी मेरी प्रशसा ही करें, इसके लिए मैं कुछ कोशिश तो नही कर सकता। गाधीजी तक के भी ऐसे कितने ही विरोधी थे जिन्होंने उनकी प्रशसा न करके घोर और अनुचित निन्दा की। तब मेरी क्या बिसात है-मेरे पास कहा है वह अहिंसा? सत्य अच्छी मात्रा मे है, पर वह कठिन कठोर सत्य है जिसे न मैं छिपा सकता, न दबा सकता न मैं उसके रूप को मीठा कर सकता। मेरी पाती में यह उपदेश कम ही आ सका है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्
न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

पुनश्च मैं भगवान को ललकार सकता हूँ और अपने आपको मैं मृत्युजय मानता हूँ। पर दूसरो के लिए, बाई तक के लिए मैं मृत्यु को कैसे ललकारूँ? हालांकि मैं शान्ता के सामने मे गा चुका हू–

मौत जिसको कह रहे वह जिन्दगी का नाम है

आप क्या किसी को भी अपने मन की पक्की बात मेरे लिखने मे नही आ सकती। मैं जो भी कुछ लिखता हूँ सो उड़ान मे लिख जाता हूँ।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री सीताराम सेकसरिया के नाम

वनस्थली, १-८-७३

मुझको 'हार्ट अटैक-हार्ट फेल्योर' हुआ उसके पहले तो मैं बहुत बेपरवाह था। पर इतनी चोट खा लेने के बाद मैं बेहद जापते से रह रहा हूँ। ८ मार्च, १९७३ को बढिया से बढिया रिपोर्ट थी मेरे हार्ट की, मेरे शरीर की। डॉक्टरों ने मुझको निश्चिन्त कर दिया था। उसके बाद १२ मार्च को ही मेरे हल्की सी गडबड हुई, उसके आधार पर ही डॉक्टर ने मुझको कैद कर दिया। गडबड बहुत हल्की सी है, यह मुझको अनुभव हुआ और डॉक्टर ने कार्डियोग्राम आदि की जरूरत नही समझी और मुझे बिस्तर पर लिटाया नही, चलना फिरना बन्द नही किया। सिर्फ व्यायाम के लिए बाहर घूमने जाना बन्द किया, जिसका मतलब हुआ घर के भीतर नजरबन्द होना। इसलिए मैंने आपको लिखा था कि यह पता नही चलता कि हार्ट की कब किस कारण से क्या हालत हो जाए। बाकी अपने को इन बातो का विचार छोड़कर जैसा डॉक्टर कहे उसके माफिक जापते से रहना है सो मैं रह रहा हूँ।

अभिमानी सा स्वभाव होते हुए भी अपन अपने को कुछ खास मानते नहीं है। इस बारे मे मैं एक लेख लिखने वाला हूँ जो प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) मे छपेगा। कुछ लगन है, कुछ साहस है, कुछ परिश्रम है, कुछ सच्चाई है, कुछ आत्मविश्वास है–बाकी अपने पास कुछ खाक भी मुझको नहीं दिखायी देता। यह ठीक है, मैं पड़ा पड़ा भी थोड़ा बहुत काम तो कर ही सकता हूँ। फिर भी यह तो महसूस होना ही है कि मैं दौड़-धूप करने के लायक नहीं रहा। दूसरे यदि रतनजी का स्वास्थ्य भी ठीक होता तो ज्यादा परवाह की बात न होती। श्याम के पास एक बराबर का मददगार हो तो बहुत कुछ सहारा लग जाए। सुधाकर पहले जितना स्वस्थ होता तो भी ठीक होता। सुशीला, कमला, शकु को बाहर नही भेजा जा सकता।

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

कलकत्ता, ११-६-७१

आपका ३१ ५-७१ का पत्र मिला। मेरे पैर मे थोडी बहुत कसर है। वह आहिस्ते आहिस्ते ठीक होगी।

इसमे कोई शक नही कि रतनजी का और आपका साथ रहना या होना एक दूसरे के लिए एक प्रकार से शक्ति देना है। एक को एक का बल मिलता है। पर यात्राएँ तो आप विशेष करके रतनजी के बिना ही करते रहे हैं। रतनजी के काम मे आप साथ जाए तो फिर प्रधान आप ही रहे, इसलिए अब तो रतनजी और श्याम आदि को ही इस काम को सम्भालना चाहिए। वनस्थली के भविष्य के लिए भी यह अच्छा है।

वनस्थली के काम के बारे मे आपने जो लिखा वह मै भी मानता हूँ। आपने जिस दिन खिमटा गाडा था उसी दिन इस सिद्ध भूमि मे सिद्धि जगी थी और वह सिद्धि सदा जगती रहेगी और अपना काम करती रहेगी, यह मेरा विश्वास है। आप हम न रहेगे उस दिन भी यह अपने आप मे शक्ति प्राप्त करके अपना काम करती रहेगी। पर जब तक हम लोग हैं तब तक इसकी चिन्ता करना और इसके लिए सोचना स्वाभाविक है और कर्त्तव्य भी। आप मे अजीब तरह के मिश्रण है और वे कुछ कम अधिक शायद सभी मे रहते है। पर कुल मिलाकर आप एक ऐसे अजीब आदमी है, जिसको पूरा पूरा बाहर के लोग नही समझ सकते। आपकी धुन को मैं जानता हूँ। और लोग भी जानते होंगे। रतनजी तो अवश्य जानती ही हैं। पर मै यह कहने की हिम्मत कर सकता हूँ कि शायद उनके बाद सबसे अधिक मैं जानता हूँ। जो भी हो मेरी यह मान्यता है कि आपका जीवन सफल जीवन है और आपने जीवन मे बहुत बडे बडे काम किये है। उनका पता किन किन को कितना क्या रहेगा मालूम नही, पर वनस्थली पुकार पुकार कर हर आदमी को कहेगी कि एक ऐसा आदमी यहां आया था जिसने एक प्रेरणा से सब कुछ कर दिया जिसका नमूना मै अपने आप ही हूँ।

वनस्थली का सारा परिवार सकुशल होगा। मै ६४ की साल आया था, जब जवाहरलालजी आये थे। इतने दिनो मे तो बहुत परिवर्तन हो गये हैं: छोटे थे वे बड़े हो गये हैं, बहुत छोटे बच्चे थे वे पढने लिखने लग गये है। हा एक बात याद आयी जो चार पाच दिन पहले मैंने एक आदमी से कही थी। उसके परिवार मे शिक्षा पर अढाई तीन हजार रुपया महीना खर्चा होता है। एक लडके ने मुश्किल से बी० ए० पास किया है। कोई मैट्रिक मे फैल है, कोई किसमे। पढा लिखा आदमी शायद एक भी है ऐसा नहीं कहा जा सकता। उस भाई से मैने कहा कि शास्त्रीजी का परिवार है जिसमे लडके-लडकी बहू-बेटी, छोटे-बडे सभी बी.ए., एम.ए. है, बी०एड, एम० एड, हैं और खर्चा तो वे जितना करते हैं आपका शिक्षा का खर्चा छ- महीने का है उतना सा उस परिवार का सारे लोगो का एम०ए०

पास कराने मे लगा होगा। आपके पास शिक्षा का क्या काम आपके पास तो पैसा है और पैसे से आप सब कुछ खरीदना चाहते है। शिक्षा पैसों से खरीदी नही जा सकती। उसके लिए सस्कार चाहिए, वातावरण चाहिए और शिक्षित होने की गहरी इच्छा होनी चाहिए।

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

२०-१२-७२

आपका १६-१२-७२ का पत्र मिला। आपकी मस्ती कम नही हुई है, और मैंने यह गलत समझा है, तो बहुत खुशी की बात है। आप आकाश मे उडने वाले आदमी हैं, बहुत कम पृथ्वी पर पैर टेकते हैं, यह आपके लिए शोभा की बात है। आकाश में विचरते हुए भी आप-अपने जीवन मे इस पृथ्वी पर जितनी रचनाए कर डाली है वे क्या कम हैं? मुझे आजकल ऐसा लगने लगा है कि इच्छा अनिच्छा हमे अब शान्त भाव मे बिना कुछ बडी हलचल किए बन जाए उसी से सन्तोष करना चाहिए।

डॉ. प्रफुल्लचन्द्र घोष का २४ तारीख को जन्म दिन है। उस दिन आपकी ओर से उनको २२ रुपये की कोई चीज भेट स्वरूप दे दूँगा। आपका पत्र उनको मिल गया है।

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

कलकत्ता, ७-७-७३

आपका ३०-६ का पत्र कल मिला। ४-५ के पत्र का उत्तर नही दिया जा सका। १४-६ के पत्र मे आपने सुमनेशजी द्वारा लिखित स्वतन्त्रता सग्राम मे राजस्थान के लोगो का बलिदान इस नाम के ग्रथ का जिक्र शायद आपने किया था मैंने सोचा था कि ग्रथ मिलने पर लिखू गा। इसके बाद ग्रन्थ का उनमोचन और आपको समर्पण करने की उत्सव की रिपोर्ट राजस्थान के पत्रो में पढी। ग्रन्थ मे रुपये काफी खर्च हो गये होंगे आजकल कागज छपाई आदि सभी चीजें महगी है। ग्रन्थ बिककर रुपया आ जाय तो बडी बात होगी।

कल भाई भागीरथजी के पास आपका आया हुआ पत्र पढा और सब स्थिति तो जो है सो है और सब ठीक ही होगा। सबसे बडी बात है कि आपका स्वास्थ्य ठीक रहे। यह मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ कि आप बहादुर आदमी है और आप मे एक प्रकार का फकीराना पन भी हैं और आप बडे बडे निश्चय भी करते है। यह सब होते हुए भी यह स्वीकार करना चाहिए कि अब हम लोग उम्र मे काफी बडे हो गये है। इच्छा अनिच्छा काम बिगडे या सुधरे शेष जिम्मेवारी पीछे के लोगो पर ही रहेगी। रतनजी पर तो बोझ है सो है ही पर अपने घर के लोगों मे खास बोझ श्याम और सुशीला पर ही समझना चाहिए। शेष तो वनस्थली का भाग्य बहुत बलवान है वह अपना काम किसी न किसी से किसी न किसी रूप मे करा ही लेगा।

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

कलकत्ता, १६-७-७३

आपका १७-७ का पत्र समय पर मिल गया था और इसके बाद उसके दूसरे तीसरे दिन ही "राजस्थान मे स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानी" ग्रन्थ भी मिला। ग्रन्थ को सरसरी निगाह से देखा। ठीक ही है जिनमे जो बनता है वह करते है। सब काम सम्पूर्ण रूप मे ठीक तो नही ही होते जिससे जो बन सकता है वे उतना करते है। आपने लिखा कि अपने यहा सार्वजनिक क्षेत्र, बहुत कम लोग प्रमाणिक होते हैं। और अपन ठहरे भले और उदार। इस बात को मैं पहले से ही जानता था और उसका परिणाम यह है कि इतनी बडी जिम्मेवारी आपने ले ली और भले भी नही कहलायेंगे और सम्बन्ध भी शायद अच्छे न रहे। ऐसे लोग अव्यवहारिक ही नही होते और भी बहुत सी बाते होती है ऐसी बातें अपने मे तो बोलती ही रहती है। मुझे भी दो तीन बन्धन इसी प्रकार के लगे हुये हैं उनके झंझट चलते रहेगे और नये भी आ ही जाते हैं कारण बात सामने आने पर मन कहता है कि यह काम अपने को करना ही चाहिए। परिणामस्वरूप यह जिम्मेवारिया आ जाती है। आपकी जैसी बहादुरी उदारता तो मुझ मे नही है क्योकि आप ब्राह्मण है और मैंने शेष मे जन्म तो बनिये के घर ही लिया है न ? एक बार बापूजी ने बात करते हुए कहा था कि काका ठगा जाय इसमे कोई बडी बात नही क्योकि वह ब्राह्मण है मैं नही ठगाना चाहता क्योकि मैं बनिया हूँ। एक बात और याद आ गई सरला देवी चौधरानी ने एक दिन मुझसे पूछा कि सीतारामजी आप किस जाति के हैं मैंने कहा 'वैश्य'। उन्होने कहा कि आप बनिये जैसे लगते तो नही है। आकृति से, स्वभाव से, व्यवहार से, बातचीत मे तो। मैंने कहा कि जो भी हो जन्मा तो बनिये के घर ही हूँ। मुझे भी बनियापन अच्छा नही लगता। कमलनयन ने एक बार बनिये की व्याख्या की थी। व्याख्या शायद बडी थी पर मुझे एक बात याद है उसने कहा था बनावे सो बनिया। खैर यह सब बाते तो है अपने स्थान पर अपनी तो इतनी ही बात है कि जो कुछ अच्छा लगे सही लगे जिसमे सबका भला हो वह करने की कोशिश करते रहे।

आप इतनी सावधानी रखते है नियमो से बधे चलते है यह अच्छी बात है। आप स्वस्थ रहे और मन मे भी काम करते रहे वह भी क्या कम है एक बात और याद आ गई हम लोग इलाहाबाद गये, काका साहब भी थे। महादेवीजी ने हम लोगों को बुलाया था। कुछ लोग काका साहब के पास आये बातचीत के सिलसिले मे कहने लगे कि महादेवी विद्यापीठ मे कुछ करती तो है नही बैठी रहती है। काका साहब ने उनसे कहा कि क्या उनका बैठा रहना कम है उनका बैठा रहना ही बहुत काम करता है जो कई लोग बहुत करके भी नही कर सकते वे चुप हो गये। मैंने भी सोचा कि बात ठीक है। पूज्य गुरुदेव का शान्तिनिकेतन में बैठे रहना, बापूजी का सेवाग्राम में बैठे रहना क्या कम था ! वास्तव में बड़े लोगों की उपस्थिति ही अपना काम करती रहती है इसी प्रकार मुझे ऐसा लगता है कि आप कुछ करें या न करें वनस्थली के लिए आपकी उपस्थिति अधिक से अधिक महत्वपूर्ण है और उसका मूल्याकन नही किया जा सकता न उसका हिसाब लगाया जा सकता है। मैं यह जानता हूँ

कि आप वनस्थली के लिए बहुत चिन्तित हैं और यह होना स्वाभाविक है। एक बात फिर याद आ गई, गाधीजी गुरुदेव से मिलने के लिये गये शान्तिनिकेतन। यह उनकी अन्तिम भेंट थी उसके कुछ ही दिनों बाद गुरुदेव चल बसे। गुरुदेव ने एक पत्र अपने सेक्रेटरी के हाथ बापूजी को बोलपुर स्टेशन भेजा। इस पत्र को लेकर नाना तरह की अटकलें लगाई गई और पत्रो मे उन अटकलो का काफी जिक्र आया। वे अटकलें राजनैतिक थी पर वे सब गलत थी। गुरुदेव ने विश्वभारती के लिये लिखा था कि आप इसे सभाले और अपनी बनाले शायद ऐसा सा ही। गुरुदेव अपने बेटे रथीबाबू या अन्य अपनी सम्पत्ति जमीदारी या और कुछ किसी के लिए चिन्तित नही थे, चिन्तित थे तो विश्वभारती के लिये। यह स्वाभाविक है जिन्होने जिस चीज को जन्म दिया है उसके पालन-पोषण, उन्नत होने और सुरक्षित रहने की भावना सबसे ज्यादा उनके होती है क्योकि उन्होंने उसके लिए तप किया है ऐसी ही बात वनस्थली के लिए आपकी है। दूसरे कोई भी ऐसे आपको कहा से मिल सकते हैं ? आपने लिखा जो जितना साथी है, मित्र है घर का है उसको उतना ही हाथ बटाना चाहिए, बात सत्य है पर अग्नि का ताप जो जितना नजदीक है उसके उतना लगता है जितना दूर है उतना ताप कम होता है, इसलिए वनस्थली की अग्निशिखा हरदम जलती रहेगी कभी बुझेगी नही, जिससे जो बनेगा वो उसमे आहुति डालता रहेगा आप तो उसमे एक रूप ही बन गये हैं, दूसरे समिधा हैं। रतनजी, सुशीला, श्याम आदि घर के सब लोग उसमे हैं ही वे भी इस अनुष्ठान के अग ही नही होता ही है। मैं अपनी क्या कहू मैं वास्तव मे उसका जो बनना चाहता था वह बन नही पाया। परिस्थितिया ऐसी हो रही। इसलिए यह अनुष्ठान यह यज्ञ चलता रहे। इसकी सुगन्ध और धुयें से लोग पवित्र होते रहे। वातावरण में शुद्धता फैलती रहे यह कामना मन मे, प्राण मे, बुद्धि मे, विचार मे हरदम चलती रहती है। दर्शक तो नही हू और न दर्शक रहना चाहता हू पर कोई विशेष हू यह भी कैसे कहू ?

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

कलकत्ता, १६-६-७३

आपके पत्र के दूसरे ही दिन प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) का परिशिष्ट "अपना मूल्याकन, अपनी कलम से" मिल गया। एक साम मे पढ गया। हम लोग जो बातें करते हैं और आप जो कहा करते हैं वह उसमे बहुत सच्चाई के साथ लिखा गया है। प्रत्यक्षजीवन-शास्त्र भी एक प्रकार से इसी सच्चाई के आधार पर लिखा गया है। यह बहुत अच्छा हुआ कि आप अपने मन की बातो को, विचारो को, कामो को, और जीवन को जिस तरह जिये देखा किया समझा वैसा प्रकट कर सके और वह पुस्तक रूप मे सबके सामने रख सके। लोग क्या समझे क्या कहे इसका बहुत क्या मूल्य है मुख्य बात तो अपने आपकी है।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री भागीरथ कानोडिया के नाम

११-८-७२

अशोक ने मुझे बताया है कि आप दोनो दिन दसेक हुए किशनगढ पहुँच गये थे। सीतारामजी ने भी मुझको लिखा था कि आप किशनगढ़ मे काफी समय तक रहने वाले हैं।

मैं ठीक हो गया हूँ। खतरा जोर का था, पर उससे मैं बच निकला। कमजोरी तो अभी है सो समय लेगी। सवेरे ३½ मील, शामको १½ मील घूम लेता हूँ, जो कुछ मिलता है वही खाकर सतोष मान लेना पडता है, इसलिए वजन नही बढ रहा है। थोडा बहुत काम भी कर ही लेता हूँ। पाचवा महीना पूरा होते-होते शायद मुझको सफर करने की इजाजत मिल जाए। वैसे तो अपने को कोई जल्दी नही है, पर वनस्थली की स्थिति बहुत ही नाजुक हो रही है। अकेले श्याम-सुधाकर कितना बश कर लेंगे? दोनो भाइयों को, सुशीला को भी बारी-बारी से रतनजी के और मेरे साथ जाना पडेगा। आखिर सब कुछ अच्छा ही होगा, इस विश्वास पर मैं सास ले रहा हूँ।

हलवासिया ट्रस्ट का तकाजा आया था। श्याम ने उनको लिख दिया था कि अगली जुलाई तक मकान बन जाने की आशा की जा सकती है। नाम उद्बोधन केन्द्र के बजाए उद्बोधन मन्दिर सुझाया था जिसे मान लिया गया है। श्याम ने यह भी लिख दिया था कि ब्राडकास्टिंग का काम किसी दूसरे मकान मे शुरू करने की भी सोच रहे है। इस सम्बन्ध मे ट्रस्ट की ओर से लिखा आया है कि आप राजस्थान मे ही हैं सो आपसे राय ले ली जाए। आपका इधर आना होगा तब देख लेंगे।

अपना विचार एक अखिल भारत शिल्प-कला-उद्योग प्रदर्शनी का है जिसके लिए गवर्नर, मुख्यमत्री आदि सरक्षक बन रहे हैं। आपको कमेटी की अध्यक्षता सम्भालनी है। काम बड़ा है, इसलिए तय्यारी में समय लगेगा।

बरसात न होने से बडी चिन्ता हो रही थी। अपने यहा की खेती कुछ बड़े पैमाने पर शुरू की है। झरिया वाले अर्जुनलालजी खेती के काम मे कई प्रकार की मदद करना चाह रहे हैं।

जो कुछ अपने से हो सकेगा सो तो सभी कुछ करेंगे। बाकी अबकी बार स्थिति को सम्भालते-सम्भालते भी एक साल तो लग जाएगा। अपना आत्मविश्वास अटल बना हुआ है, यही सबसे बड़ा सहारा है।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री भागीरथ कानोडिया के नाम

वनस्थली, ११-७-७३

स्थिति बहुत विकट बनी हुई है, फिर भी विश्वास यह है कि सालेक भर में उस पर काबू पा लिया जाएगा। मैंने १९७१ के मध्य में या उससे भी कुछ पहले से सोचना शुरु कर दिया था कि वनस्थली की स्थिति को ठीकठाक करके १९७२ के मध्य तक अपनी दौड़धूप करना बंद कर दूंगा। पर मुझ पर तो मार्च में ही जोर का धावा बुल गया जिसने मुझको दौड़धूप करने की दृष्टि से सर्वथा अयोग्य बना दिया। रोकने की बहुत कोशिश करते करते भी इस स्थिति का मन पर असर पड़ ही जाता है। मैं यहां पड़ा पड़ा भी काफी काम कर देता हूं–खासकर राज्यों में तो सफलता भी अच्छी मिलती जा रही है। कश्मीर, पंजाब दिल्ली प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, अरुणाचल प्रदेश (नेफा) आदि में। बाकी उड़ीसा, बंगाल, *आसाम, मैसूर आदि में भी सफलता मिलेगी। राज्यों के काम में देर लगती है, किसी न* किसी को धरना सा देना पड़ता है। जाने वाले अपने पास कम हैं—रतनजी, श्याम और किसी हद तक सुधाकर और यदा कदा मोहन। इन तीनों चारों का लगातार बाहर जाना पार नहीं पड़ सकता है। सुशीला-शकु को तो वनस्थली में जमकर रहना ही पड़े। मेरा वनस्थली में जमकर रहना भी न रहने के बराबर है– रोजमर्रा की परेशानियों में पड़ना मेरे स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं हो सकता।

जयपुर वाली जमीन पर मकान बनाने के बजाए उसे लीज पर देने की बात सोच रहे है-उसमें *निखर्चे लाख सवा लाख रुपये हर साल मिलना शुरु हो सकता है। हर एक बात का* फैसला बहुत सोच समझ कर करना पड़ेगा। टैक्स के बारे में नया बिल आया है उसमें वनस्थली के मतलब जितना संशोधन कराने की कोशिश कर रहे हैं। उसके बाद ही कमाई के कामों को हाथ में लेना होगा। उन कामों के लिए आदमी नहीं है सो सवाल भी बड़ा है। जर्मन चर्च से बिना शर्त के कुछ विशेष रुपया मिल जाए तो मैं उसे लेने के लिए अपने आपको तैयार कर रहा हूं—मैं विदेशी सहायता के खिलाफ रहा हू न ? टाटा के पास कोशिश शुरु की हुई है। लड़कियों से कुछ ज्यादा लेना शुरु किया है। कुछ लोगों को मैंने लिखा है, कुछ को लिखने की सोच रहा हूं। इस सारी स्थिति में रतनजी से, मुझ से, आपसे, सीतारामजी से जो कुछ भी बन सके सो श्याम की मदद के लिए करना चाहिए। कलकत्ते में अकेले पण्डित भान का काम भी हो जाए तो मैं सन्तोष मान सकता हू। नथमलजी जैसे को भी हो सके तो कुछ ज्यादा प्रभावित करने की कोशिश करनी चाहिए–उनको भी समझना चाहिए कि ऐसी विकट स्थिति में उनका भी कुछ विशेष कर्तव्य है, मुझे सूझता है सो मैं करता रहता हूं-रुपये में चार आना काम हो जाए तो वह भी बहुत है, अपने लोगों के यत्न से–बाकी दूसरे लोगों के पास कोशिश करने के जरिये भी निकलते ही जा रहे है।

जब मैं अपने आपको कैद में पड़ा हुआ देखता हूं, ज्यादा बात नहीं कर सकता, ज्यादा परिश्रम नहीं कर सकता, सवाल सामने खड़े होते है, जवाब तत्काल नहीं सूझते है तो ध्यान

मग्न हो जाना पडता है, उसमे प्रश्नो के हल न निकलने है तो बीच बीच मे व्याकुल और त्रस्त भी हो जाना पडता है–पर वह मेरा स्थायी भाव नही है–स्थायी भाव तो मेरा आत्म-विश्वास ही है। हार्ट थोखेबाज भी तो है न ? मेरा कुछ कर्तव्य बाकी न होता या मैं बाकी न समझता तब तो कोई बात नही थी। बस, इतने मे ही समझ लीजिए।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नाम

२८–११–७०

आपका २४–११–७० का पत्र मिला। मैं विनोबाजी की बातचीत के विषय के अपने लेख की एक प्रतिलिपि आपके पास आपकी ओर से इस पत्र का उत्तर आएगा तब तक भेज सकूँगा। या तो वह उस समय तक शायद छप जाएगा, नही तो टाइप की हुई प्रतिलिपि भेज दूँगा।

भाईजी जमनालालजी की स्मृति के विषय मे आपने जो कुछ करने का सोचा है वह ठीक है। गाधी आश्रम को पुर्नजीवित करना हो तो बहुत पक्के विचार से और सामने पक्का उद्देश्य रखकर करना चाहिए। आश्रम की शोभा के लायक आदमी कहा है ?

.... मे जो कुछ छपा है सो मैं पढ गया हू–मेरे बारे मे लिखा है सो खासतौर से। मेरी यह प्रतिक्रिया हुई है कि किसी बेहूदा आदमी ने बेहूदे तरीके से बेहूदी बात लिखी है।

मैं किसी भी पार्टी की शरण मे न पहले गया था, न अब जाने वाला हूं। मेरा कार्यक्रम तो एकदम क्रान्तिकारी है, उसके लिए मैं अपनी जान की बाजी लगाने वाला हू। कितना बया पार पडेगा सो देखा जाएगा। मुझे इस गन्दी चालू राजनीति से कोई मतलब नही है, भले ही मैं कुछ स्वाधीन भले आदमियो की मदद आम चुनावो मे करने का विचार करलूँ शायद।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

१४–१२–७०

कल आपका लेख मिला और एक ही सास मे मैंने उसे पढ डाला। कुल मिलाकर मुझे अच्छा लगा। बाबा के और आपके विचारो का स्पष्टीकरण उसमे मिलता है और आपके प्रेस नोट से आपकी स्थिति, कार्यक्रम, दिशा आदि का सक्षेप मे ठीक परिचय मिल जाता है।

किन्तु इससे यही छाप मन पर पड़ती है कि आपका उनका सभी बातों मे मतैक्य नही हुआ। आप शुरु मे ही अपनी धुन के रहे हैं और वही शायद आप जैसे के लिए सार्थक सिद्ध हो सकती है।

आपने उसमे ग्रामसगठन को सरकारी कानून न मानने की बात कही है। यह समझ मे कम आयी। किसी एक बुरे कानून को न मानना तो ठीक है, परन्तु सरकारी कानून को ही न मानना प्रकारातर से सरकार की सत्ता और सविधान को भी न मानने के बराबर हो जाता है। यदि मेरी यह धारणा सही हो तो इस पर आप पुनर्विचार कर लें।

"सरकार अपनी नही है"—ऐसा भी आपने कही कहा है। "अपनी है फिर भी हम उससे लड़ेंगे" यह कहना और है और "अपनी है ही नहीं" यह कहना दूसरी बात है ? वह कैसी अपनी नही है ? जब हमारे वोट से बनी है—तो परायी कैसी हो गयी ?

सरकार की या किसी बाहरी सहायता लेने के बारे मे मुझे बाबा का रुख ठीक लगता है। आपकी बाड़ेबन्दी मुझे अपनी कमजोरी या पलायनवाद जैसा लगता है। यदि धन या सत्ता के प्रभाव मे आकर हम दब जाते हैं, तो कसूर हमारा है। और हम इससे बच भी कहा तक पाएंगे।

पढ़कर तुरन्त जो कुछ विचार मन मे उपजे वह लिख दिये हैं। फिर भी "फलेन परिचीयते" वाली बात सही है जो कुछ हम कर गुजरें वही सही है। सघर्ष तो आएगा, परन्तु उसे न्यौता देना या समय से पहले बुला लेना ठीक न रहेगा।

मैं तो आपका पुराना साथी, मित्र, भाई, कुछ भी कहिए हूँ, और आपका प्रशसक आज भी हूँ।

आपकी सफलता ईश्वर से चाहता हूँ।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नाम

१६-१२-७०

आपका १५-१२-७० का पत्र कल मिला। लगता है अपने को एक बार और मिलकर बातें करनी होंगी सो देखिए कब तक हो सके।

विनोबाजी के साथ जो लबी बातचीत हुई उससे मेरी सारी स्थिति बहुत साफ हो गयी। मैं अपनी कल्पना की ग्रामसभा का गठन किसी कानून के तहत मे नहीं चाहता। कानून के तहत गठित पचायतें तो हैं ही। उनके चुनाव जब कभी होंगे मैं उन्हें निर्विरोध

कराने में अपनी शक्ति लगाऊंगा। और आम चुनावों में निर्वाचन क्षेत्रों की आम पसन्दगी के उम्मीदवारों का यथाशक्ति समर्थन करने की बात भी मेरे ध्यान में है। जिस रूप में आप समझे मालूम होते हैं उस रूप में सरकार या कानून को न मानने का सवाल नहीं है।

झगड़े को, संघर्ष को न्योता देने की जरूरत अपने में से किसी को नहीं है। पर जनता में जो पंगुपन, भिखमंगापन आ गया है सो बहुत बुरी बात है। दूसरी ओर ऊपर की तरफ से चलकर राष्ट्र के सारे शरीर में व्याप्त होने वाला भ्रष्टाचार तो सर्वनाश कर ही रहा है।

अपनी-परायी सरकार के विषय में मैंने जो कुछ कहा है, उसका मतलब तो यह है कि जनता को सच्चा स्वराज पाने की कोशिश करनी होगी। गांव में सुरक्षा का प्रबन्ध गांव वाले खुद करलें तो पुलिस से मुक्ति हो जाए, इकट्ठा लगान देने लग जाएं तो पटवारी आदि से मुक्ति हो जाए, अपने झगडे टंटे खुद ठीक करलें तो कोर्ट-कचहरी से मुक्ति हो जाए—लोक शिक्षण हो जाए तो उसमें जनता जागृत हो जाए, जागृत जनता संगठित हो जाए, और संगठित जनता भीख मांगना छोड़कर अपने हक के लिए जरूरत पड़ने पर सरकार से झगड़ा मोल ले ले। शिक्षा के लिए चिकित्सा के लिए, रोटी-कपड़ा-मकान की समस्याओं के लिए आवश्यकता के अनुसार झगड़ा किया जा सकता है। बिना आवश्यकता और पूरी तयारी के बिना झगड़ा क्यों होगा? और आवश्यकता और शक्ति होने पर झगड़े से डरा क्यों जाएगा?

सरकार की या दूसरी भी बाहर की आर्थिक सहायता ने जनता के प्राण को बहुत नुकसान पहुँचाया है। कार्यकर्त्ता तो वैसी सहायता से बहुत निर्जीव होते देखे गये हैं। दबाने वाली सहायता से तो मनुष्य को दबना ही पड़ता है। कुसूर सहायता लेकर दबने का नहीं है, कुसूर ऐसी सहायता लेने का है।

क्रान्ति की, बड़े परिवर्तन की, सच्चे स्वराज की बात न करनी हो तब तो सभी कुछ ठीक है। पर मेरी राय में अपनी मौजूदा स्थितियों का क्रान्ति से कोई मेल नहीं खाता है।

मेरा सोचा हुआ यह सब काम अत्यन्त कठिन है यह सबसे ज्यादा मुझे मालूम है। शेष मिलने पर।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

२१-१२-७०

आपके दोनों पत्र मिल गये।

इन दो पत्रों में आपने सौ० भागीरथी देवी के प्रति जो हार्दिकता और आत्मीयता-पूर्ण शब्द लिखे उनके आगे वे क्या कह सकती है? सौ० रतन बहन और वे दोनों एक ही कार्य में लगी हुई है। केवल कार्य के ही कारण नहीं, परन्तु स्नेह और भावके के घनिष्ट पड़ोसी सबंध भी इतने दृढ़ है कि इन्हें दो मानना गलत होगा। अस्तु।

दूसरे पत्र में आपने जो स्पष्टीकरण किया है, वह काफी संतोषजनक है। वैसे भी आपने जो मूलभूत मुद्दे उठाये हैं, उनसे मेरा कतई मतभेद नहीं है। और आपके जैसा दृढ़ निश्चयी, अदम्य साहसी व्यक्ति ही उन्हें हाथ में ले सकता था, पर थोड़ा डर यही रहता है कि कई वर्षों से एकाग्र-कार्य के बाद अब आप नई परिस्थिति में आगे आये हैं तो कहीं समय ने पहले कुछ न हो जाए। फिर भी यदि तफसील की बात में थोड़ा बहुत अपना मतभेद रह भी जाए तो उसकी चिन्ता नहीं है। विनोबा से भी मतभेद रहे तो परेशानी की बात नहीं है। यदि मूल विचार में दोष नहीं है, अपनी भावना शुद्ध हैं, अपने साधन भी ठीक हैं, तो फिर दृढ़ता के साथ काम में जुटे रहना ही उचित है। आज जो अत्यन्त कठिन लगता है, काम करने में वही सरल हो जाता है। आप जैसे अनुभव-पक्व पुरुषार्थी के लिए यह सब लिखना आवश्यक है।

भ्रष्टाचार वाली बात बहुत जटिल है। आपको मालूम तो होगा कि भाई नन्दाजी के कहने से मैं संयुक्त सदाचार समिति का अध्यक्ष बना था, मैंने कई बार उनसे कहा कि मुझे छुट्टी दे दीजिए, पर उनका आग्रह अभी तक मुझे बनाये रखने का है। अब जब आपने भ्रष्टाचार की बात उठायी है तो मेरे मन में लोभ आ रहा है कि क्यों नहीं इस संस्था या इस पद का लाभ उठाकर राजस्थान में कोई विशेष कार्य किया जाए? संयुक्त सदाचार समिति के लेटर हेड पर ही यह पत्र है।

वैसे भी मैं खुद सोच रहा हूँ कि ग्राम-पास के एक दो गावों को हाथ में लेकर उन्हें स्वायत्त बनाने की दिशा में यत्न करूं। अत पूर्वोक्त कुछ मतभेद के निवारण के लिए तो नहीं, परन्तु भ्रष्टाचार निवारण तथा ग्राम-कार्य की दृष्टि से अपना मिलना कहीं हो जाए तो वह अच्छा होगा। मेरा तो अब बाहर आना-जाना बहुत कठिन हो गया। भूले भटके आप इधर आ सकें तो अच्छा रहे।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री सिद्धराज ढढ्ढा के नाम

२१-७-७१

तुम्हारा १६-७-७१ का पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा है। मेरी कामना है कि जिस चीज की तुम्हें तलाश है वह तुम्हें जल्दी मिल जाए।

पू० बाबा की बातो को मैं काफी हद तक मानता हूँ। पर उनकी यह ऊँची बात मेरी समझ मे नही आती कि "यह भी अच्छा, वह भी अच्छा"। वे सघर्ष को अनिवार्य नही मानते मालूम होते है। मेरे खयाल से सघर्ष नही टल सकता। तीसरी बात यह है कि राज्य और कानून के आश्रय मे रहते हुए और बाहर के चन्दे से गुजर करते हुए क्रान्ति की बात करना मेरे नही जचता है।

हम सत्य को नही छोड सकते, अहिंसा को (अथवा शान्ति कहो) को नही छोड सकते है। बाकी हमें बुराई का मुकाबला डटकर करना पडेगा। उसी के लिए ग्राम-ससार को शिक्षित, जागृत, सगठित होना पडेगा, सचाई, ईमानदारी के आधार पर। यह मार्ग दुरूह है, यह कार्य दुष्कर है—इसका फल जब आवे, आवे न आवे, पर क्रान्ति की कल्पना करने वालो को इस कार्य के पीछे मर मिटना चाहिए। तथास्तु।

श्री सिद्धराज ढढ्ढा का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

२५-७-७१

मेरे ता० १६-७ के पत्र के उत्तर मे आपका ता० २१-७ का पत्र कल मिला, पिछले ३-४ दिनो से मैं वैसे भी आपको लिखने का बराबर सोच रहा था, लेकिन यहाँ के कार्यक्रम के कारण समय नही मिला।

पूज्य बाबा की बातों के बारे मे तो मै क्या कहूँ? उनकी सब बातें समझ मे आवे यह जरुरी भी नही है, न यह कि सब बातें हम मानें। हो सकता है वे जिस स्तर से कहते हो वह हमारी समझ में न आवे, या हमारे खयाल से वह गलत भी हो। सवाल कार्यक्रम का है और मोटे तोर पर लक्ष्य का भी है। सघर्ष वाली बात मे आप हम बहुत कुछ एक राय के है। "राज्य और कानून के आश्रय" वाली आपकी बात मेरे समझ मे कम आती है। 'आश्रय' तो बुरा ही है, लेकिन उनका 'सहारा' लिया जा सकता है, चदे वाली आपकी बात भी आत्यन्तिक दृष्टि से ठीक हो सकती है पर चदा लेने से क्रान्ति सभव ही नही है, यह मेरी समझ मे नही आ रहा है। खैर इन तात्विक बातो को छोड़ें। कार्यक्रम के लिए तो आपका आशीर्वाद मिल ही गया है, और मेरे लिए तो वह हमेशा रहा ही है।

मैं आपको पत्र एक दूसरे कारण से लिखने वाला था। यहा गावों मे घूमते समय कई ऐसी बातें सामने आती हैं जिनसे लगता है लोगों पर स्पष्ट अन्याय हो रहा है और उसके बारे में कुछ करना चाहिए। प्रत्यक्ष प्रतिकार करने की नौबत आए तब तो हम सब साथ हैं ही, लेकिन उस स्टेज से पहले ऐसे मामलों मे काफी समय और शक्ति लगानी पडती है। एक मामला यहा से ५-६ मील दूर गाव का हमारे सामने है। गाव के हित मे सरकारी विभाग से जूझने का सवाल है। उसके लिए भी काफी समय और शक्ति चाहिए, पर जो काम हमारे हाथ मे है वह भी निपटता नही है। संघर्ष और प्रतिकार के मामले मे यही एक व्यावहारिक कठिनाई आती है। आपने अपने पिछले पत्र मे लिखा था कि ऐसा कोई मौका आएगा तो मैं आपको अपने साथ ही देखूंगा। इसलिए मैंने सोचा कि क्या यह संभव है कि आप यहाँ आवे और इस मामले को उठा लें। मामले को सुलझाने के लिए जो भी करना हो, संबंधित अधिकारियो से मिलना-जुलना, पत्र-व्यवहार करना, मामले की गहराई मे जाना, और गाव वालों को मजबूत करना यह सब करें। मामला न निपटे और स्पष्ट अन्याय हो रहा है यह लगे तो फिर प्रतिकार के कार्यक्रम म हम सब साथ हैं ही। मैंने यहां गोपालजी, मोहनजी आदि मित्रो से बात की तो उन्हे भी यह विचार अच्छा लगा। अन्य काम मे आपको नही डालेंगे।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री बिरधीचन्द चौधरी के नाम

१०-११-७१

हमें सबसे पहले सरकार और विश्वविद्यालय के अन्तर को समझना चाहिए। वनस्थली ने शुरु मे ही समझ लिया था कि विश्वविद्यालय की परीक्षाएं दिलवाये बिना यह महिला शिक्षण संस्था नही चल सकेगी। यदि वनस्थली स्वतंत्र विश्वविद्यालय बन जाए तब भी वह पाठ्यक्रम आदि मे वास्तव में स्वतंत्र नही हो सकती। उस हालत मे वनस्थली विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को दूसरे विश्वविद्यालयों की ओर से मान्यता मिलनी चाहिएगी। उक्त मान्यता के बिना वनस्थली विश्वविद्यालय की परीक्षाओ की कोई कद्र कीमत नही रह जाएगी। परीक्षा की तैयारी के अलावा शिक्षाक्रम मे जो कुछ विशेषता लायी जा सकती है उसे लाने का यत्न अलग से करना होता है, सो काम वनस्थली मे अपनी पंचमुखी शिक्षा के द्वारा किया जाता है। किसी भी विश्वविद्यालय से वनस्थली का कोई आर्थिक यानी पैसा लेने का सम्बन्ध नही है, वह हो भी नही सकता।

स्वराज तक वनस्थली ने किसी भी सरकार से आर्थिक सहायता स्वीकार नही की। आजकल भारत की समस्त सरकारों से पैसा मिलता है। पर वनस्थली किसी भी सरकार के किसी भी प्रकार के नियंत्रण में नही है, सिवाय इसके कि सरकार जो पैसा देती है उसका हिसाब देखले। इसी प्रकार किसी चन्दादाता का भी दखल वनस्थली के काम मे नही है, हिसाब तो चाहे तो चन्दादाता भी देख सकता है। और सरकार या चन्दादाता ही क्यो,

पब्लिक संस्था का हिसाब देखने का हक हर किसी को है। वनस्थली शुरू से आज तक सर्वथा कार्यकर्ताओं की रही है और आगे भी उन्हीं की रहेगी। वनस्थली का ऐसा ही संविधान है।

और यह तो आपको व हमको और सभी को मालूम है कि किसी भी काम के लिए पैसा तो जरूर चाहिए, और आज के जमाने में पैसा ज्यादा भी चाहिए। पैसा सरकार से लाएं, पब्लिक से लाए, किसी उद्योग धंधे के द्वारा कमाए—हर हालत में कार्यकर्ताओं को उस काम में अपनी शक्ति लगानी पडेगी, तकलीफ उठानी पडेगी और न जाने क्या-क्या सहन करना पडेगा। कार्यकर्ता का खुद का कष्ट उठाकर लाया या कमाया हुआ पैसा होगा तभी तो उसका पुरुषार्थ माना जाएगा। यदि कार्यकर्ता के हाथ में आसानी से पैसा आजाएगा तो वह पैसा काम को समाप्त करने के साथ कार्यकर्ता को भी समाप्त कर देगा।

वनस्थली का तंत्र सदा स्वतंत्र है, स्वतंत्र तंत्र भी अमल में तन्त्रहीन है !! संचालन व्यवस्था में शक्ति के बिना तो छोटा सा काम भी ठीक से नहीं चल सकता, और वनस्थली जैसी विशाल संस्था की व्यवस्था में जो ताकत लगानी पड़ती है उसका अन्दाज उन्हीं को है जिनके पास वह ताकत है और जो अपनी उस ताकत को हँसते खेलते हुए इस पवित्र काम में झोकते रहते हैं। वनस्थली का आकार स्वभावत और क्रमशः बड़ा न होता जाता तो यह स्थान सड जाता, गल जाता, सूख जाता। भौतिक विकास के बिना किसी प्रकार का दूसरा विकास ऐसी स्थायी और गतिशील संस्था का नहीं हो सकता था।

आपने सच्चे कार्यकर्ताओं की बात लिखी है। आज अपने देश में मेरी जान पहिचान तो ५-७ से ज्यादा कार्यकर्ताओं से नहीं है। सच्चे या न सच्चे भी कार्यकर्ता कहां रहे है अपने देश में ? या तो नेता हैं या नेताओं के दलाल हैं, या नेताओं के पुरोहित हैं। किसी भी जमाने में कार्यकर्ताओं का उत्पादन "फैक्ट्री" में नहीं हुआ। कोई महान् व्यक्ति आश्रम बनाकर बैठा तो उसके प्रभाव से पास-पडोस में कुछ कार्यकर्ता बनते हुए दिखाई देने लगे पर वास्तविक कार्यकर्ता वे ही बन सके जिनको प्रत्यक्ष कार्य में लीन होना स्वीकार हुआ। जिसके पास अपने खुद का कैसे भी कमाया हुआ पैसा है वह "कार्यकर्ता" नहीं हो सकता, जिसने सरकार की या किसी की, छोटी या बडी नौकरी मंजूर करली वह नौकरी छोड़े बिना कार्यकर्ता नहीं हो सकता, जिसने खादी की-सर्वोदय तक की भी-संस्था से वेतन लेना मंजूर कर लिया उसका कार्यकर्तापन नहीं निखर सकता। विनोबाजी ने मुझ से कहा-गाँधी-निधि का पैसा मृतक श्राद्ध का पैसा है। मैंने कहा "बहुत ठीक", पर आपके नाम से जो कोष इकट्ठा किया जा रहा है उसमें "जीवित श्राद्ध" का पैसा होगा।

मैंने अपने स्वरूप सामर्थ्य के अनुसार साथी कार्यकर्ता खडे करने का यत्न किया था। उसमें मुझे कुछ सफलता भी मिली थी। पर स्वराज आते आते वे प्रायः सभी कार्यकर्ता अकार्यकर्ता ही नहीं बल्कि कुकार्यकर्ता भी हो गये। मैं तो अपने आपको कुछ मानता ही नहीं हूँ। पर जिनको मैं बडा से बडा मानता रहा उनके बनाये कार्यकर्ताओं में से कितने

व्यक्ति कार्यकर्त्ता रूप मे आज जिन्दा है ? उनमे मे जो बहुत बड़े माने गये उन्होंने गाधीजी के साथ अन्त मे कैसा व्यवहार किया ? क्या वह व्यवहार गांधीजी के चेलों के या उस महान् व्यक्ति के सिद्धान्त के लायक था ? और आज विनोबाजी का और उनके नाम का शोषण करने वाले कितने नही है ? कितने "जीवनदानी" हैं जिनको आप सच्चे जीवनदानी के रूप मे स्वीकार कर सकते हैं ? आज के जमाने मे किसी की भी शक्ति कार्यकर्त्ता बनाने की नही हो सकती और आखिर कार्यकर्त्ता किसी दूसरे का बनाया हुआ नहीं बन सकता-वह तो खुद ही अपना निर्माता हो सकता है।

एक बात और समझने की है। वह यह कि किसी भी स्थायी शिक्षणसस्था के द्वारा क्रान्ति नही हो सकती। न कोई शिक्षक क्रान्ति का सिपाही बन सकता। अच्छी शिक्षण-सस्था के कुछ अच्छे शिक्षक अपने विद्यार्थियो को "क्रान्ति के सिपाही" बनने की प्रेरणा दे सकते हैं, पर उस प्रेरणा का असर भी बहुत कम विद्यार्थियो पर होगा। जिन विद्यार्थियो पर असर होगा उनमें लडके ज्यादा होगे और लडकियाँ बहुत कम। और जिस लडके या लडकी का योग क्रान्तिकारी बनने का होगा उसका क्रान्तिकारी बनना स्वतः सिद्ध हो जाएगा। पर क्रान्तिकारी बनने वाला विद्यार्थी पढाई पूरी होने से पूर्व ही सभवतः अपनी शिक्षण सस्था को छोड देगा।

आपने आखिर मे "अध्यात्म" की बात लिखी है। अध्यात्म की बात करने तक का अधिकार आपको मुझको तो क्या, जिनका वडे से वड़ा नाम है, क्षमा कीजिए उन तक को नही है। अध्यात्म का अभ्यास क्या हम कोई क्लब खोलकर करेंगे ? हम लोग ज्यादा से ज्यादा इतना कर सकते है कि धार्मिक और नैतिक मूल्यो की जानकारी इच्छुकों को करावें, सो शास्त्रों, सन्तवाणियो और प्रार्थना के प्रवचनो के जरिये से तो हम वनस्थली मे करा ही रहे हैं।

अध्यात्म का अधिकारी महायोगी, महात्मा लौकिक कामों में शायद ही लगा रहे, वह विश्वकल्याण का काम भी अलग बैठकर ही करेगा। आपको और आपके साथियों को किस शक्ति का अनुभव हो रहा होगा सो मेरी समझ के बाहर की बात है। कभी मौका मिलने पर आप हम कई दिनो तक साथ रह सकें तो आपकी सब शकाएं निर्मूल हो जाएं।

पुनश्चः—

यह सही है कि वनस्थली के कार्यकर्त्ता अपना निर्वाह व्यय तो संस्था से लेते हैं। पर यहाँ पर कई एक कार्तकर्त्ता ऐसे हैं जो वेतन की खातिर सस्था में काम करने को नहीं आये हैं। हमें यह नही भूलना चाहिए कि वनस्थली मे कई भाई भी देश मे जो मानव-सामग्री उपलब्ध है उसमे से ही आते है। वनस्थली भी भारत मे ही अवस्थित है।

श्री गोकुलभाई भट्ट का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

२१–५–७२

आपका वक्तव्य एव आपने श्री बरकतजी को जो तार दिये, सुधाकर मुझे दे गया था। उनमे स्नेह, स्वार्पण-शौर्य के दर्शन विशेष रूप से किये। प्राणदायी धारा।

आप अपना स्वास्थ्य सम्हालिये। सबको प्रणाम।

मैं आनन्द मे हूँ। आज का पत्रारम्भ आप से होता है।

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री गोकुलभाई भट्ट के नाम

२२–५–७२

सुधाकर के द्वारा कल शाम को आपका २१–५–७२ का पत्र मिला। उस जरा से पत्र ने मुझको झकझोर डाला।

आपके उपवास के मूल में बलिदान की भावना है। उसका परिणाम शुभ होगा। हॉस्पिटल में एक दिन डॉ० दिलीप के सामने नशाबन्दी की बात चल पड़ी तब मेरी जबान से सहसा निकल गया कि यह काम बलिदान चाहेगा। उस समय आपके अनशन के सकल्प का मुझे पता नही था।

मुझे दुःख इस बात का है कि मैं आपके पास आने के लिए भी स्वतत्र नही हूँ। मेरा "स्व" मेरे पास नही है तो मैं "अर्पण" क्या करू ? और स्वार्पण है ही नही तो "शौर्य" कैसा ? और "प्राणदायी धारा" कैसी ? मुझको उठते ही चक्कर आता है। परसो का कार्डियोग्राम बहुत अच्छा आया है, पर वजन और भी घटा है। कमजोरी बढी नहीं तो कम भी नही हुई है। ऐसी हालत मे क्या कर सकता हूँ ? कैसा अच्छा होता यदि आपके साथ साथ मैं भी बैठ सकता ?

यह तो हुई एक बात। दूसरे पक्ष की बात यह है कि इतना बडा ओवरड्राफ्ट (एक अरब के आस पास का) हो क्यो गया ? इतना बड़ा (कई अरबों का) कर्ज क्यों कर लिया गया ? इतना बड़ा घाटा (कम से कम २८–२९ करोड़ का) बजट मे क्यो दिखाया गया है ? अरबो के बजट में चार पाँच करोड रुपये की क्या गिनती है ? इतना सा खर्च कम करना क्या असभव है ? और आखिर इस पाप की रकम से विकास की या कल्याण की बात करना क्या अकल्याणकारी नही है ? जैसे, कानून के बावजूद चोरियाँ होती है,

वैसे ही नशे पर कुछ बन्दिश है तब भी अवैध दारू क्या नहीं बन रही है ? कानून का पालन कराना सरकार का काम है। लोगों को समझाना समाज सेवियों के साथ साथ विधायकों व मंत्रियों का काम भी है। इस प्रकार सरकार का पक्ष एकदम झूठा है। सरकार वालों से पूछा जाना चाहिए कि "तुम्हारे पास दिल है क्या ? तुम्हारे पास दिमाग है क्या ? नशे की एवं जुए की आमद से जनता का भला करना चाहते हो ?"

सिद्धराज आ गया बताया ? और लोग भी हैं ही। उनसे मेरा कहना है कि प्रचार धुआंधार होना चाहिए। शहर के अखबारों में भी प्रचार कम है। दिल्ली के अखबारों में तो शायद है ही नहीं। मैं अखबार कम देखता हूँ। समय पर भी नहीं देख पाता। आपकी "गिरफ्तारी" का समाचार मुझको देर से मिला। समाचार मिलते ही तो मैंने एक दूसरा तार मुख्यमंत्री को और ठोक दिया। इन तारों और वक्तव्यों की अपेक्षा ज्यादा असर होगा, आम जनता के उठ खड़े होने का। आपके उपवास में जनता को खड़ी कर देने की शक्ति है, पर जनता को मालूम होना चाहिए न ? ऐसे प्रचार की योजना होनी चाहिए। अपनी सरकार का तरीका शुरू से मान जाने का नहीं है। जोरदार (?) सरकार है न ? अपना हेतु शुभ है। अपनी जीत अवश्यम्भावी है। ऐसा होगा नहीं, पर यदि गोकुलभाई कदाचित् न भी रहें तो दबे रहने की इच्छा का त्याग करने वाले कुछ दूसरे भी खड़े हो जाएंगे। मरना क्या बड़ी बात है। मुझे यह सोचने में बड़ा मजा आता है कि मैं पिछले हफ्तों में मरकर जिन्दा हो गया। जब मनुष्य को किसी न किसी निमित्त से आगे पीछे मरना ही है तो जनता के कल्याण के खातिर मृत्यु को आमंत्रण देने के बराबर हो ही क्या सकता है ? इससे अधिक लिखाने की शक्ति नहीं है। गोकुलभाई की जय होगी। गोकुलभाई अमर हो।

हीरालाल शास्त्री के पत्र श्रीमती रतन शास्त्री के नाम

(१)

कलकत्ता २४-१२-२८

मेरी शक्ति कम या ज्यादा कितनी भी रही हो, परन्तु यह समझने मे मैं अपने आपको धोखा नही दे रहा हूँ कि जिस बात को मैं ठीक समझता हूँ उसको करके दिखाने के के लिए मुझमे सच्ची लगन है। मेरे कुछ सिद्धान्त तो आपको मालूम हो गये हैं। उनमे एक तो यह है कि मैं आपको अपनी सच्ची साथिन बना लेना चाहता हूँ। मेरे जीवन का कोई भी कार्य ऐसा नही होना चाहिए जो आपको मालूम नही हो, जिसके मर्म को आप नही समझती हो और जिसमे आपकी ओर की सहायता नही हो। आपको आराम से कमा-कर खिला देना, आपके लिए अच्छे कपडे और गहने लादेना, घर के काम के लिए नौकर रख देना, ये मामूली बातें हैं। यह तो सभी कोई कर देते है और स्त्रियो के प्रति जितना भी अच्छा व्यवहार हमारे गये बीते समाज मे रहा है वह जान बूझकर या बिना जाने पशुओ का सा है। अपनी गाय को हर कोई अच्छा बाट दे देता है, अच्छा घास फूस खिलाता है। साफ सुथरी मिट्टी बिछाकर बाधता है, गले मे पटिया बाध देता है, अवसर आने पर सीग रग देता है। जब मैं यह कल्पना करता हूँ कि आजकल के पुरुष भी अपनी स्त्रियो के साथ प्राय. वैसा ही बर्ताव करते हैं जैसा गाय भैंस के साथ तो मुझे अकथनीय दु.ख होता है। मैं यह तो मानता हूँ कि वे बेचारे जान बूझकर स्त्रियो को दुःख नही देना चाहते। जान बूझकर दु खी करने वाले कुजीव भी होंगे, परन्तु बहुधा तो बेसमझी का बर्ताव होता है और स्त्रियां बेचारी, उनका तो कहना ही क्या है? उनकी एक प्रकार की आदत चली आ रही है जिसके फेर मे उन्हे कर्मा बेशी का भेद भी मालूम नही होने पाता। आप तो काफी समझदार हो और जब मैं आपको बाहर की बाते नही कह पाता हूँ तो आप कई बार शिकायत भी करने लगती हो। परन्तु बहुत सी स्त्रिया हैं जिन्हे खाने पहिनने को अच्छा मिल जाए और पतियो के साथ रहना मिला रहे तो उन्हे ससार की किसी भी प्रकार की शिकायत नही रहती।

स्त्रियों के बारे मे मेरे मन मे कई तरह की उथल पुथल रहती है। मैं अभी निश्चय नही कर पाया हू कि इस देश मे स्त्रियो के लिए अच्छे मे अच्छा आदर्श आजकल के जमाने मे क्या हो सकता है? स्त्रिया अपने पति को देवता समझें, यह बात मुझे बरदाश्त है। परन्तु इसके साथ मे यह भी जरूरी है कि पुरुष अपनी स्त्रियों को देवियां समझें यकतरफा बात कभी भी ठीक नही हो सकती। स्त्री बेचारी पति भक्ति के मारे हैरान हो लेती है, परन्तु पति ऐसे हैं जिन्हे पत्नी भक्ति कभी छूती भी नही। इसको मैं न्याय नही कहता। स्त्री का नाम सहधर्मिणी बिना सोचे समझे नही रखा गया था, परन्तु भोजन बनाकर खिला

देना और साथ रह लेना, इसी में सारा सहधर्म समाप्त हो जाता है। महात्माजी ने वर्धा में कहा था कि स्त्रियों को कमाने की जरूरत नहीं है। कमाने की विद्या उनको मालूम होनी चाहिए जिससे वे आवश्यकता पड़ने पर उन्हें दूसरों के मुंह की ओर नहीं ताकना पड़े। परन्तु कमाने का काम तो पुरुष का ही है। कमाने का काम पुरुष का और घर की स्वामिनी बनकर, घर की सुव्यवस्था रखकर स्वर्ग का रूप देदेना, घर की रोशनी, घर की लक्ष्मी, घर की शोभा, सहधर्मिणी स्त्री का काम है। दोनों के कार्य का इतना विभाग स्वाभाविक है, ठीक है और समझ में आता है। परन्तु बाकी के जितने भी काम हैं उनमें पुरुष का और स्त्री का सहयोग और साथ होना चाहिए जो आजकल नहीं है। अपने घरों में जब कोई धार्मिक कृत्य होना है तो एक पुच्छल्ले से बांधकर स्त्री का मुंह ढककर पास में बैठा लेते हैं, यह हास्यास्पद दृश्य हमारे उस पवित्र यज्ञ का स्मारक है जब हम हमारी स्त्रियों को वास्तव में सहधर्मिणी मानते थे और जब कोई भी धार्मिक कृत्य बिना सहधर्मिणी के हो ही नहीं सकता था। परन्तु आजकल क्या है ? पंडितजी और बाबूजी लेजिस्लेटिव असेम्बली में जाकर आ जाते हैं, कालेज में प्रोफ़ेसरी करके आ जाते हैं, सभा में व्याख्यान देकर यश लूट लाते हैं, समाचार पत्रों में लेख लिखकर विद्वान और विचारक सिद्ध हो जाते हैं, व्यापार में ठगी करके कुशल और सफल व्यापारी कहला लेते हैं, राज के आफिस में बैठकर नामी हाकिम हो लेते हैं, बड़े डॉक्टर बनकर शोहरत कमा लेते हैं, वकील बनकर हाईकोर्ट की बहुत से लोगों को मुग्ध कर लेते हैं, परन्तु घर में बहूजी या बीबीजी को यह कुछ भी पता नहीं रहता कि बाहर पतिदेव क्या काम करके घर लौटे हैं। किसान और मजदूर बेचारे अच्छे जिनके यहां स्त्री और पुरुष दोनों ही अपना अपना काम साथ साथ करते हैं। परन्तु *यकतरफ़ा शिक्षा, यकतरफ़ा सभ्यता, यकतरफ़ा सार्वजनिक और पारमार्थिक जीवन कितना बुरा है, कितना निन्दनीय है!*

सन्तानोत्पत्ति में पुरुष के लिए कम जिम्मेवारी का काम है और स्त्री के लिए ज्यादा। इस जिम्मेवारी को निभाने के लिए स्त्री की विशेषतया तैयारी होनी चाहिए और अच्छी सतान पैदा होकर कैसे अच्छी बने, इसके लिए स्त्री का बहुत सा समय लगना चाहिए। तथापि सन्तानें पैदा करते रहना मात्र ही स्त्री का पहला और अन्तिम कर्तव्य नहीं है। हमारा कौटुम्बिक जीवन आजकल इतना दूषित हो चला है कि स्त्री और पुरुष यह भी विचार नहीं करते कि उनके प्रतिदिन के एकान्त जीवन का परिणाम क्या होगा ? इसीलिए तो बिना आवश्यकता की सन्तानें संसार में लाकर खड़ी करदी जाती है। वे कमजोर हों तो क्या, उनके भरण पोषण में कठिनाइयां पड़े तो क्या स्त्रियां और पुरुष दोनों ही अपने नशे में अपनी जिम्मेवारी को भूल जाते हैं। इस महत्वपूर्ण कार्य में स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने उत्तरदायित्व को ठीक ठीक समझलें और अपने जीवन का ऐसा नियम करलें कि उनकी ओर से आवश्यकतानुसार एक दो ही सतान उत्पन्न हो तो स्त्री का बहुतसा भार हल्का हो जाएगा और उस बेचारी का कष्टमय जीवन भी बहुत हद तक सुखमय हो जाएगा। हमारे राजपूताने में (और कहीं का पता नहीं) लोग यहां तक मानते हैं और कहते हैं कि सन्तान तो भाग्य से होती है, कम होना और ज्यादा होना, क्या किसी के हाथ की बात है। जिस

तरह रामजी हमारे और काम करते हैं वैसे ही हमारे समाज की स्त्रियों को और पुरुषों को बेटा–बेटी भी रामजी ही देते हैं। इन भोले आदमियों को यह जानना चाहिए कि रामजी को तो बेटा बेटी देने के अलावा और कई काम होंगे, वे स्वयं अपने आपको सुधार लें और अपने विवाहित जीवन को पवित्रता के साथ और संयम के साथ बिताए तो रामजी का बेटा बेटी देने का काम कुछ हल्का हो जाएगा।

आजकल संसार में स्वाधीनता की बड़ी भारी लहर चल रही है। स्त्रियां कहती हैं "इन पुरुषों ने आज तक हमारे साथ अन्याय किया, हमें कुचल डाला, दासियां बनादी, किसी प्रकार के काम को न रखकर बेकार बनादी, अब हमारी बारी आयी है, हमको पुरुषों के आधीन नहीं रहना चाहिए, हमको आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होना चाहिए, अपनी रुचि के अनुसार काम होना चाहिए। जो हक पुरुषों को प्राप्त है, वही हक हमें भी है।" यह हवा संसार को कहां ले जाएगी, इसका कोई ठीक ठिकाना नहीं है। यह स्वाधीनता की लहर संसार को सुखी नहीं बना सकती, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है। पुरुषों के प्रति बदला लेने का सा भाव रखना स्त्रियों के लिए कोई प्रशंसा योग्य काम नहीं है। स्त्री वर्ग का और पुरुष वर्ग का यह कलह चक्र खड़ा कर देना संसार के लिए हितकर नहीं है। स्त्री और पुरुष दोनों साथी हैं। एक का दूसरे के बिना काम नहीं चल सकता। उनके परस्पर के सम्बन्ध में पवित्रता का, निःस्वार्थता का, समर्पण का, सहयोग का एक दूसरे की अपूर्णता को पूर्ण करने का, सम्बन्ध होना चाहिए, न कि आपस में मुकाबिला करने का, झगड़ा करने का। यह ठीक है कि संयोगवश भली रहने की जिम्मेवारी अकेली स्त्री पर ही लद गयी और पुरुष के लिए स्वच्छन्दता का मार्ग खुला हुआ रह गया। बस यही अन्याय है। परन्तु इस अन्याय को मिटाने का इलाज पुरुष के साथ साथ स्त्री के स्वच्छन्द बन जाने में नहीं होगा। स्त्री का पुरुष के प्रति जितना कर्त्तव्य समझा जाता है, उतना ही कर्त्तव्य पुरुष का स्त्री के प्रति समझा जाए तो यह स्त्री—पुरुष का जोड़ा अवश्य सुखी रहेगा। भारतवर्ष के लिए इसी में कल्याण है कि वह अपने प्राचीन आदर्श को पुनर्जीवित करके आजकल के युग धर्मानुसार ठीक ठीक व्यवहार में परिणत कर दिया जाए।

पत्र को प्रारम्भ करते समय इतने प्रवाह में पड़ जाने का मेरा विचार नहीं था। मैं तो केवल यही बतला देना चाहता था कि कांग्रेस आदि की कार्यवाहियों में आपके बिना अकेला ही भाग ले रहा हूँ, यह बात मेरे हृदय में कई बार खटक जाती है। मैं यह सोचा करता हूं कि अब तक तो आपकी और मेरी शिक्षा में अन्तर रह गया, उसमें न मेरा जिम्मा है और न आपका। परन्तु अब मैं जितना आगे बढ़ जाऊं और आप जितनी पीछे रह जाओ उसमें मेरा ही मेरा जिम्मा है। मैं प्रतिदिन नाना प्रकार के अनुभव कर लूं, नाना प्रकार के ज्ञान सम्पादन करलूं, नाना प्रकार के विचार करलूं, और इन सब कार्यों में आपका साथ न रहे तो आप कैसी सहचारिणी और कैसी सहधर्मिणी। पिछली जितनी कमी रह गयी है उसको यथाशक्य कम कर देने का प्रबन्ध मेरी ओर से होना चाहिए, यह मुझे मेरा निश्चित कर्त्तव्य मालूम हो रहा है। इसमें आपके सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी, इसमें कोई सन्देह

नही। मैं तो इस तत्व को भली भांति समझने लग गया हूं और मुझको आशा है आप भी जल्दी ही सब समझ लोगी। हमारे समाज का जीवन आजकल कई तरह से झूठा है, हमारी आकांक्षाएं परिमित है, हमारा कार्यक्षेत्र, हमारा विचार क्षेत्र, कुटुम्ब मे बन्धकर संकुचित हो गया है, इसका विकास करना, इसको पारमार्थिक रूप देना, यह आगे के लिए प्रोग्राम है।

परिवार मे जीवन बिताना, बच्चे पैदा करना, मकान बनवाना, जेवर और कपड़े बनवाना, ब्याह, शादी और नुकते मे रुपये खर्च करना, धन की लालसा रखना, यह तो हर कोई करता है। मै अब यह चाहता हूं कि इस साधारण श्रेणी में से सदा के लिए निकल जाऊ और जान बूझकर गरीबी का व्रत ले लू। क्योंकि गरीबी का व्रत लिये बिना मनुष्य निःस्वार्थ नही हो सकता और निःस्वार्थ हुए बिना सच्चा नही रह सकता और सच्चाई के बिना असली बल नहीं आ सकता और असली बल के बिना कोई भी असली काम नही हो सकता। जिस मनुष्य को अपने खर्च के लिये बहुत सा रुपया चाहिए उसे किसी न किसी का दबैल तो रहना ही पड़ेगा। वह आजादी से नही सोच सकता, आजादी से नही बोल सकता, और आजादी से नही लिख सकता है। वह लोगो को अपने मन की बात नही कह सकता और मन की बात कहे बिना लोग उसका साथ नही दे सकते। और बिना साथी के वह अकेला कुछ कर नही सकता। रही भोजन वस्त्र की बात, सो किसी भी सच्चे काम करने वाले को भोजन वस्त्र की कमी रह नहीं सकती, और रहो तो रहो। लाखों करोड़ों की संख्या में ऐसे आदमी इस देश मे हैं जिन्हे न पेट भर भोजन मिलता, न समय पर वस्त्र मिलता, तो असंख्य मनुष्यों के साथ थोड़े से मनुष्य जान बूझकर हो जाए और आराम में रहने की शक्ति होते हुए भी उसको अपने काम मे नहीं लेना, क्या यह ऊंचे दर्जे की बात नही है? ऊंचे दर्जे की बात मुझे इसलिए कहनी पड़ती है कि अभी तक हमारे यहां ऐसा ही ढर्रा चल रहा है कि लोग अपने कुटुम्ब के बाहर अपना कर्तव्य ही नही समझते और अपनी छोटी-छोटी जाति के प्रति यह कर्त्तव्य समझते है कि मौका पड़ने पर उन्हें बुलाकर जिमा दिया जाए।

अब की बार यह पत्र मैंने ब्रजमोहन को लिखवा दिया है। सीतारामजी भी इस पत्र को रवाना होने के पहले देखेंगे। यह पत्र आपके पिताजी आदि भी पढ़ें तो कोई आपत्ति नही है। क्योंकि अब अपने परस्पर मे ऐसी कम से कम बातें रहनी चाहिए अथवा नही रहनी चाहिए जिन्हे हमको दूसरो से छिपाना हो। मैं उस आनन्द की कल्पना कभी कभी कर पाता हूं जो मुझे उस समय मिलेगा जब मेरा और आपका जीवन एक खुली पुस्तक के समान हो जाएगा जिसे जो चाहे पढ़े, और बुरा भला, जैसी इच्छा हो बताए और मुझे तब कितना आनन्द होगा कि जब आप भी मेरे इस भाव मे भाव, विचार मे विचार, तान मे तान, रग मे रग, नशे मे नशा मिलाने को तैयार हो जाओगी और मुझे विश्वास है कि आप बहुत जल्दी आगे बढ़ जाओगी। मैं उस क्षण की प्रतिमा मेरे सामने रख रहा हूं और मेरा हृदय एक विलक्षण प्रकार के आनन्द में गद्गद् हो रहा है। उस क्षण को जल्दी लाना मेरे हाथ मे तो है ही, परन्तु आपके हाथ मे भी है। आप इस यात्रा में मेरा हृदय से साथ दोगी, यह मेरी भावना है और आशा है।

(२)

लांबा, ३१-३-३६

ता० २३-३ को आपके आने के तुरन्त पहले मैं एक अत्यन्त निराशाजनक मीटिंग खतम करके उठा था। कुछ तो मेरी तबियत पहले से ही खराब थी, कुछ उस मीटिंग के परिणाम के कारण से हो गयी। मीटिंग में सवाल यह था कि बाहर चलने पर कौन कौन किस किस काम की जिम्मेदारी लेने को तय्यार है। नतीजा वही निकला था जो उस दिन के पहले ऐसी मीटिंगों का निकलता रहा है। मैंने यह साफ बतला दिया था कि "मेरी यह शिकायत की जाती रही है कि मैं हिटलर हूं, किसी को कुछ नहीं समझता, सारा काम अपने ही हाथ में रखना पसन्द करता हूं। किसी को काम का मौका नहीं देता, किसी का विश्वास भी नहीं करता। आज मैंने काम के बटवारे के लिए सबके सामने कहा है तब कोई जिम्मेदारी लेने को तय्यार नहीं है तो फिर बतलाया जाए किस तरह से काम को बांटा जाए। यह हाल आज भी है—पिछले साल में इससे अच्छा हाल कैसे रह सकता था पर खैर, अब आयन्दा कोई यह न कहे कि मैं अपना बटवारा करना पसन्द नहीं करता हूं।"

इस तरह में मैं विचारों के चक्कर में पड़ा था—यह बिल्कुल नहीं सोचा था कि आज कोई मुझ से या किसी से भी मिलने को आएगा। यानी मैं किसी से बातचीत करने को तय्यारी में बिल्कुल नहीं था। कुछ भी नोट किया हुआ नहीं था। फिर राजकर्मचारियों ने जल्दी करना शुरू कर दिया—हालांकि जो लोग जल्दी मचा रहे थे, उनके अधिकार की बात यह नहीं थी—पर उस समय मेरे चित्त पर यही असर रहा कि इन लोगों की धांधली का मुकाबिला करना ठीक नहीं रहेगा। २६-३ को सज्जन लड़कियों को लेकर आएगी, इसका मैंने एक सुन्दर चित्र अपने दिमाग में बना रखा था वह चित्र बिगड़ गया। लड़कियों को न लाने की बात ठीक थी, यह मेरी बुद्धि ने स्वीकार कर लिया—क्योंकि मैंने यह सोच लिया कि आप लोगों के ध्यान में यह नहीं आता होगा कि लड़कियों को बुलाने की बात मुझे क्यों सूझी। लड़कियों के साथ मेरा पागलपन का प्यार है, यह तो सभी जानते हैं ? बाकी इस तरफ शायद आपका भी ध्यान नहीं गया होगा—या कम गया होगा कि मैं विद्यालय के प्रचार की बड़ी धुन में रहता हूं। मैं अपने यहां के साथियों को बतलाना चाहता था कि वनस्थली की बालिकाएं क्या चीज है—वे कितनी जानकारी रखती है, कितनी निर्भय हैं। और किस हद तक राष्ट्रीय भावों में ओतप्रोत है। यह मौका हाथ से जाता रहा जिससे मुझको बड़ा दुःख हुआ। इसके अलावा आपके साथ गोपाल की विशेष बीमारी के समाचार भी आये—आप जानती है मेरा हृदय इन मामलों में कितना नाजुक है—और मैं अपनी जिम्मेदारी को तो कितना ज्यादा महसूस करता हूं।

मैंने आपको यह बतलाने की कोशिश की है कि उस दिन की मिलाई में मुझे कुछ मजा नहीं आया। उसमें इतना अधूरापन रह गया कि आप लोगों के जाने के बाद मैं यों ही देखता ही रह गया। न मैंने भाई सा० झालानीजी से कुछ बात की, विद्यालय की भावी

योजना की रूपरेखा की बहस उनसे मैं कर लेना चाहता था-ताकि छुट्टियों के बाद हम अच्छी तरह शुरुआत कर सकें। आपसे विद्यालय की आर्थिक स्थिति की बात विस्तार से करने की थी। मुझको यह पूछने का खयाल भी नहीं रहा कि रुपये की आवश्यकता बतलायी जाने पर भागीरथजी ने आपको क्या उत्तर दिया। आपसे एक दो मिनट तो जरा सी खास बात भी करनी ही थी। आप कई बार मिली, परन्तु आपको आश्चर्य होता होगा कि यह आदमी भी कितना रूखा हो गया है। सार्वजनिक मामलों में यह पागल तो नहीं हो गया है। मैं नीरस हो गया हूं, सो बात तो नहीं है। परन्तु मुझ में कुछ मजबूती जरूर आयी है। जो आदमी जिस बात में कच्चा है उसी बात को ठीक ठीक झेल जाने की ताकत भी उसमें आ ही जाती है बशर्ते कि वह सच्चा हो। सज्जन से दो बात करनी थी। एक बार उसने मेरी तरफ अच्छी तरह से देखा था। उसी समय इत्तिफाक से मेरा दिल कुछ भरा हुआ सा था। मैंने बाद में सोचा कहीं लड़की यह तो नहीं समझ गयी होगी कि मैं यहां के जीवन से दुःखी हूं। मैं उसका उत्तर पूछना चाहता था, प्रत्येक का नाम ले लेकर लड़कियों के बारे में बहुत सी बातें पूछना चाहता था और काम के बारे में उससे सब कुछ जानना चाहता था। यह सब विचार धरे रह गये। श्यामजी से भी कुछ बात न कर पाया। उनका चित्र अखबार में छप गया। श्यामजी भी अपने आपको कुछ समझने लगे होंगे। उसके बारे में खयाल रहा कि उसकी पढ़ाई गड़बड़ में पड़ रही है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को किस किस बात का त्याग नहीं करना पड़ता। हमारे ऊपर तो असल में कम ही चोटें आयी हैं। बाकी इसी देश में लोगों ने अपने सब तरह की—सर्वस्व की आहुति लगा दी है। धन गया, आराम गया, पारिवारिक जीवन गया, बच्चों की शिक्षा तक भी गयी। और दुनिया ने जाना तक नहीं किस उच्चकोटि का त्याग उन लोगों ने किया है। हमको अभी वैसे त्याग का अवसर नहीं मिला है। हम उस कसौटी पर कसे ही नहीं गये है।

आपको यह जानकर सन्तोष होगा कि दो एक दिनों से मेरी तबियत खासतौर से खुश है। शरीर भी अच्छा है और मन से भी मस्त हूँ। वजन १६८ पौंड के नीचे नहीं गया है-एक दो पौंड बढ़ा मालूम होता है। बिना घी का भोजन अब जच गया है-और आयन्दा अच्छी तरह निभ जाएगी-मुझको थोड़ा बहुत भूखा रहना पड़ता है-मैं अपने लिए किसी से विशेष कुछ कहना नहीं चाहता-चने (भूगड़े) मंगवाने चाहे थे ५-७ दिन हो गये, आज तक आये ही नहीं। जौ का आटा चाहा था वह भी नहीं आया है। हरा साग खासतौर से चाहिए और वह मिल ही नहीं सका। यह तो मैंने वैसे ही लिख दिया है। साग तो शायद अब आने लग जाएगा दूसरी बातें भी मामूली है। खास बात तो यह है कि रहन-सहन की दृष्टि से मैं ठीक हूँ। ज्यादा सोचने से, ज्यादा पढ़ने से दिमाग पथरा सा जाता था। कल से मैंने ताश खेलना फिर शुरू किया है जब कभी दिमाग में भारीपन मालूम पड़ेगा-तभी मैंने सोचा है मैं ताश खेलने लग जाऊंगा। सुबह-शाम का समय तो मजे में निकल जाता है-दोपहर का समय गड़बड़ का है-उस समय नींद आने लगती है, पर मैं सोना नहीं चाहता-कभी नींद आ जाती है, तो बाद में पछताता हूँ। गीता के अध्ययन के अलावा यह भी सोचना हूँ कि गीता का जयपुरी बोली में अनुवाद कर डालूं-खयाल यही होता है कि ऐसे अनुवाद का

विशेष उपयोग नही होगा। एक काम उर्दू का अभ्यास करने का सोचा है। वहरहाल मेरे समय का उपयोग अब अच्छा हो जाएगा-और अब मुझे किसी तरह की तकलीफ नही होगी। इस बारे मे आप सर्वथा निश्चिन्त रहे-और सब लोगो को निश्चिन्त करदें।

एक तो आन्दोलन के स्थगित हो जाने से मैं दुखी हो गया। जब आन्दोलन जारी था तो मेरा दिल बराबर वही रहता था। अत्यन्त नम्रता के साथ सही, परन्तु इस सारे काम का 'बीद' मैं अपने आपको ही समझता हूँ। ऐसा अनुभव होता है कि मैं ही इस काम को चला रहा हूँ। छोटे भाइयो, बराबर के भाइयो, बडे भाइयो और गुरुजनो का सारा प्रताप है सही। फिर भी मेरा स्थान विशेष है कम से कम मैं यही समझ कर चलता हूँ। श्रेय मे सभी भागीदार होते हैं-कुछ विगाड हो जाए तो उसका जिम्मा मेरे सिवाय और किसी का नही हो सकता। मैं ही इस लड़ाई को शुरू करवाने वाला हूँ-इसमे हार हो जाए या और कोई विघ्न आ जाए तो मैं सोचता हूँ मेरा मु ह काला हो जाए-मैं स्वभाव मे ऐसा मानता हूँ। खास कर मेरे कारण मे जमनालालजी हैं, जमनालालजी के कारण से गाधीजी हैं यह ऊपर की तरफ और नीचे की तरफ वनस्थली के फक्कडो का यह सारा काम है-और मेरे बिना फक्कड इस काम मे क्यो और कैसे पडते? धन्धेधारी साथियो मे पाटनीजी जैसे से थोडा बहुत काम ले लिया है। इन साथियो मे कई सच्चे आदमी हैं, परन्तु परिस्थिति से मजबूर हैं कई, आदतो से लाचार हैं कई! पिद्दी (छोटी सी चिड़िया) क्या आकाश को उठा सकती है परन्तु मैं पिद्दी ऐसा ही समझता हूँ। यह बुरा हो, चाहे अच्छा इस कारण से मुझको चैन नही पडता था- बडा व्याकुल मैं रहता था। पीछे रहने वालो ने शानदार काम किया जनता ने बडा जबर्दस्त साथ दिया-राज वालो के दान्त जरुर खट्टे हो गये। अपना आन्दोलन अपने शिखर की तरफ पहुँचा जा रहा था- ऐसे मौके पर गाधीजी ने स्थगित करने का आदेश दिया। गाधीजी जैसे महापुरुष के हाथों मे हम सुरक्षित हैं-जो कुछ नतीजा आएगा वह अच्छा ही आएगा और जयपुर के सिर विजय का सेहरा जरुर ही बन्धने वाला है। तथास्तु।

रहन-सहन की बात मैंने कही-आन्दोलन की कही। तीसरा बोझा मुझ पर जेल के साथियो का था। उनका उसूल कुछ नही-परन्तु उन्होंने बडी पोल मे रहना शुरू किया। दिन भर हसी मज़ाक, और कई बार सूगले गन्दे मज़ाक भी, दिन भर खाने पीने की बात-यह वातावरण बनने लग गया। रहन-सहन के सुविधाजनक चक्कर मे पडा हुआ सोचने की तकलीफ क्यो करे? कभी सोचे तो सामने वाला आदमी सिद्धान्त की दृष्टि से ठीक मालूम पडे-परन्तु उस ठीक पर जाने की खुद की तैय्यारी नही। कई बार मैं सोचता हूँ कि मैं मजबूती से काम लेता तो शायद सब कुछ ठीक कर लेता और मुझे इतना दुखी नही होना पडता। कौन जाने क्या होता। आखिर हुआ सो यह है कि लोग मज़ाको में आने लगे कभी-कभी किन्ही के बीच मे झूँठी या सच्ची झपट हो गयी। कुछ-कुछ को मैंने समझाना भी शुरू किया। दोनो समय की प्रार्थना का चार्ज अपने ऊपर ले लिया। सो यह काम मिनट की कडाई के साथ होने लगा। खेल (राउडर) भी ठीक-ठीक होने लगा। अब कुछ लोग काम करने की भी सोचने लगे हैं। यहीं कुछ समय रहना हुआ तो कोई गडबड़ नही रहेगी, ऐसा

मैं मानता हूँ। मैं भीतर ही भीतर घुटा, मैंने भीतर के वातावरण का सुधार चाहा, अपने आपको कायम रखा, इसका भी कुछ असर पड़ा होगा क्या ? यह मैं आश्चर्य के साथ विचार करता हूं। दूसरे लोगों से मेरे अन्दर जल्दी उचाट हो जाती है, इसीलिए दूसरे लोग मुझसे उचट जाते होंगे, सबसे हंसकर काम करना, शिष्टाचार के नियम निभाना, दिल के भीतर कुछ हो या नहीं बाहर से व्यवहार अच्छा रखना यह कला मेरी सीखी हुई नहीं है, दुनिया में इसकी जरुरत तो है। यही सबसे बडी कमी मेरी है। मैं बहुत कम मौकों पर गम्भीर होता हूँ। और मेरे गम्भीर मौकों में भी काम की गम्भीरता ही चलती रहती है।

पिछले १० दिन में (बल्कि २० दिन से जब वह नया गजट राजनैतिक संस्थाओं के बारे में निकला था) हमारे छूटने का एक नया किस्सा चल पडा। सत्याग्रह स्थगित हुआ, तो छूटना ही चाहिए ? स्त्रियों को छोड दिया गया है तो हमको भी छोडना ही चाहिए, खबर उड गई कि जमनालालजी दिल्ली गये हैं-जब जमनालालजी छूटकर दिल्ली गये तो हमको भी छूटना ही चाहिए। यहां बेकार बैठे हैं बाहर निकलें तो काम करें। जलसे की तय्यारी करें। फक्कड़ संघ की स्कीम ठीक करें। विद्यालय को सम्भालें। इसलिये छूटना अच्छा ही है, इस तरह मैं भी सोचने लगा और लोगों ने अपनी सोची-परन्तु छूटने के लिए सभी उत्कंठित मालूम पडते हैं। कल पहले पहल मैंने यह सोचा कि हमारा जल्दी छूटना ठीक नहीं है हमको जल्दी छोडने से राज का पक्ष मजबूत होता है-और हमको छोडने में जितनी देर होगी उतना ही राज का पक्ष कमजोर होगा झगडे की खास खास बातें होने के बाद ही हमको छूटना चाहिए-पहले छूटने से काम बिगड सकता है। जयपुर का सवाल वैसे सीधा है फिर भी राज वालों में समझदारी या उदारता का माद्दा बिल्कुल नहीं है-सो सीधा मामला भी बाद में उलझा हुआ रह सकता है। किसानों को छोडने का सवाल, नौकर वालों को छोडने का सवाल-ये सीधे नहीं है। नागरिक अधिकारों को राज यों ही कैसे दे देगा और सच्चा शासन सुधार भी करना मुश्किल ही है। असल में ये लोग खुद की मौत से डरते हैं-इसीलिए सारी गोलमाल है-नहीं तो जयपुर में लडाई का काम ही क्या था। अस्तु। पिछले १० दिन हमारे बर्बाद से हो गये। अब हमने यह समझ लिया कि जब छूटेंगे जब छूट जाएंगे-हम इस बारे में सोचने की जरुरत ही नहीं। गांधीजी के हाथों में मामला है और वे जो कुछ करेंगे। वह ठीक होगा।

खादी प्रदर्शनी हो रही है किसी बडे नेता को बुला रहे है। यह सब कुछ अच्छा है। मेरे सामने भविष्य का उज्जवल चित्र आता रहता है-राजस्थान का राष्ट्रीय विद्यापीठ-वनस्थली, राजस्थान का राजनैतिक केन्द्र-जयपुर, राजस्थान की सेवक मण्डली-फक्कड संघ-न जाने क्या-क्या सोचता रहता हूँ। आदमियों का जोड-तोड लगाता रहता हूँ। कभी-कभी रुपये पैसे की चिन्ता भी हो जाती है कारण यह है कि साधारणतया धनिकों के साथ मेरी पटने की आशा नहीं फिर भी विश्वास है कि काम लायक रुपया तो आता ही रहेगा।

(३)

लांवा, २८-४-३६

परसो की मुलाकात के अन्त की दो बातो के जवाब में उस समय नही दे सका। एक तो आपने कहा था कि मैं प्रसन्न नही दिखायी देता हूँ-सो मुझको प्रसन्न रहना चाहिए। दूसरी बात भोजन के बारे मे भगीरथजी ने कही थी।

मैं आजकल खूब प्रसन्न रहता हूँ-यो तो अपने काम काज को (वनस्थली की आर्थिक स्थिति की तथा प्रजामडल के भावी कार्यक्रम की) थोडी बहुत चिन्ता तो मुझे होती रहती है-खासकर इस कारण से कि यहा बैठा हुआ मैं अपने आपको असहायावस्था मे पाता हूँ। और बाहर के कार्यकर्त्ताओ की स्थिति वैसी नही मालूम पड रही है जैसी से मुझको सतोष हो सकता। और किसी बात का मेरे चित्त पर कुछ भी बोझा नही है। उस दिन मैं गाधीजी का राजकोट विषयक वक्तव्य हिन्दी मे देख चुका था। वह वक्तव्य बडा दर्दनाक था-और एक दो जगह मेरी समझ मे कम बैठा था। मैं उस वक्तव्य का ठीक ठीक अर्थ लगाने की उधेडबुन मे लगा हुआ था और गाधीजी की पीडा के साथ साथ मेरे अन्त स्थल मे भी पीडा हो रही थी। उधर सुभाषबाबू के हालचाल से भी चित्त विक्षुब्ध होता रहता है-राजकोट के बाद गाधीजी कलकत्ता जाएगे। वहाँ कैसी क्या निपटती है सो बोझा भी मेरे चित्त पर था। उसी दिन जोबनेर ठा० सा० आये थे और विस्तार से बातें करके लौट चुके थे। पहले दिन देशपाडेजी आदि से जो समाचार मिले थे उन पर से भी कई तर्क वितर्क चल रहे थे। इन सब कारणो से उस दिन मैं अगर आपको विचार निमग्न (अथवा, कम प्रसन्न-कम हँसता हुआ) मालूम पडा तो चिन्ता की कोई बात नही है।

एक बात यह भी है कि यहा मैं अकेलापन अनुभव करता हूँ। सब सिपाहियों आदि से मेरी बडी दोस्ती है-मुझको देखते ही वे खिल उठते है-मैं भी उन्हे देखकर खुश होता हूँ। जेल के साथियों मे भी एक दो को छोडकर कोई ऐसा नही है जिससे मेरी ठीक ठीक न निभती हो-जिन एक दो को मैंने अपवाद किया है, उनसे भी मेरी जाहिरा कोई गडबड नही है। फिर भी यहा के रग ढग से मैं सन्तुष्ट नही हू। अब चिन्ता तो मै इस बात की नही करता हू-परन्तु विजातीयता का अनुभव होने से "साथ का"-यानी दूसरो के साथ रहने का मजा कम हो जाता है। कई बातें ऐसी है जिनको मै लिखना पसन्द नही करता-न कहना ही पसन्द करता। यहा तक कि इन बातो को सोचना भी मुझको अच्छा नही लगता। एक जरा सी बात को ही लीजिए। मैं साधारण भोजन करता हू तो सचमुच ही एक सिद्धान्त के अनुसार एक जाने हुए आदर्श को निभाने का ईमानदारी के साथ प्रयत्न करने के तौर पर करता हू। साधारणतया दूसरे लोग मुझसे सहानुभूति रख सकते हैं कि ऐसा करने से मेरे शरीर को नुकसान पहुँच जाएगा या मेरे लिए कुछ अच्छा भाव रख सकते है कि मै थोडा सा कष्ट उठाकर एक अच्छा प्रयत्न कर रहा हू। लेकिन दुर्भाग्य से मेरे साथियो मे शायद ही कोई एकाध ऐसा निपटे जिसके चित्त मे मेरे प्रति सहानुभूति या सतोष का भाव हो।

मैं ऐसा महसूस करता हूं कि इन लोगों में से अधिकांश को यह बात अटपटी सी मालूम पड़ती है, इसका फल यह है कि वे इस बात का मजाक उड़ाते हैं और जब उनको मेरी अनुपस्थिति में मौका मिलता है तो वे नुक्ताचीनी करते खुश मालूम होते हैं। इसी तरह मैं गप्पाष्टक में शामिल नहीं होता हूं—जब नियमपूर्वक रहता हूं—इसीलिए मेरा अलग सा भी रहना पड़ता है उनकी गप्पों में कम शामिल हो पाता हूं—कभी बैठता भी हूं तो वह नीचे दर्जे की गप्पाष्टक और ऐसे जिम्मेदारी मुझे भाती नहीं। ज्यादातर लोगों को खा लो खाने की चिन्ता रहती है या छलने की। मैं इस तरह की बातें लिखने लग गया—परन्तु अफसोस है कि यही बातें मुझको देखने सुनने को मिलती हैं। फिर गांधीजी तक पर यह कमेन्ट पास होते रहते हैं, बड़ी निर्दयता के साथ कहा जाता है "उन्होंने यह गड़बड़ करदी और वह गड़बड़ गांधी—गांधीजी ने सारा काम ही बिगाड़ दिया"—जिन लोगों को ज्यादा समझदार और जिम्मेदार होना चाहिए था उनकी जबान से चाहे जब और चाहे जिसके सामने ये बातें सुनना बड़ा कष्टकर होता है, हालांकि मैं निरर्थक बहस में कभी नहीं पड़ता हूं।

मैंने यह हृदय से जो कोशिश की है कि मुझको असंतोषजन्य का अनुभव क्यों होता है। मेरा इतना सौभाग्य नहीं है कि मुझ पर इन बातों का असर कतई न पड़े और यह भी मेरे सौभाग्य की कमी हो सकती है कि नाजिलों पर सीधी बात का सीधा असर न पड़कर अक्सर उल्टा ही असर पड़ता हुआ मुझको मालूम पड़ता है। परन्तु इस स्थिति के बावजूद मैं निश्चिन्त और आशावाद की वृत्ति से रहता हूं। इतना अवश्य है कि यह स्थिति ऐसी ही होती तो मैं ज्यादा स्वस्थ रह सकता था।

भोजन की बात तो इतनी सी है कि जैसा भोजन मैं कर रहा हूं उससे मेरी तन्दुरुस्ती खराब नहीं हो सकती। यहां के पानी की जो खराबी है वह तो सबके लिए है—पानी का जोड़ों में दर्द कर देने का असर मालूम पड़ता है। इसके अलावा पौष्टिक भोजन न करने से कुछ दुबला होना, वजन कम होना या कुछ कमजोर सा मालूम पड़ना—यह हो सकता है। बाकी तन्दुरुस्ती खराब नहीं हो सकती। दो चार महीनों तक भोजन की कमी से जो कमजोरी आएगी वह महीने बीस दिन तक ठीक भोजन कर लेने से ठीक हो जाएगी। जब आन्दोलन की बातें चल रही थीं तभी (चन्दनकुटीर वाले) गांधी कार्यकर्ताओं की ओर से मुझको मालूम पड़ा था कि उनके खयाल से मुझको "ए क्लास" मिले तो भी लेना नहीं चाहिए और यही मेरा खयाल भी था। आन्दोलन छिड़ा और हम जेल में पहुंचे। तुरन्त ही यह पता चला कि राज वाले हमसे राजनैतिक कैदियों के साथ साधारण बर्ताव करना चाहते हैं। हमको जरूर मालूम पड़ा कि राजनैतिक कैदियों की हैसियत कायम करवाने के लिए हमको लड़ना चाहिए। इसीलिए हमने भूख हड़ताल की। भूख हड़ताल में हमारी जीत हुई और हमारी मांग के अनुसार राजनैतिक कैदियों की हैसियत कायम हो गयी। इस सर्व-साधारण हैसियत के मुकाबिले में ज्यादा वालों को विशेष सुविधायें मिलीं और बाद में पता चला कि सेंट्रल जेल में बहुत मामूली बर्ताव होने लगा। जब तक सेण्ट्रल जेल की बात सामने न आती तब तक मुझको मोहनपुरा की सर्वसाधारण की स्थिति से रहने में कोई आपत्ति

नही मालूम पडी। सेण्ट्रल जेल के बर्ताव के खिलाफ मुझको लडना चाहिए था-कानूनी लडाई की गुंजाइश तो इसलिए नही रही कि जो कुछ तय हुआ या वह जबानी ही हुआ था और भूख हडताल इसलिए नही की जा सकी कि गाधीजी भूख हडताल का विरोध करते है। अब फिर कोई भला आदमी क्या करे? और खास कर जब वह भला आदमी चाहता है कि मैं अपने किसी साथी के मुकाबिले मे सुविधा का उपभोग नही करू ? मामूली भोजन के मामले मे मेरी तरफ की यही सफाई है। असल मे तो यहा पर रहते हुए मैं सुविधा का उपयोग किये बिना रह नही सकता। एक मे अधिक साग बनते हैं, उनमे से कोई सा मैं ले सकता हू, साग की एवज मे खरबूजा, दही जैसे चीजे ले सकता हू-साग साधारणतया अच्छे बनते हैं, उनमे कई बार घी भी काफी होता है। जैसे सेण्ट्रल जेल मे बनते होंगे वैसे जेल के साग बनवाने का झझंट यहा पर पार पड़ता हुआ नही मालूम पडता। इतना जरूर है कि मैं अपनी जो थाली मोटी रोटी मे घी नहीं लेता, दूध नही पीता, बाहर से आने वाले मिठाई और फलो के ढेरो मे से कुछ नही लेता हालाकि मेरे देखते देखते वे बिगडते रहते हैं, ज्यादा होने की वजह से। अखबार देखने और मिलने आदि की विशेष सुविधाओ का उपयोग भी मैं करता ही रहा हू।

और आखिर इन बातो मे रखा भी क्या है? असल मे भूख हडताल के अलावा किसी कहने लायक असुविधा का सामना हमे करना ही नही पडा? बेहद आजादी यहा पर है। एक दिन मुलाकात के समय का सवाल उठा था-वह सयोग से आप आयी उस मौके पर हमने भलमसी से बात मान ली-फिर मुलाकात वालो को भोजन न कराने की बात आयी उसका बार पहले पहल आप पर ही हुआ-सरासर भोजन का समय हो जाने पर भी मैंने तो नही कहा कि आप भोजन कर जाओ-उसके बाद आने वाले सभी भोजन करके ही जाते हैं। आज जो लोग आये वे पाच घटे ठहरे और उनको ऐसी जियाफत हुई कि क्या कहा जाए? बडी मुश्किल से उनको रवाना कर देने की बात पार पडी। उनकी तरफ की कोई मुश्किल नही थी-परन्तु मेरे साथियो मे से कुछ बडे बडे आदमियो की तरफ से चाहा जा रहा था कि मुलाकात वाले यहा से शाम को जाएगे। हालाकि काम कुछ नही था निरर्थक गप्प चल रही थी। जब जाने लगे तब जरा सी काम की बात पाटनीजी और मुझ से दो एक आदमियो की हुई-उसका फालतू उतावल करके अधूरी रखदी। ऐसा मालूम पडता है हमारा जन्म इन्ही बातो के लिए हुआ है और हमको इन्ही बातो को खुशी से बर्दाश्त करना चाहिए।

(४)

झालाना कैम्प,२८-५-३९

मुझे जरूरत मालूम हो रही थी कि मैं थोडी सी सिद्धान्त चर्चा आपसे करूं-ताकि आपको मेरे यहां के व्यवहार के बारे मे किसी तरह का शकशुबा या वहम न रहे—आप सारी स्थिति को सही-सही समझ सकें।

आपको पता है कि मैं अपने आपको सच्चा आदमी मानता हूं—इस अर्थ में कि मैं जानबूझ कर कभी गलत बात नहीं कहता। लेकिन जेल में रहते हुए मैंने सेवा के मोह में आकर कुछ काम ऐसे किए जिनके बारे में कभी सीधे सवाल जवाब का मौका आ जाए तो उनको ज्यों के त्यों कबूल करने में मुझको बड़ा जोर आवे। यह स्थिति 'सत्य' की दृष्टि से ठीक नहीं हुई। यह बात जरूर है कि जिस जेल में हमको रखा गया है उसके नियम हमको आज तक किसी ने नहीं बताये हैं। कितने दिन में मिलाई होती है, पत्र व्यवहार कैसे होता है, कितनी देर मिलाई होती है, किसी के सामने होती है या नहीं, हम मिलने वालों से सब तरह की बात कर सकते हैं या नहीं, बाहर से किसी चीज के आने जाने की रुकावट है या नहीं—कम से कम मेरे लिए सही बात यह होती कि मैं इन बातों को राज से साफ कराने की कोशिश करता – कुछ बातें साफ होतीं—एकाध शायद साफ न भी हो पातीं—परन्तु साफ होने के बाद जो स्थिति होती वह हमारे बहुत 'खिलाफ' पड़ती—और जो 'सुविधाएं' हमको मिली हुई हम समझते हैं वे एक बड़ी हद तक कम हो जातीं। ऐसा होता तो मैं अपने साथियों की तरफ से 'शाप का पात्र' हो जाता और मेरा खुद का 'सार्वजनिक हित का मोह' भी एक बड़ी हद तक पार नहीं पड़ता। वह होता तो अच्छा होता या बुरा—इसका विचार करने के लिए अब कौन बैठे? मैंने सार्वजनिक हित के मोह में आकर आप लोगों से राजनीति की बातें करना ठीक समझा, इसी बारे में पत्र भेजना ठीक समझा, ज्यादा देर तक कामकाज की बातें करने में कोई हर्ज नहीं समझा, एकाध बार बेवक्त हो जाने पर आपके यहां पर भोजन कर लेने में भी कोई आपत्ति नहीं समझी, एक से अधिक बार गुमनाम से लेख लिखकर और चुपके से बाहर भेजकर अखबारों में छपवा देने में गर्व का अनुभव किया, इत्यादि। परन्तु मुझको इतना सन्तोष अवश्य है कि मैंने अपनी व्यक्तिगत सुविधा की दृष्टि से प्रायः कुछ नहीं किया। जो कुछ किया वह प्रायः सभी कुछ सार्वजनिक हित की दृष्टि से किया। लेकिन अब मैंने सोचा है कि यह भी ठीक नहीं था। सिद्धान्त और व्यवहार दोनों की दृष्टि से जेल में आने के बाद बाहर की चिन्ता रखना बुद्धिमानी का काम नहीं है। सिद्धान्त के अनुसार तो यह एक तरह की चोरी है – और व्यवहार के हिसाब से यह सारा प्रपंच दुःखदायी है। इसके अलावा पत्र भेजने और स्वीकार करने का धंधा तो जोखिम से भरा हुआ भी है। मेरा यह विश्वास है कि इतना प्रपंच करके भी मैं सार्वजनिक हित की सिद्धि नहीं कर पाया—शायद ही कुछ लाभ हुआ हो। फिर यह प्रपंच क्यों किया गया? इस मामले की बहस बहुत लंबी हो सकती है—परन्तु आज लंबी बहस में पड़ने का मेरा विचार नहीं है। सीधी बात तो इतनी ही है कि जब गांधीजी के तत्वावधान में सत्याग्रह चला तो हमारे लिए कोई कारण नहीं कि हम अपने आचरण को गांधीजी के माने हुए सिद्धान्त के विपरीत होने दें। व्यावहारिक दृष्टि से मैं यह सोचता हूँ कि मुझको अपने साथियों की और अपनी निज की स्थिति में राज वालों से बात करने के झगड़े में अब नहीं पड़ना चाहिए और राज वालों ने किन्हीं बातों को साफ नहीं किया तो यह उनका जिम्मा भी है। आपने जाकर सबधिन ऑफिसर से इजाजत मांगी, उसने देदी, कौन-कौन आवे और कितने आदमी आवें यह साफ नहीं—तो फिर कोई भी १०-५ आदमी आ सकते हैं -यहां पहुँचने पर कोई राजकर्मचारी यह फिक्र नहीं करता कि आपको अपनी मौजूदगी में हमसे

मिलावे तो आपको हमको यह फिक्र करने की क्या जरूरत पड़ी है – ज्यादा देर तक ठहरने पर भी कोई ऐतराज न करें तो अपन क्यो यह ख्याल करें कि ज्यादा देर ठहरना ठीक नही हुआ। और जब एकान्त मे बैठे बात करते हैं तो अपने आपने सब तरह की बात करने की आजादी है ही। इतनी बात जरुर है कि जब हमको यह मालूम है कि आफिसरइन-चार्ज महसूस तो करता है लेकिन लिहाज के मारे कुछ कहता नही तो फिर हमारा धर्म है कि हम उसकी पोजीशन को खराब न करें। बारीक सिद्धान्त के हिसाब से मेरी यह दलीलबाजी ठीक साबित हो या नही, परन्तु साधारणतया तो मुझको इसमे सिद्धान्त की हानि नही मालूम पडती। परन्तु कोई बिना इजाजत ही आ जाए तो उससे मिल लेना तो ठीक नहीं हो सकता उसमे जोखिम भी बहुत है – जयपुर मे बिना इजाजत आ जाए और फाटक पर उसको कोई रोके नही और भीतर आने दिया जाए तो फिर हमारा क्या कुसूर हुआ ? कुसूर हुआ तो उनका जिन्होंने रोका नही। लेकिन हम यह तो जानते हैं कि नहीं रोकने वाले हमारे साथ रियायत करते हैं—और उनकी यह तय्यारी नही कि मौका पडने पर वे गड़बड़ को मजूर करलें। दूसरा बिना इजाजत आना यह हुआ कि चुपके से पिछले फाटक पर आजाए और चोरो की तरह बात की जाए। कुछ आपत्ति रहित सामान देने के लिए कोई साधारण आदमी भीतर तक आ जाए, यह दूसरी बात है—हालाकि हिसाब से तो उसे भी भीतर आने देना नही चाहिए। गडबड तो लावा मे भी चलती थी परन्तु यहा आने के बाद ऐसी गड़बड बहुत हो गयी यानी मेरी बर्दाश्त की हद के बाहर हो गयी और जब मुझको यह मालूम हो कि मैं खुद भी—सार्वजनिक हित की दृष्टि से ही सही गड़बड मे एक हद तक तो शामिल होता हूँ तो फिर मैं दूसरो को क्या कह सकू ? इसलिए मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने आपको जेल जीवन की कडी कसौटी पर कसू —और थोडी सी कडाई जरुरत से ज्यादा भी इसलिए करु कि गुजरे हुए जमाने का कुछ प्रायश्चित हो और आइन्दा के जेल जीवन के लिए मुझको ट्रेनिंग भी मिले। बिना इजाजत आये हुए आदमी से बात नही करना, यहा तक कि रामप्रताप जैसे से भी नही करना (वह आइन्दा भीतर आएगा ही क्यों ?) कोई खास काम हुये बिना अपने मकान के बाहर नही जाना – मकान की चार दीवारी के बाहर तो जाना ही नही लेकिन इस हवेली के सामने वाले चौक मे भी बहुत खास काम बिना नहीं जाना, भोजन के समय भोजनशाला मे, शौच के समय पाखानो मे, स्नान के समय स्नानघर मे, पेशाब करने को या आराम के समय ऊपर की छत पर, घूमने के समय घूमने के स्थान मे, काम होने पर साथियो के कमरो मे—इस हिसाब से बाहर आना जाना-जो मिलने वाले मेरे कमरे में आवें उनसे साधारण बात प्रेम के साथ करली जाए। बाहर पत्र भेजने का तो कोई सवाल ही नहीं। अपने कुशल समाचार के अलावा कोई सदेश भी नही भेजना। जो कोई मुझसे खुद से मिलने को आवेगा तो वह मेरे पास आ ही जाएगा—जितनी देर उसे ठहरना होगा या ठहरने दिया जाएगा उतनी देर वह ठहर जाएगा—और जब मुझे स्वतः एकान्त मिल जाएगा तो मैं कुछ दिल खोलकर भी बात कर लूंगा—फिर भी बाहर की बातो को ज्यादा जानने के या उनमे सलाह मशविरा देने के मोह को मैं जरुर रोकूंगा। भोजन का मामला तो मेरा पहले से साफ है उसमे से इतनी सी बात और करुगा कि मैं किसी भी हालत मे अपनी पसन्द का साग नही मागूगा

रसोईदार जो कुछ दे देगा उसी को खालूंगा, साग की अदला बदली नहीं करूंगा। मैं सोचता हूँ कि इतना करने पर मेरा जेल जीवन शुद्ध हो जाएगा और इसमे मुझको सतोप होगा और शक्ति मिलेगी। विशेष या नयी तरह का कष्ट मुझको नही होगा। बाहर आने जाने के बारे मे यह है कि मैं स्वभाव से भी इधर उधर डोलने का शौक नही रखता हूँ। बात करने के बारे मे यह है कि मैं तो स्वभाव से ही गभीर रहता हू—और खुद कम बोलता हू और दूसरो की निरर्थक बातों को सुनना पसन्द नही करता हूं। अपने काम और विचार की धुन मे रहता हू, मौका हुआ तो सभ्यता की हद मे मजाक करलूं बाकी असत्य और अश्लील ध्वनि के मजाको से तो मुझको मन मे सख्त नफरत है।

यह प्रकरण तो सच्चाई का हुआ। अब जरा सी चर्चा अहिंसा की करूं। मैं अहिंसा का दारोमदार कोमन पर मानता हूँ। इसके अलावा मेरी खानदानी देन और निज की प्रवृत्ति भी कुछ अक्खडपन की ओर झुकी हुई है। झुझलाने जाने और चिड पडने का ऐब मुझ मे है। किसी का ऐब मैं देखलूं और तिस पर उसे ऐंठना हुआ मैं पाऊं तो मुझे उस आदमी से नफरत हो जाएगी- फिर मेरा मन उससे नही मिलेगा। जिन लोगों मे श्रद्धा नहीं, जिनकी पवित्र सेवावृत्ति नही, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव मानते है और फिर भी साम्यवादी होने का दम भरते हैं, जीवन मे जिनका कोई सिद्धान्त न हो, करते कुछ हों कहते कुछ हों-इस नमूने के आदमियो से मेरी पटती नही। केवल स्वार्थ की दृष्टि से कोई चले, मनभावनी बात सुनकर खुश हों और कहने वाले की तारीफ करें खुद के मन के विपरीत कोई कह दे तो उसको बेईमान या खराब नीयत वाला तक बतला दे-बस यह तरीका मुझको नापसन्द पडता है। यह सारा विस्तार एक ही बात का है-मैं कहना यह चाहता हूँ कि मेरे प्रेम मे या मेरी अहिंसा मे कमी पा रहा हूँ-और सचमुच अपने आपको छोटा मान रहा हूँ। दूसरे की कमियों को देखकर मुझको उनसे वैराग्य या निवृत्ति क्यों हो? मेरे अन्दर खराम क्यो आवे? मैं उन बातों को प्रेमपूर्वक बर्दाश्त क्यो न करू? अपने आत्मनिरीक्षण के क्षणो मे मैं इन बातों को भली भांति पहिचानता हूँ। परन्तु एक तरफ मेरे प्रेम का इतना विकास नही हो पाता है तो दूसरी तरफ मैं नकली व्यवहार बिल्कुल नही करता हूँ-किसी को देखते हीं स्वभावत मैं नही मुस्कुरा सकता तो मैं नही मुस्कुराऊ गा। किसी से बातो मे लगने को मेरे जी मे नहीं है तो मैं नहीं लगू गा-मजाक मे भाग लेना मैं नही चाहूँगा तो मैं चुप ही रहूँगा। इसके विपरीत मैं देखता हूँ कि कुछ लोग ऐसे है जो एक क्षण पहले एक आदमी की सख्त से सख्त बुराई करेंगे और दूसरे ही क्षण मे उससे प्रेमालाप सा करते पाए जाएगे। वे लोग शिष्टाचार के साचे मे ढले हुए है और मैं सफा खुरदरा आदमी-लेकिन खुरदरा होना ज्यादा अच्छा जचता है, बनिस्बत नकली व्यवहार के। फिर भी मेरे प्रेम का विकास होने की जरुरत तो है। मैं सचमुच त्याग कर सकता हूँ और चेलेंज के साथ कह सकता हूँ–लेकिन दूसरे लोग कम त्याग कर सकते हों तो मुझे उनको प्यार तो करना ही चाहिए–मैं उनको प्यार न कर पाया तो मैं जरुर छोटा आदमी हुआ। इस चीज का अभ्यास मैं कर रहा हूँ-लेकिन नकलीपन और दभ अपने भीतर कभी न आने दूंगा उसकी अपेक्षा तो मैं खुरदरेपन मे ही बूढा हो जाना ज्यादा पसन्द करूगा। मेरे भीतर सचमुच विशुद्ध प्रेम है तो

मेरी वाणी मे खराश क्यो हो ? परन्तु इस बात का ताल्लुक तो प्रकृति से भी है-मुझे सतोष रहता है कि चिढकर भी मैं बुरा तो किसी का चीतता नही, और अनावश्यक रीति से चिढ जाने का पता लगते ही मैं दु,खित भी हो जाता हूँ। फिर मेरे भीतर नापसन्द किये हुए लोगो से हटने की-उनमे वैराग्यहीनता की आदत तो है ही सही। मेरा प्रेम ऐसा होना चाहिए कि मुझसे कोई उचटने न पावे। बहरहाल मैं तो किसी से उचटूं ही नही। मुझको कभी-कभी उचटने के लिए मजबूर होना पडता है, यह मैं जानता हूँ-और मैं अपने बचाव के लिए दलील भी कर सकता हूँ-फिर भी मैं यह खूब महसूस करता हूँ कि मेरी सारी दलीलें निरर्थक होगी मानी वे ठीक हो तब भी। बात तो यह है कि मुझको तो ऊँचा चढना है, आगे बढ़ना है-प्रेम मेरे भीतर है, तो बाहर भी उसका पूरा प्रतिबिम्ब क्यो न आवे। मैं प्रेम का पुतला अपने आपको मानताहूँ तो फिर मुझको कोई बुरा या अविश्वसनीय या चालाक, या अभिमानी या 'हिटलर' क्यो समझे। अपनी बात की जिद्द रखने का स्वभाव होते हुए भी और अपनी अच्छाई का मान रखते हुए भी मैं 'हिटलर' या अभिमानी तो नही ही हूँ फिर भी मेरी कोई कमी तो है जिसकी वजह से मेरे दोस्तो को ऐसा खयाल करने का मौका मिलता है। मुझे अपनी सेवाओ का एवजाना नही चाहिए। मुझे नाम या शोहरत नही चाहिए, तो फिर मुझे क्या जरूरत पडी है कि मैं अपनी अच्छी बात को दूसरे से अच्छी कहलवाने का इन्तजार करूं। अच्छा कहलवाने की जरुरत मुझको नही होनी चाहिए। मै तो जो हूँ सो हूँ-मुझको सारा जगत बुरा कहता हो तो कहे, किसी को अच्छा कहना हो तो कहे मैं तो जहा का तहां अडिग रहूँ और अपने कर्तव्य के पालन मे लगा रहूँ। यह सब कुछ अहिंसा से ताल्लुक रखने वाला विषय है।

सत्य और अहिंसा दोनों कसौटियों पर अपने आपको कस लिया तो फिर क्या बाकी है। लेकिन यह तो मैंने अपनी बात की। मैंने अपने आपको अच्छा बना भी लिया तो क्या हो जाएगा, अकेला चना क्या भाड फोड देगा ? मुझको साथी और सहयोगी तो चाहिए न ? परन्तु साथी कहा है ? थोडे मे फक्कड लोग है-वे अपने हाथ उबलते हुए कडाव मे डाल सकते हैं-परन्तु उनमे ऊँची काबिलियत के लोग नही है। ऊँची काबिलियत के लोग जो हैं, वे या तो आलसी हैं, या स्वार्थी हैं, या अधपगले है, या झफटो मे उलझे हुए है। जो युवक ही है, उनको अपने भविष्य की पडी है-कोई कलकत्ते जाता है तो कोई बम्बई। २४ घण्टे काम करने वालो की जरूरत है-तफरीह के तौर पर पब्लिक काम नही हो सकता। ऐसे लोगों का एक हद तक उपयोग हो सकता है। लेकिन काम उनके भरोसे नही छोडा जा सकता-तो वह राजस्थान और जयपुर का काम कौन कर जाएगा ? मैं ऐसे आदमियो की रचना कैसे करूं ? इसके लिए वही जीवनकुटीर वाली योजना फिर से अमल में लानी होगी। विशेष योग्यता के लोग भी आखिर पैदा होंगे-हल्ले गुल्ले के मौके पर आकर खडे होने से क्या काम चले ? आज आन्दोलन बन्द है तो आज है आदमियो की जरूरत। आज कोई आदमी हों तो उनके धीरज की और उनकी सेवापरायणता की सच्ची परीक्षा हो। ४-६ महीने जेल काटने से काम नही चल सकता। जब हमको अपने देशवासियों को अच्छा बनाना है, उनके नैतिक और सासारिक स्टैन्डर्डों को ऊँचा करना है। और जेल मे आकर

भी हम आदर्श को समझें तो सही, उसकी रक्षा करने की कुछ चिन्ता भी तो रखें सही। यह कभी कभी मेरे आशावान हृदय को निराश कर देती है। एक तरफ वनस्थली की स्थिति का चित्र सामने आता है। दूसरी तरफ राजनीति की दगाबाजियों का चित्र देखता हूँ। उधर यह हिसाब लगाता हूँ कि मैं पूरा भरोसा किस का कर सकता हूँ तो मैं सचमुच ही डरने लगता हूँ। मैंने एक का भरोसा करके बात कहदी-उसने उसी को जाकर सबसे पहले कही जिसको किसी भी हालत मे नहीं कहना था। एक आदमी मुझसे अपने सिद्धान्त से सहमत होता हुआ बात करता है-और मुझसे डटकर उसी सिद्धान्त का पालन करने के कारण मेरी हँसी उड़ाता है। मैं अपने आपको सम्भाल लूंगा। किसी का सोच समझकर पतियारा करूंगा। किसी के विरुद्ध कोई भी बात अपनी जबान पर नहीं लाऊंगा। इससे यह हो सकता है कि मैं अपनी रक्षा आन्तरिक पीड़ा से करलूं, लेकिन मेरे भाईयों की चारित्र्य शुद्धि कैसे हो जाएगी? देश मे जो चरित्र हीनता फैली हुई है, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त को मानने की बात करने वाले लोग दिन दहाड़े चोरियां करते हुए दिखाई देते हैं। अपने साधारण स्वार्थ की खातिर तो फिर भला किस तरह आशा को कायम रखा जाय?

यह सब कुछ है। परन्तु आशा को छोड़ने का काम नहीं, घबड़ाने का काम नहीं, अशान्त हो जाने का काम नहीं। अपने आपको ठीक करना यह पहली बात अपने साथियों के दोषों को नम्रतापूर्वक और प्रेमपूर्वक दूर करने का प्रयत्न करना, यह दूसरी बात। मैं आशा करता हूँ कि आपको इस पत्र से सन्तोष होगा-और मेरे बारे मे आपको अगर कोई चिन्ता होगी तो वह अब जरूर मिट जाएगी। मैं भले ही चिढ़ जाऊं-भले ही निराश हो जाऊं, भले ही दुःखी हो जाऊं-लेकिन मेरे लक्ष्य का सूर्य मुझको सामने दिखायी देता है, मैं अपने 'चरित्र' पर से हरगिज चिग नहीं सकता। गलतियां तो मनुष्य करता रहता है। परन्तु अगर उसको उन्हे ठीक करने की चिन्ता रहती है तो फिर कोई चिन्ता नहीं।

मुझको सन्तोष है कि आप सत्य की मर्यादा का पालन मुझसे कहीं ज्यादा करती हैं और आपका प्रसन्न मुख आपकी भीतरी अहिंसा का परिचय भी देता है। परन्तु आपको मजबूत तो और ज्यादा होना चाहिए।

[५]

झालाना कैम्प

राज के साथ काम चलाऊ समझौता होना अब भी असंभव नहीं है। समझौता हो जाने की सूरत मे तो हम लोग शान्तिपूर्वक काम चलाने की आशा रख सकते हैं। समझौता न हो तब तो फिर आखिर दूसरी लड़ाई की तय्यारी ही करनी पड़ेगी। दोनो सूरतों मे ही हमको अपनी मौजूदा स्थिति की सही जांच कर लेनी होगी। पूरी जांच तो हम लोगों के बाहर आने पर हो सकेगी, लेकिन उस जांच की भूमिका के तौर पर थोड़ा सा आवश्यक काम हमारे बाहर आने से पहले ही जाना जरूरी है।

सबसे पहली बात तो हमको यह देखनी है कि हमारी 'जनशक्ति' यानी कार्यकर्ताओं की संख्या बढ सकेगी या नहीं ? आन्दोलन में से हमको कुछ नये कार्यकर्त्ता मिल सकेंगे क्या ? एक तो पूरे समय काम करने वाले कार्यकर्त्ता और दूसरे खासकर लडाई का मौका आने पर काम दे सकने वाले कार्यकर्त्ता । जो साथी जेल जा चुके हैं, वे इस दृष्टि से कल्पना करके देख सकते हैं कि जेल जाने वाले लोगों में कौन कौन आदमी कैसे कैसे साबित हुए । एक तरह से संक्षेप में अपने अपने जेल अनुभव लिख डालना भी बहुत उपयोगी होगा-उसमें खास खास आदमियों की चर्चा भी आजाएगी । ये 'अनुभव' गुप्त रखे जावेंगे । जो लोग जेल नहीं जा पाये, उनमें से भी देखना चाहिए कि अपने काम के आदमी मिल सकते है क्या ? कार्यकर्त्ताओं की ट्रेनिंग के लिये आश्रम चलाने का मेरा विचार है । ट्रेनिंग में आने के लिए वाक़ई अच्छे आदमियों की जरूरत पडेगी । सब साथियों को यह सोचना चाहिए कि आइन्दा हमको अपनी संख्या जरूर ही बढ़ानी पडेगी । यह सवाल अपने सामने बराबर रहा ही है, पर अबकी बार इस दिशा में अत्यन्त विशेष प्रयत्न करना पडेगा ।

दूसरी बात यह जाननी है कि आन्दोलन का आम लोगो पर कैसा और कितना असर पडा । जो लोग आन्दोलन से पहले प्रजामंडल से परिचित नहीं थे वे भी अब तो प्रजामण्डल को जानने लगे होंगे ? जो लोग पहले से जानते थे, उनमें से कितने कितने लोगों का प्रेम बढा या घटा ? कुछ लोग पीछे भी हटे क्या ? यानी ऐसे लोग भी हैं क्या, जो पहले तो प्रजामण्डल से प्रेम रखते थे और अब नहीं ? प्रजामंडल का चला कर बाकायदा विरोध करने वाले लोग भी हैं क्या ? निजामतों के हेड क्वार्टरों में तो अपने 'अखाडे' (यानी आफिस वगैरह) होंगे ही-प्रत्येक स्थान पर कम से कम दो अच्छे, मजबूत स्थानीय आदमियों की जरूरत होगी । तहसीलों के कस्बों में तथा दूसरे बड़े कस्बों में कमेटियां बनाना किस हद तक संभव होगा ? यानी कहां पर ऐसे लोग मिल सकते हैं या जल्दी पैदा किये जा सकते हैं जिनके भरोसे अपने संगठन के जाल को निजामतों के हैड क्वार्टरों के आगे तहसीलों और दूसरे कस्बों तक फैला सकें ?

आन्दोलन बन्द होने के बारे में तथा बाद में जो जाहिरा गडबड दिखायी दे रही होगी उसके बारे में लोग क्या कहते हैं ? "आन्दोलन बन्द ही हो गया, नहीं तो हम भी जेल जाते" ऐसा कहने वाले कितने आदमी सामने आ रहे हैं ? जो लोग जेल से छूटकर घर पहुँचे हैं, उनके बारे में लोगों के खयालात कैसे हैं ? और जो जेल से छूटे हैं उनके खुद के खयालात कैसे हैं वे दुबारा जाने को तय्यार है या नहीं ?

[६]

मोहनपुरा (बस्ती) कैम्प

वाह रे श्याम ! और वाहरे हम ! हम बैठे बैठे बात करते रहे-और श्याम हमारी मौजूदगी में ही कुछ न कुछ खटपट करता रहा । कभी आता था, कभी जाता था, कभी किवाड़ों को लडाता था, कभी खोलता था, कभी बन्द करने की कोशिश करता था, कभी

इस चीज को छेडता था कभी उस चीज को छेडता था। बार बार तरकीब से कुछ न कुछ खाने को मागता था 'भूख लगी।' "पुडी रखी है, अचार, लेलो और खावो" 'मैं ठडी पूडी नही खाता हूँ' 'तो फिर क्या खाग्रोगे?' 'ठडी पुडी को छोडकर कुछ भी दे दो?' यानी ग्राम दो, रसगुल्ले दो, लड्डू दो—क्योकि ठडी पुडी को छोडकर तो यही चीजें थी। ग्लूकोज के डिब्बे के रुपया ग्राने लायक छेद बना लिया-एक डोरी लगाकर डिब्बे को लटका कर फिरता रहा। इधर उधर जाकर कितनी पचायत की सो पता नही।

परन्तु मेरे कमरे मे ही उसने कई कबाड़े कर डाले-चाकू को ग्राम के रस मे बिगाड़ कर छोड दिया, कलम को बिगाड दी, दवात कलम बाहर छोड गया, ताश के पत्तो को इधर उधर कर दिया। ग्लास को ले जाकर कही रख ग्राया। घडी की डोरी को कैंची से काट डाला। गीता को उठा ले गया उस पर कई तरह के चित्र बना दिये, बाद मे उस पर कोरे कागज का गत्ता चढा दिया। पता नही उसे कहा रख दी। ग्राप के जाने के बाद भोजन ग्रादि से निवृत्त होकर मैंने चीजो को जरा ठीक ठाक किया। कल के दिन के ग्रखबार इधर उधर से तलाश करके बटोर लाया। चाकू ग्रौर कुछ दूसरी चीजों की तलाश कर लाया। फिर मैंने रामायण पाठ किया। परन्तु गीता का पता नहीं चला। सुबह जल्दी ही गीता पाठ करना था। दूसरी गीता भी पास मे नही। बगले के कोने कोने मे तलाश कर लिया, पर गीता कही नही मिली। मैंने एक बार श्याम को सन्दूक को छेडते हुए देखा था। सोचा शायद गीता को सदूक मे रख गया हो? जाकर के सदूक देखा तो उसका ताला बन्द। मैंने खुला हुग्रा ताला सन्दूक के कुन्दे मे डाल रखा था। ताला बन्द मिला ग्रौर चाबी नदारद। मैंने ताले को तोड डालने की सोची। जरा सा भुंझलाया। लेकिन सयोग ऐसा हुग्रा कि सरदारमल के कमरे मे चाबी मिल गयी। चाबी लाकर ताला खोला तो गीताजी सन्दूक के ग्रन्दर विराजी हुई मिली रात के ६ बजे के करीब तब मेरी जान मे जान ग्रायी! मेरी कोई भी चीज इधर उधर हो जाए तो जब तक वह न मिले मैं चैन नही ले सकता।

यह सब कुछ हुग्रा। पर मुझको श्याम पर गुस्सा नही ग्राया। मै ग्रकेला पडा पडा ही हसता रहा। यह क्यों? इसलिए कि श्याम को मै प्यार करता हूँ ग्रौर उसकी चचलता को देखना मुझको ग्रच्छा लगता है। झालाना की चिड़ियो पर मुझको गुस्सा नही ग्राया। यहा पर काम करने वाले लडको पर मैं प्राय नही बिगडा। पुलीस के लोगो से मेरी दोस्ती हो गयी। बगले के पास के मोहनपुरा गाव के लडके भी मेरे दोस्त हैं। उन पर मैं गुस्सा नही करता क्योकि उनसे मेरा घर का सा रिश्ता हो गया है।

श्रीमती रतन शास्त्री के द्वारा लिखे गये पत्रों के अंश

[१]

जयपुर

कल मैं काकाजी (जमनालालजी) से मिल आयी हूँ। उनसे डिटेल मे पूरी बात तो नही हो सकी, क्योकि एक आदमी जब तक हम लोग रहे बराबर वहा मौजूद रहा।

जिस दिन दरबार रवाना हुए उस दिन काकाजी आपके पास नही पहुँच सके और वे आपको भी नहीं बुला सके। इसका कारण यह था कि दरबार और टाड साहब से बात करने मे ढाई बज गए। उसके बाद कोटा के प्राइममिनिस्टर आए हुए हैं उनके यहा चले गये। काकाजी कहते थे कि दरबार और टाड साहब से उनकी दिल खोल कर बात हुई है। दरबार यह चाह रहे हैं उनके विदेश जाने से पहले फैसला हो जाए। काकाजी ने कहा है कि यदि फैसला होता है तो दो चार दिन के अन्दर हो जाएगा। काकाजी का टाड साहब से दुबारा मिलना होगा तब स्थिति साफ हो जाएगी।

-मैंने काकाजी से पूछा कि झालाना क्या समाचार भेज दूं तो उन्होने कहा कि यह समाचार भेज दो कि आखरी समझौता आप लोगो से मिले बिना नही होगा। दरबार अपने माफिक है। जब जरूरत होगी काकाजी आप लोगो को बुला लेंगे या वे खुद आप लोगों के पास आ जाएंगे। निचोड़ आने में टाइम लगेगा। आसार समझौते के से ही मालूम होते हैं।

राधाकिशनजी काकाजी के पास ही रहेगे। काकाजी ने आपके लिए यश से कहलवाया है कि आपको उनके साथ रख देवें, क्योकि उनको सलाह मशविरे के लिए आपकी जरूरत है। सरकार वाले पोलिटिकल डिपार्टमेंट की सलाह लेते रहते है। वे राजकोट का भी देखना चाहते हैं। इन कारणो से टाइम लग रहा है। कोटा के प्राइममिनिस्टर भी शायद इसी काम के लिए आए मालूम होते है।

[२]

जयपुर

मैं कल रात को वनस्थली जाने वाली थी। पर भागीरथजी का पत्र आ जाने से रुक गयी। पत्र आपके पास भेज रही हूँ जिसे आप देख ले। मिश्राजी साहब वाला पत्र भी देख लें। बिल्कुल प्राइवेट बात है, पर आप कैसे भी करके देख ही लें। देखकर मिश्रा साहब को दे दें।

मैं मोहनपुरा और भालाना दोनो जगह गयी थीं। भालाना में हनुमान से और मोहनपुरा में वीरेन्द्र से मिलना हुआ। वील हद से ज्यादा खतरनाक आदमी है, वह यग का भी बाप है। कुछ लोगों से धोखे से माफी मंगवाने की कोशिश कर रहा है। पर लोगो की हिम्मत टूटी नहीं है। वीरेन्द्र कह रहा था कि यग ने २५ भोले आदमियो को टाल कर उनके टिकट मगवाये थे। सुखदेवजी कहते थे कि २५–३० आदमियो को छोड़ने वाले मालूम होते हैं। इन बातो से चोट बहुत लगती है, पर उपाय भी क्या है? सुखदेवजी से भी ज्यादा समाचार मिलना असभव हो रहा है। इसका कारण मैं आऊंगी तब आपको बताऊंगी।

[३]

जयपुर

सुखदेवजी परसों बाहर गये। दरबार के लिए दूसरे जरिये से पुछवाने की कोशिश की थी कि वे विदेश कब जा रहे हैं। पक्की बात तो मालूम नहीं हो सकी, पर आज ही जाने की बात मालूम होती है।

कल काकाजी आप लोगो से मिलने वाले थे। मिले या नहीं? मेरे पास तो समाचार जानने का कोई जरिया नहीं है। कल दोपहर में राधाकिशनजी ने यग को फोन किया था। वह दिन भर रामबाग में रहा बताया। समझौते वाली बात का निचोड दो तीन दिन में आ सकता है।

अब जयपुर में मेरा मन नहीं लग रहा है। पता नहीं काकाजी से भी कब मिलना हो सकेगा। समझौते के मामले में इधर या उधर कुछ भी हो जाए तो निश्चिन्तता आ जाए। अभी दो तीन दिन तो अधरझूल में ही बीतेंगे। आप यह न समझें कि आप जेल में हैं इसलिए ऐसी बात है। जेल का तो क्या? यह तो ६ महीने की बात है। दो चार साल की होती तो क्या था? यह तो अपना कर्तव्य है।

और क्या लिखूं? मौज बहार।

शान्ताबाई (उम्र १२ साल) के द्वारा आपजीसा [हीरालाल शास्त्री] को लिखे गये पत्रों का अंश

[१]

वनस्थली, २७-११-३४

हम तो आपको दो पत्र दे चुके। पर आपने हमको एक भी पत्र नही लिखा। वैद्यजी ने एक पत्र मे थोड़ा सा लिख दिया, क्या उसमें हमारे पत्रो का उत्तर आ गया? हमने बड़ा सारा पत्र लिखा था। आपने उसका भी उत्तर नही दिया। अगर इस पत्र का जवाब नही देंगे तो हम भी आपको पत्र नही लिखेंगे। सुधाकर, सुशीला सब को आपकी, भाभी की, श्याम की याद आती है। सुशीला, सुधाकर कहते हैं—जीजी, अब भाभी आएगी तो हम लेने को स्टेशन जाएगे। श्याम की तबियत जरूर अच्छी हो जाएगी। हमारी पढ़ाई ठीक चल रही है। पत्र मिलते ही उत्तर देना।

[२]

वनस्थली, ११-१२-३४

हम यहा पर कुशलपूर्वक हैं। श्याम की तबियत अच्छी हो गयी होगी? भाभी आप पास हो गयी हो सो खबर मिल गयी होगी? नही मिली हो तो मैं बाद मे नम्बर लिख भेजू गी। आपजी सा, हमको भट्टजी ने कहा है कि "घड़ी की परख कर रहे हैं, दो तीन घड़िया मगवा कर रखी है और समय मिलाकर देखते हैं" सो हमको बडी खुशी हुई। आपने लिखा था कि फालतू बातें मत करना सो हम तो किसी से नही करते है। परन्तु एक दिन सुधाकर से प्रकाशजी ने होड़ करी। प्रकाशजी ने सुधाकर से कहा कि तू इतने आटे की रोटी खा सकता है क्या? सुधाकर ने कहा—हाँ खा सकता हूँ। आटा प्रकाशजी और भाभी के लिए ओसना था पर सुधाकर अकेला ही उस आटे की रोटी चट कर गया। उस दिन प्रकाशजी और भाभी दोनों भूखे ही रहे। प्रकाशजी ने कहा—"दूसरा आटा ओसन कर रोटी बनाओ"। छोटी भाभी ने कह दिया मैं तो नही बनाती, एक ठडी रोटी पडी है सो खा लो। पर प्रकाशजी ने वह रोटी नही खायी और भूखे ही सो गये।

[३]

वनस्थली १४-१२-३४

आपका पत्र मिला। पढ़कर चित्त को अति आनन्द हुआ। श्याम की तबियत ठीक है, यह जानकर बडी खुशी हुई। आपजी सा, हमको तो जेब घड़ी चाहिए, फिर आपकी मर्जी हो वैसी लाना। हमारा कार्यक्रम ठीक तरह से चल रहा है। वहा पर भाभी पढती हैं या नहीं? अगर पढ़ती हैं तो कितने पाठ पढ़े सो लिखना। क्योंकि हमको देखना है कि कौन ज्यादा पढ़ा? अगर पढ़ना शुरू नही किया है तो हम यहा पर श्याम को रख लेंगे और भाभी को हमारे बराबर कर देंगे। हमने समझा था कि आप कल परसो तक आ जाएगे सो मैंने छुट्टी के दिन कमरा लीप पोतकर तैयार कर लिया था। पर आप आए ही नही, इतने दिन हो गए, आप आये ही नही तो हम क्या करें?

आपाजी (हीरालाल शास्त्री) का पत्र सुधाकर [उम्र १२ साल] के नाम

लांबा

आज टहलते समय तुम्हारी याद खासतौर से आयी और मैंने सोचा कि तुमको एक पत्र लिखा जाए। तुम रोजाना अखबार देख देखकर कुछ न कुछ सोचा करते होगे परन्तु मुझको पता नहीं तुम्हारे जी में क्या-क्या आती होगी और तुम अपने साथियों से-सोहन से, हरीश से तथा दूसरों से-और तुम्हारे नानाजी, नानीजी आदि से क्या-क्या बातें करते होगे ?

हम लोग अचानक ११-२-३६ की रात को पकड़े गये थे-और २२-२ तक हमको जयपुर से २० मील मोहनपुरा कैम्प में रखा गया वहां पर हमें दो बार तो मामूली भूख हड़ताल करनी पड़ी थी और तीसरी भूख हड़ताल १७-२ की शाम से २५-२ की शाम तक चली। भूख हड़ताल का कारण यह था कि राज का राजनैतिक कैदियों को मामूली कैदियों की तरह रखने का विचार मालूम पड़ रहा था और इसी तरह की शुरूआत भी उन्होंने कर दी थी। सादी सजा होने से कैदियों से काम लेने की बात तो नहीं थी, बाकी मामूली कैदियों जैसा भोजन देना (जिसमें घी न होकर दस मासा तेल होना), प्रायः दिन रात छोटी सी जगह में रोके रखना, खुद के कपड़े, बिस्तर, बर्तन आदि न बरतने देना (और बेतरह के जेली कपड़े और लोहे के तसले आदि देना) समाचार पत्रों की सुविधा न होना-और साधारण बर्ताव व्यवहार भी साधारण कोटि के अपराधी के जैसा करना-यह सब कुछ होता हुआ हमको दिखायी देने लगा तो हमने राजनैतिक कैदियों को अलग हैसियत कायम करवाने के लिए भूख हड़ताल शुरू कर दी। वह लगातार ८ दिन तक चली। बीच में २२-२ को यानी भूख हड़ताल के पांचवें दिन राज वालों ने यह सोचा कि हम खास-खास १० आदमियों को दूसरों से अलग कर दिया जाए और हमारे साथ अच्छा व्यवहार शुरू कर दिया जाए इसलिए हमको अचानक (जयपुर से ७० मील-माल्पुरा से १५ मील) लावा गढ़ में ले आए परन्तु हम यह तै करके मोहनपुरा से चले थे कि जब तक मोहनपुरा वालों का सवाल हल न हो जाएगा तब तक हम भूख हड़ताल जारी रखेंगे, चाहे हमारे खुद के साथ कितना ही अच्छा व्यवहार किया जाए। हमने कम से कम मांग रख दी थी यानी यह कह दिया था कि चाहे कितनी भी छोटी हैसियत का आदमी हो लेकिन अगर वह राजनैतिक अपराध के कारण जेल आएगा तो उसको कम से कम इतनी विशेष सुविधायें तो दे दी ही जाएंगी। वह मांग इस प्रकार थी—गेहूँ की रोटी, एक छटांक घी, साग-दाल, साप्ताहिक पत्र, पुस्तकें, खुद के बिस्तर व कपड़े बरतने की आजादी, महीने में एक बार मित्रों से मिलना व पत्र लिख सकना, जेल की चार दीवारी के भीतर आजादी से घूम सकना। आखिर राज वालों को झुकना पड़ा और २५-२ की शाम को, मोहनपुरा वालों की उपरिलिखित मांगें ज्यों की

त्यो मंजूर करके मि० यंग हमारे पास आये, तब हमने भी भूख हड़ताल छोड दी। हमको २ छटाक (पक्का) घी, आधा सेर दूध, दैनिक पत्र (हिन्दुस्तान टाइम्स और हिन्दुस्तान), अपने खर्चे से खाने पीने का और सामान मंगवा सकना—इत्यादि बातें विशेष तय हुई। और आजादी तो हमको खूब दे दी—बाहर वालो से मिलना तो नियम से ही हो सकता है—और हम तो बाहर नही ही जा सकते—बाकी इस लम्बे चौडे किले मे हमारा ही राजपाट है। जो लोग हमारी निगरानी और सहायता के लिए हैं वे लोग ५० के करीब हैं, हम हैं सिर्फ १० कैदी— वे छोटे बड़े सब हमारे मित्र हैं और हमको प्यार करते हैं। हमारे लिए जयपुर पैलेस का एक फर्स्ट क्लास शामियाना लगा दिया है—क्योंकि हमने किले के पुराने और दुर्गन्ध देने वाले मकानो मे रहना नामंजूर कर दिया था और दो रात और एक दिन बाहर ही डेरे डाले पडे रहे। हमारी भूख हड़ताल जारी थी और सर्दी भी खूब पडती थी, बारिश की बून्दें भी आयी। अब मकानो की मरम्मत और सफेदी भी हो गयी है। बाकी यह जगह बहुत अच्छी नही है। पानी कम ठीक है, जैसा पानी है वह भी काफी नही है, नपा तुला ही मिल सकता है। लाने वाले दो आदमी बेचारे थक जाते हैं। छोटी-छोटी दो बाल्टियों मे नहाना, कपडे धोना सब कुछ कर लेता हूँ। और जयपुर से दूर है और सड़क से भी दूर—भारतीय डाकखाने से भी बहुत दूर। हमको खतरनाक समझकर अलग रखने की कोशिश राज ने की है।

मेरे बारे मे एक खास बात यह है कि मैं लावा मे मिली हुई पूरी सुविधाओ से लाभ नही उठा रहा हूँ। समाचार पत्र तो पढ लेता हूँ। बाकी जौ की रोटी (बिना चुपडी) और एक साग खाता हूँ। बाहर से आयी हुई चीजें नही खाता हूँ इससे मुझे कोई तकलीफ तो नही है। फिर भी बन्दिश मे रहना सीधा सा काम भी नही है। खासकर जब बाकी के सब लोग ठाठ से रहने के पक्षपाती हैं। इतने छोटे अल्प मत की (मैं १० मे से अकेला एक हूँ) मुश्किल तो है ही सही। बाकी अपनी बात का पक्का ज्यादा हू इसमे मुझको दूसरे लोग कुछ कह सुन नही सकते। मुझको अपनी इस विशेषता से विशेष सतोष रहता है। बाकी खाने पीने मे रखा भी क्या है? कुछ महीनो तक कम ही खावे तो कौन से दुबले ही हो जाएगे और दुबले हो भी गए तो बाहर निकल कर धीरे-धीरे ठीक हो जाएंगे। मगर मेरा पक्का विश्वास है कि मैं यहा से ज्यादा स्वस्थ होकर बाहर आऊंगा—क्योंकि मेरा जीवन यहा पर बड़ा सयमित और नियन्त्रित है।

मेरा दैनिक कार्यक्रम नीचे लिखे अनुसार है—५¼ बजे उठना, ५¼ से ५¾ शौचादि, ५¾ से ६½ गीता पाठ, ६½ से ६¾ सामूहिक प्रार्थना, ६¾ से ७½ घूमना, ७½ से ९ हजामत-स्नान-कपड़े धोना, ९ से १० लिखना, १० से ११½ भोजन-विश्राम, ११½ से ३ गीता का अध्ययन, ३ से ४½ थोड़ा रसोई सम्बन्धी काम (दाल-साग ठीक करना) और साथियो की सभा, ४½ से ५ शौच, ५ से ७ राउंडर खेलना, ७ से ८¾ भोजन-विश्राम, ८¾ से १०¼ रामायण का पाठ और सामूहिक प्रार्थना तथा समाचार पत्र, १०¼ से ५¼ शयन। इस कार्यक्रम को बड़ी सख्ती के साथ निभा रहा हूँ—आज रामायण पढ़ने के बाद तुमको पत्र लिखने को बैठ

गया हूँ। गीता और रामायण के सिवाय और कुछ मैं नहीं पढ रहा हूँ। मैं अपने आध्यात्मिक पक्ष को ही ठीक करना चाहता हूं। लौकिक स्वाध्याय तो जरूरत के मुताबिक बाहर भी कर लूंगा। मैं कोई भक्त आदमी नहीं हूं। एक माने में तो मुझको करीब करीब नास्तिक भी कहा जा सकता है, हालाकि मैं अपने तौर पर बड़ा आस्तिक हूँ। मैं भक्त नहीं हूं तब भी रामायण में मेरा मन बहुत लगा है और गीता से तो मेरा पुराना प्रेम है। मुझको अपने बचपन का खेल राउंडर खेलने को मिल गया। मैं इस खेल में बहुत ज्यादा होशियार था, वह अभ्यास तो अब कहा से आएगा? फिर भी मैं खूब खेलता हूँ जमीन ऊंची-नीची होने से और एक पैर जरा लंगडा होने से दौड़ने के वेग में आज तो मैं गिर पड़ा था। परन्तु गिर पड़ना भी था शानदार, क्योंकि मैंने गिरे-गिरे भी बॉल को ठिकाने पहुँचाने में कमी नहीं होने दी।

मेरे साथियो का कार्यक्रम इससे कुछ भिन्न है। आज सब लोगो के कार्यक्रम को ठीक बैठाने की कोशिश की थी। आशा है आज का प्रयत्न सफल होगा। परन्तु मुझको अफसोस है कि गंभीरता के साथ समय बिताने और कुछ न कुछ उपयोगी काम में लगे रहने के मामले में मेरा अधिकाश साथियो के साथ मतभेद ही है। इसलिए साथियों के साथ मेरा मन कम लगता है। अपने कार्यक्रम के हिसाब से भी मैं अधिकाश समय एकान्त में बिताता हूँ, इसमें थोड़ा जोर पड़ता है। इसलिए कि जेल के बाहर मैं दिन भर लोगो से घिरा रहता था। फिर भी गीता और रामायण के साथ से और कलम दवात के साथ से मुझको अकेलापन ज्यादा नहीं अखरता है। वैसे मैं लहरी आदमी हूँ। कभी-कभी मेरा चित्त बड़ी लम्बी दौड़ लगाता है। सामने किले की पुरानी काली-काली और ऊंची दीवारें खड़ी दिखायी देती हैं। लेकिन मेरा दिल कई बार वनस्थली जाकर आता है, सैलाने की सैर कर आता है, कलकत्ते पहुँच जाता है, जयपुर तो जाता ही रहता है। जेल की या किले की दीवारें इस सैर को कैसे रोक देंगी और कैसे रोक देंगे सगीनधारी पुलिसमैन और फौजी जवान। कपडे धोने से मैं पहले घबराता था, लेकिन अब तो काम ठीक जम गया। कपडे हैं ही कितने से एक छोटी सी धोती, एक बड़ी, एक तौलिया और एक दस्ती रुमाल—क्योंकि मैं तो इसी वेश में यहा रहता हूँ। मुझको एक लिखने वाले की कमी अखरती है—क्योंकि मुझसे नकल नहीं हो पाती। खैर।

ऊपर के बयान से तुम्हारे सामने गढ लावा का एक धुंधला और अधूरा सा चित्र तो आ ही गया होगा मैं क्या सोचता रहता हूँ? एक तो यह है कि जयपुर के लोग हमारे पीछे से आन्दोलन को खूब चला रहे हैं, शहर में बड़ा जोर शोर है जनता प्रजामण्डल के नाम पर कुछ भी करने को तैय्यार है, और राज की एक नहीं चल रही है। ऐसी जोरदार हड़तालें की हैं कि राज वाले देखते ही रह गये, उनकी और उनके सहायकों की अक्ल गुम हो गयी। २०-३० हजार आदमियो का इकट्ठा होना एक मामूली बात है। एक दिन दसों हजार तो स्त्रिया भी इकट्ठी हो गयी। जितनी खबरें हमको मिल पाती हैं उन पर से मैं ऐसा समझता हूं। मुझे गांधीजी के उपवास से बड़ी चिन्ता हो गयी थी। परन्तु अब राज-

कोट का मामला जरूर ठीक हो जाएगा । और इसका असर जयपुर पर भी अनुकूल ही पड़ेगा । बाकी ज्यादातर विचार मैं आगे के कार्यक्रम के बारे मे करता रहता हूं । मैं चालू राजनीति मे घिसट गया और अब जयपुर राज्य का काम पूरा किए बिना मेरा निकल भागना भी बहुत मुश्किल है । इसलिए मैं राजनीति को कम पसन्द करूं तब भी मुझको इस धंधे मे रहना ही पडेगा । इसलिए प्रजामण्डल का कार्यक्रम तो चलाना ही है । एक समाचार पत्र जयपुर से निकाला जा सके तो जरा मजा आवे । पत्र निकालने का विचार तो पक्का ही हो रहा है, कार्यकर्ताओं का संघ भी चलाना ही पडेगा चाहे वह राजस्थान संघ हो, चाहे अपना वही फक्कड संघ हो । नये कार्यकर्ताओं की ट्रेनिंग की व्यवस्था करना भी बहुत जरूरी है । इसका मतलब यह निकलता है कि जयपुर शहर मे एक बडा मकान और लम्बी चौड़ी जमीन हमारे काबू मे आ जाए जहा पर हमारा आश्रम और प्रेस हो और प्रजा-मण्डल के हैडक्वार्टरस वही हो । एक अच्छी सी कॉलोनी हो जाए सार्वजनिक जीवन को प्रेरणा देने वाला एक केन्द्र वह हो । अपने मकान से यह काम नहीं चलेगा, कुछ न कुछ दूसरी ही व्यवस्था करनी पडेगी । कुछ खास कार्यकर्ताओं को भी जुटाना पडेगा । इस कल्पना से मुझको बडी खुशी होती है ।

दूसरा चित्र मेरे दिमाग मे वनस्थली का है । वनस्थली मे दो तीन अच्छे आदमी पहुँच गये हैं, यह खुशी की बात है । बाकी देवियो की कमी यहा पर है, पैसे की कमी भी खूब है । तुम्हारी भाभी जयपुर मे रुकी हुई हैं —विद्यालय का काम वे नही कर सक रही ह । लेकिन मैं सोचता हू रुपये की कमी से कौन सा अच्छा काम रुकने वाला है । असल मे तो वनस्थली का विस्तार ही होने वाला है ।

कभी कांग्रेस के भाइयो के बारे मे भी सोचने लगता हू । कुछ भीतरी बातें मालूम होने के कारण सुभापबाबू के साथ मेरी सहानुभूति बिलकुल नही है । उन्होंने अब की बार बडी गडबड की है । परन्तु मेरा विश्वास है कि कांग्रेस के झगडे का भी कुछ न कुछ अच्छा निबटारा हो ही जाएगा । फिर भी उत्कंठा के साथ देखना है कि त्रिपुरी मे क्या होना है । मैं जेल मे न होता तो तुमको शायद त्रिपुरी दिखाता । इस बार गाधीजी त्रिपुरी नही पहुँच पाये । यह और भी मुश्किल हुई ! देखो !

बच्चों मे श्यामजी की ज्यादा सोचता हूं-श्यामजी जयपुर मे बाल नेता बन बैठे है । प्रजामण्डल के नारे लगाते रहते है—और दलपति बनकर—मामूली स्वयसेवक तो वे कब बनें—सत्याग्रह मे जाने का इरादा करते रहते है । मि० यंग से बोले कि आपकी हमारी मित्रता पहले थी, अब नही है —हम कल दलपति बनकर आएगे और मोटर पर खडे होकर व्याख्यान देंगे । एक दिन यहा लावा मे श्यामजी आये तो यहा भी 'बीचमशाही मुर्दाबाद'— 'प्रजामण्डल की जय'—'वन्दे मातरम्' 'महात्मा गाधी की जय' आदि बोल कर गये । ऐसे जबर्दस्त है श्यामजी । मैंने भी एक दिन और मि० यग ने भी यहा पर कहा कि बच्चे को दलपति बनने की सलाह आप क्यो नही दे देते हैं ?

आपाजी [हीरालाल शास्त्री] का पत्र वनस्थली की बच्चियों [छात्राओं] के नाम

भालाना कैम्प, १७-६-३६

प्यारी बच्चियो ! मैं तुम्हारे बारे मे बहुत विचार करता रहता हूँ। मैं चाहता हूं कि तुम लोग सचमुच अच्छी बनो। सचमुच अच्छी बनने के लिए तुमको स्वार्थरहित होना पड़ेगा—स्वार्थरहित वह होती है जो खुद तकलीफ उठा कर दूसरो को आराम पहुचावे। तुम प्रतिदिन यह सोचा करो कि आज तुमने कौनसा अच्छा काम किया ? अच्छा काम करो, परन्तु उसका अभिमान मत करो। तुमको नम्र तो होना ही चाहिए। अपने आपको अच्छी और दूसरे लोगों को बुरा मत खयाल करो। किसी भी काम से घबड़ाओ मत, न कामों को छोटा या बड़ा समझो। तुमको परिश्रमी भी होना ही पड़ेगा। काम से कभी जी मत चुराओ। बड़ो का कहना मानना और नियमो का पालन करना बहुत जरूरी है। किसी तरह की शंका हो तो पूछ कर उसे दूर कर लो, बात को अच्छी तरह समझ लो परन्तु तुमको योग्य बनना है तो अनुशासन पालन करने वाली भी जरूर होना होगा। तुमको झूठ तो कभी बोलना ही नही चाहिए, चाहे कुछ हो जाए। वह वीरबाला और देश सेविका हो ही नही सकती जो झूठ बोल सकती है, जो मन मे और वाणी मे सत्य का पालन करने वाली नही है।

प्यारी बच्चियो ! कहना सरल होता है, परन्तु करके दिखाना मुश्किल होता है। तुम मेरी बात समझ जाओगी, उसको मान भी लोगी—परन्तु क्या करके भी दिखाओगी। छोटी छोटी बातो मे आदमी की परीक्षा हो जाती है अपने और अपनी छोटी बहिनो के कपड़ो, बर्तन, किताबे आदि को संभालना कोई बडा काम नही है, अपने कमरे तथा शरीर और कपड़ों को साफ रखना और बालों को ठीक रखना भी कोई बड़ा काम नही है, परन्तु इन छोटी-छोटी बातो मे भी तुमसे गलतिया होती हैं या नही ?

वनस्थली से तुम पढ लिखकर जाओगी—कई तरह के काम भी सीख जाओगी परन्तु प्यारी बच्चियो ! अच्छी बनना जरा सा मुश्किल काम है। तुमको वीरबाला बनना है, देश सेविका बनना है—इसके लिए तुमको सच्चाई और नम्रता के साथ निःस्वार्थ भाव से जी तोड़कर, अपने बड़ो की आज्ञा का पालन करते हुए काम करना होगा, परिश्रम करना होगा। तुम ऐसा करोगी, इसमे मुझको शक नही है। जेल से बाहर आने पर, तुमसे मिलने पर मुझको तुम्हारे बारे मे शिक्षको आदि से यही एक बात सुनने को मिले कि अबकी बार तो लडकियो ने कमाल करके दिखा दिया, अब हमको लड़कियो से कोई शिकायत नही हैं। जो लड़कियां बडी हैं, समझदार मानी जाती हैं, उनकी जिम्मेदारी इसमे बहुत बड़ी है। क्या वे अपनी जिम्मेदारी को निभाएँगी ? सब कहती हैं—हां, बेशक निभाएँगी।

उपभाग १

: ५ :

भाषण, लेख आदि

: ५ :

भाषण, लेख आदि

१. स्वाधीन ग्राम-नगर संगठन के कार्यक्रम की व्याख्या

'वर्तमान चुनाव परिपाटी और शासन पद्धति मेरे विचारों के अनुकूल नहीं है। चुनावों के कारण देश में व्यापक भ्रष्टाचार फैल गया और शासन पद्धति ने साधारण जन समुदाय को पंगु और परावलम्बी बना दिया है। स्वाधीन ग्राम-नगर-संगठन का कार्यक्रम जनता को शक्तिशाली बनाने और स्वच्छ सार्वजनिक जीवन के लिए है।" यह घोषणा राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री पण्डित हीरालाल शास्त्री ने यहां निवाई में कार्यकर्त्ताओं को उद्‌बोधन करते हुए की।

शास्त्रीजी ने कहा कि मैं खुद किसी राजनीतिक पार्टी में शामिल नहीं हूँ, तो इसका मतलब यह नहीं है कि मैं किसी पार्टी विशेष के खिलाफ हूँ, न इसका यह मतलब कि मैं किसी पार्टी के खास मुआफिक हूँ। मुझे विरोध करना है तो बुराई का करना है, किसी पार्टी का या व्यक्ति का नहीं।

शास्त्रीजी ने स्वाधीन ग्राम-नगर-नसगठन के कार्यक्रम की व्याख्या करते हुए बताया कि इस कार्यक्रम में सच्चे स्वराज की चाबी है और एक प्रकार की क्रान्ति के बीज भी हैं। जनता अपने खुद के प्रयत्न से शिक्षित हो जाए, अपनी बस्ती की सुरक्षा की व्यवस्था पुलिस

के बिना कर , बस्ती ले मे कोई मामले मुकदमे हो उनका निपटारा कोर्ट कचहरी के बाहर कर लिया करें, अपने अभाव अभियोगो को सत्ता के सामने ताकत और अधिकार के साथ रखना सीखें और जब वाजिब जरूरत मालूम पड जाए तो सत्ता से सघर्ष करने में भी न झिझकें। इन चारो बातो के अलावा चुनाव मे हिस्सा लेना मेरा खास काम नहीं होगा। चुनावो में ज्यादातर मैं तटस्थ रहूँगा या कही की जनता का किसी उम्मीदवार के हक मे विशेष आग्रह होगा और वह उम्मीदवार मेरे माप दण्ड से भी ठीक होगा तो सम्भव है मैं बिना किसी पार्टी के लिहाज के उस उम्मीदवार का समर्थन कर दूं।

२ मर्मस्पर्शी उद्घोष

राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री व वनस्थली विद्यापीठ के सस्थापक पण्डित हीरालाल शास्त्री का स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन के सिलसिले में सवाई माधोपुर आगमन हुआ। शास्त्रीजी के स्थानीय कार्यकर्ताओ की सभा मे और नवयुवको की सभा मे भाषण हुए। सवाई माधोपुर क्षेत्र मे स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन के कार्यक्रम को अमल मे लाने की दृष्टि से श्री धीरेन्द्रसिंह के सयोजकत्व मे शीघ्र ही तदर्थ समिति बनाने का निश्चय कार्यकर्ताओ ने किया।

शास्त्रीजी ने बताया कि अपना यह नया कार्यक्रम बडा कठिन कठोर है। इस कार्यक्रम मे लगने वाले को अपने आत्म सन्तोष के अलावा कोई प्राप्ति नही होने वाली है। अपने घर का काम छोड कर इस काम के लिए समय निकालना होगा और आराम के बदले तकलीफ उठानी पडेगी। यह कोई मामूली राजनीति का कार्यक्रम नही है। बल्कि गन्दी चालू राजनीति को जड़ से उखाड़ फेंक देने वाला यह कार्यक्रम है।

नये कार्यक्रम का मूलतत्व लोकशिक्षण के द्वारा जनशक्ति को जागृत और सगठित करने में निहित है। स्वराज के बाद जनता को बढ़ी हुई परावलम्बिता और दीनता की जगह स्वावलम्बन और साहस पैदा करना इस कार्यक्रम का उद्देश्य है। जनता को सचमुच ही यह महसूस करा देना है कि उसकी हैसियत मालिक की है।

शिक्षण के द्वारा अज्ञानमुक्त स्वराज, सुरक्षादल के द्वारा पुलिस मुक्त स्वराज, आपसी समझौतो के द्वारा कोर्ट-कचहरी मुक्त स्वराज, जनता के अभाव अभियोगो को ताकत के साथ पेश करने द्वारा भयमुक्त स्वराज और चुनावों में सज्जनो के समर्थन के द्वारा अनीतिमुक्त स्वराज की ओर ले जाना नये सगठन के कार्यक्रम का बाह्य स्वरूप है।

शास्त्रीजी ने नये कार्यक्रम की व्याख्या करते हुए अपने व्यक्तिगत निश्चय को दोहराया कि (१) मुझे किसी राजनीतिक पार्टी का सदस्य नही रहना है। मेरे किसी पार्टी मे शामिल न होने का यह मतलब नही है कि मैं किसी पार्टी के खिलाफ हूँ। मैं पार्टी सिस्टम और चुनाव पद्धति की बुराइयों के खिलाफ हूँ (२) मुझे किसी चुनाव में खड़ा नहीं होना है और (३) मुझे कार्यक्रम के लिए या किसी दूसरे सार्वजनिक कार्य के लिये भी चन्दा नहीं मागना है। मेरे परिवार का कोई दूसरा व्यक्ति भी निकट भविष्य में व आने वाले आम चुनावों म खड़ा नही होगा।

मैं किसी भाई से मांगकर कुछ भी नहीं लूं तो किसी को देने के लिये भी मेरे पास कुछ भी नहीं है । मैं अपने तन मन से काम करूंगा अपनी वाणी और लेखनी से नये कार्य-क्रम का प्रचार करूंगा और किसी व्यापक सार्वजनिक हित के लिए मुझे किसी दिन तोप के मुंह लगना होगा तो मैं खुशी से लग जाऊंगा शास्त्रीजी ने यह मर्मस्पर्शी उद्घोष किया ।

देश मे सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे मे शास्त्रीजी ने कहा यह सारा अनर्थ चोटी के लोगो की तरफ से शुरू होता है । राष्ट्रपति के चुनाव से लेकर आज तक सत्ताधारियो के कारनामों से राष्ट्रीय जीवन मे अनीति और साथियो की अहिंसक हत्या का क्रम चालू हो गया है । चलती हुई राज्य सरकारो को दलबदल करवाकर गिराने का एक खास काम सत्ताधारियो ने अपने हाथ मे ले रखा है ।

राजस्थान मन्त्रिमण्डल मे जो नये परिवर्तन हुए है उनका जिक्र करते हुए शास्त्रीजी ने कहा कि मेरी इन बातो में कोई दिलचस्पी नहीं है । मुझे यह पता है कि इन परिवर्तनों का भीतरी उद्देश्य क्या है । अर्थात् इतने लोगो को किसी मतलब से सत्ता से मुक्त किया गया है, पर यह प्रकट रहस्य है किसी एक ने भी अपनी मर्जी से सत्ता नही छोडी है । लोगो को इस बात का पूरा अन्देशा है कि राजस्थान मे सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष का नया दौर शुरू हो सकता है । व्यक्तिशः मै मानता हूँ कि इन परिवर्तनो का परिणाम सम्भवत राज-स्थान के शासन की अशुद्धि मे कुछ कमी लाने का हो सकता है ।

नवयुवक विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए शास्त्रीजी ने कहा कि अपने देश मे शिक्षा और रोजगार का समन्वय बैठा हुआ नही है और राजनीतिक पार्टियां विद्यार्थियो का शोषण करती हैं । साथ ही नैतिक मूल्यों का मूल्य बहुत घट गया है । मेरी राय में विद्यार्थी को विद्याकाल मे दलगत राजनीति से अलग रहते हुए और अपने चरित्र का निर्माण करते हुए कुछ न कुछ सेवा कार्य करना चाहिए । भविष्य के लिए मुझे आशा है कि देश मे जो अवश्यम्भावी क्रान्ति होगी वह युवको के माध्यम से होगी ।

३. जनसेवकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता

"स्वराज प्राप्ति से बाद देश मे कुछ अच्छे काम जरूर हुए हैं, पर देशवासियों को दो बडे नुकसान भी हुए है । एक तो यह कि ग्राम जनता मे दीनता आ गयी जिससे वह हर किसी काम के लिए सरकार का मुंह ताकती है । दूसरा यह कि दूषित चुनाव पद्धति के कारण जनता मे बहुत ज्यादा फूट हो गयी । ऐसी हालत में ग्राम जनता मे आत्मनिर्भरता और एकता की शक्ति पैदा होनी चाहिए ।"

ये शब्द राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री पडित हीरालाल शास्त्री ने टोंक क्षेत्र के कार्यकर्ताओं की विशेष सभा को सम्बोधित करते हुए कहे ।

शास्त्रीजी ने कहा कि स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन का उद्देश्य किसी राजनीतिक पार्टी का समर्थन या विरोध करना नही है। सगठन तो केवल यह प्रयत्न करना चाहता है कि पार्टी पद्धति से जो नुकसान हो रहा है उससे जनता को बचाया जाए। साथ ही सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार की रोकथाम की जाए। यह काम जनता के शिक्षित, जागृत और दलबन्दी के आधार के बिना सगठित होने से हो सकता है।

सभा मे आवश्यक विचार विमर्श के बाद निश्चय किया गया कि टोंक क्षेत्र मे कार्यकर्ताओ के प्रशिक्षण के लिए कई एक शिविर आयोजित किए जाय। शिविरो की तैयारी करने की दृष्टि से उणियारा, मालपुरा, टोडा, निवाई आदि तहसीलो मे जल्दी से जल्दी सभाए करने का निश्चय भी किया गया और यह काम स्थानीय उत्साही कार्यकर्ताओ के जिम्मे कर दिया गया।

४. चुनाव परिणामों का विश्लेषण

भारत का सविधान सोच समझकर ही बनाया गया था। पर उसके अनुसार जो चुनावप्रणाली चालू हुई वह बहुत अधिक दोषपूर्ण सिद्ध हुई है। उदाहरणार्थ, राजस्थान मे प्राय एक लाख की आबादी का एक विधानसभाई क्षेत्र होता है। उसमें साधारणतया पचास हजार मतदाता होते हैं। उनमे से देखा गया है कि औसत दर्जे पच्चीस हजार मतदाता अपना वोट डालने को आते है। किसी भी क्षेत्र मे एक-एक उम्मीदवार तो राजनीतिक पार्टियो के खडे होते ही हैं। उनके अलावा कई एक निर्दलीय लोग खडे हो जाते हैं और कुछ व्यक्ति तो खडे कर भी दिये जाते हैं। फर्ज कीजिए किसी क्षेत्र मे पाँच उम्मीदवार खडे हो गये तो उनमे से जिसको छह हजार मत मिल जाए वह भी जीत सकता है। मुझे बताया गया है कि एक समय किसी क्षेत्र मे वह उम्मीदवार जिसको अपनी जमानत बचाने लायक मत भी नही मिले थे चुनाव जीत गया। एक लाख की आबादी का और पचास हजार मतदाताओं का प्रतिनिधि पाँच सात हजार या इससे कम मत पाने वाला व्यक्ति भी हो सकता है। अर्थात् जिन्होने मत डाले ही नही तथा जिनके मत हारने वाले उम्मीदवारो के हिस्से मे आ गये उन्हे भी अपनी ओर का विधायक भी थोड़े से मत पाकर जीतने वाले उसी व्यक्ति को मान लेना पड़ेगा। सत्तापार्टी के विधायक उनको वोट न देने वाले मतदाताओं म भेदभाव का व्यवहार करते भी देखे सुने गये हैं।

हाल मे हुए लोकसभा के चुनावों मे कुल मतदाताओं मे से आधे मे कुछ ज्यादा मतदाता वोट डालने को आये। उनमें से प्राय आधे मत यानी कुल में से चौथाई से भी काफी कम मत सत्ताधारी पार्टी को मिले, और बाकी आधे मत दूसरी पार्टियो को व निर्दलीय लोगो को मिले। जो कुल मत पड़े उनमे से २/५ मतो से कुछ ज्यादा सत्ताधारी पार्टी के हिस्से मे आये। अविभाजित कांग्रेस को १९६७ के चुनावो मे कुल मतों का २/५ ही हिस्सा मिला

था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू के समय मे जो आम चुनाव हुए उनमे से किसी एक चुनाव मे जो ज्यादा से ज्यादा मत मिले थे वे भी कुल मतो के आधे से कम ही थे। वोट कितने भी मिले हों, इस बार फिर सत्ताधारी पार्टी का लोकसभा मे भारी बहुमत हो गया जिसके आधार पर पाँच सालो तक देश पर जैसा चाहे वैसा शासन चलाने का अधिकार उस पार्टी को मिल गया। चुनावो के लिए उम्मीदवार छाटने का एक ही सिद्धान्त दिखायी देता है कि वह व्यक्ति जीत सकने वाला है या नही, चाहे वह किसी भी प्रकार से जीत जाए और भले ही वह भला आदमी हो या न भी हो। सत्ताधारी के द्वारा जारी किये गये नारे जोर-जोर से लगाने का गुण तो उस उम्मीदवार मे होना ही चाहिए, चाहे वह सत्तापार्टी के सिद्धान्तो को न समझता हो, न मानता हो। बाकी जीतने के लिए जो जातिवाद आदि के हथकन्डे चाहिएं उनमे तो उसे निपुण होना ही चाहिए।

मध्यावधि चुनाव कराने की बात कुछ पार्टियो वाले कहते थे। पर सत्ता की ओर से यही कहा जाता रहा कि मध्यावधि चुनाव नही होगे। इसी बीच सत्ताधारी पार्टी की अपनी तैयारी हो गयी तब चुनाव घोषित कर दिये गये। दूसरी पार्टियो के सिर पर चुनाव एक प्रकार से अचानक आ गये। विधानसभाओ ने चुनाव साथ के साथ न होने का असर भी कम साधन वाले उम्मीदवारो के खिलाफ पडा। सत्ताधारी पार्टी को सरकारी साधनो और कर्मचारियो का उपयोग करने की छूट थी ही। सरकारी हवाई जहाज, करीब करीब बिना किराये के, प्रधानमन्त्री के सुपुर्द थे। अखिल भारतीय आकाशवाणी एक मात्र सत्ताधारी की आकाशवाणी थी। कई लोगो ने यह राय दी कि चुनाव से कुछ समय पहले प्रधानमन्त्री आदि को त्यागपत्र दे देना चाहिए। पर विशेषज्ञो ने बताया है कि संविधान के अनुसार ऐसा करना जरूरी नही है और केवल नैतिक दृष्टि से भला कोई भी ऐसा क्यो करने लगा? इस राजनीति की ओर इन चुनावो की नैतिकता का तो उसी समय लोप हो जाता है जब किसी भी उम्मीदवार के चुनाव में उच्चतम मर्यादा ३५ हजार के बजाए ३५० हजार खर्च हो जाते हैं, किसी किसी के १०-१२ लाख तक खर्च हुए सुने गये हैं और किसी किसी के २० लाख या इससे भी ज्यादा। शायद भूलचूक से ही किसी उम्मीदवार की ओर से सच्चा हिसाब दिया जाता होगा। यह जिन्दा हाथी को निगल जाने जैसी बात है। फिर सत्ताधारी पार्टी के "गरीबी हटाओ के नारे के मुकाबले में पुरानी काग्रेस आदि के मोर्चे का नकारात्मक नारा "इन्दिरा हटाओ" हो गया जिसका लाभ प्रधानमन्त्री को खूब मिला मालूम होता है। साथ ही मोर्चे ने अपना कोई संयुक्त कार्यक्रम पेश नही किया। इस सब पर से आमतौर से मतदाताओ ने सोचा होगा कि जो खुद क्या करेंगे यह तो बताते नही है तो फिर उनकी ओर से गरीबी हटाने वाली (बेचारी) इन्दिरा को हटाने की बात क्यो की जाती है। इस प्रकार गरीबी हटाने वाली तस्वीर लोगो को एक बार तो पसन्द आ ही गयी। फिर स्त्रियों ने हरिजनो ने और मुसलमानो ने तो अपने तमाम मत नयी काग्रेस को दे ही दिये मालूम होते है। राष्ट्रपति के पिछले चुनाव के समय एक तो अन्तरात्मा की पुकार की घोषणा की गयी थी। दूसरे दल बदलू राजनीति का खेल खेला जाने लगा था। और अब इतनी जीत हो जाने के बाद भी सत्तापार्टी उसी दल बदलू और तोड़फोड़ की राजनीति से बाज नहीं आ

रही है। पता नही वर्तमान चुनाव प्रणाली मे कब तक ऐसे परिवर्तन हो सकेंगे जिनके हो जाने से इस सारी गोलमाल की रोकथाम हो सके ? न यह पता है कि कब जनमत इतना सगठित हो जाएगा कि वह किसी की भी ओर से होने वाली धाधलीबाजी को चलने ही नही दे ?

गरीबी हटाने के लिए क्या किया जाएगा सो अभी तक जनता के सामने साफ नही हुआ है। स्वराज के बाद से बेकारी बढती ही गयी है। पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जितने लोगो को काम देने की बात सोची जाती है उससे कही ज्यादा नये बेकार हर साल हो जाते हैं। युवकों को नौकरिया देने या वृद्धो को बिना कमायी पेंशन देने के जरिये मे गरीबी नही मिट सकती। काम कर सकने वाले लोगो को उत्पादक काम दिया जाने लगे तब गरीबी का मिटना शुरू हो। तथाकथित राष्ट्रीयकरण भी शायद ही गरीबी मिटा सकता है। किसान अपने खेत का मालिक होकर काम करता है तो वह जरूर ही ज्यादा माल पैदा करके खुशहाल हो सकता है। पर जिस मजदूर का कारखाने मे हिस्सा नही वह जी तोड मेहनत क्यो करेगा ? उल्टे वह तो नित्य उठकर हड़ताल करता है, घिराव करता है। सरकारी कारखानो तक मे मजदूर का हिस्सा कहा रखा गया है ? सरकारी कारखाने आमतौर से घाटे मे चलते हैं। इसका कारण यही है कि उन कारखानों का कोई मालिक नही है। जिन बैंको का राष्ट्रीयकरण हो चुका है उन्हें बैंकिग के सिद्धान्तों के अनुसार न चलाया गया तो उन बैंको की भी दुर्गति हो जाना संभव है। नारो ने अपना काम कर दिया। उनसे सत्ताधारी पार्टी की जीत हो गयी। इससे आगे नारो से कोई काम चलने वाला नही है। अब नारो से जनसमुदाय मे निराशा पैदा होगी और वह निराशा अवश्य ही सत्ताधारी पार्टी के खिलाफ जाएगी।

मैं खुद किसी भी वाद का पूरे तौर पर कायल नही हूँ। साम्यवादी समाजवाद अपने देश के लिए मुझे बहुत खतरनाक लगता है। वैसे ही समाजवाद का अमुक दूसरा रूप भी खतरनाक साबित हो सकता है। भारत मे यदि समाजवाद होगा तो उसे भारतीय प्रतिभा के अनुकूल होना होगा। अभी हाल ही मे एक केन्द्रीय मन्त्री ने कहा है कि यदि भारत मे ५० सालो में भी समाजवाद लाया जा सकेगा तो वह बडी बात होगी, क्योकि भारतीय जनता समाजवाद के लिए तैयार नही है। समाजवाद का नारा लगाने वाली नयी कांग्रेस के एक बडे नेता ऐसा कहते है तो उसका क्या मतलब होना चाहिए ? भारत में जो प्रवृत्ति दिखायी दे रही है वह अधिनायकवाद की ओर ले जाने वाली है। जो हो, जिस वाद मे व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हरण होता हो वह वाद मुझे मान्य नही है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियो की स्वतन्त्रता मे बाधक न हो, केवल यही एक रोक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर लगायी जा सकती है। बाकी तो सबको अपने स्वतन्त्र विचार रखने तथा अपना धन्धा करके समाज के लिए उपयोगी माल पैदा करने की आजादी होनी चाहिए। राजसत्ता और अर्थ रचना दोनो को ही विकेन्द्रित करना पड़ेगा। शिक्षा पद्धति और अर्थ रचना का समन्वय बिठाना अत्यन्त आवश्यक होगा। आज जिसे स्वराज कहते हैं वह ग्राम लोगों का स्वराज

नहीं है। वह स्वराज किन्हीं खास लोगों का हो सकता है। "कल्याणकारी राज्य" ने जनता को पगु, परावलम्बी और भिखमगी बना दिया है। मेरी राय में हीनता गरीबी की अपेक्षा बहुत ज्यादा बुरी चीज है। कुछ लोगो को जनता को ठगने का मौका मिल गया है और इस प्रकार ठगने वालो की सख्या बढने का प्रवाह चल रहा मालूम होता है। इस प्रवाह को रोकने की समझदारी और हिम्मत सर्वसाधारण जनसमुदाय मे आनी चाहिए। नही तो समाजवाद के नाम पर बहुत बडे बडे, मंझले, छोटे और बौने नेताओ का जो एक गिरोह बन गया है वह और भी पक्का हो जाएगा जिससे मुक्ति पाने के लिए साधारण जनता को अन्ततोगत्वा बड़ी भारी क्रान्ति करनी पडेगी। मुझे लगता है कि भारत मे वह क्रान्ति जरूर होगी।

५: बुराई का मुकाबला

सब कोई जानते मानते और कहते हैं कि इतने सालो के स्वराज से देश की हालत मे कोई खास सुधार नहीं हुआ है। "गरीबी हटाओ" के नारे की पिछले दिनो कितनी ज्यादा जरूरत महसूस हुई थी। क्या पता गरीबी हटाने के लिए कौन कौन से उपाय किये जाएगे? और उनसे गरीबी किस हद तक और कब तक हटेगी? स्वराज के जमाने मे जो भी अच्छे काम हुए माने जाएं उनसे गरीबी नहीं हटी है। बल्कि बेकारी, महगाई आदि बढ़ी है। बहरहाल किसी को सतोष नहीं दिखायी देता है। तमाम देहात मे बिना जमीन के कोई न रहे, जमीन की पैदावार बढे, हर कस्बे और गांव मे आवश्यक माल के उत्पादन के लिए गृहउद्योग चालू हो जाएं, शिक्षा प्रणाली मे आमूल चूल परिवर्तन होकर शिक्षा की व्यवस्था होने का और शिक्षित होने के तुरन्त बाद युवको को काम मिलने की सुविधा हो जाए तब गरीबी का मिटना शुरु हो सकता है। कौन जाने यह सब कुछ किया जाएगा या नही ?

जो हो, मुझे गरीबी से भी ज्यादा चिन्ता हीनता को मिटाने की है। किसी की गरीबी कम हो गयी और हीनता बढ़ गयी हो तो उसे मैं बहुत ज्यादा खराब बात हुई मानूंगा। स्वराज से देशवासियो को जो राजसत्ता मिली उससे देश के जनसमुदाय की पगुता और परावलम्बिता जरूर बढ़ी है। जनजीवन पर सरकार बुरी तरह से छा गयी है और सरकार के एजेण्टो का खास काम है जनता पर एहसान थोपते हुए उसकी झोली में कुछ न कुछ डलवा देने का, सो अपना कमीशन काट कर। यह सारी खराबी ऊपर से शुरू होती है। एक दिन एक बडा मत्री कहता है हम धनवानों से धन लेकर गरीबो मे बाटेंगे। दूसरे दिन वही मत्री कहता है धनवालों मे धन लेकर गरीबो मे बाट देने से गरीबी नही मिटेगी। वही मत्री कहता है कि भ्रष्टाचारी का बहिष्कार करना चाहिए। यह सुनते ही जानकार लोगो को लगता है कि बहिष्कार मे सबसे पहला नम्बर इन मंत्रीजी का आना चाहिए।

गांधीजी ने हमको सत्य के लिए आग्रह करना सिखाया था। उस पर से अब हमे बुराई का मुकाबला करना सीखना होगा। जो लोग बुराई से फायदा उठा रहे है वे बुराई

का मुकाबला करने के बजाए उनका मुकाबला करेंगे जो बुराई का मुकाबला करने के लिए खड़े होंगे। यदि कोई यह कहे कि बुराई पहले भी थी और आज भी है और जैसे अपने देश में है उससे ज्यादा कई एक देशों में भी है तो उससे उनका समाधान नहीं हो सकता जो बुराई की सिर्फ चर्चा करके सन्तोष मानकर बुराई को जड़ से उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं। ऐसे लोगों की फौज खड़ी होनी चाहिए जिन्हें खुद पैसा, पद, प्रसिद्धि आदि कुछ भी नहीं चाहिए और जो राष्ट्र के जीवन में से बुराई का उन्मूलन करने के लिए अपना समग्र जीवन अर्पण कर देने को तैयार हों। हमें विष मिला हुआ अमृत नहीं चाहिए। इसमें किसी पार्टी विशेष या व्यक्ति विशेष का मुकाबला करने का सवाल नहीं है, जहां बुराई दिखायी देगी वहीं पिल पड़ने की बात है। बुराई के मुकाबले में पिल पड़ने के लिए नगर और ग्राम के जनसमुदाय को खड़ा होना चाहिए, और जनसमुदाय को जगाने वाले सेवक चाहिए। है कोई बुराई से लड़ने की हिम्मत वाले बहादुर ?

६. अनर्थ की जड़

देश की वर्तमान स्थिति के विषय में चारों ओर चिन्ता प्रकट की जा रही है। इस लेख का विषय नैतिक है, इसमें किसी वादविशेष के, किसी पार्टीविशेष की नीति विशेष के, उसके कार्यक्रमविशेष के गुणदोषों की चर्चा मुझे नहीं करनी है। कोई भी पार्टी यदि अपनी निश्चित नीति के अनुसार अपने निश्चित कार्यक्रम को सचाई और नेकनीयती के साथ अमल में लाए और यदि वह साध्य की अच्छाई के साथ-साथ साधन की अच्छाई को भी अनिवार्य माने तो उसके द्वारा जनता की भलाई हो सकती है। गांधीजी हमको सिखा गये हैं कि राजनीति में भी नैतिकता बरती जानी चाहिए, हमारे हर काम का आधार सत्य-अहिंसा होनी चाहिए।

मुसीबत यह है कि हम लोग साम्प्रदायिकता के विरुद्ध बात करते हैं, पर हमारे व्यवहार से सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता है। हम लोग जातिवाद की निन्दा करते हैं, पर हम कदम-कदम पर सहारा लेते हैं उसी जातिवाद का। हम लोग पूंजीपतियों के विरुद्ध जहर उगलते रहते हैं, पर हम अपना और अपनी पार्टी का काम चलाते हैं पूंजीपतियों के द्वारा अनुचित रीति से इकट्ठे किये हुए उनके द्वारा अनुचित रीति से प्राप्त किये हुए धन से। हम कुछ लोगों को प्रतिगामी बताते हैं, पर हममें खुद में प्रतिगामिता के दोष भरे पड़े हैं। हम हरिजन भाइयों को उनके वोट की खातिर पशु बनाते हैं और उनका शोषण करते हैं।

अपने यहाँ राजसत्ता और धनसत्ता वाले आपस में मिलकर भ्रष्टाचार के पुरस्कर्त्ता बने हुए हैं। लोकसभा के चुनाव में खर्च की सभी सीमा ३५ हजार रुपया है, पर पिछली बार किसी के भी चुनाव में ३५० हजार से कम रुपया शायद ही खर्च हुआ होगा ? फिर झूठा हिसाब पेश किया जाता है, वही ३५ हजार के भीतर की रकम का ? जो व्यक्ति इतना

रुपया कहीं से भी खर्च करता है, उसे वह किसी भी प्रकार से वसूल कैसे नहीं करेगा ? हमारे यहाँ चुनाव मे राजसत्ता का और राजकीय साधनो का दुरुपयोग बडी बेशर्मी के साथ किया जाता है और जिनके हाथ मे राजसत्ता होती है, वे उम्मीदवार मतदाताओ को कई तरह से रिश्वत देते है।

इस सारे अनर्थ की जड कहां है ? जैसे भगवान को खोजने के लिए बाहर जाने की जरूरत नहीं है वैसे ही राष्ट्र की इस घातक बीमारी के कारण को भी हम अपने भीतर ही पा सकते हैं। स्वराज-प्राप्ति के पहले सभी तरह के लोगों के सामने विदेशी सत्ताधारियो को हटाने का सवाल था और बहुत से लोग कुर्बानी करने के लिए तय्यार थे। तब भी दूसरे महायुद्ध के समय मे अपने यहा सप्लाई व काला बाजार आदि के रूप मे देशद्रोह का बहुत काम हुआ और गाधीजी के उपदेश के बावजूद कुछ "देशभक्तों" ने शासन को चकमा देने मे होशियारी मानी और उन्होने हिंसक कार्यवाहियो मे भी यदाकदा हिस्सा लिया, जिसकी काट शायद किसी ने नही की।

स्वराज-प्राप्ति के तुरन्त बाद ही हमको अपनी सत्तालोलुपता और धनलोलुपता का दर्शन होने लग गया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे शक्ति-सम्पन्न नेता भी अपना जोड-तोड बिठाकर चलते थे। कोई चरित्रवान व्यक्ति भी यदि किसी न किसी कारण से उनको अपने अनुकूल नहीं लगता था तो उसे वे बर्दाश्त नही कर सकते थे और उनके मन की सी बात करने वाले कम अच्छे लोग भी उनकी कृपा के भाजन बन सकते थे। पण्डित नेहरू की मर्जी के खिलाफ काग्रेस अध्यक्ष चुने गये त्यागमूर्ति श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन को हटाकर खुद कांग्रेस अध्यक्ष बन जाने का अश्लाघनीय काम पण्डित नेहरू के द्वारा हुआ सो कौन नही जानता ?

लगभग उन्हीं दिनो पण्डित नेहरू ने ऐलान किया-चुनावो के लिए काग्रेस टिकट सिर्फ उन्हीं लोगो को दिये जाएगे जो न केवल ईमानदार हो बल्कि जिनका ईमानदार होना रोशन हो। उन्हे अमुक प्रदेश के विषय मे बताया गया कि वहा की प्रदेश चुनाव समिति मे बहुमत उन लोगो का है जिन्हें केन्द्र की ओर से टिकट नही देने की बात है। फिर भी टिकट दिये गये उन्हीं लोगो को और उनमें से किसी एक को टिकट नहीं दिया गया तो वह काग्रेस के खिलाफ खड़ा होकर जीत गया। आखिर उस व्यक्ति को काग्रेस विधायक पार्टी मे ले लिया गया। जब सत्ताधारी पार्टी के पास पर्याप्त शक्ति होती थी, तभी सिद्धान्त की बात की जाती थी।

बाद मे किसी समय कामराज-योजना बनी। सब मन्त्रियों के त्याग पत्र ले लिये गये और कुछ के मजूर कर लिये गये, इस घोषणा के साथ कि वे सगठन का काम करेंगे। परन्तु उनमें से किसी विरले ने ही सगठन का काम किया होगा। अलग करने का दिखावा पूरा होने के बाद कम से कम एक को बहुत जल्दी ही फिर से मन्त्री बना लिया गया। यों तो अच्छे से अच्छे मनुष्य मे भी कुछ न कुछ कमी बेशी पायी जा सकती है, पर जिनको मन्त्रि-

पद से हटाया गया, उनमें कुछ लोग वास्तव में बड़े चरित्रवान और सिद्धान्तवादी थे, पर उनका खास कुसूर यही था कि वे अपनी बात के पक्के होने के कारण नेता को नापसन्द थे।

बाद में एकबार राष्ट्रपति का चुनाव होने की नौबत आगई। बहुमत ने किसी एक को नामजद कर दिया। प्रधानमन्त्री की निगाह एक दूसरे व्यक्ति पर थी। प्रधानमन्त्री ने उसी समय ऐलानिया कह दिया कि मेरी मर्जी के खिलाफ करने वालों को मजा चखा दिया जाएगा। तुरन्त ही प्रधानमन्त्री की पसन्द का अमुक व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से खडा हो गया, यह कहकर कि मैं अपने अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार खडा हुआ हूँ, किसी दूसरे के इशारे से नहीं। प्रधानमन्त्री ने एक ओर तो बहुमत वाले व्यक्ति का नामजदगी का पर्चा पेश कर दिया, दूसरी ओर जाहिर कर दिया कि सब लोग अपनी अन्तरात्मा के अनुसार वोट दें।

आखिर भयकर दलबदल का जमाना आ गया। केवल उन दिनों में ही नहीं, बल्कि आज तक भी, यानी चुनावों में इतना भारी बहुमत मिल जाने पर भी, सत्ताधारी पार्टी अपने सकुचित स्वार्थ के लिए दलबदलू लोगों को उकसाने में अगुआ हो रही है। कितनी बेहयाई का यह काम है और कितनी शान से और कितने बहाने बनाकर यह किया जा रहा है? काग्रेस के टुकड़े हो जाने के बाद दोनो ही टुकड़ों में पहले की भांति सभी तरह के लोग है। दोनों में ही अग्रगामी भी हैं तो प्रतिगामी है। पर यह भेद गौण बात है। असल में भेद यह है कि प्रधानमन्त्री को उनके पद पर बनाये रखना चाहने वाले कौन हैं और उनके खिलाफ जा सकने वाले कौन?

देश में जो बिगाड खाता हो रहा है—भ्रष्टाचार का, सत्ता व धन के लोभ का, मन्त्रियों आदि के ठाठ से रहने का, कथनी और करनी के फर्क का, बेकार नारों का, शान्ति व्यवस्था के लोप का, हिंसा का, महगाई का, बेकारी का, गरीबी का, युवकों के बेताब होने का, जातिवाद का, साम्प्रदायिकता का, प्रादेशिक और स्थानीय विवादों का, सविधान की मूलभूत बातों को समाप्त करने का, ज्युडिशियरी की अवहेलना करने का क्रमशः अधिनायक वाद की ओर बढने का-उस सबका मूल कहा है? मूल को और कहां खोजने को जाए? फलत. जिस पार्टी के २३-२४ वर्षों के शासन मे यह सब अनर्थ हुआ, उसी से जवाब तलब करना होगा।

अत्यन्त दुख का विषय तो यह है कि यह सारी स्थिति हमको मुहा गई है। हम सोचते मालूम होते हैं—सत्तागत और दलगत राजनीति मे तो ऐसा होगा ही सही, भ्रष्टाचार किस जमाने में नहीं था और आजकल किस देश मे नही है? किसी भी जरिए से किसी के हाथ मे धन आ गया या राजसत्ता आ गयी तो वह प्रतिष्ठित हो गया और उसके तमाम पाप भुला दिये गये। ऐसे लोगो के बारे मे यह कहने वाले भी कुछ लोग मिल जाते हैं "कैसे भी होंगे, पर ये बेचारे ले देकर काम तो कर देते है।" अपने यहां और आजादी न सही, पर गोलमाल करने की पूरी आजादी है और दण्ड मिलने का भय किसी को है नहीं।

जो हो, वर्तमान सत्ताधारी से इस स्थिति को बदलने के लिए कुछ होगा नही और जो वास्तव में भले व ऊँचे दर्जे के नि:स्वार्थ लोग हैं, उनकी सुनता कौन है ? जब किसी सिद्धान्त को न मानना ही सिद्धान्त बन जाए तब क्या हो ? ऐसी हालत मे किन्ही सज्जनों को नशा चढ जाए और वे नमे होकर मैदान मे कूद पड़ें और सर्वसाधारण जनता के बीच मे जाकर अलख जगाएं; और तब जनता उलट पडे, ऐसी धनसत्ता और ऐसी राजसत्ता के खिलाफ शान्तिपूर्ण बगावत करने के लिए। बस, यही दीपक टिमटिमा रहा है, अपने से बहुत दूर। हमको उसी दिशा मे श्रद्धा के साथ, विश्वास के साथ चलना होगा। तब आगे का रास्ता भी स्वतः मिलता जाएगा।

७. शाश्वत जीवनमूल्यों का हनन

सृष्टि के आदि अन्त का कुछ पता नही। न यह पता कि यह तमाम कैसे क्या हो गया होगा ? परन्तु आस्थावानो की तरह वैज्ञानिक भी यह मानने लगे है कि दृश्य के अलावा कुछ न कुछ अदृश्य भी है। वह अदृश्य आज तक किसी की पकड में नही आया मालूम होता है। और आखिर भर्तृहरि के अनुसार केवल "स्वानुभूत्येकमान" ही है।

जो हो, मानव जीवन मे कुछ नैतिक मूल्य होते हैं। "धर्म के अनुसार कुछ कर्तव्य हैं तो कुछ अकर्तव्य हैं, कुछ सही तो कुछ गलत। उक्त कर्तव्याकर्तव्यो मे भी एक तो वे है जो आवश्यकता पडने पर देशकालानुसार बदल सकते है। बाकी कुछ जीवनमूल्य ऐसे हैं जिन्हे सनातन, शाश्वत कहा जा सकता है, यथा "अहिंसा सत्यमस्तेयम।"

मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण गिनाये, गाधीजी ने ग्यारह व्रत निश्चित किये। दोनो ही जगह सत्य, अहिंसा और अस्तेय का स्थान सर्वोपरि मालूम होता है। मनुष्य रहन-सहन आदि मामलो मे आजादी बरत सकता है, पर वह सत्य को अहिंसा और अस्तेय को अपनी जोखिम पर छोड सकता है।

परन्तु रहन-सहन आदि मे भी आजादी बरतने का नतीजा चोरी करने का यानी दूसरों की चीज अनुचित रीति से हड़प लेने का एव अपने लिए सग्रह करने का जरूर हो सकता है। जो मेरी राय मे समाजवाद के प्रचलित सिद्धान्त के विपरीत है और चोरी के द्वारा सग्रह करने वाला न अहिंसक हो सकता है, न सत्यशील।

भारत मे अनैतिकता का प्रसार भयावह है। अनीति पहले न रही हो सो बात नही है पर आज जैसी अनीति कभी भी नही थी। आज तो हाथ को हाथ खाये जा रहा है। आज तो आजादी के नाम पर, बुद्धि विवेक के नाम पर, विज्ञान के नाम पर हर कोई अपना कुछ भी दोष न मानता हुआ कुछ भी करने के लिए अपने आपको स्वतन्त्र समझता है।

जो राष्ट्र में, समाज मे अगुआ हैं वे जीवन-मूल्यो के मामले मे सबसे अधिक दोषी दिखायी देते हैं। तब क्या किया जाए ? व्यापारियो, राजकर्मचारियो को दोषी ठहराया जाए

तो वकील कहा बचे हुए है ? बल्कि चिकित्सक और शिक्षक तक इसी लपेटे में फसे जा रहे हैं। सत्ताधारी लोग तो भ्रष्टाचार के कई प्रकार से पुरस्कर्ता और अगुआ हैं ही।

इसका रहस्य यह है कि सबको शान और ठाठबाट के लिए बहुत सा रुपया चाहिए। वह रुपया कहाँ से और कैसे आए ? अवश्य ही वह उचित उपायो से नही मिलेगा तो उसके लिए अनुचित उपाय काम मे लेने पड़ेंगे। चोरी करो, झूठ बोलो, दूसरों का गला काटो और ठाठबाट वाले बड़े बन जाओ और शान से रहो।

चुनावो मे इस तमाम बुराई का सबसे ज्यादा दर्शन होता है। जीतने के लिए कुछ भी किया जा सकता है, सो किया ही जाता है। छोटे-मोटे चुनावो मे भी हजारो रुपये खर्च करने पड़ जाते हैं। जितना बड़ा चुनाव उतना ही घोर अनाचार। राष्ट्र के लिए कानून बनाने वाले अधर्मरत हो रहे हो तो इस भारत राष्ट्र का रक्षक कौन ?

८. "सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति"

"राजसत्ता कभी गलती नही कर सकती"

हाल ही में मैं एक लेख "शाश्वत जीवन-मूल्यों का हनन" लिख चुका हूं। मैंने जानबूझ कर केवल सत्य, अहिंसा और अस्तेय, इन तीनो को ही शाश्वत जीवन-मूल्य माने है। इन तीनों मे भी सत्य का स्थान सबसे ऊंचा है। जहा तक मैंने समझा है, विनोबाजी केवल असत्य को ही 'पाप' मानते हैं, बाकी अनैतिक बातो को वे केवल 'दोष' कहते हैं। परन्तु किसी भी एक दोष मे से, ययाशील-चारित्र्य के अभाव मे से, असत्य रूपी पाप अवश्य पैदा होता है।

विद्यार्थीकाल मे जानी हुई कई बातें मुझे याद हैं। उनमे से दो बातों का जिक्र मैं आज करता हूं। एक तो 'सर्वे गुणा. काचनमाश्रयन्ति' अर्थात् तमाम अवगुण, तमाम दोष, सारा पाप ये सब धनसत्ता के नीचे दब जाते हैं। जिनके पास धनसत्ता है उसमे सब गुण मान लिये जाते है। दूसरे राजा से अर्थात् राजसत्ता से कभी कोई गलती नही हो सकती। यानी जिसने कैसे भी राजसत्ता को हथिया लिया उस 'सर्वगुण सम्पन्न' के सब गुनाह भुला दिये जाते है।

और राजसत्ता व धनसत्ता मे अन्दरूनी मेल बहुत देखा गया है। अपने भारत मे सत्ताधारी लोग धनपतियो को कोसते कभी थकते नही, पर चुनाव मे उन धनपतियों का विपुल धन काम में लेकर जीतते है। धनपति अकेले मे सत्ताधारी की बहुत निन्दा करते हैं, पर उसे ही जिताने के लिए चुपचाप अपना धन दे देते है। कुछ दिन पहले समाजवादी सत्ताधारी ने अपनी उद्योग नीति का कुछ जिक्र किया, उसका पूंजीपतियो के सगठन के द्वारा स्वागत किया गया।

राजसत्ता ग्रौर धनसत्ता के मुकाबले मे किसी विद्वान की विद्वता की, वैज्ञानिक के विज्ञान की, शूरवीर को बहादुरी की, चरित्रवान के चरित्र की, ईमानदार की ईमानदारी की कोई खास कद्र–कीमत नहीं । ये सब राजसत्ता ग्रौर धनसत्ता के द्वारा वश मे किये जा सकते है । ग्रौर जो दोनो या एक सत्ता के वश मे न ग्राने की जुर्रत कर बैठे तो उसे कुचला जाने को तैयार रहना चाहिए । ग्रर्थात् जो ग्रपने दूसरे गुणो के कारण वडा हो जाएगा तो उसकी खैर नही होगी ।

जो लोग होशियार होते हैं वे या तो राजसत्ता के पीछे दौडते हैं ग्रौर उसे पकड कर बैठ जाते हैं या वे ग्रतुल धन बटोर कर कुबेर बन बैठते हैं । जो बहुत से लोग ऐसा नही कर सकते हैं वे राजसत्ता या धनसत्ता दोनो में से किसी एक के चिपके रहते है ग्रौर ग्रपना काम बना लेते हैं । सर्वसाधारण जनसमुदाय चुपके-चुपके राजसत्ता ग्रौर धनसत्ता दोनो की निन्दा करता है ग्रौर जाहिर मे उनको सलाम बजाता है । जनसमुदाय डरता है कि उसका कोई नुकसान न करदे ।

कोई व्यक्ति थानेदार जैसा मामूली पुलिस ग्रधिकारी बन जाता है तो उससे सारा पास पडौस डरने लगता है ग्रौर उसी को झुककर राम राम करता है । कोई दूसरा व्यक्ति वडा प्रोफेसर बन जाता है तो उसके लिए यह कहा जा सकता है कि "छोरे पढाता है जी ।" मैं सोचता हूँ कि स्वय गाधीजी राजनीति के इतने बड़े पुरस्कर्ता न होते तो केवल उनके महात्मापन की बहुत ही कम कद्र होती । जिसकी राजनीति में चलती है, लोग केवल उसी का प्रभाव मानते हैं ।

मैं एक ऐसे बड़े व्यक्ति को जानता हू जो गाधीजी के भक्त समझे जाते थे । वे गाधीजी की छाया की भाँति पीछा करते रहते थे । पर जब ग्रन्त के दिनो मे गाधीजी का राजनीतिक प्रभाव कम हो गया जब पडित जवाहरलाल नेहरू ग्रौर सरदार वल्लभभाई पटेल तक ने गाधीजी की बात मानना छोड दिया तब वे बडे व्यक्ति कहने लगे ग्रब गाधीजी की प्रार्थना सभा मे बूढी विधवाग्रो के ग्रलावा कौन जाता है ? उसने खुदने तो गाधीजी को छोड ही दिया था ।

यह वस्तुस्थिति है जिसे मानने से शायद ही कोई सज्जन मनुष्य इनकार करेगा । परन्तु निहितस्वार्थ तो ग्रवश्य ही राजसत्ता का ग्रौर धनसत्ता का ही गुणगान करेंगे । बाकी लोगों मे साहस ग्रौर ग्रात्मविश्वास नही है वे सोच ही नही सकते कि उनका किया भी कभी कुछ हो सकता है । तब फिर इस नारकीय स्थिति को बदलने का क्या ? निराश होकर बैठ जाना चाहिए ? हर्गिज नही । इसको तथा ग्रन्य सम्बन्धित विषयो की चर्चा मै ग्रपने ग्रगले लेखो में करूंगा ।

६ साथियों की ग्रहिंसक हत्या

जब स्वराज के लिए सघर्ष चल रहा था तब तत्काल कुछ पाने को नही था । इस-

लिए हमारी नीचे दर्जे की वृत्तियों के प्रकट होने का मौका नहीं था। फिर भी कुछ बड़े और खास लोगों तक के जेल जीवन की जो बातें सुनी उनसे सन्देह होता था कि हम लोग उतने ऊँचे दर्जे के आदमी नहीं होंगे क्या? हमारे राष्ट्रीय चारित्र्य की खराबियां दूसरे महायुद्ध के दिनों और फिर स्वराज के बाद सामने आयीं।

१९५१-५२ में हमारे लोकप्रिय नेता ने ऐलान किया कि चुनाव में कांग्रेस टिकिट उन लोगों को देने चाहिए जो न सिर्फ ईमानदार हों बल्कि जिनकी जनता में ईमानदार होने की ख्याति भी हो। उन्हीं दिनों तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष को हटाकर वे खुद कांग्रेस अध्यक्ष बन गये थे। जिन कांग्रेस अध्यक्ष को हटाया उनके त्याग और ईमानदारी का लोहा आम तौर से माना जाता था।

मुझे कम से कम एक राज्य की तो प्रत्यक्ष जानकारी थी। उसके आधार पर मैंने नेता को लिखा—आप केवल ईमानदार लोगों को टिकिट देने की बात करते हैं और अमुक प्रदेश की चुनाव समिति में तो बहुमत उन लोगों का है जिन्हें आप केन्द्र की ओर से टिकट पाने के लायक नहीं मानते हैं। ताहम टिकिट उन्हीं को मिले और कांग्रेस के विरुद्ध जीतने वाले एक कांग्रेसजन को तो फिर से कांग्रेस में ले लिया गया।

कई सालों के बाद कामराज योजना आयी जो पहले सिरे की धोखाधड़ी थी। सब मन्त्रियों के त्यागपत्र ले लिये गये और उनमें से कुछ के त्यागपत्र मंजूर कर लिये गये, इस ऐलान के साथ कि वे संगठन का काम करेंगे। अलग किये गये मंत्रियों में से शायद एक ने भी खास तौर से पार्टी का काम नहीं किया। मतलब था जो लोग नेता को पसन्द नहीं थे उन्हें एक बार बाहर निकाल कर फेंक देने का।

ताशकन्द का किस्सा आया। उसमें भारत के प्रधानमन्त्री को सम्भवतः उनकी मर्जी के खिलाफ समझौता स्वीकार करना पड़ा। और रहस्यमयी स्थिति में उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के कारण की जांच कराना भारत सरकार को मंजूर नहीं हुआ। कितना ही शोरगुल हुआ, पर सरकार टस से मस नहीं हुई। किसको पता है कहीं इसने ही हमारे प्रधानमन्त्री को मार दिया हो? ईश्वर जाने।

राष्ट्रपति के चुनाव का मामला आया। बहुमत ने ऐसे व्यक्ति को नामजद कर दिया जो प्रधानमन्त्री को पसन्द नहीं था। प्रधानमन्त्री ने उस व्यक्ति का नामांकन पर्चा भी दाखिल कर दिया। फिर जिस तरह से उस व्यक्ति को हराया गया सो किसको मालूम नहीं है। चारों ओर अन्तरात्मा की आवाज बोल उठी। और दलबदल का दौर चल पड़ा। अनुशासन भंग का इससे बड़ा उदाहरण क्या होता?

फिर प्रधानमन्त्री ने कुछ न कुछ कहकर अपने कुछ साथियों को अलग कर दिया। बाद में जो कुछ काम किया गया वह सब उन साथियों के रहते हुए भी हो सकता था।

और जो काम प्रधानमन्त्री के वश का या शायद इरादे का भी नहीं था वह तो कुछ व्यक्तियों के अलग हो जाने से भी न हुआ, न होने वाला है। जो आज प्रधानमन्त्री के साथ है उनमे से कितने उनके घोषित विचारो को मानते हैं ?

इन कारणो से मैं कहता हूँ कि नैतिक दृष्टि से हम रसातल में पहुँच चुके हैं। आम तौर से हमारे साथी मन्त्री बनने या चुनाव टिकिट पाने के फेर मे रहते हैं। कुछ तो सिद्धात वाले लोग भी होंगे ही सही। बाकी ज्यादातर का मुख्य सिद्धान्त कुछ बनकर बने रहने और नारे लगाने का मालूम होता है। राजनीति मे शायद कुछ भी अनुचित न होता हो, पर मैं तो नैतिकता की बात कर रहा हू।

१० घातक बीमारी

मैं जो कुछ लिखता रहा हूँ या कहता रहा हू उसका हर्गिज भी यह मतलब नहीं है कि राजनीति मे काम करने वाले लोगों मे अच्छे आदमी हैं ही नहीं अथवा स्वराज आने के बाद से लेकर अब तक देश मे कोई अच्छा काम हुआ ही नही। अच्छे आदमी न हो तो एकदम प्रलय की सी स्थिति बन जाए। मुझे दु ख इस बात का है कि जो अच्छे लोग हैं उनकी खास चलती चलानी नहीं है और दूसरे लोग उन पर हावी हुए रहते हैं। जिसके हाथ में सर्वोच्च सत्ता है उसकी वृत्ति अपनी पसन्द के लोगों को ही अपने पास रखने की और उन्ही की बात सुनने की है।

कुछ पुराने और बडे लोग सत्ताधारी को पसन्द नहीं थे। उनका पहले तो दूसरे लोगों से पीछा करवाया गया ताकि दुनिया के सामने उनकी तस्वीर खराब हो जाए। फिर मौका पाकर उन्हे खदेड दिया गया। जो लोग सत्ताधारी के चारो ओर बने हुए हैं उनमे कई खास आदमी ऐसे दिखायी देते हैं जिनके विचारों व सत्ताधारी के विचारो मे मेल खाता हुआ मालूम नहीं देता। उनमे से दो-एक ऐसे भी हैं जिनके बारे मे सत्ताधारी को शकित रहना पडता है, न कभी ये लोग मेरा तख्ता उलटने की योजना बना बैठे। राजनीतिक प्रेक्षक ऐसे लोगों को अपने स्थानो पर सुरक्षित नही समझते हैं।

सबसे बड़ी और घातक बीमारी यह है कि हर किसी को कुछ न कुछ चाहिए। केन्द्र मे मन्त्रिपद, लोकसभा या राज्यसभा की सदस्यता, राज्यपाल का पद, किसी विश्वविद्यालय की वायस्-चासलरी, किसी कमेटी की अध्यक्षता या सदस्यता, किसी राज्य का मन्त्रिपद, विधानसभा की सदस्यता आदि। नीचे उतर कर जाए तो जिला प्रमुखता, पंचायत समिति का प्रधानपद, सरपच का पद, कम से कम पच का ही ओहदा। इनमे से किसी भी पद पर होना कोई पाप नही है। पर कैसे भी पद हथियाने की कोशिश की जाती है, सो बुरी बात है।

जिसे अपने लिए कुछ न कुछ जरूर चाहिए वह सभी चीज को पाने की उधेड़बुन में लग जाता है और उसे पाने के लिए वह कुछ भी कर सकता है। उसके लिए वही सिद्धान्त बन जाता है। खुद कुछ बन जाने के सिद्धान्त के साथ साथ उसका दूसरा सिद्धान्त हो जाता है अपने मुकाबले में किसी को न बनने देने का, न बना रहने देने का। इस सारे झमेले में बेचारी जनता किसी को याद नहीं रहती है। जनता के वोट के लिए लुभावने नारे ईजाद किये जाते है। इच्छा से अनिच्छा से उम्मीदवार लोगो का नारे लगाना धर्म हो जाता है।

जहाँ तक मैं मानता हूँ दूसरे देशो मे देशभक्ति का इतना बड़ा अभाव नही है। मैंने सुना है कि एक बड़े देश मे कोई व्यक्ति ऊचे पद पर जाकर अपना व्यक्तिगत काम भी बनाता है तो उसमे कोई बुराई नहीं समझी जाती। यह सच हो तब भी ऐसा मार्ग अपनाने वाले को अपने देश भारत मे तो बुरी निगाह से ही देखा जाएगा। परन्तु चूकि अपनी जनता मे चेतना की कमी है, ऐसे स्वार्थी लोगो के खिलाफ कोई जोरदार आवाज नही उठायी जा सकती। इसीलिए उपर्युक्त बीमारी बढ़ती रहती है।

११ एकमात्र इलाज

पिछले लेख मे जिस घातक बीमारी का जिक्र मैंने किया है उसका एकमात्र इलाज है—जनता शिक्षित हो जाए, जाग्रत हो जाए, सगठित हो जाए, उसमे मुकाबला करने की हिम्मत आ जाए और वह अपनी सत्ता को अपनी ताकत से अपने हाथ मे लेलें। जिसके हाथ में सत्ता है वह उसे अपनी खुशी से दूसरे को नहीं संभलाएगा। अग्रेजो पर इतने जोर का दबाव नहीं पड़ता अथवा वे हिन्दुस्तान मे बने रहने की स्थिति मे होते तो क्या वे इतनी आसानी से अपना साम्राज्य छोड़कर चले जाते ? और छोड़ते-छोड़ते भी वे हमारी जान को एक आफत तो खडी कर ही गये।

भारत मे स्वराज आया सो जनता के हाथ मे नही आया। वह किसी राजनीतिक पार्टी के हाथ मे आया, उस पार्टी के किन्ही लोगो के हाथ मे आया। वह पार्टी अथवा वे लोग अपने हाथ में आयी हुई सत्ता को किसी भी दूसरे के पास, जनता तक के पास जाने देना कभी नही चाह सकते। जनतन्त्र की रक्षा करने वाली स्वतन्त्र ज्युडिशियरी के पास कुछ अधिकार हैं तो उन्हें छीनने की कोशिश की जा रही है, राजनीतिक पक्षपात के बिना शासन को चलाने वाली जो स्थायी सिविल सर्विस है, उसे छेड़ा जा रहा है और उसे अपने पक्ष में लाने की तो हर कोशिश की ही जाती है।

यह सारा अभिक्रम राष्ट्र को अधिनायकवाद की ओर ले जाने का है। जो सत्ताधारी की हा मे हा न मिलाए उसे कुचल दो, बाहर निकाल फेंको और जो जी हुजूरी करने वाले हो उन्हें अपनाते रखो, जब तक वे सिर उठाना शुरू न करे। हिन्दुस्तान में यह सब काम हिंसा-हत्या के बिना हो सकता है सो हमारे देखने मे आ चुका है। जिनका उद्देश्य येन-केन प्रकारेण बने रहने का अथवा लाभ उठाते रहने का है, वे सत्ताधारी का मुकाबला नही

कर सकते। वे तो अपनी सुरक्षा की खातिर केवल सुर से ताल मिलाने का काम कर सकते हैं। इसलिए मुकाबला करने वाले नये लोग होंगे।

जो इस प्रकार हां मे हा नही मिला सकते वे अपने आपको इस धधे से अलग कर लेंगे और जो ऐसा नही कर सकेंगे वे जहा हैं वही केवल पडे रहेंगे। नीचे से ऊपर तक कडी से कडी मिल रही है। एक के सिर पर दूसरा, दूसरे के सिर पर तीसरा, तीसरे के सिर पर चौथा और चौथे के सिर पर पाचवा। सत्ता एक पार्टी के हाथ से दूसरी पार्टी के हाथ मे चली जाएगी, तब भी यह हाल जैसा है वैसा ही बना रहेगा। पूजीवाद के स्थान पर जनतान्त्रिक समाजवाद और जनतान्त्रिक समाजवाद के स्थान पर साम्यवादी समाजवाद हो जाएगा, तब भी यह स्थिति नही बदलने वाली है।

इस स्थिति को बदलने की, क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की शक्ति जनता के हाथ मे है। जनता अपनी शक्ति को पहिचान ले और उसे काम मे लेने का पक्का विचार कर ले और सगठित होकर धावा बोल दे। कई एक बातें तो कानून को तोडे बिना ही हो सकती है। यथा पुलिस और कोर्ट-कचहरी मे न जाना, उनका बहिष्कार करना तो जनता के खुद के हाथ मे ही है। और बहिष्कार करने की शक्ति आ जाए तो फिर कानून तोड कर सत्ता को अपने हाथ मे ले लेना कौन मुश्किल है। देश की बीमारी का यही एक पक्का इलाज है। मुझे यही विधा जनता को सिखाने की कोशिश करनी है।

१२ स्वदेश की बीमारी

हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी बीमारी यह है कि अपने यहा जैसी चाहिए वैसी देशभक्ति की भावना नही है और स्वार्थ की भावना ज्यादा है। कोई बडा मौका आजाए तब तो देशवासी आम तौर से एक होकर परिस्थिति का मुकाबला करने को तैयार हो सकते हैं। बाकी रोजमर्रा के जीवन मे तो ज्यादातर लोग स्वार्थ के वशीभूत हो रहे हैं। हमारे किसी काम से देश का फायदा होता है या नुकसान इस बात की हमे शायद ही परवाह होती है। हर-एक आदमी को चाहे जैसे करके अपना काम बनाने की चिन्ता रहती है। देश मे जो व्यापक भ्रष्टाचार फैल रहा है उसकी जड़ हमारी इस स्वार्थ भावना मे है। दूसरे महायुद्ध के बाद और फिर स्वराज के बाद तो ऐसा "वजराक" पड़ा है कि किसी को किसी का भरोसा ही नही होता है। कोई किसी राजनीतिक पार्टी का मेम्बर है तो वह सबसे पहले अपने भले की सोचेगा। उससे आगे बढकर अपने गुट्ट के भले की सोचेगा। और उसके आगे अपनी पार्टी के भले की सोच सकता है। पार्टी से ऊपर उठकर देश के भले को पहला स्थान देने वाले लोग बहुत कम हैं। बात की जाती है देश के भले की और काम किया जाता है अपने खुद के भले के लिए। और ऐसा करने मे सच-झूठ, न्याय-अन्याय, ईमानदारी बेईमानी, उचित-अनुचित का कोई सवाल सामने नही आता है। राजकर्मचारियो को तो सही या गलत भ्रष्टाचार मे लीन माना ही जाता है, पर जिनका जनता के सेवक होने का

दावा है उन्होंने सबसे बाजी मार रखी है। खास कर जिनका सत्ताधारी पार्टी से कुछ भी लगाव है उनके द्वारा होने वाली गोलमाल की तो कोई हद ही नही है। जिस पार्टी के हाथ मे आज सत्ता नहीं है उसके पास कल सत्ता आने पर वैसी ही गडबड़ उस पार्टी के सेवकों के द्वारा नही होगी, इसकी कोई गारन्टी नही है। यह कहावत बिल्कुल ठीक है कि सत्ता मनुष्य को बिगाडती है। कानून बनाकर पंचायत-राज स्थापित करने की कोशिश की गयी; पर हमारे एक साथी का कहना है कि पंचायत राज तो नही हुआ और राज-पंचायत हो गयी मतलब यह कि बडे राज मे जो भ्रष्टाचार है वही पंचायत के इस जरासे राज में आ गया। और इस सारे अनर्थ की जड मे है वोट और चुनाव। चुनाव में खड़े होने वाला किसी भी तरकीब से मतदाता को अपने पक्ष मे कर लेता है और कही से भी लाकर अनाप शनाप रुपया खर्च कर देता है और फिर लगता है उस लगे हुए रुपयो की वसूली मे। ठेठ चोटी से लेकर ठेठ एडी तक यही बात है। राष्ट्रपति का चुनाव ईमानदारी से न हो संसद सदस्यों का चुनाव ईमानदारी से न हो तो फिर कौन से चुनाव मे बेईमानी नहीं होगी ? संसद के एक-एक उम्मीदवार के चुनाव मे लाखों खर्च हो जाते हैं। और किसी भी पार्टी की ओर से चुने गये तथा निर्दलीय सदस्यो को एक न एक प्रकार के लोभ लालच से तोडा जा सकता है। यह तमाशा पिछले सालो में बहुत ज्यादा देखने मे आया है। जब देश के या जनता के नेता कहलाने वालो का ऐसा बुरा हाल हो तो फिर अच्छा हाल किसका होगा ? जो ऊंचे ऊंचे नारे लगाये जाते है उनका मतलब वोट बटोरने से हैं। कल गरीबी हटाओ का नारा लगा था, आज भ्रष्टाचार मिटाओ का नारा लगना शुरू हुआ है। बैंक का या किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण हुआ तो एक साथी ने कहा. यह राष्ट्रीयकरण नही है, यह तो सरकारीकरण है। बेरोजगारी मिटाने का दम भरने वालों के लिए हमारे साथी ने कहा कि बात करते है बेकारी मिटाने की, और काम करते है बेकारी बढाने का। परन्तु अपने बीच मे इस तरह सोचने वाले और पते की बात कहने वाले कितने है ? और आम जनता को भरोसा किसका है ? नारो मे कुछ चमत्कार जरूर लगता है जिससे घड़ी भर के लिए लोग वश में कर लिए जाते हैं। बाद मे एक नारे का जोर कम हुआ कि दूसरा नारा लगाओ। नारों की कमी क्या है ? जो एक पार्टी बहुत अच्छी हो सकती है, वही बहुत बुरी भी हो सकती है ? सवाल अच्छी-अच्छी बातें करने का नही है, सवाल है कुछ कर गुजरने का, कुछ करके दिखाने का। जनता को अपनी तरफ खेंचने के लिए कितनी ही लुभावनी बातें की जा सकती हैं। जनता भी खिंच सकती है, खिंच जाती है। पर उसका भ्रम दूर होते ही उसे लुभावनी बात करने वालों से ग्लानि हो जाती है और फिर उसका भ्रम दूर होता है। ऐसा करते-करते उसे किसी का भी भरोसा नही रहता। उसकी यह राय बन जाती है कि ये सब लोग यों ही है, ये वोटो की खातिर सब बातें बनाते हैं। और जिन्हें लेने की विद्या याद है वे कभी कभी कोई काम कर भी देते हैं, पर करते है उनको ध्यान में रखते हुए कि जिनके वोट उनको मिले हैं, बाकी दूसरों से तो वे बदला लेने की सोचते है।

ऊपर की पंक्तियों मे इस कलम से स्वदेश की बीमारी का कुछ ज्यादा बुरासा चित्र खिंच गया दिखता है। बुरा हो या कैसा भी, पर यह चित्र असलियत से दूर नहीं है। तब

भी इसका यह मतलब हर्गिज नही है कि बुराई के बीच में भलाई का अंश है ही नही। यदि भलाई का अंश हो ही नही तो प्रलय हो जाए। आखिर पार्टी वालो मे भी भले आदमी हैं, जिनके हाथ मे राजसत्ता है उनमे भी भले आदमी हैं। देश की भलाई के कई काम नही हो सके होगे, कुछ गलतियां भी हुई होगी ? पर स्वराज के बाद कुछ अच्छे काम तो हुए ही हैं न ? और सबसे ज्यादा आशाजनक बात तो यह है कि इस देश की आम जनता की नाडी अभी तक ठीक चल रही है। हालाकि कल्याणकारी राज की कृपा से जनता मे परावलम्बिता, पगुता और दीनता आ गयी है। आम जनता के बीच मे जो असख्य दलाल पैदा हो गये है उनके जरिये से सब काम बिगडता है और दलाल लोग अपना खुद का और अपने मालिकों का काम बनाते हुए थोड़ा बहुत टुकड़ा कुछ ऐसे लोगों के सामने फिकवा देते हैं जो जनता में किसी हद तक जागृत हैं। ऐसी हालत मे स्वदेश की भयकर बीमारी के इलाज के लिए उन भले आदमियों की खोज करनी होगी जिनको किसी भी चीज का नशा नही चढ सकता और ऐसे लोगो को अपना सारा आचरण व्यवहार ऐसा रखना होगा कि जनता को उनका विश्वास करना ही पड़े। किसी को उन सज्जनो का जरा सा भी स्वार्थ न दिखाई दे, और जब स्वार्थ होगा ही नही तो दिखायी क्या देगा ? ऐसे सत्पुरुषों को एक जगह आना पडेगा और अपने-अपने स्थानो की जनता को शिक्षित, जागृत और सगठित करना पडेगा। कोई चमत्कारी अवतारी पुरुष पैदा हो जाए तब तो कहना ही क्या ? पर जब तक कोई ऐसा महापुरुष नही दिखायी देता है तब तक सज्जनो को अपनी पाती का कुछ न कुछ भला काम तो करना ही चाहिए न ? "इतना भयकर बिगाड खाता हो गया है, ऐसी आग लग गयी है, ऐसी बाढ आ गयी है, ऐसा तूफान आ गया है, ऐसे कालचक्र मे हम लोग घिर गये हैं कि अब किसी के कुछ भी करने से कोई नतीजा नही है।" इस प्रकार की निराशा मे दबने वालो मे तो क्या कहा जाए ? पर जिनमे थोडा बहुत भी आशा का अंश बाकी है, जिनमे कुछ भी उत्साह है, जो अपने घर के काम का नुकसान करके बस्ती की भलाई के लिए कुछ भी इच्छा रखते हों उन्हे तो अपना काम शुरू करना चाहिए। हम यह सोचते तो नही बैठ सकते कि हमारा कौन साथ देगा और कोई भी साथ नही देगा तो हम अकेलों से क्या होगा ? रॉकेट के इस जमाने में हम लगडाते हुए पैदल चलकर कब तक पहुंचेगे ? ऐसी शकाओ को अपने मन में आने देना ही कमजोरी है। कोई आदमी हिम्मत करके खडा होगा तो उसका साथ देने वाले भी मिल ही जाएगे। समुद्र ने टीटोडी के अंडे बहा दिये तो टीटोडी अपनी चोच मे समुद्र का पानी ले लेकर उसे सुखा देने का सकल्प कर बैठी। टीटोडी मे समुद्र खाली न हुआ होगा तो न हुआ होगा, पर उसने साहस तो किया और उसने आत्म विश्वास के साथ एक निश्चय तो किया। तब अपने निश्चय के अनुसार काम करने मे उसे आत्म सतोप तो हुआ होगा ? यहा डरने झिझकने का क्या काम है। अपने सामने किसी एक पार्टी का खंडन या किसी दूसरी पार्टी का मडन करने का सवाल नही है। अपन तो भोली जनता को सामने खड़ी बुराई से आगाह करने का इरादा रखते हैं। बुराई का जिक्र तो हम करेंगे ही सही, साथ मे बुराई की काट भी हमे करनी पडेगी। जनता को अपने अधिकार के लिए सचेत करना है, उसे जगाना है और जागी हुई जनता जरूर ही संगठित होगी। एक गांव भी अच्छे आधार पर सगठित हो जाए तो वह कमाल करके दिखा सकता

है और फिर उस गाव की देखा देख दूसरे गाव भी उसी रास्ते पर चलने लगेंगे। एक तहसील सगठित हो जाए तब तो बहुत बडा काम हो सकता है। हमारा किसी से बैर नही है, पर अपने हक के लिए झगडा करने का हक तो हमको हासिल है ही न? गांधीजी ने हमको यही सिखाया था। हममे से कोई गाधीजी जैसा न सही, पर हम अपने पास जितनी सी ताकत है उतना सा काम तो करेंगे ही सही। बस तो यही अपने देश की बीमारी का इलाज है। कर गुजरना चाहने वाले निराश होकर नही बैठ सकते हैं। उनको तो जूझना ही है। वे अकेले रह जाए तो भले ही अकेले रह जाएं। वे अकेले ही "हर-हर महादेव" का घोष करके त्रिलोकी को कपा देंगे। तथास्तु ॥

१३. साधन, सुविधा, समानता

एक बात हम सभी जानते हैं कि वनस्थली का काम भौतिक साधनों के बिना यकायक शुरू हो गया था और आज तक भी वनस्थली की वही परपरा चली आ रही है कि कोई भी नया काम पहले चालू कर देना और उसके लिए साधनो का बाद में जुटते रहना। ऐसी हालत मे अपने यहा खर्चा आगे से आगे बढता रहा है और आमदनी उसके पीछे-पीछे चलती रही है। अपने पास किसी भी समय जायद रुपया बचा नही रहा, बल्कि हमेशा ही कम या ज्यादा कर्जा अपने ऊपर बना रहा। मैं मानता हूँ कि इसी कारण से वनस्थली के पास एक शक्ति विशेष बनी रही और बढ़ती रही है।

दूसरी बात यह है कि वनस्थली के सचालन-व्यवस्था विभाग मे पूरी जनशक्ति भी कभी नही जुट पायी। और अपने पास आज भी वह शक्ति पर्याप्त मात्रा मे नही है। शिक्षा का काम तो अपना काम है ही। शिक्षा विभाग मे काम करना अपेक्षाकृत कुछ आसान माना जा सकता है। कम से कम शिक्षा का काम आमतौर पर बधा हुआ तो है ही। परन्तु व्यवस्था के काम मे चौबीसो घटे तनाव बना रहना है। इसलिए व्यवस्था के लिए सुयोग्य कार्यकर्ता बहुत कम मिलते हैं। उदाहरण के लिए अपने को प्रशासन सचिव आज तक नही मिल पाया है। वैसा ही सेवा अनुभाग को पूरा ध्यान देकर सभाल सकने वाला कार्यकर्ता भी अपने पास नही है। इसके अलावा अपने यहा आमदनी के स्वतत्र नये जरिये खडे करना चाहते है और जो हैं उनको विकसित करना चाहते हैं। यथा भडार लोकप्रिय बने और उसकी आमदनी बढे एव खेती से अपने को बढती हुई आमदनी होने लगे। नये जरियो मे एक तो जयपुर के वनस्थली भवन की जमीन मे किराये के मकान बनवाने हैं, अच्छी आयुर्वेदिक रसायनशाला शुरू करना चाहते हैं, ऊनी खादी का काम चालू करना चाहते हैं और जयपुर मे एक वार्षिक अखिल भारत कला उद्योग प्रदर्शनी करना चाहते हैं। आज अपनी आमदनी जो ३॥ लाख के करीब है वह २-४ साल के भीतर १० लाख की हो सकती है। पर इन कामों का जिम्मा लेने वाले अपने पास कौन हैं? जीवनकुटीर की भाषा मे मैं कहूँ तो "है कोई हमसे लडने वाला।" अपन धनाभाव के कारण कई बार अपने लिए आवश्यक और उचित सुविधाएं जुटाने मे उतने सफल नही हो पाते। हालांकि शुरू के मुकाबले मे

आजकल सुविधाएं काफी बढ़ गयी है। पर साथ ही मुझे कभी-कभी देखने सुनने को मिलता रहता है कि हमारी सुविधाओं की भूख कुछ ज्यादा बढ़ी हुई है और अपने कुछ लोगों की मनोदशा, क्षमा कीजिए मुझे कुछ "बाजारू" भी दिखायी देने लगती है। इस "बाजारूपन" को मैं वनस्थली के लिए अशुभ मानता हूं। हमें अपने लिए सुविधाएं चाहिए तो उन्हे जुटाने की ओर उपस्थित कर देने की अपनी शक्ति भी तो बढ़नी चाहिए? अपने कार्यकर्त्ताओं की सख्या रिक्त स्थानों सहित ३१७ है। उनमे से हम एक भी व्यक्ति प्रशासन विभाग के लिए क्यों नही दे सकते? और जरा से सेवा अनुभाग का सीधा चार्ज ले सकने वाला व्यक्ति भी हम क्यों नही दे पा रहे हैं?

वनस्थली की तीसरी बात यह है कि यहाँ पर पहला जोर कर्तव्यपालन पर है। सच पूछिए तो अपने यहाँ सही अर्थ मे कोई "अधिकारी" है ही नहीं। वनस्थली का अपना सविधान बना हुआ है और उसके अनुसार अपने यहां तंत्र भी है। वनस्थली का काम तो अब बड़ा हो गया है, पर कोई छोटा काम भी तंत्र और नियमोपनियम के बिना ठीक से नही चल सकता। वनस्थली मे जो अधिकार सा दिखायी दे सकता है वह भी वास्तव में इस विशाल सस्थान की रक्षा करने का कर्तव्य ही है। उक्त रक्षा मजबूती के साथ न की जाए तो अपने इस संस्थान का विघटन शुरू हो जाए। यह जमाने की खूबी है कि ज्यादातर लोगों को उचित-अनुचित व्यक्तिगत लाभ उठाने की फिक्र ज्यादा रहती है और लाभ-प्राप्ति के लिए साधनों को उपलब्ध करने की चिन्ता करने वाले लोग जैसे देश मे वैसे अपने यहाँ भी बहुत कम है।

मेरे मन की एक बात और है, वह यह कि वनस्थली भी अपने इसी देश के, अपनी इसी समाज व्यवस्था के अन्तर्गत है। चालू समाज व्यवस्था मे जो समानता है उससे ज्यादा समानता हम अपने यहाँ नही ला सकते और जो देश म असमानता है उसे ज्यादा न हो जाने देने के लिए तो हम कृतसकल्प हैं। हमे यह नही भूल जाना चाहिए कि वनस्थली कोई सरकार नही है, वनस्थली कोई कारखाना नही है, वनस्थली कोई दुकान नहीं है, वनस्थली कोई होटल नही है, वनस्थली मे कोई देने वाले और कोई लेने वाले अलग-अलग नही है। अपनी तो समानधर्मा कार्यकर्त्ताओं की एक मडली है जिसके लिए जो कुछ लाया जा सके उसे आपस मे योग्यता और काम के अनुसार बाट लिया जा सकता है। जाहिर है कि उस बटवारे में समानता नही लायी जा सकती। कई एक सुविधाओं की समानता निर्वाह-व्यय और जीवन-स्तर की समानता के बिना नही लायी जा सकती। प्रश्न है कि निर्वाह व्यय की समानता की खातिर हम लोग थोड़े बहुत भी तैयार है क्या? तमाम वेतनमानों की औसत निकाली जाय तो पता नही अधिकतम पाने वाले का कितना कम हो जाए और न्यूनतम पाने वाले का कितना ज्यादा? कम पाने वाले को ज्यादा मिलने लगे तो वह जरूर खुश हो जाएगा। पर ज्यादा पाने वाले को कम मिलने लगे तब क्या हो? इसलिए भाइयो और बहिनों को अपने-अपने हाल मे मस्त रहना चाहिए और हल्के विचारो को अपने मन मे नही आने देना चाहिए। जिसे समानता चाहिए उसे खटने की, खपने की, मर मिटने की समानता का यत्न करना चाहिए, न कि छीना-झपटी मे जो कुछ मिल जाए उसे ले भागने की समानता का।

१४. 'संस्था' माने क्या ?, 'सुविधाएं' माने क्या ?

मुझको "संस्था" शब्द उस समय बहुत खटकता है जब उसके प्रयोग के पीछे एक प्रकार का भेदभाव सा छिपा दिखायी दे जाता है। अपने सब लोगों के मिल जाने से "संस्था" नाम की चीज बनती है। अर्थात् हम सब "संस्था" हैं। हम लोगों ने अपने-अपने जिम्मे के काम ले रखे हैं। कोई पढाता है, कोई खेल खिलाता है, कोई भोजन कराता है, कोई हिसाब रखता है, कोई रुपया लाता है, कोई प्रबंध करता है। रुपया लाने वाले को या प्रबन्ध करने वाले को कोई "संस्था" मान बैठे तो वह बडी गलत बात होगी। वनस्थली में, "मेनेजमेंट" नामकी कोई चिडिया नही है। वित्त विभाग, प्रबन्ध विभाग अपने ही तो हैं। उन्हें हम हुक्म दे सकते हैं, पर यह जानकर, सोचकर कि पैसा है या नही, लाया जा सकता है या नही। पास में पैसा कम हो तो उसे प्रथम कोटि की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगाना होगा। यह जरा सी बात दिखायी दे सकती हैं, पर मजदूर कम मिलते हों तो उन्हें अनिवार्य कामों में ही पहले लगाना पडेगा। ऐसी परिस्थिति में कुछ विशेष आवश्यकताओं को हम लोग यथाशक्ति श्रमदान के द्वारा पूरी कर सकते हैं।

वनस्थली की भूमि में जीवनकुटीर की भावना व्याप्त है। यहां जब आकर बैठे तो एक नीम के नीचे, नाम लेने को भी पैसा पास में नही। किसी ने जरासी जमीन दे दी, कुछ पैसे मांग लाये। दो चार झोंपडियां बन गयी, एक कुआ खोद डाला गया। गर्मी में दिन भर लू में सिकते रहते, बरसात में आधा पानी झोंपडियों के भीतर गिरता, सर्दी में ठिठुरते रहते-जोर की आंधी चलती तो भोजन करते हुए ही एक हाथ में रोटी लिए दूसरे हाथ से छप्पर को पकड कर लटक जाते। सवेरे ४ बजे से रात के ११ बजे तक कार्यक्रम चलता जिसमें १०–१२ मील पैदल चलना भी शामिल था। अनाज खत्म होने लगा तो जौ, बाजरा आदि सबको मिलाकर टिक्कड सेक खाये। पीसनेवालियों ने काम करने से इन्कार कर दिया तो खुद ने पीसना शुरू कर दिया, गारा ईंट पकडाने वाले मजदूरों ने आना बन्द कर दिया तो खुद मजदूर बन गये।

शिक्षाकुटीर झोंपडी में ही शुरू हुआ। शायद दो तीन साल तक एक भी शौचालय नहीं बन पाया। शिक्षकों के लिए बालू की डोली को काटकर "टपरी" बनादी गयी। पैसा बहुत कम था, नाम लेने लायक दुकान नही थी, जरूरत का सामान निवाई से आता, ईंधन तक दुर्लभ था, रोजाना निवाई जाकर डाक लायी जाती, तार रेल्वे स्टेशन पर आता, जयपुर में ट्रेन में चलकर, बैलगाडी में बैठकर वनस्थली पहुँचने में ५–६ घंटे लग जाते। न कोई डॉक्टर था, न वैद्य था। १२ साल तक एक भी मकान 'चूने पत्थर का नहीं था। ३५ साल तक महाविद्यालय पेडों के नीचे चल चुका तब मकान देखने को मिला। एक टट्टू पांच रुपये में खरीदा गया, एक सितार आठ रुपये में। जोर की बारिश में जोर शोर से नदी नाले आते

उसमें छोटी लड़कियों को उठा कर फेंक दिया जाता और साथी लोग बहती हुई लड़कियों को बचाते। निवाई तक पैदल जाना, पहाड़ पर चढ़ना, जूझना, वहा से नीचे उतर के आना और गोठ मे जीमना। ७ रुपया मासिक में खाना, कपड़ा, जूतियां, तेल-साबुन, किताब व कॉपी आदि सब कुछ। ७५ रु० मासिक से ज्यादा किसी साथी को नही मिले, कई कई सालो तक। अपने ऊपर कर्जा जहां हो तो चैन नही पडे। इस सब मे मुझ जैसे पागलो को मजा आता, सुख मिलता-इससे हमारी ताकत बढ़ी, आत्मविश्वास बढा। वनस्थली शुरू से आज तक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रही, यहा किसी बाहर वाले का कोई दखल नही।

और आज की वनस्थली में दखल तो आज भी नही, रुपये की इतनी जिम्मेदारी बढ गयी तब भी। आगे चलकर रुपये के मामले मे और भी स्वतन्त्र स्वावलम्बी हो जाना है। अपने यहा कौन-कौन है जो रुपया मागकर लाने के लिए राजी हो जाये, और सफलतापूर्वक माग भी लावे। वनस्थली क्या कोई सरकार है या यहा पर कोई नगरपालिका है ? यहाँ तो अपन सब भाई-बहिन एक बडे से परिवार के सदस्य है। जितना जहाँ से मिल जाए ले आओ, कमाया जा सके तो कमालो, दे सको और देना चाहो तो कुछ अपने पास से देदो, सेवा-शुल्क के नाम से, कार्यकर्त्ता कल्याण कोष के बहाने। कल्याण कोष को न मानो या उसमे कुछ न देना चाहो तो खुशी आपकी। जो जमा पूंजी हाथ में आजाए उसे बांट खाओ। बाटने का कुछ न कुछ आधार तो रखना ही पडेगा। जो काम अनिवार्य हो, अत्यन्त आवश्यक हो उसे पहले करलो, दूसरे-तीसरे नम्बर वाले काम अपने आपही बाद के लिए छूट जाएगे। मेरी इतनी लम्बी चौडी कथा का कोई यह अर्थ न लगा डालें कि मैं आज भी जीवनकुटीर की या शिक्षाकुटीर की बाते वनस्थली मे ले आना चाहता हू। आज सडक बनी हुई है, बसें चलती हैं, कारें दौडती हैं, घुडदौड होती है, हवाई जहाज उडते है, बिजली की रोशनी है, पानी के नल लगे हुये है, पानी योजना का काम चालू है, टेलीफोन है, डाक है, तार है, भडार है, बैंक है, साग-सब्जी की दुकान है, दर्जी है, नाई है, धोबी है, जूतियां गांठने वाला है, डॉक्टर है, वैद्य है, पक्के मकान हैं क्या नही है ?

धीरे-धीरे सुन्दरता भी आ रही है, सजावट भी होने लगी है मनोरंजन के लिए अपना खुद का नाचना गाना ही क्या कम है ? मैं खुद सुविधा असुविधा को और मनोरंजन तक को खासकर "कल्चरल प्रोग्राम" को नही मानता हूँ। सिनेमा को तो मैं सखियां समझता हूँ। जो कर्म-भगवान मे लीन है उसके लिए क्या सुविधा, क्या असुविधा ? सत्कर्म मे ही उसकी सुविधा है। तकलीफ मे उसका आराम है। बन्दे का भी तो आज भी मन्त्र यही है :—

"भला करो और बुरा न सोचो,
आराम छोडो तकलीफ पाओ।
अशान्ति त्यागो, सुविधा न सोचो,
सत्कर्म में से सुख शान्ति पाओ॥

पर आपके आराम के लिए मैं तन-मन से हाजिर हूँ। अपनी बच्चियों के लिए मैं आकाश के तारे तोड़ कर ला सकता हूँ। मायी भाई-बहिनों की, "तकलीफों" को मिटाने के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ।

१५. स्त्री और पुरुष

पिछली बार अपने यहां काका साहेब कालेलकर ने 'स्त्री-पुरुष' के विषय में जैसे विचार प्रकट किये थे वैसे ही विचार अपने एक दूसरे प्रिय सायी की ओर से सामने आये हैं। इस विचारधारा की पृष्ठभूमि में मुझको एक बड़ा दोष यह मालूम होता है कि इससे समाज के दो अंगों के बीच भेदभाव और अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन मिलता है। अपने देश और समाज में चारों ओर भेदभाव बढ़ता हुआ दिखायी देता है। कभी हमको अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय होता दिखायी देता है, कभी तथाकथित हरिजनों के साथ, कभी किसानों के साथ, कभी मजदूरों के साथ, कभी स्त्रियों के साथ। मेरी राय में किसी के भी विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर अन्याय करने वाले शायद ही कोई होंगे? अस्तु। आज का अपना विषय तो "स्त्री और पुरुष" है।

हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं कि स्त्री और पुरुष की शरीर रचना और मानस रचना में अन्तर है। वही भेद अन्वेषण और अनुसन्धान के द्वारा प्रमाणित होता जा रहा है। स्त्री और पुरुष में किसी प्रकार का प्रकृतिजन्य अन्तर है तो उसकी जिम्मेदारी किस पर है? उस अन्तर के कारण स्त्री और पुरुष की अपनी अपनी मर्यादा बन जाती है तो इसमें किसका दोष समझा जाए? भारत में नारी का स्थान बहुत ऊंचा माना गया है। हमारे यहां नारी की देवी के रूप में उपासना होती आयी है। और आज भी हम लोग नारी को पूज्य मानते हैं। इन स्थिति में नयी रोशनी के प्रभाव से जो कुप्रभाव पड़ रहा है वह अनिष्टकारी है। अपने देश में तो कानून से भी स्त्री और पुरुष के अधिकारों में कोई अन्तर नहीं है। मतलब यह कि दोनों के बीच के अन्तर का अर्थ असमानता नहीं है।

स्त्री के साथ माता बनने का आवश्यक और पवित्र कर्तव्य लगा हुआ है। माता बनना एक मात्र स्त्री का ही अधिकार भी है। स्त्री के शरीर और मानस में माता बनने योग्य गुण भी है जो पुरुष में नहीं है। सन्तान को जन्म देने के अलावा उनका पालन पोषण करने का काम भी माता ही सबसे अच्छा कर सकती है। इस नये जमाने के समृद्ध घरों में बच्चों की सम्भाल का काम परिचारिकाओं पर छोड़ने वाली माताएं अपने कर्तव्य के विमुख आचरण करती हैं। इस प्रकार दूसरों के भरोसे पर छोड़े हुए बच्चों में कोई दूसरे ही गुण अवगुण आ जाएंगे। माता के अलावा अन्नपूर्णा भी नारी ही हो सकती है। नारी को क्या जरूरत है कि वह अपने ऊंचे स्थान से गिरकर पुरुष के नीचे स्थान की तरफ आने की, पुरुष की बुराइयों को अपनाने की चेष्टा करें?

इस सबके बावजूद स्त्री को अपनी इच्छा के अनुसार सभी क्षेत्रों में काम करने की आजादी हासिल है। मैं खुद तो यहां तक सोचता हूँ कि स्त्री चाहे तो वह फौजी काम भी

क्यों न करें ? झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की "नारी सेना" बनाकर नेतृत्व करने की जो कहानी मैंने सुनी, वह मुझको बहुत पसन्द आयी। अपने यहां वनस्थली में हम लोग शुरू से ही लड़कियों को घुड़सवारी का अभ्यास कराते आये है और अब फौजी कवायद का, बन्दूक चलाने का, हवाई जहाज उडाने का अभ्यास भी कराते हैं। यह सब कुछ करते हुए हम जानते हैं कि स्त्री वही काम सफलतापूर्वक कर सकेगी जो उसकी शारीरिक और मानसिक मर्यादा के भीतर होगा। साहस और निर्भयता तो स्त्री में भी होना ही चाहिए, मेरी कल्पना की प्रत्येक नारी को वीरबाला होना चाहिए।

सार यह है कि स्त्री को पुरुष के जैसे ही अधिकार चाहिए और है भी, वैसी ही आजादी होनी चाहिए और है भी। पर अधिकार और आजादी का उपभोग पुरुष अपनी मर्यादा में करेगा और स्त्री अपनी मर्यादा में करेगी तभी ठीक होगा। दोनों की मर्यादाएं निश्चित हैं और भविष्य में भी निश्चित होती रहेंगी। स्त्री पुरुष की होड करने को जाएगी तो वह दु.ख पाएगी और पछताएगी। वैसे ही पुरुष को भी स्त्री की होड़ करने की जरूरत नही है। जैसे स्त्री के गुणों का लाभ घर और समाज को मिलना चाहिये वैसे ही पुरुष के गुणों का भी। नये जमाने की परिस्थिति में पत्नी और पति अपने कामों का आपस में इच्छा पूर्वक यथाशक्य बटवारा अवश्य कर सकते है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक है सो वे बने रहें, इसी में उनका भला है।

१६. शुभकामना
(सवाई मानसिंह हॉस्पिटल, जयपुर से)

अप्रेल, १६२८ में भाई सीतारामजी से मेरा प्रथम मिलना हुआ था। उस समय वे जीवन के ३६ साल पूरे करने को थे, मैं २६ वे साल के मध्य में था।

सीतारामजी मारवाडी बालिका विद्यालय के मन्त्री थे। एक पढ़े लिखे अहलकार के तौर पर मैंने उनके काम में मदद की। थोड़े समय में विद्यालय का रूप बदल गया।

राष्ट्रसेवा में तन्मय होकर जीवन लगाने हेतु सीतारामजी ने अपना अच्छा चलता हुआ धन्धा छोड दिया सो बडी बात थी। ऐसा दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है।

सीतारामजी ने जेल यात्राएं की और तन्दुरस्ती नाजुक होते हुए भी उन्होने कष्ट सहन किया। पर उन्होंने राजनीति से किसी फल प्राप्ति की जरा भी इच्छा नही की।

सीतारामजी ने कलकत्ता महानगर में शिक्षायतन जैसी अच्छी महिला शिक्षण संस्था स्थापित करके बहुत बड़ा काम किया। उनकी अन्य समाज सेवाएं भी कम महत्व की नही हैं।

वहिन भगवानदेवी का पत्नी के रूप में साथ मिला सो सीतारामजी के लिए वरदान सिद्ध हुआ। पत्नी के हार्दिक सहयोग से पति के जीवन में पूर्णता आ गयी।

१६२६ के प्रारम्भ में सीतारामजी ने सबसे पहले आर्थिक सहायता देकर जीवन-कुटीर वनस्थली की स्थापना को सरल बना दिया। सीतारामजी वनस्थली के "आदि सुहृद" हैं।

वनस्थली विद्यापीठ के जन्म (१६३५) से लेकर आज तक सीतारामजी ने उसके साथ अभिन्नता अनुभव की है। वनस्थली में सीतारामजी बराबर पांतीदार हैं।

कुछ लोग आपस में अच्छे मित्र होते हैं। पर मुझ से अपने किसी एक ही मित्र का नाम लेने को कहा जाए तो मैं तुरन्त गर्व के साथ सीतारामजी का नाम ले दूंगा।

सीतारामजी की दीर्घायु, स्वस्थता, प्रसन्नता के लिए मेरी शुभकामना। उनकी कोमलता एव मृदुता और उनकी करुणा एव सेवापरायणता सदा बनी रहे। तथास्तु।

भवति चात्र दोहाद्वयम्—

हीरालाल उजड्ड है, सीताराम नफीस।
तब भी दोनों एक है, मानो बिस्वाबीस ॥१॥
दीर्घकाल से है, बंधे, बन्धन स्नेह विचित्र।
बना रहेगा सर्वदा, भाव अभिन्न विचित्र ॥२॥

१७. वनस्थली—शिक्षा

मई, १६७३,

अपने यहां वनस्थली में पिछले अडतीस सालों में लड़कियों की शिक्षा के लिए जो कुछ बन पाया है उसकी चारों ओर तारीफ हुई है जिससे अपने को भी स्वभावत संतोष होता रहा है। पर सच्ची बात यह है कि अपन लोग बहुत कुछ विशेष नहीं कर पाये हैं। कारण यह कि अपन वास्तव में जैसे चाहिए वैसे स्वतंत्र नहीं रहे अर्थात् देश के शिक्षा संबंधी प्रचलित ढांचे के साथ अपने को भी जुड़ा रहना पड़ा है। अपना सोचना यह था कि शिक्षा सर्वांग सम्पूर्ण होनी चाहिए, यानी पुस्तकीय शिक्षा के अलावा दूसरी आवश्यक शिक्षा भी अनिवार्यतया होनी चाहिए। यथा—नैतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा और कला शिक्षा। पर हुआ यह कि उक्त चारों काम बहुत कुछ किताबों की पढ़ाई के नीचे दबे रहे। ज्यादा से ज्यादा समय किताबों में लगने के कारण अपने विशेष कामों में बहुत कम समय लग पाया।

देश की शिक्षाप्रणाली में कोई खास परिवर्तन आज तक नहीं किया जा सका है। सुधार के नाम पर यदा-कदा कुछ किया गया तो वह एक दम फटे हुए कपड़े के पेबन्द लगाने जैसा हुआ है। यह सारी बात इतनी घिसी—पिटी हो चुकी है कि इसका बार-बार जिक्र करना अपने मन को अच्छा नहीं लगता। राष्ट्रीय पैमाने पर कुछ हुआ नहीं, हो नहीं रहा है, जल्दी ही कुछ हो जाने की आशा नहीं। तब अपन अकेले क्या कर सकते थे और आइन्दा क्या कर सकते हैं? डीम्ड युनिवर्सिटी बन जाने से अपना रास्ता कुछ साफ हो जाने की थोड़ी बहुत आशा बनने लगी थी। पर जल्दी ही अपनी समझ में आ गया कि डीम्ड युनिवर्सिटी बन जाने पर अपन स्वतंत्र हो जाने के बजाए कुछ ज्यादा परतंत्र हो जाएंगे। ऑटोनामस स्कूल व कॉलिज हो जाएंगे तो उनसे भी अपने को विशेष आशा नहीं रखनी चाहिए।

सारे देश में शिक्षा के ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन हो तब कुछ हो सकता है। वैसा परिवर्तन करने की तैयारी या इच्छा भी सत्ताधीशों की दिखायी देती नहीं है। ऐसी हालत में अपने यहां के जैसे छुटपुट प्रयत्नों से विशेष क्या होने वाला है? और आखिर अपन भी तो उसी ढांचे में ढले हुए हैं—अपना दिमाग भी अन्ततोगत्वा उसी परिधि में घूमता रहता है। जब अपने यहां लड़कियों की शिक्षा का काम शुरू हुआ था तब से लेकर आज तक अपनी एक ही विचारधारा रही है, भले ही वह अनुभव से कुछ परिष्कृत होती रही होगी। असल में तमाम शिक्षा ही जीवन से मृत्यु तक चलने वाला काम है। खासकर किताबी पढ़ाई के साथ जुड़ी हुई अपनी नैतिक, शारीरिक, व्यावहारिक, कलात्मक शिक्षा तो जीवन के अंग ही हैं जो न केवल विद्यार्थीकाल में बल्कि आचार्यकाल में भी चलते रहने चाहिए।

अर्थात् जो विषय जीवन के अंग जैसे हैं उनको न केवल शिक्षाकाल के थोड़े समय में ही बल्कि हमेशा के लिए व्यक्ति के जीवन के साथ जुड़ा हुआ होना चाहिए। यह तो ठीक है कि अपन चालू शिक्षा प्रणाली में बंधे हुए होंगे तो पुस्तकीय शिक्षा को अत्यधिक समय देना अपने को भी मंजूर करना होगा। बहरहाल पंचमुखी शिक्षा के दूसरे चारों अंगों को पांती में आखिर कम से भी कम ही समय जाएगा। उस कम समय में भी अपने को काम चलाना पड़ेगा। जहां तक संभव हो अपने को ऐसा हिसाब बिठाना चाहिए जिससे अपनी शिक्षा के चारों ही अंगों को पुस्तकीय शिक्षा के साथ-साथ परीक्षाओं में अनिवार्य स्थान मिल जाए। किसी अंग को परीक्षा में अनिवार्य स्थान देना किसी न किसी कारण से असम्भव हो जाए तो अपने को किसी दूसरी युक्ति से उस अंग की अनिवार्यता स्थापित कर देनी चाहिए।

समय की कमी के अलावा अपने सामने दूसरी कठिनाइयां भी हैं जिन्हें दूर करने के लिए अपने को यथाशक्य यत्न करना पड़ेगा। शारीरिक शिक्षा और गृहस्थ शिक्षा के लिए अपने पास पर्याप्त स्थान नहीं है और उन दोनों शिक्षाओं की संभाल करने के लिए अपने को मानव शक्ति भी अधिक लगानी होगी। अर्थात् शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए इन दोनों कामों में रसपूर्वक योग देना संभव होना चाहिए। उपयुक्त स्थान सुलभ करने के लिए पैसा

चाहिए जिसका जुगाड अपने को करना होगा। साथ ही शिक्षक-शिक्षिकाओं को अपने शिक्षा के समय काम मे रम जाना होगा। दो-चार–पाच-सात पीरियड पुस्तकें पढ़ा देने और पढ़ाने की तैयारी करने के अलावा दूसरे कामो मे विनियोजन मे भी ज्यादा से ज्यादा शिक्षक-शिक्षिका भाई-बहिन हिस्सा लेंगे और वे सारे काम को जीवित रीति में चलाएंगे तभी अपन वनस्थली शिक्षा के प्रति अपने कर्त्तव्य का पूरा पालन कर सकेंगे।

१८. स्थापना दिवस, सितम्बर, १६७३

विद्यापीठ स्थापना दिवस के उपलक्ष्य मे पण्डित हीरालाल शास्त्री द्वारा 'संकल्प पाठ' किया गया। 'सकल्प पाठ' के पश्चात् इस अवसर पर अपने भावो को व्यक्त करते हुए शास्त्रीजी ने कहा —

सदा की भांति आज भी हम यहा इकट्ठे हुए हैं। आज फिर हमने अपने संकल्प को दोहराया है और अपने लिए दिव्यशक्ति का आवाहन किया है। शब्द में शक्ति भरी पडी है। हम ऐसा मानते हैं कि प्रारम्भ मे और आगे-पीछे जिन वेदमत्रों का भी उच्चारण किया गया उनमे जो शब्द आये उन शब्दों में असीम दिव्यशक्ति है। वनस्थली की इस भूमि मे मैं एक भावना विशेष का, भाव विशेष का भूखा हूं, उस शक्ति की खोज मे हूं जिस शक्ति का हमने आवाहन किया है वह शक्ति उस भाव में है और वह शक्ति भी उस भाव की खोज मे है। अपना सिद्धान्त तो चलते जाना है। "चरैवेति चरैवेति"–चला चल, चला चल। हमारी धुन "एकला चलो रे" की भी है। सकल्प होना चाहिए सकल्प मे सिद्धि होनी चाहिए। हम सशय मे नहीं रहते हैं क्योंकि सशयात्मा विनश्यति'। हम श्रद्धापूर्वक चलते हैं। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही वह होता है। यो यच्छ्रद्धः स एव सः। जो शक्ति है वह श्रद्धा मे ही है। श्रद्धा मे बुद्धि का दखल नही चलता है। हम जिस चीज की खोज मे है वह बुद्धि से परे है। 'यो बुद्धेः परतस्तु सः' हमारी खोज की वह वस्तु जिसकी अनुभूति मुझे नहीं है, हमारे पास है। उसी शक्ति के सहारे हम निभ रहे हैं, निभते रहे हैं, निभते रहेंगे–बहुत आनन्द के साथ। बढते रहेंगे अनन्तकाल तक। उस शक्ति का यदि आदि नही है तो अन्त भी नही है। पता नही हमने कब से चलना शुरू किया था। और पता नही है कब तक चलते रहेंगे, पर चलते रहेंगे, बढते रहेंगे। हमको शरीर की शक्ति चाहिए, चित्त की शक्ति चाहिए, मन की शक्ति, प्राण की शक्ति और उसके आगे सूक्ष्मातिसूक्ष्म, निराकार, निर्विकार, सर्वव्यापक आत्म शक्ति चाहिए। आत्मशक्ति प्राप्त हो जाए तो सब शेष शक्तियां दौड़ी चली आती हैं।

मैंने लिखा है, सोचता भी रहता हूं कि अणु के, परमाणु के, इलेक्ट्रोन के आगे एक और अत्यन्त शक्तिशाली चीज होनी चाहिए। 'एटमबम' मे इतनी शक्ति है तो फिर 'आतमबम' में कितनी शक्ति होगी इसकी कल्पना नही की जा सकती। अपने को आत्म-शक्ति का साक्षात्कार हो जाए, तब तो कहना ही क्या ? बाकी उसके बिना भी उसी के बलबूते पर हमारा काम चल तो रहा ही है।

कल मैं सोच रहा था, बात भी कर रहा था। पहले रतनजी से फिर वही बात मेरी कुछ अन्य साथियों के सामने मेरी जबान से निकल गयी कि पाच व्यक्तियों का मुझे ऐसा ध्यान आता है जिन्होने यह कहा है कि इस वनस्थली की भूमि मे विशेषता है, इसमें आकर्षण विशेष है। यह मुझे भी वनस्थली के बाल्यकाल से ही लगता रहा है। यहा विरोध की भावना लेकर भी जो व्यक्ति आया वह भी अनुकूल हो गया और हमारे मन की सी बात करने लग गया। किन्ही दूसरो के कहने की कीमत कुछ भी हो या न हो, पर इस भूमि मे कोई शक्ति विशेष है, यह बात बार-बार कही जाती है तो मुझे भी लगने लगा है कि है तो सही कुछ न कुछ। मेरी जबान से एक दिन ब्रह्ममंदिरम् के स्थान के लिए निकल गया कि किसी दिन यह सिद्ध पीठ हो जाएगा।

हमें क्यो चिन्ता करनी है हमारी बात सुनने को कौन आता है, कौन नहीं आता है। आकर के भी कौन सुनता है, कौन नही सुनता है। सुनकर भी कौन समझता है, कौन नही समझता है। समझकर भी कौन मानता है, कौन नही मानता है। मानकर भी कौन आचरण करता है कौन नही करता है। मैं तो यह जानता हू कि जिस शब्द का उच्चारण यहा होता है, वह हर पत्ते मे, हर फूल में, इस भूमि के कण-कण में व्याप्त हो जाता है। 'एको अहम् बहु स्याम्'—मैं अकेला हू, बहुत हो जाऊं। ऐसा सा विचार यहा हुआ, और ऐसी ही परिस्थिति भी हो गयी। अन्त मे मैं बोलता हूं, हे देवी! हे भगवती!! हे आद्या शक्ति!!! ऐसा ही जिनसे कहा जाए, वे सब कहें।

१९. मेरे मानस का वजन

अक्टूबर, १९७३

मैं अपनी घातक जैसी बीमारी के कारण एक प्रकार से अपग हो गया हूँ, इस बात को भूल में डाल देना मेरे लिए बहुत मुश्किल हो रहा है। मुझे देश की बिगड़ी हुई और बिगडती जा रही स्थिति मे कुछ विशेष करने का अपना कर्त्तव्य मालूम होने लगा तब मैंने "स्वाधीन-ग्राम-नगर सगठन" के नाम में एक मूलत. क्रान्तिकारी कार्यक्रम हाथ मे लिया था, पर बीमारी के बाद उस कार्यक्रम को चलाने के लिए दौड-धूप करने के लायक मैं नही रहा हूँ। दूसरे, लोकवाणी के स्थगित प्रकाशन को फिर से चालू करने के सिलसिले मे भी मुझसे कुछ बन नही पा रहा है। तीसरे, अपनी वनस्थली को कुछ ज्यादा बिगडी हुई वित्तीय स्थिति को सामान्य अवस्था मे लाने के लिए भाग-दौड़ करने की इजाजत भी मुझको नही मिल रही है। इन तीनों बातो का वजन मेरे मानस पर कभी-कभी ज्यादा हो जाता है।

"स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन" के कार्यक्रम की कल्पना को तो मैंने प्राय. छोड़ ही दिया है, सिवाय इसके कि आज के जैसे गिरे हुए जमाने मे भी कोई एकाग्र लगन से काम करने वाले नि स्वार्थ कार्यकर्त्ता मेरे सामने दिखायी दे जाए तो मैं उनके जरिये से उस कार्यक्रम को पुनर्जीवित करने का विचार कर सकता हूँ। लोकवाणी के पुनः प्रकाशन का

काम मैंने जब भी जैसे भी उससे हो सके सुधाकर के जिम्मे छोड़ दिया है। वनस्थली के काम के लिए दौड़-धूप करने का काम ज्यादातर रतनजी के और थोड़ा बहुत श्याम के जिम्मे आ पड़ा है। रतनजी की मदद के लिए सिद्धार्थ को तैयार किया गया है। प्रहलाद और वीरेन्द्र अपने पास और हैं जिनको यदाकदा दौरे पर निकलने के लिए खदेड़ा जा सकता है। और मैं खुद तो वनस्थली मे बैठा हुआ ध्यान से, कलम से, जबान से जितना और जो कुछ हो सके उतना ही और वही कर सकता हूँ। मेरे मानस पर यह दूसरा वजन है।

जो यह स्थिति बन गयी है उसी को पक्की मानकर अपना सतोष कर लेने के सिवाय दूसरा उपाय भी क्या हो सकता है ? पर ऐसी हालत में वनस्थली मे जो कुछ काम हो रहा है उसमे तो मेरा समाधान करने का सामर्थ्य होना ही चाहिए, नहीं तो मुझे लगने लग जा सकता है कि वनस्थली के लिए मेरा और मेरे लिए वनस्थली का अस्तित्व किस काम का ? कही मुझे ऐसा ही लगने लग जाए तो न जाने मेरे मानस पर कितना असह्य वजन हो जाए। ऐसा न हो जाए उसके लिए क्या करना चाहिए ? एक तो वनस्थली के जिम्मे बच्चियों की शीलरक्षा का जो बहुत बडा काम है उसे हमें सदा की भांति सफलतापूर्वक निभाते जाना चाहिए। दूसरे, शरीर से-हाथ से व्यायाम, गृहकार्य, शिल्प आदि कामो को करने का स्वभाव छोटी बड़ी सब बच्चियों का बन जाना चाहिए। तीसरे, बदलते हुए जमाने में खादी के प्रति किसी का अनुराग हो या न हो, पर वनस्थली में खादी का परित्याग करने की कल्पना किसी की भी नहीं होनी चाहिए। चौथे, सात्विक आहार-विहार मे अपने यहा किसी तरह की ढिलाई नही आनी चाहिए। और पाचवे, गर्मी की छुट्टी के अलावा सेशन के बीच मे किसी दूसरी छुट्टी की चाह शिक्षक की या छात्रा की-किसी की भी नही होनी चाहिए। सार यह कि जो जब तक वनस्थली मे रहे उसे कम से कम तब तक यहा की भावना के साथ अपनी एकरूपता का अनुभव करना चाहिए। बस ऐसी स्थिति वनस्थली मे बनी रहे तो मेरा समाधान बना रह सकता है। मानस पर के तमाम वजन को हल्का करने का यही सबसे अच्छा उपाय है। बाकी तो यह निश्चित है कि अपना काम पहले से भी ज्यादा ठाठ और शान से चलता रहेगा। तथास्तु।

२०. मेरी मनः स्थिति

मोहनपुरा (बस्सी) कंप, २६-६-३६

यो तो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं बराबर नशे मे ही रहता हूँ-व्याकुल रहता हूँ, और आत्मविश्वास की मजबूती का अनुभव करता रहता हूँ। परन्तु आजकल मैं कुछ ज्यादा व्याकुल हो उठा हूँ और मजबूती का भी विशेष अनुभव मुझको हो रहा है। खाने पीने का सवाल मेरे लिए कभी सवाल के रूप मे रहा ही नही और शरीर मे कुछ कमजोरी, पेट में कुछ गडबड दिखायी देने लगी तो कुछ चिन्ता होने लगी थी, बाकी अब ठीक है। डॉक्टर की राय से नीबू का पानी लेने लग गया हूँ, और भी एकाध परिवर्तन किए है।

ग्रपना काम मैं ग्रपने ग्राप ही करना पसन्द करता हूँ। कोई प्यार से करदे, मेरा काम करके प्रसन्न होता हुग्रा मालूम पड़े तो ऐसा ग्रादमी मेरा काम कर सकता है। जिनको नौकर' समझा जाता है वह खुश होकर काम मुश्किल से ही करे। इसलिए मुझको ग्राजकल ग्रपने ग्राप पानी खेंचने मे, ग्रपने ग्राप ग्रपनी चारपाई, बिस्तर ग्रादि उठाने मे, ग्रपने ग्राप पानी का कुजा भर लेने मे, ग्रपने ग्राप थाली लोटा ग्लास साफ करने मे विशेष ग्रानन्द होता है। जूता पहिनना छोड़ देने से भी तबियत बड़ी खुश रहती है। काटों के पड़ौस मे जाने ही वह कांटा याद ग्रा जाता है, जो मेरे दिल मे लगा हुग्रा है ग्रपनी उद्देश्य सिद्धि से ताल्लुक रखने वाला काटा।

ग्रपने पास-पड़ोस के जनबल के बारे में मैं कुछ चिन्तित ग्रवश्य हो जाता हूँ। हम लोगों मे चारित्र्य का ह्रास हो गया है। हमारे ग्रन्दर वह वज्र की सी मजबूती नही है, एक तरह की तमाशबीनी है। परन्तु इसी सामग्री से काम लेना होगा। इसलिए मुझको ग्रपना खुद का सपनेज भी बढ़ाना होगा। मजबूती ग्राग्रह, धधक होने के ग्रलावा कुछ बौद्धिक तैयारी ग्रौर कुछ वशीकरण भी तो होना चाहिए वह वशीकरण प्रेम ग्रौर विनय के बढ़ने से ग्राएगा। ग्रब भी वह है, पर उसके बढ़ाने की जरूरत है।

मैं जानता हूँ कि राजवालो को झुकना पड़ेगा, समझौता कर लेना पडेगा। हमारी छूटने की मियाद नजदीक ग्राती जा रही है। क्या समझौता किये बिना हम लोगो को छोड़कर राज निश्चिन्त रहने की ग्राशा कर सकता है? खैर, हमको तो बिना समझौते भी छोड़ दें, लेकिन सेठजी को? उनको कब तक रखेंगे? बैन उठाये बिना छोड़े तब तो वे जरूर ही वापिस ग्रा जाए, बैन उठाकर छोड़े तो वे काम करने के लिए जयपुर मे जम जाएं। ग्रौर न छोड़े तो कब तक? फिर हमारी माग ऐसी जिसका विरोध करना ही ग्रसभव है। फिर हमारी नीति ऐसी रही कि लड़ाई का जिम्मा हर कोई हर सूरत मे राज का ही समझेगा इतने सच्चे ग्रौर पक्के पक्ष मे कोई घातमात कैसे हो सकती है?

लेकिन मैं कल्पना करके देखता हूँ कि यही सोचे कि गोलमाल होगी, राज को समझौते की चीक नहीं रहेगी, गाधीजी की नई प्रणाली को राज वाले हमारी कमजोरी ही समझेंगे ग्रौर वे यह भी जानते होंगे कि ग्रब दुबारा सत्याग्रह तो हो सकेगा नही फिर दबा क्यों जाए? सत्याग्रह न होगा तो क्या होगा? शायद राज वाले ग्रपनी किलाबन्दी बना सकते है, दूसरी सस्थाये खड़ी करके, लोगो को प्रजामण्डल के विमुख करने की कोशिश करके, साप्रदायिक दगे को खड़ा करके, जागीरदारो को उकसा करके, किसानो को कुछ देकर के ग्रौर कुछ डरा धमका करके, प्रजामण्डल वालो को जबान खोलने की ग्राजादी न दे करके इस तरह राज वाले समझ सकते है कि प्रजामण्डल तो खत्म हुग्रा। पर मैं जानता हूँ कि लोग प्रजामण्डल को काफी पहिचान गये हैं—उनको यह बतला देना मुश्किल नही है कि उन्हे ग्रगर कोई सुविधा मिली है तो वह प्रजामण्डल के कारण से ही मिली है, चाहे राज वाले प्रजामण्डल को कितनी ही गालिया देते रहे हो—प्रजामण्डल की बाढ को रोकने की

गर्ज से ही सही परन्तु प्रजामण्डल के अस्तित्व के कारण से राज को प्रजा के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पडा है, और करना ही पडेगा।

फ़र्ज करो राज के साथ सम्मानपूर्ण समझौता नही होगा ? तो फिर मैं क्या करूंगा ? छूटने के बाद सबसे पहले तो मुझ को जनता की मनः स्थिति देखनी होगी, कार्यकर्ताओं से सलाह करनी होगी, अपनी रचनात्मक शक्ति को नापना होगा, फिर गांधीजी से बात करनी होगी, उनसे थोडा बहुत समाधान कर लेना होगा। मेरा विश्वास है कि गांधीजी मेरा संतोष कर देंगे मैं भी उनका संतोष कर दूंगा और काम का सिलसिला जम जाएगा।

परन्तु सवाल तो यह है कि सच्चे दिल से कोशिश करने पर भी समझौता न हो, प्रजामण्डल का आजादी के साथ काम करने का हक स्वीकार न किया जाए तो मुझको वह स्थिति कितने समय तक सहन होगी ? मुझको एक तडप लगी हुई है, वह यही कि मुझको तो अभी से संकल्प कर लेना चाहिए कि मैं तो इतनी कोशिश के बाद, इतने समय के बाद जेल के बाहर नही रहूँगा। उस बडे जेल में रहा तो क्या और इस छोटे जेल में रहा तो क्या ?

अपनी शक्ति का अन्दाजा लगाना, गांधीजी से बात करना, किसान कार्यकर्ताओं और सीकर वालो का छूटना इस सब के लिए प्रयत्न करना, कुछ उठा नहीं रखना। इन सब कामो के लिए जितना समय लगे उस के बाद मुझको दुबारा जेल में आकर बैठ ही जाना चाहिए। वह समय तीन चार महीनें से ज्यादा का तो नहीं हो सकता। ज्यादा से ज्यादा दिसम्बर खत्म तक। उसके बाद तो सीधे जेल मे पहुँचने की सीधी तय्यारी ही करनी होगी। अपनी मर्यादाओ मे रहते हुए भी ऐसा सुअवसर पहले ही आ जाए तो दूसरी बात है।

प्रजामण्डल का समझौता हो जाए तो तुरन्त ही मुझ को किसानों का सवाल लेना पडेगा। उनके लिए कुछ संतोषजनक व्यवस्था अमुक अवधि के भीतर होनी ही चाहिए। उस व्यवस्था के अवश्य हो जाने के बारे मे मेरा और किसान कार्यकर्ताओ का इतमीनान हो ही जाना चाहिए। प्रजामण्डल के समझौते के बाद उस काम के लिए कितना समय ज्यादा से ज्यादा छ महीनें—छ महीने से भी संतोषजनक परिणाम न निकले तो फिर किसानो के मामले को लेकर जेल जाना।

इस तडप मे मैं हूं यह लहर निश्चय के बराबर ही है परन्तु थोडा सा और सोचने की गुंजाइश रख लेना ठीक होगा।

---

(२१)

"TRYST WITH DESTINY"

(Answers to UNI Questionnaire)

Question

1. On August 14, 1947, on the eve of India's independence, Jawaharlal Nehru told the nation: "Long years ago, we made a tryst with destiny and now the time comes when we shall redeem our pledge, not wholly or in full measure, but very substantially".
What were your expectations at that time and how do you view India's socio-economic development in twenty-five years of independence?

Answer

1. When India gained independenee my expectations were that we would build a strong and progressive state based on decentralisation of political and economic power The socio-economic development in the country, however, has been far far below and very much against my expectations The problems of poverty and unemployment have been aggravated due to wrong and weak policies.

Question

2 As a front-rank soldier in the battle for freedom, what were the values and ideals for which you fought and how far do you think those values and ideals have been achieved? Do you consider that the ruling party that led the nation to freedom has followed, or deviated from the path which it had chalked out?

Answer

2. We fought for freedom with ideals of integrity and justice in all fields of life These ideals are a thousand miles away from achievement. The greatest responsibility for this is that of the ruling party which started deviating from these ideals almost from the very beginning of its career of governing the country.

Question

3. In the first ever Congress Election Manifesto, drafted by Jawaharlal Nehru in 1945 on the eve of the elections to the Central and Provincial Assemblies, it was stated: "The most vital and urgent of India's problems is how to remove the curse of poverty and raise the standards of the masses"
What is your assessment of the achievement of this 25 years old objective of National Policy?

Answer

3 My answers to questions 1 and 2 cover this question also.

What were your views then on a united integ ated nation and country ? Would you like to modify, amend, or expand your views now ?

4 On the achievement of independence, I thought we would build a really united and integrated nation where political exigencies would have the least importance. I see no reason to change my views. In fact, I have become stronger in my views and have a definite feeling that if the ruling party had shown greater courage, integrity and idealism in action our progress would have been far more significant and on a much more firm basis.

5 How far, in your view, have we progressed in the matter of achieving national integration ? What are the obstacles, if any, to be overcome.

5 National integration means a feeling of unity prevailing in the peeple of the country as a whole I am sure that, instead, of progressing in this respect, we have gone very much backwards in many ways The political selfishness of the ruling party and lack of courage in holding on to principles have been the main obstacles

6 How do you evaluate the results of national planning and reconstruction, with particular reference to the prime necessities such as food, clothing and shelter and essential amenities such as education, health and social welfare ?

6. Results of national planning and reconstruction with reference to prime necessities such as food, clothing and shelter have been most unsatisfactory. In education which has evidently been nobody's business, there has been indiscreet expansion In health we have perhaps done some what better. The utilisation of resources provided for social welfare services (e.g. community development) have been scandalously misused.

7. What, in your opinion, are the achievements on which we can look back with pride, and what, if any, are the developments of features of national life which you feel are not creditable for us ?

7. (i) The achievements on which we can look back with pride are :-

1. Integration of erstwhile princely states with the rest of the country and the abolition of the jagirdari and zamindari systems.
2. Over all political stability in favour of democracy
3. Recently, better defence preparations of the country

(ii) Features of national life not creditable to us are :-

1. Ever increasing corruption in all forms from top to bottom.
2. Shameful play of power politics resulting in defections and the like.
3. Personal and public life of political leaders.

8. What is the India of your dreams in the Golden Jubilee year (1997) ?

8. *India of my dreams in the Golden Jubilee years (1997) is a strong and self-reliant India which does not take unwise interest in others' affairs and concentrates on sorting out and solving its own problems, an India in which the common man instead of being exploited by corrupt" representatives" enjoys real power which travels from bottom upward to the top*

What I need add to the above is that whatever material progress we might claim to have made is more than negatived by moral degradation Everybody seems to work for one's own selfish ends, then may come the group, then the party and at last, if at all, the country I feel that from the very start we should have worked with revolutionary fervour for wholesale socio-economic changes consistent with India's genius Instead, we

started in a halting and indecisive manner. The result was that the masses lost all faith in us. Even now, unless we sincerly and effectively carry out our much talked of piecemeal measures for (i) ceiling on land and urban property, (ii) housing, (iii) drinking water, (iv) unemployment and (v) price control, etc. we shall certainly not regain the people's confidence. Socialisation and nationalisation can be meaningful only if the worker enjoys a real feeling of sharing ownership.

---

(२२)

A TRIBUTE OF AFFECTION TO

H. H. Maharaja Sawai Man Singh of Jaipur

(Written for a Souvenir published in his memory)

In 1922–23 I used to see an innocent-looking face of a boy of 11–12 years of age in a lower class at the Mayo College Ajmer · the boy was often *pleading before the 'Maharaj" for more marks in English translation.* The charming boy was His Highness Maharaja Sawai Man Singh of Jaipur and as, Jaipur Raj motamid at the Mayo College myself was the "maharaj" i. e. guru.

A few yeers later I happened to be the Secretary in the Foreign and Home Departments of Jaipur's newly constituted Council of State. In that capacity I attended the darbars of the boy Maharaja who attracted all the darbaris including myself with his naturally half-smiling face.

The same face I later saw a thousand times, and lastly on June 26–27, 1970 ; even then the half-smile was there, as usual. I could not lift my eyes away from the face until it was covered by sandalwood and other funeral material.

Sawai Man Singh was brought up and educated in anglicisd atmosphere and he was used to speaking English, but to me he always spoke in his broken Jaipuri. The Maharaja's pleasant manner won one and all who came in personal contact with him.

As a fighting public worker. I was against British rule in India and so also against the Maharaja's own British-controlled regime in the historic State of Jaipur. Even so, Sawai Man Singh looked upon me as his "maharaj" Not that we never had a sort of wordy duel, but that was all enjoyment.

His Highness Maharaja Sawai Man Singh was a magnanimous and open-minded ruler who was ever anxious to see his people free in spite of the unconcealed pressures from Delhi. The Maharaja began to assert himself even at the young age of 25 when his Council of Ministers was presided over by a Britisher.

And when he got Sir Mirza Ismail as his Prime Minister the Maharaja openly made friends with the anti-British Jaipur Rajya Prajamandal. In 1942 the Prajamandal was up in arms against the British,

even preaching against war efforts The Maharaja and his Prime Minister stoutly resisted Delhi's onslaughts and refused to suppress the Prajamandal in any way.

Soon after an elected Representative Assembly and a Legislative Council were brought into existence and also a Prajamandalist "popular" Minister was included in the council of Ministers. And afterwards, naturally, there was a full popular Ministry in Jaipur, the first of its kind in the whole of Northern, Western, Eastern and Central India.

The largest share of credit for all this advance was the Maharaja's own Maharaja Sawai Man Singh was always a constitutional head of the State, never interfering in administration though invariably helpful in times of difficulty. As his Chief Minister, I enjoyed the privelege of acting as his friend, wellwisher and counsellor Even after the formation of the United State of Rajasthan, the Rajparmukh continued to be the same jovial and unassuming Maharaja.

Along with his natural sense of dignity the Maharaja had his simple manner His conquering personality was unrivalled With me, he was happy to sit on an ordinary durrie in the shade of a grove of trees and eat the delicious dish of 'churma-dal-bati' from a "pattal' of dry leaves. Once as a man of sport, the Maharaja took me to his favourite Polo and succeeded in securing from an ignorant though admiring Chief Minister a handsome donation for the Jaipur Polo Club.

Not long before the illustrious Maharaja was taken away from our midst he expressed his desire from Europe to discuss with me the welfare of "our home State." I cannot say what his particular ideas at that time might have been, but I know he was always anxious to do something for the welfare of the people of the State. As such his memory will, for long be enshrined in the people's heart.

२३. अजातशत्रु राजेन्द्र प्रसाद

(राजेन्द्र बाबू की पुण्य तिथि के अवसर के समय रेडियो द्वारा प्रसारित वार्ता)

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद (राजेन्द्रबाबू) का जन्म ग्राम जीरादेई (जिला सारन-बिहार) के मध्य वर्गीय कायस्थ परिवार मे श्री महादेवसहाय के घर ३ दिसम्बर, १८८४ को हुआ। बालक राजेन्द्र को अपने माता-पिता से अच्छे सस्कार मिले। राजेन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू-फारसी मे हुई। उनका विवाह १२ साल की छोटी उम्र मे ही दलन-छपरा की राजवंशी देवी के साथ हो गया। राजेन्द्र को आगे की शिक्षा छपरा, पटना और कलकत्ता मे हुई। विद्यार्थी राजेन्द्र पढाई मे बहुत तेज थे। प्रारम्भ से लेकर एट्रेन्स, एफ० ए०, बी० ए०, एम० ए०, बी० एल०, एम० एल० तक प्राय सभी परीक्षाओ मे उन्होने प्रथम स्थान पाया। योग्यता के आधार पर उनको छात्रवृत्तिया भी मिलती रही।

राजेन्द्रबाबू ने कलकत्ता में बिहार क्लब की स्थापना की। लॉर्ड कर्जन के द्वारा किये गये बग भग ने राजेन्द्रबाबू के हृदय मे देश-भक्ति का भाव विशेष रूप से जागृत कर दिया। तभी उन्होने स्वदेशी की प्रतिज्ञा ले ली। राजेन्द्रबाबू ने बिहार छात्र सम्मेलन के सगठन मे आगे बढकर भाग लिया। सम्मेलन ने १९२० तक बड़ा अच्छा काम किया। राजेन्द्रबाबू १९०६ की कलकत्ता काग्रेस में स्वयसेवक बने और १९११ के अधिवेशन मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्य। राजेन्द्रबाबू ने आई० सी० एस० के लिए इंगलैड जाने के अपने विचार को कई कारणों से त्याग दिया। वे श्री गोखले की भारत सेवक समिति में चाहते हुए भी शामिल नही हो सके। उन्होने कलकत्ता मे १९११ से १९१६ तक सफलता के साथ वकालत की।

१९१६ में पटना हाईकोर्ट बन गया तब राजेन्द्रबाबू वहां आकर वकालत करने लगे। चम्पारन मिशन के सिलसिले में महात्मा गांधी बिहार गये तब राजेन्द्रबाबू ने चम्पारन मे नील के अंग्रेज जमीदारों की जुल्म ज्यादती से रय्यत की रक्षा कराने के काम मे उनको बडे परिश्रम के साथ सहयोग दिया। गाधीजी के सहवास से राजेन्द्रबाबू का काया-पलट हो गया। उनको अपने हाथ से ही अपने सब काम करने का अभ्यास हो गया और उनकी दूसरों की खातिर कष्ट उठाने की, जेल जाने तक की मनोवृत्ति भी तभी बन गयी। १९१८ में राजेन्द्रबाबू ने पटना से अंग्रेजी दैनिक 'सर्चलाइट' और १९२० मे हिन्दी साप्ताहिक "देश" निकलवाया। राजेन्द्रबाबू की कलम से कई एक ग्रथो की रचना भी समय के अनुसार होती रही।

रोलेट एक्ट और जलियानवाला हत्याकाण्ड के फलस्वरूप गांधीजी ने १९२१ में जो असहयोग आन्दोलन चालू किया उसमें अपने सूबे से सबसे पहले शामिल होकर राजेन्द्र-बाबू ने वकालत छोड दी। उसी साल मे राजेन्द्रबाबू और बिहार के दूसरे साथियो ने बिहार विद्यापीठ की स्थापना की। स्वय राजेन्द्रबाबू ने बिहार विद्यापीठ के प्रिंसिपल का काम

संभाल लिया। गया में पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दूसभा का प्रथम अधिवेशन हुआ जिसके स्वागताध्यक्ष राजेन्द्रबाबू बने। १९२४ में कोकनाडा में जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ उसके अध्यक्ष राजेन्द्रबाबू हुए। उसी साल राजेन्द्रबाबू पटना की नगरपालिका के अध्यक्ष चुने गये। १९३६ में वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दुबारा अध्यक्ष हुए।

जब कांग्रेस में स्वराजपार्टी बन गयी तो राजेन्द्रबाबू गांधीजी का साथ देते हुए अपरिवर्तनवादी पक्ष में अर्थात् अंग्रेजों में असहयोग करने वाले और धारासभाओं में जाने का विरोध करने वाले पक्ष में रहे। १९२३ में राजेन्द्रबाबू ने क्रमशः खादी, हरिजन, आदिवासी, गोसेवा, राष्ट्रभाषा आदि रचनात्मक प्रवृत्तियों को अपना लिया। १९२८ में राजेन्द्रबाबू अपनी विदेश यात्रा में ऑस्ट्रिया के ग्राट्ज नामक स्थान पर एक युद्धविरोधी सभा में गये तब युद्ध समर्थक लोगों ने उन पर हमला कर दिया। १९२९ में बीहपुर (बिहार) के सत्याग्रह के समय राजेन्द्रबाबू पर लाठियों की मार पड़ी। १९३० के नमक सत्याग्रह के सिलसिले में राजेन्द्रबाबू पहली बार गिरफ्तार किये गये। दूसरी बार वे १९३२ में बिहार के दूसरे नेताओं के साथ गिरफ्तार हुए।

१९३४ में बिहार में भयंकर भूकम्प आया। उसमें राजेन्द्रबाबू ने जो निस्पृह सेवाकार्य किया वह बेमिसाल था। क्वेटा भूकम्प के समय राजेन्द्रबाबू को सरकार ने क्वेटा नहीं जाने दिया तो उन्होंने कराची पहुँचकर विस्थापितों की सेवा की। १९३४ में राजेन्द्रबाबू ने कांग्रेस के शानदार बंबई अधिवेशन की शानदार अध्यक्षता की। राजेन्द्रबाबू कांग्रेस और मुस्लिम लीग के समझौते के लिए भी जिन्ना से लम्बे समय तक बातचीत करते रहे, पर वह सफल नहीं हुई। कांग्रेस के बंबई अधिवेशन के कुछ पहले गांधीजी ने कांग्रेस से अलग होने का विचार प्रकट किया तो राजेन्द्रबाबू ने उनका समर्थन किया था। पर वे खुद गांधीजी के पास जहां कहीं वे होते वहीं समय समय पर जाकर उनकी अमूल्य सलाह बराबर लेते रहे।

१९३९ में श्री सुभाषचन्द्र बोस के त्यागपत्र दे देने पर दुबारा और १९४७ में आचार्य कृपलानी के त्यागपत्र दे देने पर तिबारा राजेन्द्रबाबू कांग्रेस अध्यक्ष बनाये गये। दूसरे महायुद्ध में भारत की ओर से योगदान देना स्वीकार करने से पहले कांग्रेस ने अंग्रेजों से उनके युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों का स्पष्ट करना चाहा। इस मामले में अंग्रेज कांग्रेस का संतोष नहीं करा सके। गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का कार्यक्रम चलाया। अंग्रेजों की ओर से सर स्टेफोर्ड क्रिप्स भारत आये, पर उनकी योजना से कांग्रेस सहमत नहीं हुई। कांग्रेस ने अंग्रेजो भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव बंबई में ८ अगस्त, १९४२ को पास कर दिया। दूसरे दिन बंबई आदि अनेक स्थानों पर गांधीजी, राजेन्द्रबाबू आदि नेता गिरफ्तार कर लिये गए।

२ सितम्बर, १९४६ को भारत मे अन्तरिम सरकार बनी जिसमे कांग्रेस की ओर से १२ मत्री लिये गये। राजेन्द्रबाबू को कृषि व खाद्य मत्री बनाया गया। भारत का सविधान बनाने के लिए जो परिषद बनी उसके अध्यक्ष पद पर राजेन्द्रबाबू का चुनाव हुआ। १५ अगस्त, १९४७ को भारत स्वाधीन हो गया और उसी समय भारत का विभाजन होकर पाकिस्तान नाम से अलग देश बन गया। २६ जनवरी, १९५० को भारत का नया सविधान लागू हो गया और राजेन्द्रबाबू भारत के अन्तरिम राष्ट्रपति चुने गये। १९५२ के आमचनावो के बाद राजेन्द्रबाबू दुबारा और १९५७ के चुनावो के बाद तिबारा राष्ट्रपति चुने गये। राजेन्द्रबाबू २८ जनवरी, १९६३ को राम राम बोलते हुए महाप्रयाण कर गये।

राजेन्द्रबाबू का व्यक्तित्व उनकी अपनी नम्रता, सादगी, सरलता, शालीनता, सहिष्णुता, नि स्पृहता, आस्तिकता आदि के कारण अनुपम था। राजेन्द्रबाबू को देशरत्न, अजातशत्रु और पुण्यपुरुष कहा गया। राजेन्द्रबाबू गाधीजी की भाति सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तो के और उनके अनुसार व्यवहार करने के कायल थे। राजेन्द्रबाबू विरोधी पक्ष का पूरा ध्यान रखते थे, पर वे अपने मन्तव्यो पर अडिग रहते थे। यथा, उन्होने हिन्दू कोड बिल की स्वीकृति नही दी। राजेन्द्रबाबू भारतीय सस्कृति और सभ्यता मे पूरी आस्था रखते थे। वे हिन्दी-हिन्दुस्तानी के प्रबल समर्थक थे। पर वे अग्रेजी और नवीनता का भी बहिष्कार करने के पक्ष मे नही थे। उनमे प्राचीनता–नवीनता का सुन्दर समन्वय था।

महात्मा गाधी ने कहा था—'राजेन्द्रबाबू का त्याग हमारे देश के गौरव की वस्तु है। है। राजेन्द्रबाबू का जैसा नम्रतापूर्णव्यवहार है वैसा कही भी किसी भी नेता का नही है।' पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा-उनकी मुद्रा और आखे भुलायी नही जा सकती, क्योंकि उनमे सच्चाई झलकती है। डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा-राजेन्द्रबाबू मे जनक, बुद्ध और गाधी की छाप है। लार्ड लिनलिथगो ने कहा-डॉ राजेन्द्र प्रसाद बाहर-भीतर दोनों ही ओर मृदु, अगूर की भाति मीठे और रसपूर्ण है। सीधे सादे दिखायी देने वाले राजेन्द्रबाबू की स्मरण-शक्ति गजब की थी और वे दमे की बीमारी के बावजूद अथक परिश्रमी थे। वे उच्चकोटि के विद्वान, महान् शिक्षाशास्त्री, विशिष्ट मनीषी और गहन तत्वद्रष्टा थे।

राजेन्द्रबाबू का राजस्थान से, राजस्थान की सस्थाओ से और सर्व श्री जमनालाल बजाज, सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोडिया आदि अनेक राजस्थानियो से विशेष सम्बन्ध रहा था। राजेन्द्रबाबू स्वास्थ्य सुधार के लिए जयपुर सीकर और पिलानी मे रहे थे। एक बार उन्होने राजस्थान मे चन्दा भी किया था। वे १९४० मे वनस्थली विद्यापीठ को देखने आये तब उन्होने अपनी दो पोतियो को शिक्षा पाने के लिए बडे चाव से वनस्थली भेजा था। उन्होने जयपुर राज्य प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओ को राज्याधिकारियो के साथ दृढतायुक्त नम्रता का व्यवहार करने की सलाह दी थी। अपने राष्ट्रपतिकाल मे राजेन्द्र-बाबू राजस्थान मे सरदारशहर के गाधी विद्यामन्दिर और वनस्थली विद्यापीठ गये थे। वनस्थली विद्यापीठ के तो वे अधिष्ठाता ही थे।

(२८)

VALLABH BHAI

As I knew and thought of him

How I wish Vallabhbhai had been born 15 years later (than 1875) and Gandhiji had died 10–15 years later (than 1948) ! Had it been so we would have been living in a different India, an India of our dreams.

As it happened, Vallabhbhai was born as early as 1875. Being the son of a valiant fighter in the first war of Indian Independence, Vallabhbhai got all the fighter's qualities in paternal inheritance.

Vallabhbhai matriculated at the age of 22 years when he could have easily passed both his M A. and LL B He passed the District Pleaders' Examination when he was 25 and was a barrister at 28

In defference to Vithalbhai's desire Vallabhbhai kept himself back from going to England for barristership. Even the news of Javerba's death could not disturb him in a court argument.

Though he had established himself as one of the most successful criminal lawyers quite early, Vallabhbhai could not make a start in public life before he was enrolled as a member of Gujarat Sabha at 40.

When Vallabhbhai first heard of Gandhiji he only ridiculed him as a mere idealist But, later, Gandhiji's unique leadership of Champaran's Satyagrah against foreign indigo planters made a deep impression on him

There after Gandhiji inspired him whether it was relief work in times of famine, plague and influenza or municipal work as a member or president of the Ahmedabad Municipal Board.

Or it was the organisation of a no tax campaign in Kaira ; or it was a movement against the Rawlott Bills or it was the Congress Party campaign for elections to the Municipal Board of Ahmedabad,

About the time of the Calcutta and Nagpur sessions of the Congress, Vallabhbhai responded to Gandhiji's call for non-cooperation with the British Government. He gave up his practice and burnt all his foreign clothes.

Under Vallabhbhai's chairmanship the Reception Committee arranged for the first time a simple and business like Congress session

at Ahmedabad in 1921. Two years later Vallabhbhai conducted the National Flag Satyagrah in Nagpur.

It was in 1928 when Vallabhbhai at 53 led the famous Kisan Satyagrah of Bardoli, unparalleled in discipline and sacrifice, to a successful conclusion As a result the grateful kisans gave him the title of Sardar.

The Karachi session of the Congress in 1931 was presided over by Vallabhbhai. In 1936 he was elected chairman of the reconstituted Congress Parliamentary Board Since then he was the party boss upto the end of his life.

Vallabhbhai was elected chairman of the Reception Committee of the Haripura session of the Congress which gave a new direction of self-help and selfreliance to the oppressed people of the Indian States.

In 1945 Vallabhbhai organised the Congress Election campaign for the Central and Provincial Legislatures The same year he got Dada Mavalankar elected as Speaker of the Central Legislative Assembly.

In 1946 Vallabhbhai joined the Viceroy's Executive Council as Home Member After independence he was made Deputy Prime Minister holding the portfolios of Home Affairs, States and Information and Broadcasting

Vallabhbhai reached the pinnacle of glory as a fighter in 1928. He was the principal party organiser for over two decades. His last and greatest achievement was the peaceful integration of the States.

Personally I was first attracted towards Vallabhbhai in 1929 when I visited Bardoli Afterwards, at a meeting of the Charkha Sangh I rudely told him—"You cannot control Banasthali's work from Ahmedabad" !

It was again at Bardoli and in the presence of Gandhiji that Vallabhbhai asked me : have you got the strength to fight the Maharaja to which I replied—we are going to fight with our own strength.

It now seems to me that Vallabhbhai relished my brusqueness and I eventually accepted him as the leader who could lead. Vallabhbhai, knowing men's strength and weakness, fully relied on them.

Once in Jaipur when I was putting before Vallabhbhai the details about the formation of the first responsible cabinet in Jaipur State he simply said—Look here, you have to join the Cabinet as Chief Minister.

To a deputation of Rajasthan congressmen pleading that the 1948 Congress session should be held in Rajasthan Vallabhbhai simply replied : hold the session in Jaipur, inform the Congress President (Rajenbabu).

Regarding the estimated deficit of Rs 15 lakhs in the Congress session Vallabhbhai said : "manage it with some of the Rajasthan Princes ; but don't speak to Jawaharlal about it. I will speak to V.T. Krishnamachari "

Having talked to three seniormost congressmen of Rajasthan about the Chief Ministership of the new State Vallabhbhai said to me : "these friends want you to be the Chief Minister and I agree with them."

In reply to Jainarain Vyas' telegram Vallabhbhai sternly warned him · 'Hiralal Shastri owes his premiership not to Pradesh Congress Committee but to my choice of leadership at the unanimous request of you all "

Vallabhbhai's first spectacular success in the process of the States' integration was in Orissa With joy in his sparkling eyes Vallabhbhai put it to me : "What happened in Orissa ?" I said—'your first great victory.'

The above running narrative of Vallabhbhai's eventful life and the brief resume of my personal contact with him together with all that I came to know about him from time to time would reveal him as a truly great man He had a large heart and a clear mind. He had only one ambition in life and that was to serve India. While adhering to high principles he was a practical man of action. His judgement of men and matters hardly ever erred. He was not a mere talker. He never cared to be popular , popularity sought and found him His life was full of sacrifice. Twice there was the sure chance of his becoming Congress President, but he stepped down for the sake of others. To Bombay Governor Dumley's offer of premiership Vallabhbhai's laconic reply was : "I am not going to be Premier." He could have put up his claim to India's Prime Ministership, but knowing that Gandhiji was somehow not for him, he agreed to take the second place in which capacity he was conscientiously loyal to the accepted leader or more correctly to the country's cause. Vallabhbhai never vacillated : he was always decisive. He had no love

of glamour, his living was simple and austere. The great Deputy Prime Minister of India had hardly any belongings : a small old box was perhaps the only luggage in his tours. Vallabhbhai wore plain khadi woven out of the yarn spun by his devoted daughter Maniben who was his personal secretary as well as his personal attendant ever prepared to do any small job for her Bapu. Maniben was Vallabhbhai's sole guardian and protector for over two decades. Then Vidya Shanker the versatile private secretary was alone, equal to half a dozen officers In the State Ministry V. P. Menon was the States Minister's giant secretary and adviser. I saw the able H V. R Iengar taking the Home Minister's orders on bulky files. With such personal, private and official aides, Vallabhbhai disposed off business of state in minutes Vallabhbhai was a hard taskmaster and a strict disciplinarian . whether it was the case of Nariman or Khare or even Subhashbabu Vallabhbhai always went upto the bitter end Vallabhbhai might have appeared ruthless, but he had a loving heart hidden within his steel chest Vallabhbhai believed in the economy of production and more production To the Muslims he was never unfair, but he did not like the policy of appeasement. Vallabhbhai was considerate in his dealings with the much-maligned princes and capitalists and he got everything out of them all without causing offence to them Vallabhbhai was no believer in empty slogans . but he was all for the toiling millions to whom he really belonged As I have said I wish Vallabhbhai had been born at least 15 years later and had left us 15-20 years later. I also wish Gandhiji's choice had fallen on Vallabhbhai to enable him to make India intrinsically strong There is no knowing if the catastrophic partition of India could have been averted even if Vallabhbhai had sided with Gandhiji to the very end · The British were determined to break the country into numberless pieces It was Vallabhbhai's quick and wise action which foiled those nefarious designs Without Vallabhbhai Hyderabed and even tiny Junagarh would have gone if given the opportunity Vallabhbhai could have saved the whole of Kashmir for India and there could have been no betrayal of Tibet and later China would have certainly not dared to cross into Indian Territory Vallabhbhai could have secured the cooperation of all sections of the people for the moral and material progress of the country Then, India would have automatically risen in the estimation of the nations of the world. Let us now hope that a man like Vallabhbhai would once again take his birth in Bharat and raise it to its full stature ! There can be no power on earth which could make India forget the immortal Vallabhbhai who will be enshrined in the hearts of his countrymen for all times to come

---

नोट :—पंडित जवाहरलाल नेहरू के स्वर्गवास के बाद किया हुआ मेरा आकाशवाणी प्रसारण प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) में छप चुका है।

२५. सालगिरह, विचारतरंग

१९ नवम्बर को मेरी सालगिरह है। ७४ साल पूरे होकर ७५वें में प्रवेश होगा। आज से ५२ साल पहले मेरे एक साथी राजकर्मचारी ने अपनी खुद की सालगिरह के मौके पर कहा था कितनी मूर्खता की बात है कि सालगिरह को खुशी का दिन माना जाता है। उनकी राय में सालगिरह के दिन इस बात का रंज होना चाहिए कि उम्र में से एक साल कम हो गया। मेरे सोचने के अनुसार सच बात यह है कि अनादि और अनन्त काल के सामने शताब्दियों और सहस्त्राब्दियों तक की भी कोई गिनती नहीं हो सकती तो किसी एक आदमी की सौ पचास साल की उम्र की क्या गिनती हो सकती है और उसकी उम्र के किसी एक साल के घटने या बढ़ने की तो बात ही क्या की जाए? रेलगाड़ी में सफर करते हुए जब एक बड़ा स्टेशन आता है तो कुछ सन्तोष होता है कि चलो इतना रास्ता तो कट गया और आगे अब इतना बाकी है।

मैं अनन्त की कल्पना करते करते हैरान हो जाता हूँ। जो कुछ दिखायी देता है उसके अलावा न दिखायी देने वाला बहुत-बहुत ज्यादा है। न काल की सीमा, न देश की सीमा। कहते हैं अदृश्य में से ही दृश्य पैदा होता है। मुझे लगता है कि किसी दिन भौतिक विज्ञान ही आत्मा को सिद्ध कर देगा। इतना तो आज भी है ही है कि ज्यों ज्यों वस्तु छोटी होती जाती है त्यों त्यों उसकी शक्ति बढ़ती जाती है, यहां तक कि अदृश्य अणु-परमाणु की बड़ी भारी शक्ति मानी जाती है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम ऐसे चलते-चलते अदृश्यता आ जाती है और अदृश्य में अधिक शक्ति हो जाती है। इस प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म अदृश्य का अन्तिम रूप आत्मा ही नहीं होता होगा क्या? और अदृश्य से, आत्मा से उल्टे चलने लगें तो स्थूल की ओर बढ़ते बढ़ते समुद्र, पहाड़ आदि के निर्माण तक नहीं पहुँच जाएंगे क्या?

जो हो, इन हवाई उड़ानों से क्या बड़ा मतलब रखा है? मेरे लिए मतलब की बात यह है कि मैं कैसे भी पैदा हो गया, पैदा हुआ तब से मुझे सांस आ रहा है और मैं जिन्दा हूँ। जिन्दा हूँ तो मुझे कुछ न कुछ करना पड़ता है। तब मैं सोचता हूँ कि जो कुछ मैं करूं वह अच्छा ही क्यों न करूं? इस आधार पर सत्कर्म में लगे रहना मेरा धर्म हो जाता है। जो सत्कर्म मेरे अपनाने में आ गया वही मेरा स्वधर्म है। स्वधर्म में लगे लगे ही "मिट जाना" अच्छा है, क्योंकि परधर्म को "भयावह" बताया है। मेरे स्वधर्म को ही अपना स्वधर्म मानने वाले समानधर्मा मिल जाने पर उनसे मुझको कुछ न कुछ अपेक्षा होने लगती है। किसी से भी अपेक्षा रखने की वृत्ति से अपने आपको बचाते हुए स्वधर्म में लीन रहना, यही प्रयास मेरे करने का है। इन शब्दों के साथ मैं आज के दिन वनस्थली परिवार का अभिवादन-अभिनन्दन करता हूँ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

प्रस्तावना

परिशिष्ट १ मे प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) की पाच समीक्षाए दी गयी है। पाठक देखेंगे कि पाचों समीक्षाए अपने-अपने ढग की हैं। प्रत्यक्षजीवनशास्त्र का प्रचार करने का अब तक कोई प्रयत्न नही किया गया है। प्रचार किया जाता तो सम्भव है बहुत सारी समीक्षाए कहीं न कहीं प्रकाशित हो जातीं। अस्तु।

परिशिष्ट २ मे मेरी रचनाओं को दोहराया गया है। उन रचनाओं मे मेरे विचारों और मन्तव्यों का सार आ जाता है।

परिशिष्ट ३ मे "अपना मूल्याकन—अपनी कलम से" नाम का मेरा आत्म-परिचयात्मक एव आत्म-समीक्षात्मक लेख दिया गया है।

हीरालाल शास्त्री

परिशिष्ट

(१)

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) की समीक्षाएं

(१)

परम स्नेही श्री सीताराम सेकसरिया की स्नेहमयी प्रतिक्रिया

(अ)

"प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" की उडीक रही और चार पाँच दिन पहले जब मैं जीमने को बैठ रहा था। उस समय पोस्टमैन पैकेट लाया तो मैंने उसे खोलकर अच्छी तरह देखा। गेट अप, छपाई, कागज सारी चीजें मनमोहक लगी। नीले रंग पर सफेद अक्षरों में पुस्तक का और आपका नाम बहुत खिले। पुस्तक पढने लगा तो यह इच्छा हुई कि और अधिक पढना ही चला जाऊँ। सबसे पहले रचना पचशती एक सास में पढ़ गया। आपकी कविता को मैं जानता हूँ। छन्द और काव्य को भी जानता हूँ। इस रचना पचशती में जो कुछ व्यक्त हुआ है वह आपके मानस का समय-समय पर चिन्तन, उद्वेग, अपनत्व, बहादुराना ढग और राजपूती शान प्रगट करता है। मैं आपको नजदीक से जानता हूँ, इसलिए मुझे ज्यादा अच्छा लगा। मैं समझता हूँ औरों को भी अच्छा लगना चाहिए। किसी को मुझ से ज्यादा अच्छा लग सकता है पर बहुतों को मुझ से कम ही अच्छा लगेगा, पर अच्छा तो सभी को लगना ही चाहिए। किसी को अच्छा न भी लगे तो क्या परवाह वह तो अपने ढग से लिखा ही गया।

आपके नाम आये हुये पत्रों में पाच पत्र मेरे, श्री पाटनीजी के और कुछ और वे भी सब पढ़ गया। इसके अलावा आपका जीवनवृत के अधिकांश भाग पढ चुका हूँ। बाकी सब भी पढना है ही। अपनी बात अपने को अच्छी लगती है, इसीलिये मुझे पढने में रस आता है। पुस्तक में उपन्यास की जैसी रोचकता है, मन लगता है। पढने में जोर नही आता। साधारण पाठक भी रुचि से और सहजता से पढ सकता है और समझ सकता है। लेखक की विशेषता शायद यही है कि वह कठिन बात को भी सहजता से व्यक्त करे और पाठक उसे सहज समझ सके और हृदयंगम कर सके। 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' में यह बात मुझे लगती है। फिर वह पिछले चालीस वर्षों की राजस्थान की हलचल का राजनीति का और आपकी साधना का इतिहास भी है। हो सकता है सब अपनी-अपनी दृष्टि से सोचें और विचार करें पर "आप को पूत प्यारो लगै" ऐसी ही अपनी बात है।

(ब)

"प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" पूरा पढ़ लिया। पहले वाले पत्र में जितना लिखा था। पूरा पढने के बाद वह और भी अच्छा लगा। इधर पांच सात वर्षों में शायद इतने चाव से मैंने किसी पुस्तक को नही पढा। छ सात सौ पृष्ठों की पुस्तक देखकर मैं डर जाया करता हूँ पर "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" को सुबह शाम रात जब मौका मिला पढ़ता गया और इसमें रस आता रहा। भगवान देवी की मृत्यु पर जो पत्र आपने रतनजी को लिखा था। शायद वह मुझे आपने पढाया था। पर पुस्तक मे उसको पढना ज्यादा अच्छा लगा। उस समय की स्थिति का और अपने मन का जो चित्र आपने उसमे उपस्थित किया है उसमें न तो कोई बात छूट पायी है और न कोई विशेष जोड़ी गयी है। इसके अलावा भी बहुत कुछ पढ़ा जिस पर यदि साथ बैठ कर उन स्थलो पर बातें करें तो बहुत बातें हो सकती हैं। पुस्तक मुझे ज्यादा अच्छी लगी इसका कारण शायद यह हो कि इसके बहुत हिस्से का मैं साक्षी रहा हूँ। अपनी बात सबको अच्छी लगती है पर एक बात कहूं कि आपको जो आदमी पूरा-पूरा नही जाने वह आपके बारे में जो भाव है उससे शायद दूसरा चित्र भी बना सकता है। पर इसका क्या किया जाय। आदमी तो जो है सो है और वह अपने आपको ठीक प्रगट करता है और दूसरो की चिन्ता भी क्या।

---

(२)

श्री मुन्ननहसन की राय

"भटके हुए सिपाही की आप बीती"

नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली (२८-११-७१)

भारत के इतिहास में आजादी के सिपाहियों की एक अजीब श्रेणी रही। मुख्य शक्ति-स्रोत कांग्रेस में रहते हुए भी ये लोग उस संगठन की रूढ़िवादिता, व्यक्ति-पूजा और सत्तामद के विरुद्ध सदैव लड़ते रहे, लेकिन अंतिम विश्लेषण में न तो कांग्रेस के भ्रष्ट नेतृत्व को स्वीकार ही कर पाये और न उससे अलग होने के बाद देश को एक शक्तिशाली विरोधी दल ही प्रदान कर पाये। ऐसे भटके हुए सिपाहियों की सूची बहुत लम्बी है इस सूची में सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, जे०बी० कृपलानी, आचार्य नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया और महावीर त्यागी जैसे हजारों लोग आते हैं इन भटके हुए सिपाहियों के मुकाबले ए०के० गोपालन और ई० एम० एस० नम्बूतिरिपाद जैसे नेता बहुत अच्छे रहे, जो कांग्रेस से उपयुक्त समय पर अलग हो गये और एक सुदृढ़ विरोधी पक्ष प्रदान करने और उसके माध्यम से एक प्रबुद्ध जनमत तैयार करने के रचनात्मक कार्य में जी जान से जुट गये। शुरू के बरसों में एस०ए० डांगे, भूपेश गुप्त और अजय घोष ने भी यही भूमिका निभायी।

राजस्थान के पहले मुख्यमन्त्री और वनस्थली विद्यापीठ के संस्थापक पंडित हीरालाल शास्त्री भटके हुए सिपाहियों की श्रेणी में शामिल हैं। प्रत्यक्षजीवनशास्त्र उनकी आत्मकथा है। १९५२ में इसका लेखक इस नतीजे पर पहुँचा था-"बड़े आश्चर्य की बात है कि देश में इतना कुछ हो जाने के बाद भी जिस प्रकार उन दिनों प्रलय की प्रतीक्षा थी आज भी हमें उसी दशा में प्रलय की प्रतीक्षा करते ही रहना है जब तक प्रलय अर्थात् बड़ी क्रान्ति न होगी तब तक मुझे नहीं लगता है कि हमारे देश में कल्याण का मार्ग खुल जाएगा। स्वराज्य के बाद जिस चाल से हम चलते आये हैं वह ठीक नहीं है। इसीलिए हमको पहले की भांति अब भी प्रलय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।" इसे एक परास्त राजनीतिज्ञ का आवेश पूर्ण कथन नहीं माना जा सकता। कारण, पंडित हीरालाल शास्त्री एक कुटिल राजनीतिज्ञ नहीं बल्कि एक तेजस्वी कार्यकर्ता रहे हैं और इसके कई प्रमाण इसी ग्रन्थ में उपलब्ध हैं कि कांग्रेस के प्रति उनका मोह-भंग अचानक नहीं बल्कि एक सघन-सजग संपर्क का परिणाम था। १० अक्तूबर, १९५१ को नेहरूजी के नाम अपने एक पत्र में उन्होंने साफ-साफ लिखा था कि कांग्रेस द्वारा "समाजीकरण और विकेन्द्रीकरण के प्रयासों में ढील दे डालने के कारण

और प्रगतिहीन और निष्फल प्रगतिवादिता के कारण, अनेक लोगों को कांग्रेस से अलग होकर नये राजनीतिक दल बनाने की प्रेरणा मिली है। मेरा यह विश्वास घटता जा रहा है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद आने वाली आर्थिक क्रांति लाना कांग्रेस के बस का रोग है। वास्तविकता यह है कि धीरे-धीरे मुझे यकीन होता जा रहा है कि कांग्रेस के सामने जो महान् उद्देश्य था वह प्राप्त हो गया है और अब कांग्रेस-जन स्वराज्य के फलों पर हाथ साफ करने मे लगे है। मैं इस बात पर आश्वस्त हो चला हूँ कि देश के आर्थिक तंत्र को इस तरह परिवर्तित करने के लिए, कि उसके फायदे आम आदमी को पहुँच सकें किसी अन्य शक्तिशाली आन्दोलन की जरूरत होगी।" इस पत्र को समाप्त करते हुए शास्त्रीजी लिखते हैं-"मुझे आशका है कि कांग्रेस ने जो गलत रास्ता अख्तियार किया है वह उससे हटेगी नही और इससे मुझे यह लगता है कि भारत मे इस वक्त कांग्रेस के विरुद्ध एक आन्दोलन छिड़ना जरूरी है इसलिए कुछ तो कांग्रेस से निराशा होने के कारण और कुछ इस प्रति आन्दोलन की सफलता मे विश्वास होने के कारण मैंने अपनी छोटी सी नौका को भविष्य के अज्ञात समुद्र मे ले जाने का निश्चय किया है। भावी जीवन कोई भी रूप क्यो न ले, एक बात सर्वथा सुनिश्चित है और वह यह कि मेरा जीवन सदा की भांति इस देश की अनन्य सेवा में ही बीतेगा।"

आज इस बात को बीस बरस हो गये पंडित हीरालाल शास्त्री आज सत्तर बरस के वृद्ध हैं और वनस्थली मे विरक्त जीवन बिता रहे है। मन होता है कि इस बहादुर बूढे से यह सवाल पूछ कर इसे शर्मिंदा न किया जाय कि पंडितजी ! उस प्रति-आन्दोलन का क्या हुआ ? जी चाहता है कि उन बूढी आंखो के सामने १९५४ के आग उगलने वाले हीरालाल के ये शब्द न लाये जाये-'ब्राह्मणों और क्षत्रियों का युग अब समाप्त हो गया है और आज पूंजीपतियो का युग है। आज तो पूँजी वाले का-काफी पैसे वाले का ही चारों ओर बोलवाला है सर्वत्र उनका प्रभुत्व है। इसी कारण जनतन्त्र होते हुए भी हमारे देश मे चुनावों मे धनहीन हिस्सा नही ले सकते। एक चुनाव के लिए हजारो, लाखो रुपया चाहिए और कोई भी धनहीन उतना रुपया खर्च नही कर सकता। किन्तु अब वह युग समाप्त होने वाला है और हाथ से मेहनत करने वालों का नया युग आने वाला है इसमें बुद्धिजीवियो का भी सहयोग रहेगा, इसमें अधिक समय नही लगेगा। यह स्वराज्य की तरह हमारी कल्पना के पहले आ जाएगा, उसे कोई चाहे या न चाहे कांग्रेस चाहे या न चाहे क्रान्ति आकर रहेगी उसके लिए हमे तैयारी करनी है। इच्छा होती है कि शास्त्रीजी से पूछा जाए कि आपकी यह कैसी तैयारी है कि १९७१ मे लोकसभा के मध्यावधि चुनावो मे आपकी नाक के नीचे सीकर मे एक साधारण किसान तीन पूंजीपतियो के खिलाफ चुनाव लड़ता है और आपका उसे आशीर्वाद तक नही मिलता ? कृष्णकुमार बिड़ला के खिलाफ उन्हीं के कारखानें का एक अदना मजदूर लड़ता है लेकिन आप सत्ताधारी कांग्रेस से यह अपील तक नही करते कि आप बीच मे मत पड़िए, मालिक मजदूर की यह सीधी टक्कर हो ही जाने दीजिए ?

राजनीति के सजग विद्यार्थी भी अक्सर पंडित हीरालाल शास्त्री जैसे पुराने लड़ाकों को स्वार्थी और व्यवस्था का अग मान लेने की भूल करते देखे गए हैं। हम समझते है कि शास्त्रीजी की ईमानदारी सब तरह के सदेह से परे है। हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि तत्कालीन पेचीदा राजनीतिक परिस्थितियो की उनकी समझ ठीक नही रही और जहां उन्होने उन्हे ठीक से समझा भी वहां वे जम कर मोर्चा नही ले पाये। इस शक्तिमान व्यक्ति के कुछ न कर पाने से उनकी व्यक्तिगत हानि जो हुई सो हुई लेकिन देश के समाजवादी आन्दोलन को वाकई बड़ा नुकसान पहुँचा है। अब अगर शास्त्रीजी समझ भी जाय कि उनकी असल जगह लाखो किसानो मजदूरो के बीच थी और उनका असल काम था समाजवादी संघर्ष के लिए उन्हे तैयार करना, तो शायद उनके ७० वर्ष उन्हे समझा देंगे कि अब देर हो चुकी है। हां, नये राजनीतिक कार्यकर्ताओ को उनकी इस आत्मकथा से बहुत कुछ सीखने की प्रेरणा मिल सकती है।

---

(३)

बन्धुवर श्री वियोगी हरि की भावना

(दैनिक हिन्दुस्तान, नयी दिल्ली ३०–७–७२)

गीता की यह उक्ति कि "स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह." चाहे जितनी भी दलीलो से असत्य नही ठहरती, भले ही उसका अर्थ या व्याख्या अपने ढग से काल और स्थान पर दृष्टि रखकर की जाए। अवसर 'स्व' की व्याख्या करते हुए हम जितना गडबडा जाते हैं, उतना 'पर' को व्याख्या करते हुए नही। अपनी स्वय की तबीयत से यह पर्याप बहुत ठीक नही उतरता। 'स्व' रेखागणित के विन्दु तथा रेखा की तरह 'पर' की अपेक्षा रखते हुए भी मूलत निरपेक्ष होता है। काली कमली पर कोई दूसरा रग चढने की हिम्मत नही करता। 'परधर्म' अपना मोहक रूप दिखाकर समय-समय पर प्रलोभन देता है सही जीवन मे कभी-कभी एक इमारत भी खडी कर लेता है, जो प्राय: बेबुनियाद होती है। पर वह कभी आत्मसात होने वाला नही। उसके मीठे फल भी बदहजमी को अपने साथ ले आते है और बाद मे मुँह का स्वाद बिगड जाता है क्योकि उनके अन्दर अनुकूल रस नही होता।

मेरे सामने एक सुन्दर ग्र थ 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' प्रस्तुत है। लेखक हैं बन्धुवर हीरालाल शास्त्री। इसे इन्होने वनस्थली मे ४१ साल पूरे होने के अवसर पर प्रकाशित कराया है। ग्रथ के पाँच भाग है। पूर्वकथन, जीवनवृत, रचनापंचशती, अतिरिक्त सामग्री और उत्तरकथन।

यह ग्रथ एक सच्ची आत्मकथा है— एक ऐसे व्यक्ति की आत्मकथा जिसके अपने विचारो पर दूसरो की छाप बहुत कम पडी है, जो हमेशा कुछ कर गुजरने को तैयार रहा है, जो स्वभाव से निर्भीक और फक्कड तबियत का है और जिसने राजनीति को अपनी जीवनसाधना मे बाधक नही बनने दिया। कहा गया है कि "वह एक भटका हुआ सिपाही है"। पर ऐसा मानने को जी नही करता। वह अपने स्वीकृत लक्ष्य से भटका नहीं और उसने अपने-आपको उलझाया नही। तत्कालीन परिस्थितियो से प्राप्त तात्कालिक फल को यदि जीवन-सिद्धि मान लिया जाए तो बात दूसरी है। पर्याप्त है कि हम अपने स्वय के जल से जड़ को सीचते रहे। यदि डालिया, पत्तिया, और फलो पर दृष्टि न टिकी तो उलाहना देने—दिलाने का कोई कारण नही।

वनस्थली मे जो पवित्र बीज कभी बोया गया था, एक बिनजुती ऊबड खाबड जमीन पर उसका अकुरित और पल्लवित होना और फूलों व फलो से लद जाना, क्या वह लेखक

के उतार–चढाव वाले जीवन का एक सुनहरा पृष्ठ नही है ? जब वे सत्तात्मक राजनीति के भँवर मे पड़ गये थे, तब वनस्थली अपने रचनात्मक सकेतों से उन्हे बुला रही थी । याद आता है कि राजस्थान के मुख्यमन्त्री पद से हटते समय उन्हे मैंने बधाई दी थी और कहा था कि वनस्थली ही उनकी सच्ची कर्मभूमि है, और वही उनकी मुक्ति-भूमि भी है ।

आत्मकथा के लेखक की विविध विधायक सेवाए जिनमे राजनीति प्रमुख रूप से शामिल है और जीवनकुटीर तथा वनस्थली विद्यापीठ—ये ऐसे स्मारक हैं, जिन पर प्रतिकूल हवा-पानी का असर पडा नही ।

राजनीतिक क्षेत्र मे शास्त्रीजी १६३६ से १६६२ तक रहे किन्तु फिर भी वे अपने जीवन-लक्ष्य की ओर सजग थे । देश की विविध—समस्याओ के प्रति वे आज भी सजग हैं और उनके दिल मे लगी हुई आग बुझी नही है । भारतीय सस्कृति मे उनका पूरा विश्वास है । वे मानते है कि बाहर से उधार ली हुई राजनीति हमारे देश को वास्तविक अर्थ मे समृद्ध और उज्ज्वल नही बना सकती ।

हाँ, शास्त्रीजी एक लेखक ही-नही, बल्कि अच्छे कवि भी हैं, कविताओ मे सरलता, भाषा मे मिठास और शैली में अपना एक बाकापन है, जो उनकी कतिपय नीचे की पक्तियो मे हम पाते हैं :—

चाहा मिले तो परहेज क्यो हो,
नहीं मिले तो परवाह क्यो हो ?
हो पास में तो दरिया दिली हो,
लेना नही तो फिर चाह क्यों हो ?

नही किसी से कुछ चाहना है,
नही जरा भी कुछ बोलना है।
अच्छा बुरा हो, सब झेलना है,
नही जबां से कुछ बोलना है।

किया जरा भी उपकार मेरा,
कृतज्ञ आजीवन मैं रहूंगा।
भला बडा भी मुझ से हुआ तो,
जबान से मैं न कभी कहूँगा।

धोखा कई बार मुझे हुआ है,
ठगा गया किन्तु ठगा नही है।
भला खुशी से सबका किया है,
चाहा कभी एवज़ मे नही है।

अनेकता मे वस एकता है,
अभेद होता वस भेद माही ।
विरोध माही अनुकूलता है,
आराम होता तकलीफ माही ।

ग्रथ के चौथे भाग मे जो सामग्री दी गई है उसमे का अधिकाश पठनीय और विचारणीय है । राजनेताओ, सत्ताधारियो एव अनेक मित्रो को लेखक ने जो पत्र हिन्दी तथा अग्रेजी मे लिखे है उनको तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो एव लेखक के मनोमथन का खासा अच्छा परिचय मिलता है ।

श्री हीरालाल शास्त्री का यह प्रत्यक्षजीवनशास्त्र निस्सदेह पठनीय एव उपादेय ग्र थ है ।

———

(४)

प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र (भाग १) के आधार पर डॉ० मदनगोपाल शर्मा (हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय) कृत "वनस्थली का वानप्रस्थी" नामक समीक्षात्मक पुस्तक का श्री चन्द्रकिशोर गोस्वामी (संस्कृत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ) द्वारा संकलित सारसंक्षेप :

तीन वर्ष पूर्व पंडित हीरालालजी शास्त्री द्वारा लिखित ग्रन्थ प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के आधार पर "वनस्थली का वानप्रस्थी" शीर्षक के अन्तर्गत डॉ० मदनगोपाल शर्मा ने शास्त्रीजी के तप. पूत व्यक्तित्व और कृतित्व का एक विशद समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। डॉ० शर्मा के इस समीक्षण में शास्त्रीजी के लेखक और कवि रूप के विश्लेषण के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व के विविध आयामों–रचनात्मक व राजनीतिक कार्यकर्ता, प्रशासक, वक्ता, विचारक एवं क्रान्ति द्रष्टा का मनन-निरूपण किया गया है। भावुक और भावक की पैनी दृष्टि से ग्रन्थ का पर्याप्त मथन कर डॉ० शर्मा ने जो परिणाम निकाले हैं, उनसे प्रत्यक्षजीवनशास्त्र को गहराई से न पढ सकने वाले लोगो के लिए भी शास्त्रीजी का बहुमुखी व्यक्तित्व एक चित्र की भांति स्पष्ट हो गया है। डॉ० शर्मा का यह प्रयास इसलिए और भी श्लाघनीय है कि जहाँ उनका शैली सौन्दर्य उनके विवेचन मे पदे-पदे मिलता है वहां वह अतिरंजनाओ से बचते हुए तथ्यो के प्रकटीकरण के प्रति सजग रहे हैं। यहाँ डॉ० शर्मा के उस विस्तृत लेख के ही कुछ अंशो को इस रूप मे संकलित किया गया है जिससे उनके लेखन और लेख्य का सहज परिज्ञान हो सके। प्रत्यक्षजीवनशास्त्र की कृति के रूप मे समीक्षा करते हुए डॉ० शर्मा लिखते है—

"किसी भी व्यक्ति के लेखकीय व्यक्तित्व का सबसे सही परिचय उसके आत्मचरित से मिलता है। ''' बचपन की नटखट शरारतो तथा विद्यार्थीकाल की उच्छृंखलताओ के जो मनोरम आत्मविश्लेषणपरक चित्र शास्त्रीजी ने खीचे है, वे साहित्यिक सौष्ठव और कला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़े हैं।''''''''जीवन की सभी अवस्थाओ और स्थितियो का यथासभव खुलकर वर्णन किया है। इस खुलेपन और बातचीत की सी सहजता ने उनके लेखन को सजीव व प्राणवान बना दिया है। ''''''शास्त्रीजी के गद्य की भाषा बोलचाल की सहज सुबोध भाषा है''''' '''*यही कारण है कि संस्कृतगर्भित तत्सम शब्दावली के साथ* ही उसमे दैनन्दिन प्रयोग मे आने वाले लोक प्रचलित अंगरेजी, उर्दू, जयपुरी आदि भाषाओ और बोलियो के शब्द भी काफी सहज मे पाये जाते हैं।''''' '''यद्यपि शास्त्रीजी अपने लेखन मे नपे-तुले, सधे-सधाये और मर्यादित हैं तथापि सिद्धान्तहीन और भ्रष्ट सामाजिक स्थितियो पर करारा व्यंग्य करने से भी वे नही चूकते।''''''''शास्त्रीजी मे व्यंग लेखन की जैसी दक्षता है वैसा ही कौशल सूत्रबद्ध लेखन कला का भी है।''''''''बिम्बविधान द्वारा व्यंजनाशक्ति के आश्रय से भी लेखक ने गिने-चुने शब्दो मे पूरे भाव-चित्र या विचार-सारणि को सहज ही गुम्फित कर दिया है।''''''''सच तो यह है कि हिन्दी, संस्कृत, उर्दू अंग्रेजी

और राजस्थानी में लिखित समस्त गद्य-पद्य रचनाओं के अवलोकन से यही प्रभाव पड़ता है कि यदि शास्त्रीजी राजनीति और सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में नहीं आते तो संभवतः एक उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार के रूप में इनके व्यक्तित्व का विकास कोई आश्चर्य की बात नहीं हुई होती।''''''''शास्त्रीजी का अपने सहृदय पाठकों से आग्रह है कि वे किसी भी रचना में काव्यत्व की खोज न करें तथापि यह स्वीकार करना होगा कि अनुभूति की मौलिक निजता और अभिव्यक्ति की ईमानदारी यदि काव्य के अनिवार्य तत्व हैं तो हृदय के इन उद्‌गारों को कविता की संज्ञा से अभिहित करना ही होगा।"

"शास्त्रीजी के पत्रों में अवसरोचित तर्क और भावना का समावेश पाया जाता है। व्यर्थ के विस्तार से बचते हुए सीधे काम की बात पर आ जाना और औपचारिकता के चक्कर में यथासंभव न पड़ना शास्त्रीजी के पत्र व्यवहार की विशेषताएं हैं।" डॉ० शर्मा ने शास्त्रीजी के विचारों को दार्शनिक और समाजशास्त्रीय दो वर्गों में विभक्त किया है। बीस-पचीस विचार बिन्दुओं का संग्रह करते हुए वे अपनी निष्कर्षात्मक टिप्पणी देते हैं—

"सृष्टि के अनन्त अज्ञेय रहस्यों की उधेड़बुन में व्यर्थ दिमागी कसरत करने की अपेक्षा शास्त्रीजी प्रत्यक्षजीवन सत्यों में अनुपालित होने के महत्व को स्वीकार करते हैं जो उन जैसे कर्मठ समाजसेवी व्यक्ति के लिए सर्वथा स्वाभाविक और उचित है। प्रत्यक्षजीवन सत्य ही व्यक्ति को जीवन के क्रियाशील और संतुलित नियम और सिद्धान्त प्रदान कर सकते हैं।''''''अपने स्वतन्त्र चिन्तन में उन्होंने बड़ी से बड़ी हस्तियों से भी निसंकोच रूप में अपना बुनियादी मतभेद, उनके प्रति आदर रखते हुए, सत्य की पकड़ के स्वस्थ दृष्टिकोण से प्रेरित होते हुए प्रकट किया है। उन्होंने ऐसे सामाजिक सत्यों को कहने का भी साहस किया है जिन्हें वैचारिक फैशन के प्रवाह और सत्ता की आंधी के विरोध में कहने का साहस सबको नहीं होता।"

शास्त्रीजी की वक्तृत्वशक्ति के सम्बन्ध में डॉ० शर्मा का विचार है—

"जिन्होंने शास्त्रीजी को जयपुर शहर की चौपड़ पर अथवा गांव में विशाल कृषक समूह के बीच भाषण देते हुए सुना है वे जानते हैं कि वे कितने प्रभावशाली वक्ता रहे हैं, विशेषत: जयपुरी बोली में दिये गये उनके भाषणों और जयपुरी में ही लिखे गये उनके जन-जागरण गीतों के मिठास का तो कोई जवाब ही नहीं है।''''''''अपने भाषणों में शास्त्रीजी ने कभी मुलम्मेबाजी से काम नहीं लिया। खरी-खरी कहकर जनता को अपने साथ भावना के बहाव में बहा ले जाना किन्तु साथ ही ठोस कार्यक्रम के किनारे उसे लगा देना, यही रीति-नीति वक्ता के रूप में शास्त्रीजी की रही है। अपने प्रतिपक्षी को हाजिरजवाबी से लाजवाब कर देना और तर्क के तेज नश्तर चुभो-चुभोकर अत्याचार से दुखती रगों के घावों को खोलकर रख देना शास्त्रीजी की वक्तृत्व कला की विशेषताएं हैं।"

शास्त्रीजी के जयपुर राज्य में कुछ समय तक महकमा मर्जगुजारी और हाई स्कूल में काम करने के बाद मोतमिदराज मेयो कॉलेज, असिस्टेंट अकाउण्टेण्ट जनरल, फॉरेन व होम

डिपार्टमेण्ट्स् के सेक्रेटरी, जयपुर जन प्रतिनिधियों के मन्त्रिमण्डल के मुख्यमन्त्री और फिर सयुक्त राजस्थान की रचना होने पर राज्य के शीर्ष स्थानीय प्रशासक मुख्यमन्त्री के रूप मे कार्य करने का अवसर मिला है। *प्रशासक के रूप मे उनकी सफलता और लोकप्रियता के* कारणों की चर्चा करते हुए डॉ० शर्मा लिखते है—

"आडम्बर और भ्रष्टाचार से शास्त्रीजी को चिढ रही।"... "'कम से कम व्यय मे अच्छे-से अच्छा काम'—इस एक उक्ति मे उनकी शासन व्यवस्था का सही मूल्यांकन कोई भी तटस्थ समीक्षक किये बिना नही रहेगा। ""सयुक्त राजस्थान के प्रथम मुख्यमंत्री के रूप मे शास्त्रीजी ने राजनीतिक उठापटक मे समय व्यर्थ खोने की अपेक्षा राजस्थान के एकीकरण के ऐतिहासिक दायित्व को अधिकाधिक लाघव से सम्पूर्ण करने की ओर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित रखा।" ""शास्त्रीजी ने इतना भारी दायित्व होते हुए भी अपने मंत्रि-मण्डल मे केवल १० मंत्री ही सम्मिलित किये।"......और सचमुच इस छोटीसी टीम को साथ लेकर *थोडे से समय मे कम से कम साधनो का व्यय कर शास्त्रीजी ने विशाल राजस्थान के एकी-*करण का जो कार्य किया है उसका मूल्यांकन तो जनप्रशासन विज्ञान का कोई प्रतिभा सम्पन्न शोधकर्त्ता ही कभी प्रस्तुत करेगा। राजस्थान के समझदार और दुनिया देखे लोग आज भी उस मंत्रिमडल को ईमानदारी, एकता, सादगी और मितव्ययिता के लिए याद करते हैं।"......जरूरी सरकारी काम की उपेक्षा कर दौरे कर-कर भत्ता कमाने की प्रवृत्ति *शास्त्रीजी मे तो दूर शास्त्रि-मंत्रिमण्डल मे भी नही रही। स्वयं शास्त्रीजी ने तो एक बार* भी टी०ए०, डी०ए० बिल नही दिया।"......प्रशासक के रूप मे एक और सफल काम उन्होंने राजकाज मे हिन्दी को आगे बढ़ाकर किया। न केवल राज्यकार्य मे हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के लिए राज्याज्ञाए ही प्रसारित की बल्कि यह भी देखा कि गभीरता से उन पर अमल होता है कि नही।"......उन्होने खुद ने किसी भी फाइल पर कभी एक बार भी एक भी टिप्पण या आदेश अग्रेजी मे नही लिखा।"... "राजस्थान के निर्माता के रूप मे उन्हे सदा ही याद किया जाएगा।" रचनात्मक कार्यकर्त्ता और राजनीतिज्ञ के रूप में *शास्त्रीजी के व्यक्तित्व को परखते हुए डॉ० शर्मा का कहना है-"विद्यार्थिकाल मे ही 'प्रयास'* तथा "विद्यार्थिजीवन" नामक हस्तलिखित पत्रिकाओ की योजना तथा जयपुर मे राजस्थान छात्रालय एव छात्रमण्डल का सचालन आदि कार्यो मे युवक शास्त्री की रचनात्मक सहजात प्रवृत्ति के बीज छुपे हुए देखे जा सकते हैं। शास्त्रीजी के व्यक्तित्व की गरिमा और प्रतिष्ठा की जडें मंत्रिपद या सत्ता मे नही बल्कि उनकी सुदीर्घ सेवा परायणता मे रही है।"...... शास्त्रीजी एक ठोस कार्यकर्त्ता और कुशल राजनीतिक सगठक रहे है। चाहे सघर्ष का सकट-काल हो, चाहे सुलह समझौते की नाजुक घडी। दोनो ही स्थितियो मे उनका व्यक्तित्व समान *रूप से निखरकर सामने आया है। दोनो ही स्थितियो मे उन्होने निष्पक्ष निर्भीक* निर्णय और आचरण की दृढता का निर्वाह किया है।"... "कर्मक्षेत्र के धनी इस कार्यकर्त्ता को 'टेबुल वर्क,' कभी पसन्द नही आया।"......"रग बिरगी वाक्यावली का शब्दिक सूत्रधार अथवा कानूनी दावपेचों का अखाडची उसने कभी नहीं बनना चाहा।"

शास्त्रीजी के व्यक्तित्व के उपयुक्त विविध पक्षों का विश्लेषण करने के साथ डॉ० शर्मा ने उनके सश्लिष्ट और गहन व्यक्तित्व का निरूपण करते हुए लिखा है—

"शास्त्रीजी अपनी वेशभूषा या रुचियो मे लेशमात्र रुमानियत या चटक मटक की ओर आकृष्ट नही रहे। ....खादी की धोती, लम्बा-ढीला कुर्त्ता और देशी जूते इस "सदा बहार पोशाक" मे राजनीतिक मौसम या किसी आर्थिक ज्वार-भाटे से कभी कोई अन्तर नही आया।.........न वेशभूषा मे, न बोध मे, न सम्बोधन मे और न ही सम्बन्ध निर्वाह मे-कभी किसी प्रकार का रग शास्त्रीजी ने नही बदला। वह सदा एकरंग -एकतान ही रहे।.... वस्तुत सीधी-सादी सच्चाई सादगी-इस लघु मत्र मे शास्त्रीजी के जीवन और कर्त्तव्य की मूल-प्रेरणा खोजी जा सकती है। ऊपर ऊपर से अक्खड़ और व्यवहार में रुखे-रुखे से दीखने वाले शास्त्रीजी कोमल और गहरी भावनाओ के धनी हैं।.........शास्त्रीजी की प्रकृति मे सिद्धान्त और भावना का विचित्र मेल है।.... कृतज्ञता मे भुकना और प्यार मे रुठना-यही उनकी अन्तरग आत्मीयता की दो कसौटियाँ हैं।.........विचारों की दृढता शास्त्रीजी में कूट-कूट कर भरी है।... ... अपने व्यक्तिगत और राजनीतिक जीवन मे समान रूप से वे वचन के धनी रहे हैं।........ कर्मशीलता मे उनका अधिक विश्वास है। भविष्य की चिन्ता उन्होने कभी नही की। वर्तमान के पूर्ण सदुपयोग का ध्यान ही उन्होने सदा रखा है।........ शास्त्रीजी का व्यक्तित्व ऊपर से आरोपित नही है अपितु देश की भूमि और उसके जन से अपनी प्रवृत्तियो और प्रेरणाओ के स्रोत ग्रहण करता हुआ एक सचेष्ट विकासशील व्यक्तित्व है जिसने अपने ढग से अपना मार्ग तराशा है और तप और अनुभव ही जिसकी वास्तविक पूजी है।"

"विरोधाभासो के विषम रगो से बनी इस तसवीर मे कुछ भी अनहोनापन या अट-पटापन नही लगता।"

बुद्धि और वाणी किसी भी विषय को समझने और कहने का माध्यम होती है किन्तु विषय ही जब व्यापक, महान् और गरिमामय हो तो ये सीमित माध्यम क्या कर सकते हैं? सब समझते हुए भी बहुत कुछ अनसमझा और कहते हुए भी बहुत कुछ अनकहा रह ही जाता है जो औरो को आगे समझने-कहने को सदा प्रेरित करता रहता है। क्या शास्त्रीजी के भी व्यक्तित्व के साथ यह बात नही है?

———

[५]

डॉ० कुमारी पन्ना द्विवेदी

(हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ का समीक्षात्मक अध्ययन)

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र पण्डित हीरालालशास्त्री द्वारा लिखित उनका स्वय चरित्र निरूपण है। पूर्व कथन मे उन्होंने कहा है—

प्रत्यक्ष सत्यस्य विवेचनाय
निजानुभूतेः परिदर्शनाय
स्वकीय चारित्र्य निरूपणाय
ग्रन्थं करोमि प्रियरंजनाय।

"मैं कैसा क्या मनुष्य हूँ, मेरी कैसी क्या मान्यताए रही है, मेरे पास जो कुछ प्राईवेट या पब्लिक है सो सब एक जैसा है। इस सब कुछ का सक्षेप मे समावेश प्रत्यक्षजीवन शास्त्र मे करने का यत्न किया गया है।........इस ग्रन्थ मे प्रत्यक्ष सत्य का विवेचन है। मेरी अनुभूतियों का परिदर्शन है और मेरे चारित्र्य का निरूपण है और इससे मेरे प्रियजनो का मनोरजन होगा।" लेखक के जीवन में घटी हुयी विविध प्रत्यक्ष घटनाम्रो, प्रत्यक्ष सम्बन्धो का पुस्तक मे सुन्दर विवेचन है।

पुस्तक के शीर्षक और विषय वस्तु का स्पष्टीकरण करते हुए भी लेखक ने कहा है—"प्रत्यक्षजीवनशास्त्र का समास इस प्रकार है। प्रत्यक्ष है जो जीवन सो प्रत्यक्षजीवन, प्रत्यक्ष जीवन का शास्त्र, प्रत्यक्षजीवनशास्त्र। प्रत्यक्ष माने मुझे जो जैसा प्रत्यक्ष दिखायी देता है वही मेरे लिए सत्य है, वही प्रत्यक्ष सत्य है। जिसे मैं नही देख सकता, जिसे मैं नही जान सकता, जिसका अनुमान भी मैं अच्छी तरह से नही लगा सकता उसकी मैं क्या बात करूं? दूसरे सुविज्ञों की बतायी बातें यदि पूरे तौर पर मेरे गले नही उतरें तो उसका भी मैं क्या करूं? पर प्रत्यक्ष के विषय मे श्रद्धा सुनिश्चित है, पक्की है। वही मेरे जीवन का आधारहै।"

लेखक की स्वीकारोक्तियो और सम्पूर्ण ग्रन्थ के अध्ययनोपरान्त यह सहज ही कहा जा सकता है कि पुस्तक मे उनके जीवन के यथार्थ का, प्रत्यक्ष सत्य का स्वरूप उभरा है। उनका जीवन दर्शन स्पष्ट हुआ है। और यह प्रत्यक्षजीवन दर्शन आगामी पीढी के लिये दिशा सूचक बनेगा।

लेखक ने ग्रन्थ को 'मेरे चरित्र' का निरूपण कहा है। और शायद इसीलिए ग्रन्थ मे जीवनवृत्त मात्र ही नही वरन् चरित्र को प्रकाश मे लाने के लिए लेखक की स्वरचित कविताएं, पत्र, लेख, भाषण और डायरी आदि को भी सम्मिलित किया गया है। फलत पुस्तक केवल आत्मकथा या जीवनी न होकर चरित्र निरूपण का शास्त्र हो गयी है। इस शास्त्र के द्वारा, विभिन्न माध्यमो से लेखक ने अपने जीवन को प्रत्यक्ष किया है। यही पुस्तक की सबसे

बड़ी उपलब्धि है कि वह आत्मकथा, जीवनी, चरित्र निरूपण, पत्र, डायरी और भाषणों का रसास्वादन एक साथ कराती है। महात्मा गांधी, पण्डित नेहरू, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद आदि की आत्मकथाओं की भांति प्रस्तुत पुस्तक सार्वजनिक अथवा राजनीतिक इतिहास न होते हुये भी एक कर्मठ, दृढ और प्रबल इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति का प्रामाणिक वैयक्तिक इतिहास है इसमें दो मत नहीं हो सकते।

सम्पूर्ण पुस्तक पाच भागो मे विभाजित है। पहला भाग "पूर्व कथन" जिसमें लेखक ने ग्रन्थ रचना की प्रेरणा को स्पष्ट किया है। पुस्तक की विषय वस्तु के सम्बन्ध मे संक्षिप्त सूचना दी है।

दूसरा भाग "जीवनवृत्त" शीर्षक से लिखा गया है। जीवनवृत्त की प्रमाणिकता के विषय में उन्होंने स्वय कहा है-जीवनवृत्त मेरा लिखा हुआ है (पृ ६५२) जीवनवृत्त के नाम से जो कुछ लिखा गया है वह केवल एक व्यक्ति का जीवनवृत्त मात्र है। उक्त व्यक्ति के जीवन की घटनाओं के सिलसिले मे किन्ही दूसरे व्यक्तियो का जो सम्बन्ध आया सो भी सहज भाव से लिखने मे आ गया। (भाग दो प्रस्तावना)। अपने इसी सहजभाव को लेखक ने पूर्व कथन मे और अधिक स्पष्टता दी है-बचपन से लेकर मेरी उम्र के ७१ वें साल तक की जो बातें जिस रुप मे मुझको याद आती गयी उन्हें मैंने उसी रूप मे ज्यो का त्यो साफ साफ जीवनवृत्त मे लिख दिया है, बिना तोड मरोड के बिना दुराव छिपाव के।

जीवनवृत्त पाच अध्यायो मे विभाजित है। पहला अध्याय तीन उपभागो मे विभाजित है। १८८६ ई० मे १९१६ ई० तक बचपन विद्यार्थिकाल जोबनेर मे बीता है। इस भाग मे शास्त्रीजी ने अपने वश का परिचय (पृ. ६) देते हुये अपने जन्म और बाल्यकाल (पृ १३) की घटनाओं का जिक्र किया है (पृ १४) प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा का सुन्दर वर्णन किया है (पृ. १५)।

इस भाग मे १९१६ से १९२१ तक का विद्यार्थीकाल है जो जयपुर में बीता है। रायबहादुर सर गोपीनाथ पुरोहित से शास्त्रीजी का प्रथम परिचय इस भाग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसने उनके भावी जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। युवक शास्त्रीजी के जीवन में संघर्ष इसी काल से प्रारम्भ हो जाता है। प्रथम विवाह (पृ २०), मातामही का देहान्त (पृ २१), पत्नी का अचानक निधन (पृ २२), तथा तत्काल दूसरी सगाई और १९२० की गर्मियो मे पुन दूसरा विवाह। इसी काल मे एक उल्लेखनीय बात हुई लेखक के मन मे इस विचार का उठना कि वह किसी गाव मे जाकर आश्रम बनाए और ग्रामवासियो की सेवा करें (पृ. २४)।

तीसरा भाग जयपुर राज्य की नौकरी का है १९२१ से २७ तक महकमा मर्दुमशुमारी मे हैड असिटेंट और अजमेर के मेयो कॉलेज मे जयपुर के मोतमिदराज पद पर कार्य किया। फिर फायनेन्स की ट्रेनिंग लेकर जयपुर राज्य मे महकमा हिसाब मे असिटेंट अकाउ-

न्टेट जनरल का कार्य किया। जयपुर राज्य की कौंसिल का पुर्नगठन हुग्रा, पुरोहितजी फोरेन व होम मिनिस्टर बने और शास्त्रीजी सेक्रेटरी। इस पद पर रहते हुये निरन्तर अपनी विद्रोहीवृत्ति का परिचय दिया (पृ ३१)। १९२५ मे पारिवारिक स्थिति बडी विषम हो गई। अचानक पिता, पत्नी और नवजात पुत्र की मृत्यु लेखक को हिला गयी (पृ. ३३)। इसी अवधि मे उन्होने तीसरा विवाह रतनजी के साथ किया। सरकारी नौकरी छोडकर पिलानी जा पहुँचे (पृ ३३-३४)।

दूसरे अध्याय के पहले उपभाग में रचनात्मक सेवा की तैयारी है। १९२७ से २९ तक का समय शास्त्रीजी ने भावी योजना के हेतु पर्याप्त पर्यटन और सम्पर्क स्थापित करने मे बिताया है। पिलानी में श्री घनश्यामदास बिडला से सम्बन्ध हुग्रा। श्री हरिभाऊ उपाध्याय के साथ साबरमती आश्रम मे गांधीजी के दर्शन किये (पृ. ३७)। कलकत्ते में श्री सीताराम सेकसरिया से भेट हुई जो आगे चलकर उनके परम अभिन्न मित्र व सहयोगी बने (पृ ३८)। गाधीजी के आशीर्वाद से शास्त्रीजी ने रचनात्मक कार्य को प्रारम्भ करने की योजना बनायी (पृ. ४१)। दुर्गाप्रसाद शर्मा के साथ स्थान की खोज हुई। जयपुर राज्य की निवाई तहसील मे वनस्थली गाव पसन्द आया (पृ ४२) लेखक के स्वय के के शब्दो मे १९२७ से २९ तक का समय तैयारी का समय था (पृ ४४)।

दूसरे उपभाग में जीवनकुटीर वनस्थली (१९२९ से १९३६ तक) का विवरण है। वनस्थली मे शास्त्रीजी ने जीवनकुटीर की स्थापना की जिसका मुख्य काम वस्त्रस्वावलम्बन, बीमारो को दवा देना, गाव के प्रौढो व लडको को रात के समय पढाना, सहकार सभा तथा कुरीति निवारण आदि था (पृ. ४७)। इस सारे कार्यक्रम को चलाने के लिए कार्यकर्त्ताओ और अर्थ का आयोजन बडी तत्परता और हिम्मत के साथ किया (पृ ४८)। जीवनकुटीर का रचनात्मक कार्यक्रम बहुत सफल हुआ (पृ ५१)। अभूतपूर्व साहस और लगन की नीव पर यही सस्था बहुत उन्नति कर गयी लेकिन इससे भी शास्त्रीजी को सन्तोष न हुआ, वे शान्ति चाहते थे (पृ ५३)। इसी बीच १९३५ मे उनकी प्यारी बेटी शान्ताबाई का अकस्मात निधन हो गया। असाधारण होनहार पुत्री की मृत्यु भावुक पिता को दहला गयी उन्होने स्वय लिखा है-शान्ताबाई की चिता मे अग्नि प्रवेश के होते ही मैंने अपने को झकझोरा और मेरे भीतर ही एक आवाज बोल उठी-देश मे जितनी लडकिया है वे सब तुम्हारी बेटिया है। जितनी चाहो अपने पास रखो और शान्ताबाई की जगह उनको मानो पढाओलिखाओ, सेवा के लिये तैयार करो (पृ. ५८)! बस उसी क्षण से जीवनकुटीर मे शिक्षा कुटीर भी बन गया (पृ ५७)। सन् १९३६ मे शिक्षा कुटीर का पहला वार्षिकोत्सव हुग्रा। आज का वर्तमान वनस्थली विद्यापीठ उसी का प्रतिफल है जिसे शास्त्रीजी ने अपने खून और पसीने से सींचकर इतना बडा किया है। स्वराज से पहले संस्था के लिए उन्होने कभी सरकारी मदद नही मांगी। सर्वप्रथम नेहरूजी के कहने से स्वतन्त्र भारत की सरकार से अनुदान मिला (पृ ६१)। वनस्थली विद्यापीठ शास्त्रीजी की अद्भुत इच्छा शक्ति का प्रतीक है। यद्यपि शिक्षाकुटीर के प्रादुर्भाव से जीवनकुटीर का प्रकट रूप अदृश्य सा हो गया परन्तु

प्रच्छन्न रूप मे वह अब भी विद्यमान है। (पृ. ६३)। तीसरे उपभाग में वनस्थली विद्यापीठ लोकवाणी, जीवनसन्देश, नवजीवन कुटीर, नवजीवन सन्देश, मातृमन्दिर विद्यालय, जोबनेर आदि की स्थापना का विवरण है।

जीवनवृत्त का तीसरा अध्याय लेखक के जीवन के राजनैतिक पहलू को खोलता है। १६३६ से १६६२ तक का समय शास्त्रीजी ने राजनीति मे विताया है। यद्यपि उनका व्यक्तित्व गन्दी राजनीति के लिये नही बना था फिर भी अपनी क्रान्तिकारी भावना के वशीभूत उन्हे प्रचलित राज्यसत्ता का विरोध करना आवश्यक लगने लगा (पृ० ६६)। जयपुर राज्य प्रजामडल के प्रधानमत्री पद पर कार्य करते हुये जेल गये (६७) शास्त्रीजी अखिल भारत देशी राज्य लोकपरिषद के प्रधानमत्री हुए। सविधान परिषद के सदस्य बने। जयपुर राज्य के मुख्यमत्री हुए फिर विशाल सयुक्त राजस्थान के मुख्यमत्री बन कर उन्होंने राजपूताना की रियासतो का एकीकरण किया। (पृ० ७७) शास्त्रीजी के राजनीतिक जीवन मे सरदार वल्लभ भाई पटेल का बडा हाथ था। उसकी मृत्यु के बाद पडित नेहरू से मिलने पर शास्त्रीजी ने ५ जनवरी, १६५१ को अपना त्यागपत्र दे दिया। अपनी समस्त राजनीतिक सफलता विफलता का विवरण उन्होने स्वय प्रस्तुत किया है।" राजस्थान के एकीकरण के काम को मैं अच्छी तरह करके छोड़ूगा। यह न होता तो मैं मुख्यमत्री न बनता और बन गया तो क्षणभर मे छोड कर अलग हो जाता। और यदि मैं यह महसूस नही करता कि मेरे साथियो ने मेरे साथ अत्यन्त अयोग्य व्यवहार किया है तो मेरे मन मे विकार नही आता और मेरे बारे में किसी को भी निकम्मे भ्रम मे पडने का मौका नही मिलता। मुझे किसी के दबाव मे आकर लोकसभा मे नहीं जाना चाहिए था। इस प्रकार मुझे कुछ दुर्भाग्य पूर्ण बातो का सख्त अफसोस है तो मुझे अपने काम से आन्तरिक सतोष भी।"

जीवनवृत्त के चौथे अध्याय मे लेखक ने जीवन जगत के विभिन्न पक्षो पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पूर्ण दार्शनिक की भांति अपने जीवनदर्शन का निर्माण किया है। मृत्यु मे उनका विश्वास नही है। जीवन मे किसी भी कठिनाई से वह घबराते नही। वर्तमान मे उनका अखड विश्वास है। जीवन का कोई पक्ष उनके सामने नकारात्मक नही है।

पाचवें अध्याय (उपसहार मे) शास्त्रीजी ने अपने सम्बन्ध मे सब कुछ बता दिया है। घर परिवार का विवरण (पृ० १०५), अपनी आदतें. स्वभाव, गुण, अवगुण (पृ० ६७-१०४) आदि। पृ० १०७ पर लेखक ने सब आप बीती कह कर आगे के लिये कार्यक्रम बनाया है। उनकी कामना है अपने लिये कुछ भी न चाहते हुए किसी के लिये बुरा चिन्तन या कथन न करते हुए और सत्कार्य पर अडिग रहते हुए राग द्वेष रहित और मोहमुक्त होकर अपने आपको समुद्र में फेंक देना, जलती आग मे झोक देना (पृ० १०६) सभवतः यही कामना उनका जीवनशास्त्र है। इसी प्रेरणा से वह कठिन से कठिन कार्य का बीड़ा उठा लेते हैं।

जीवनवृत्त में लिखा हुआ सम्पूर्ण विवरण पुस्तक सर्वाधिक सशक्त, रोचक और गतिशील भाग है। इसमें आत्मकथा है, जीवनी है। एक कर्मठ स्वर्निमित कर्मयोगी का वृत्त है। उसका जीवनदर्शन है।

पुस्तक का तीसरा भाग रचना पचशती शास्त्रीजी की स्वरचित कविताओ का छटा हुआ प्रकाशन है पहले शतक मे जीवनवृत्त और जीवनसिद्धान्त है। दूसरे शतक में परिवार *और परिजनों का विवरण है। तीसरे मे सत्कर्म, कर्मक्षेत्र। चौथे मे संघर्ष आत्मविश्वास* है। पांचवा शतक जिज्ञासु कवि का ज्ञात अज्ञेय का प्रत्यक्षजीवनशास्त्र है। अन्त मे कुछ और छन्द शीर्षक से अप्रैल से जुलाई, १६७० तक की रचनाओ मे से छटे हुये स्फुट छद है। लेखक एक अच्छा भावनाशील कवि है। कई भाषाओ मे कविता रचने की उनमें क्षमता है।

चौथे भाग (अतिरिक्त सामग्री है) की प्रस्तावना मे ही लेखक ने कहा है कि चू कि अपने बारे में लिखना था इसलिए खासतौर पर मेरी लिखी या बोली हुई बातो को ही अतिरिक्त सामग्री मे स्थान मिलना चाहिए (पृ० २२०) परन्तु दूसरो का सम्बन्ध भी मुझसे और मेरे काम से आता रहा है इसीलिए कुछ सामग्री दूसरों के लिये पत्रादि में से भी देना जरूरी हो गया (पृ० २२०) समस्त सामग्री को लेखक ने पाच भागों में बाटा है। है। (१) १६१७ से १६७० तक की डायरियो से लिये हुए कुछ अ श। (२) शुरू से लेकर जुलाई १६७० तक के कुछ पद्यो के नमूने, विविध पद्यावलि के नाम से। (३) मेरे कुछ भाषण और वक्तव्य (४) मेरे भेजे हुये और मेरे पास आये हुये कुछ पत्र है। (५) मेरे कुछ लेख तथा रिपोर्टो और बुलेटिनों के कुछ अ श भी दिये गये हैं (पृ० २३०)। लेखक सोचता है कि इस अतिरिक्त सामग्री से जिज्ञासु पाठको को उसके विषय में कुछ विशेष जानकारी हो जाएगी।

डायरी व्यक्ति का पूर्ण वैयक्तिक दस्तावेज है। ७-४-१६२१ को लिखी हुई डायरी में लेखक ने भावी जीवन के लिए कुछ प्रतिज्ञा की है (पृ० २२८) और समय-समय पर उनके जीवन मे जो चढाव उतार आया है वह डायरी में अ कित है (पृ० २२४-२६)। पडित नेहरू, श्री निजलिंगप्पा और डॉ० जाकिर हुसैन आदि का वनस्थली आगमन इन्ही डायरी के पृष्ठों से ही ज्ञात हुआ। शास्त्रीजी स्वय मे एक सस्था हैं। उनका मन सदैव अपनी सस्था की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहता है (पृ० २६४)। डायरी के चुने हुये जो पृष्ठ प्रकाशित है वह लेखक के जीवन की विविधता पर अच्छा प्रकाश डालते है। उनमे स्पष्टता है स्वाभाविकता है।

विविध पद्यावली में शास्त्रीजी द्वारा रचित पद्य हैं। कविताए हिन्दी, अंग्रेजी, सस्कृत *राजस्थानी भाषाओ मे लिखी गई है। कवित्वशक्ति शास्त्रीजी मे प्रचुर मात्रा मे है। प्रलय* प्रतीक्षा, फक्कड़भाव, जिनवानी को भरणो (पृ० २७८-२७६), कठिन परीक्षा (पृ० २८६) आदि बड़ी सुन्दर और मार्मिक रचनाएं हैं।

पत्र व्यवहार के अन्तर्गत शास्त्रीजी द्वारा लिखे हुए पत्र तथा दूसरो के द्वारा शास्त्रीजी को लिखे गये पत्र सकलित हैं जिनके लिए उन्होने कहा है कि सत्य को प्रकाश मे लाने मे पत्र व्यवहार का महत्व कुछ अधिक माना जा सकता है (पृ० ६५२)। १७३ पृष्ठों में सकलित ये पत्र शास्त्रीजी के बहुमुखी व्यक्तित्व को उजागर करते हैं। गाधीजी, नेहरूजी, विनोबाजी, सरदार पटेल, सर मिर्जा इस्माइल, सर वी. टी. कृष्णमाचारी, जमनालालजी बजाज आदि को लिखे गये पत्र लेखक के विचारों, भावनाओ और कार्य पद्धति को प्रकाश मे लाते हैं। व्यक्तिगत पत्र इन पत्रो मे नही सकलित किये गये हैं। परन्तु अपने अभिन्न मित्र श्री सीताराम सेकसरिया को लिखे गये ५ पत्रो मे शास्त्रीजी के अन्तरंग पक्ष का भी दर्शन होता है (पृ० ४१६–४२५)। शास्त्रीजी का एक पत्र जो उन्होने कलकत्ते से सीतारामजी की पत्नी भगवान देवी के स्वर्गवास पर दिनाक २५ जुलाई, १९६५ को रतनजी को लिखा था। पूर्ण वैयक्तिक और बहुत मार्मिक है। अभिन्न मित्र की स्नेहमयी पत्नी के दिवगत होने पर अपनी पत्नी को लिखे गए ये हृदयोदगार शास्त्रीजी के कोमल हृदय के दर्पण हैं।

भाषण, वक्तव्य लेखक के सार्वजनिक व्यक्तित्व को ज्ञापित करने में सहायक होते है। रचनात्मक कार्य मे विश्वास करने वाले कर्मठ और एकान्त साधक के भाषणो मे न राजनीतिक प्रचार है, न शब्दाडम्बर न, कृत्रिमता। वह एक कर्मयोगी की सीधी साधी वाणी है। कर्म का सन्देश है। चाहे वह राजनीतिक मच से दिया गया हो या कार्यकर्ता शिक्षण शिविर के तत्वावधान मे।

लेख और बुलेटिनो मे भी लेखक के जीवनदर्शन का समन्वय है। इन सार्वजनिक घोषणाओ मे भी शास्त्रीजी का सैद्धान्तिक व्यक्तित्व झलकता है (पृ० ५५१–५६२–१७६)। कार्य करने की अद्‌भुत प्रेरणा के बीच तर्क-वितर्क (पृ ५६४), भावी रचना (पृ० ६०१) अकेले ही समस्त दायित्व का वहन (पृ० ६०४) करते हुये (पृ०६०५) भविष्य की झाकी भी देखी गयी है। अपने सपनो को साकार करने के लिये अकेले ही बढ़े चलने की लगन है (पृ० ६०८)। सघर्ष में ही शक्ति पैदा होती है। अपनी आन्तरिक प्रेरणा से चलकर भविष्य का मार्ग निर्मित होता है (पृ० ६३२) मातृमन्दिर विद्यालय, जोबनेर के १० वर्ष के कार्य विवरण को प्रस्तुत करते हुए यह अश समाप्त होता है जिसमे शास्त्रीजी की प्रबल इच्छा शक्ति के दर्शन होते हैं (पृ० ६४७)।

भाषा की दृष्टि मे पुस्तक सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। स्वय लेखक के व्यक्तित्व की भाति ही प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणो से युक्त है। हिन्दी, अंग्रेजी, सस्कृत, उर्दू, राजस्थानी सभी पर लेखक का समान अधिकार है। उनमे लेखक और कवि दोनो के गुण है।

पुस्तक की शैली लेखक के जीवन की भाँति ही वैविध्यपूर्ण है। आत्मकथा, डायरी, कविता, पत्र, भाषण, लेख आदि समस्त शैली रूपो का लेखक ने बड़ी कुशलता से

निर्वाह किया है। शैली प्रयोग की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक आत्मकथा के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग है।

आत्मकथा साहित्य की एक सशक्त विधा है जिसमें व्यक्ति का विश्लेषण तो होना ही है, व्यक्ति के दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है और साथ ही व्यक्ति का सम्पूर्ण परिवेश वैयक्तिक संदर्भ रखते हुए भी युगबोध की सम्यक आलोचना प्रस्तुत करता है। नेहरूजी, राजेन्द्रबाबू और बापू की आत्मकथा का परिवेश प्राय एक सा ही है, परन्तु तीनों के तीन व्यक्तित्वों ने उसी परिवेश के तीन रूप प्रस्तुत किये हैं। शास्त्रीजी भी जहां एक ओर संघर्षशील राजनीति की जटिल गांठों से जुड़े, वहीं दूसरी ओर रचनात्मक चिन्तन की शीतल छाया में उस व्यक्तित्व ने जीवन तत्व का लाभ पाया है। इसीलिए उनकी जीवनी आत्मकथा मात्र न होकर प्रत्यक्षजीवन का शास्त्र है। हर नये अनुभव की हर अभिव्यक्ति नयी होती है और इसीलिये शैली के क्षेत्र में भी यह पुस्तक नयी है। युग चेतना के प्रबल प्रभाव ने शैली निरूपण में भी भूमिका निभायी है और व्यक्तित्व ने यहां भी पार्थक्य स्थापित कर लिया है।

———

उपभाग १

परिशिष्ट

: २ :

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) मे मेरी बहुत सी रचनाए छप चुकी है। भाग २ मे भी थोडी सी रचनाए छपी है। भाग २ तय्यार हो चुका तब मेरे सोचने मे आया कि कुछ चुनी हुई रचनाए इसमे परिशिष्ट के रूप मे दोहरा दी जाए यो तो ठीक रहेगा। अतः यहा पर २१ छन्द दिये जा रहे है, यथा (१) ग्रंथ रचना का उद्देश्य, सस्कृत छन्द १(२) तत्व चिन्तन, हिन्दी छन्द १० और (३) व्यवहार दर्शन, हिन्दी छंद १०। मैं समझता हूं कि उक्त छन्दो से मेरे सोच विचार का छोटा सा नक्शा पाठको के सामने आ जाएगा। उस नक्शे पर से पाठको को कुछ मिले या न मिले, पर उसके प्रस्तुत हो जाने से मेरा आत्मसतोष अवश्य हो जाएगा।

१. ग्रंथ रचना का उद्देश्य

प्रत्यक्षसत्यस्य विवेचनाय,
निजानुभूते. परिदर्शनाय ।
स्वकीयचारित्र्यनिरूपणाय,
ग्रंथं करोमि प्रियरन्जनाय ।।

२. तत्वचिन्तन

(१)

जिसे नहीं मैं पहिचानता हूं,
जिसे जरा सा अनुमानता हूं ।
प्रणाम मेरे उसको, उसी पै
तमाम मैं जीवन वारता हूं ।।

(२)

जिसका कहुं आदि न अन्त पता,
जिसका कहु नाम न रूप पता ।
जिसकी कहते अमिता प्रभुता,
कहते रमता हर फूल-पता ।।
नहि मालुम है उसकी प्रभुता,
वह व्यापक है हमको न पता ।
यह जीवन है चलता - फिरता,
हमको यह केवल एक पता ।।

(३)

अनादि अनन्तं अखंडं अभेद्यं,
अरूपं अनामं अमेयं नमामः ।
अजातं अनाशं अदृश्यं अचिन्त्यं,
अजीर्णं पुराणं नवीनं नमामः ।।

(४)

जो वस्तु सर्वत्र रमी बताते,
शरीर मे व्याप्त कही वही है।
पता नही क्या बदलाव होता,
न लाश में क्या रहती वही है ।।

(५)

जो भी स्वयं है वह आतमा है,
जो आतमा वो परमातमा है।
स्वयं हुआ यों परमातमा है,
क्या भिन्न कोई परमातमा है ।।

(६)

आराम क्या है तकलीफ क्या है,
मैं सोचता हूं सुख-दु:ख क्या है।
आश्चर्य है जीवन-मृत्यु क्या है,
पता नही बन्धन-मोक्ष क्या है ।।

(७)

है प्राणशक्ती फिर भावशक्ती
विचारशक्ती फिर शब्दशक्ती।
है एक आगे फिर कर्मशक्ती,
संसार की चालक पांच शक्ती ।।

(८)

सापेक्षसत्यं निरपेक्षसत्यम्,
है तीसरा भी व्यवहारसत्यम्।
कभी नही जो परिवर्तनीयम्,
जो शाश्वतं सो निरपेक्षसत्यम् ।।

(९)

जो देश-काले परिवर्तनीयं,
सापेक्षतायुक्त द्वितीयसत्यम्।
सत्कार्य मे बाधक जो नही हो,
वही कहाता व्यवहारसत्यम् ।।

(१०)

हिसा न होवे परमार्थ हो तो,
हिसा बनेगी यदि स्वार्थ हो तो ।
रक्षा बने निर्बल की जहां पै,
तो मार दे हिंसक को वहां पै ।।

३. व्यवहारदर्शन

(१)

हो मित्र की दृष्टि सदा हमारी,
सभी जनों को हम मित्र माने ।
अमित्रता का व्यवहार कोई
करे उसे भी हम मित्र माने ।।

(२)

हो ऐक्य सच्चा परिवार मांही,
हो ऐक्य पूरा हर गाव मांही ।
हो एकता राज्य व राष्ट्र माही,
हो एकता विश्व तमाम माही ।।

(३)

न काम मेरा भगवान का है,
चिन्ता मुझे क्यो भगवान को हो ।
संकोच क्यों हो मुझ को जरा भी
संकोच हो तो भगवान को हो ।।

(४)

नही रुकूंगा चलता रहूंगा,
जैसा बनेगा करता रहूगा ।
चट्टान से भी मुठभेड़ लूंगा,
नही हटूंगा टुकड़े करूंगा ।।

(५)

संकल्प ना हो न विकल्प होवे,
न तर्क उट्ठे न वितर्क उट्ठे ।
चिंता न होवे न अशान्ति होवे,
न धैर्य छूटे नहि चित्त उट्ठे ।।

(६)

चाहा मिले तो परहेज क्यों हो,
नहीं मिले तो परवाह क्यो हो ।
हो पास में तो दरियादिली हो,
लेना नही तो फिर चाह क्यों हो ।।

(७)

चाहे नही नाम न मान चाहे,
ऐसे जनों का अपमान क्या हो ।
सर्वस्व की आहुति दे चुके हों,
ऐसेन की शौकत-शान क्या हो ।।

(८)

नराज़ राज़ी कुछ भी रहा करो,
बुरा कि अच्छा कुछ भी कहा करो ।
न मान दो तो अपमान ही करो,
बखान जो हो करना किया करो ।।

(९)

दिमाग से ये कुछ और सोचे,
जवान से ये कुछ और बोले ।
जो बोलते सो करते नही ये,
हो स्वार्थ तो भी परमार्थ बोलें ।।

(१०)

प्रात. उठे ये इक बात बोले,
मध्याह्न में दूसरि बात बोलें ।
संध्या पड़े तीसरि बात बोले,
करे नये जो दस बार बोलें ।।

———

उपभाग १

परिशिष्ट

: ३ :

मूल्यांकन

अपना मूल्यांकन अपनी कलम से

प्राय. ७० साल की उम्र तक की मेरी आत्मकथा "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" (भाग १) एक बड़े से ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित होकर पुरानी पड चुकी। बाद के तीन सालो की कथा पिछले पृष्ठो में भाग २ के रूप मे छपी है जिसके परिशिष्ट १ मे प्रत्यक्षजीवनशास्त्र की पाच समीक्षाए भी दी गयी हैं। उक्त दोनों भागो मे और भाग २ के परिशिष्ट १ में क्या क्या लिखा गया है सो मुझको ठीक से याद नही है। प्रस्तुत लेख में अपनी कलम से अपना मूल्यांकन करने का मेरा विचार है।

ठेठ बचपन से लेकर आज तक के अपने जीवन का चित्र मेरे मानस में ज्यो का त्यों खिचा हुआ है। उक्त चित्र को प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १ व २) के द्वारा प्रकाश मे लाने से किसी और को कुछ मिला हो या न मिला हो, पर मेरा अपना आत्मसतोष अवश्य हुआ है और मैं मानता हूँ कि मेरे प्रियजनों का रजन भी अवश्य हुआ है। वही आत्मसतोष वाला और *प्रियजनरजन वाला नतीजा इस प्रस्तुत लेख मे से निकलेगा, ऐसी आशा मुझको है।*

१५–१६ साल की उम्र तक मैं जोबनेर के अपने बड़े से परिवार मे अकेला बच्चा था जिसकी मा १५–१६ महीनो का छोडकर राम के घर जा चुकी थी। बेहद लाड प्यार की स्थिति मे मेरा परावलबी और "इकलखोरा" बन जाना स्वाभाविक था। जोबनेर हाई स्कूल में कक्षा ६ तक तो मुझे ठीक ठाक शिक्षक मिलते रहे। पर बाद मे कक्षा १० तक की ज्यादातर पढाई (गणित व सस्कृत को छोड़कर) मुझको अपने आप ही करनी पड़ी।

ऐसी हालत मे मेरा अकेलापन बहुत बढ़ गया जिससे मैं पढ़ाई के मामले में एक ओर स्वावलंबी हुआ तो दूसरी ओर मेरी जानकारी बहुत कच्ची और अधूरी रह गयी। पता

नही मुझको हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू का सही सही लिखना कैसे आ गया ? पर लिखने के मुकाबले मे बोलना मुझको बिल्कुल नही आया। खासकर अंग्रेजी का मेरा उच्चारण गलत सलत हो गया और अपनी बात कहने में मैं सकोची बन गया सो आजकल भी हूँ।

जयपुर कॉलेज मे मेरी वही जोबनेर हाई स्कूल जैसी हालत रही। कक्षा ८ और ६ दोनो की परीक्षाए मैं एक साथ दे चुका था। फिर जयपुर मे भी हर साल दो-दो परीक्षाएँ एक साथ देने से मुझ पर भार बहुत बना रहा और मैं क्लास मे होने वाली पढाई की ओर विशेष ध्यान नही दे सका। जयपुर कॉलेज मे पढाई की बहुत अच्छी व्यवस्था भी नहीं थी। सारे विद्यार्थिकाल मे मैं अपनी पाठ्य पुस्तको के अलावा कुछ भी विशेष नहीं पढ सका।

एकाध साल को छोडकर साल दर साल पहले दूसरे नबर से पास होते रहने से मेरी गिनती भले ही होशियारो मे होती रही और भले ही मैं खुद भी अपने आपको होशियार विद्यार्थी मानता रहा, पर सच्ची बात यह है कि मैं अपनी अल्पज्ञता को आज तक भी दूसरो के सामने शर्म आने लायक मानता हूँ। मुझको हर कोई आदमी मुझसे ज्यादा जानने वाला लगता है। मुझको यह भी लगता रहा कि खास जरूरत के बिना मुझे ज्यादा जानकर करना भी क्या है और जाना भी कितना जा सकता है ?

शास्त्री व बी० ए० पास करके मेरा विचार एक साथ आचार्य, एम० ए०, एल० एल० बी करने का था, पर वह नही हो सका। दो दो परीक्षाओ की तरह काम भी एक साथ दो दो मेरे जिम्मे रहे जिनमे लगन और मेहनत के कारण मैं जैसे तैसे निभता तो रहा, पर उस स्थिति मे विभिन्न स्थानों पर आने जाने की विभिन्न लोगों से मिलने जुलने की, प्रदर्शनी मेला आदि देखने की, नये-नये काम सीखने की, सैर-सपाटे विभिन्न जानकारी करने की मुझको नही के बराबर फुर्सत मिली।

परिणाम यह हुआ कि एकान्तिकता मेरे स्वभाव का अग बन गयी। जैसे गुरु के चरणो मे बैठने का मौका मुझको बहुत कम मिला, वैसे ही किसी विशेष काम सिखाने वाले के पास काम सीखने के सौभाग्य से भी मैं वचित रहा। ऐसी हालत मे मैं जिन्दगी भर पूरी तरह से किसी एक का नही बन सका। किसी के अधीन न होना मेरे लिए खानदानी गुण या दोष रहा है। हालांकि जरूरत के माफिक भले ही मैं समय-समय पर "बडे लोगों" के पड़ोस मे आता जाना और रहता भी रहा।

जयपुर मे मुझको उस जमाने के एक गौरवशाली घर मे रहने का मौका मिल गया। उस घर के एकमात्र बालक की शिक्षा-दीक्षा के बारे मे मैंने अपने विचार निर्भयता के साथ अंग्रेजी मे लिखकर सरक्षक को दे दिये। मुझे उन दिनों के एक बड़े ठिकाने में बहुत अच्छी ट्यूशन मिल गयी थी। वहा भी मेरा अक्खड़ स्वभाव बना रहा जिससे मेरे पास पढने वाले विद्यार्थियों के बारे मे मैंने एक लबा चौड़ा पत्र उनके सरक्षक को लिख दिया था। मेरे पत्रो से दोनो सरक्षक प्रभावित हुए थे।

महकमा मर्दुमशुमारी में मेरी हैड असिस्टेंट के पद पर नियुक्ति हुई। महकमे के बड़े हाकिम मेरे मेहरबान थे। उन्होंने एक बार मेरे काम के बारे मे कुछ ऐतराज सा लिखकर भेज दिया सो मुझे बहुत अनुचित लगा। मैंने अपने अाड़ूपन की वजह से उनको लम्बा चौड़ा और बहुत ही सख्त जवाब लिख मारा। जिसका पश्चात्ताप मुझ को आज तक है। बाद में भाग्यचक्र ने मुझ जैसे आडू को मेयो कॉलेज के साहबी और राजाशाही ठाठ की हवा मे पहुँचा दिया जिसके लायक मैं बिल्कुल नही था।

मेयो कॉलेज मे पहुँचते ही मेरा मुकाबला वहा के "बड़े साहब"- मे हो गया। साहब ने जिस तरारे मे मुझसे बात की उसी के अनुरूप मैंने उनको जवाब दे दिये। मेरे पीछे जयपुर दरबार का जोर था सो मैं मेयो कॉलेज मे बना रह गया। फिर तो एक 'साहब' से मेरी 'दोस्ती" जैसी हो गयी और उसने मेरे लिए लिखा कि मुझ जैसे "हिन्दुस्तानी" उसके देखने मे कम आये हैं। किसी विदेशी के द्वारा मेरी यह प्रशसा अपने देशवासियों की दृष्टि से मुझको एकदम असह्य लगी।

मेरा दूसरा मुकाबला मेयो कॉलेज मे पढने वाले राजकुमारों से हुआ। अपनी जान मे मैंने उनको सीधा कर दिया, प्यार के साथ हुई सख्ती से। पर उन्होंने कुछ बाहरी लोगों से मिलकर मेरा मेयो कॉलेज से तबादला करवा दिया। कॉलेज के 'साहबों" को मेरा तबादला मजूर नही था। इसलिए उनको व मुझको भी समझाने के लिए जयपुर कौन्सिल के अंग्रेज प्रेसीडेंट को खुद को अजमेर की यात्रा करनी पडी। प्रेसीडेंट ने मुझ से कहा—यग मैन, तुम्हारा भविष्य उज्जवल है।

बम्बई के अंग्रेज अकाउटेंट—जनरल के ऑफिस मे मैं मामूलीसी लबी अगरखी, टेढी मेढी पगडी, तीन लाग की धोती, मोजा विहीन देशी जूती पहनने वाला लबा पूरा आदमी मराठे चपरासियों के अनुसार "मारवाड़ी" बना रहा। इडियन ऑडिट सर्विस की दो कडी परीक्षाओं को मुझे कुल ७ महीनो मे पास करना था। इसलिए अपने रहने के कमरे और अकाउन्टेंट जनरल के ऑफिस के अलावा मुझको बंबई मे किसी भी स्थान को देखने का अथवा किसी से भी मिलने का मौका बिल्कुल नही मिला।

बबई से जयपुर लौटने पर मेरी नियुक्ति असिस्टेंट अकाउटेंट जनरल के पद पर हुई। दो अकाउटेट—जनरल मेरे अफसर थे। उन दोनो के ऊपर बाहर से आए हुए एक रायबहादुर स्पेशल अकाउट्स ऑफिसर थे। रायबहादुर ने रियासत के हिसाब किताब की नयी योजना बनायी। मैंने उस योजना के विरुद्ध एक बड़ा तगडा नोट लिखकर कौसिल के अंग्रेज प्रेसिडेंट के पास सीधा भेज दिया जिससे वे प्रभावित हुए पर वित्तमत्री अटलजी और रायबहादुर के मुकाबले में मेरी नही चल सकी।

फिर ऐसी परिस्थिति आयी कि मुझको नयी कौंसिल ऑफ स्टेट मे फॉरेन और होम डिपार्टमेंट्स का सेक्रेटरी बना दिया गया। मेरी ट्रेनिंग फाइनेन्स की थी, पर मैं सेक्रेटरी बन

गया किन्ही दूसरे डिपार्टमेन्ट्स का। मुझे ऑफिस के काम का "अ आ इ ई" भी नही आता था। पर मैं एक अनुभवी सहकर्मी की मदद से काम सीख गया। "महकमाखास" यानी सचिवालय मे मैंने इतनी मेहनत, ईमानदारी और मजबूती से काम किया कि चारो ओर मेरी वाहवाही हो गयी।

मेरे मिनिस्टर का मुझ पर अटूट विश्वास था। मेरे लिखे हुए विस्तृत नोटो पर वे बिना देखे हस्ताक्षर कर देते थे। पर अंग्रेज प्रेसीडेंट को बडी चिढ़ होती थी कि यह कौन आदमी है जो हर बात मे खिलाफ नोट लिख देता है। दो एक खास मुद्दो पर तो प्रेसीडेंट से मेरी सीधी मुठभेड जैसी हो गयी। इस तरह की टक्कर लेने मे मुझको बडा मजा आता रहा और मैं ठाठ से अपना काम करता रहा। मुझको पद पर बने रहने न रहने की बिल्कुल पर्वाह नही थी।

आखिर एक दिन स्वनामधन्य सेठीजी (पंडित अर्जुनलालजी) की एक ही बात ने उस अच्छे सरकारी ओहदे को छोड देने के लिए मुझको एक झटके के साथ तय्यार कर दिया। उन दिनो राज की मामूली सी नौकरी छोडना भी आसान काम नहीं था। पर मैंने झूठे सच्चे बहाने बनाकर अपने मिनिस्टर आदि बुजुर्गों को राजी कर लिया और सार्वजनिक सेवा की तय्यारी की दृष्टि से हरिभाऊजी तथा जमनालालजी के माध्यम से मैं घनश्याम दासजी के पास पिलानी — कलकत्ता पहुँच गया।

कलकत्ते मे कुछ महीनो तक सीतारामजी (सेकसरिया) आदि के सहयोग से थोडा बहुत सेवाकार्य करने के साथ साथ मैं अपने आगे के काम की तय्यारी भी करता रहा। जयपुर छोड देने वाले मुझ जैसे आदमी को कलकत्ता नहीं भा सकता था। हालाकि अपने सादा रहन सहन के बिगड जाने के भय से मैं बिडला पार्क में न रह कर अलग रहता था। पर किसी गाव मे जाकर बैठने की अपनी तमन्ना के कारण मैंने कलकत्ता व बिडला हाऊस को जल्दी छोड दिया जिससे लोग आश्चर्य में पड गये।

मैंने गाधीजी के पास वर्धा पहुँचकर अपनी ग्रामसेवा की योजना के लिए आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। पर मेरी मदद करने वाले जमनालालजी और घनश्यामदासजी को मेरा अकेले का गाव मे जाकर बैठना नही जचा। मैंने अपने दोनो सहायकों को दो टूक जवाब दे दिया। और मैं रामभरोसे गाव की तलाश मे चल पडा। नये काम के शुरू करने मे मुझको सीतारामजी का हार्दिक—आर्थिक सहारा मिल गया और बाद मे तो भागीरथजी (कानोड़िया) आदि मित्रो की मदद भी मुझे मिलने लग गयी।

जीवनकुटीर (वनस्थली) मे हम लोगो ने हद दर्जे का सख्त जीवन बिताया। वे दिन मेरे और रतनजी के जीवन के सबसे प्यारे दिन थे। जीवनकुटीर ने मुझको चन्दा लाने की विद्या सिखादी। पर मैं तो चाहे जब अडकर बैठ जाता था, यह कहकर कि मैं किसी के पास चन्दा मागने के लिए नही जाऊंगा जिसका नतीजा जाहिरा तौर पर बडी भारी तक-

लीफ उठाना होता था। पर जीवनकुटीर के प्रायः सभी साथी कार्यकर्ता उस "तकलीफ" मे सुख का अनुभव करते थे।

जमनालालजी ने मुझको गाधी सेवासंघ का सदस्य बनाना चाहा, पर मैंने साफ इनकार कर दिया। उन्होंने मुझको चर्खा सघ से सहायता दिलवाना चाहा, पर मैंने चर्खा संघ की कौसिल के मेम्बर बड़े नेताओ से कह दिया कि मुझे अपने काम मे किसी का कट्रोल मंजूर नही है। जीवनकुटीर को बिना शर्त के चर्खा सघ और गाधी सेवा संघ से सालाना मदद मिलने लगी। और घनश्यामदासजी आदि से सहायता मागे बिना जीवनकुटीर की गाडी कई सालो तक बडे मजे से चलती रही।

जीवनकुटीर की नीति आगे होकर राज से झगडा मोल न लेने की थी पर अनुभव ने मुझको बता दिया कि राज का मुकाबला किये बिना काम नही चलेगा और एक दिन जीवनकुटीर के वार्षिकोत्सव के अवसर पर मैंने अचानक ही एक "भीखरण भाखरण" दे डाला। उसके बाद मैं जयपुर राज्य प्रजामन्डल के सगठन मे जी जान से लग गया। उससे सालेक भर पहले वनस्थली में एक करुण प्रसग को लेकर वनस्थली विद्यापीठ की शुरुआत शिक्षाकुटीर के नाम से हो चुकी थी।

सदा की भाति मैं फिर दो घोडों पर सवार होकर चलता रहा। वनस्थली विद्यापीठ को सहायक मिलते गये। एक ने कहा—"अमुक स्थान पर विद्यापीठ को ले चलो. मैं दस लाख रुपये दे दूंगा।" मैंने कह दिया "जिस रुपये को मुझे मिलना होगा उसे वनस्थली मे ही आना पडेगा"। मेरी आदत है कि जिस काम को करना मैं मजूर करता हूँ वह काम मेरा 'पर्सनल' हो जाता है। इसलिए मैंने प्रजामन्डल के आर्थिक आदि तमाम जिम्मे को अपनी खुशी से अपने सिर पर ले लिया।

प्रजामडल—संगठन को जमाना उस जमाने मे बड़ा टेढा काम था। राज से झगडा कर लेना तो बहुत आसान था। पर जयपुर प्रजामण्डल ने "चलाकर झगडा नही करना तो दबना भी नही" की नीति अपनायी जिसके फलस्वरूप जल्दी ही प्रजामण्डल का आदर्श जैसा मजबूत संगठन बन गया। प्रजामन्डल की तमाम नीतियो का ठोस सैद्धान्तिकव्यावहारिक आधार था, जिसमें दिखावे का कोई अश नहीं था। मेरा मानना है कि सच्चे काम का पक्का प्रचारक वह काम खुद ही होता है।

१६४२ के आंदोलन के सिलसिले में गांधीजी ने बंबई मे बातचीत के दौरान कहा था कि कही का प्रजामण्डल राज से न लडने का निश्चय करे तो वहा के जो लोग आन्दोलन मे भाग लेना चाहे उनको राज्य के बाहर जाकर लेना चाहिए और प्रजामडल को परेशानी में नही डालना चाहिए। जयपुर प्रजामडल ने महाराजा से सीधी लड़ाई न करते हुए बल्कि उनकी मिली भगत से राज्य के भीतर और बाहर अंग्रेजों के विरुद्ध जाहिरा व पोशीदा बढिया कार्यक्रम चलाया।

अखिल भारत देशी राज्य लोकपरिषद् की राजपूताना रीजनल कौंसिल के प्रधानमंत्री का काम मेरे सुपुर्द कर दिया गया तो मैंने उतनी ही लगन से उस काम को किया जितनी लगन से मैं जयपुर प्रजामन्डल के काम को करता था। फिर जब मुझको परिषद् के केन्द्रीय प्रधानमन्त्रियों में शामिल कर लिया गया तब भी मैंने देखा कि तमाम काम का जिम्मा मुझ पर ही आ पड़ा है। उस जिम्मे को जब तक अ०भा० देशी राज्य लोकपरिषद् कायम रही, अच्छी तरह से निभाने की पूरी कोशिश मैंने की।

जब भारतीय संविधान परिषद् बनी तब गोकुलभाई, वर्माजी और व्यासजी के साथ मैंने भी उसका सदस्य बनना मजूर कर लिया। मैं परिषद् का सदस्य बन तो गया, पर उस हैसियत से मुझसे कुछ भी काम नहीं बन पड़ा। क्योंकि मेरा एकाग्र ध्यान जयपुर-राजस्थान की तरफ था। अपनी वैसी मन स्थिति में मुझको संविधान परिषद् में नहीं जाना चाहिए था। पर मैंने उस समय शायद यह सोचा होगा कि दिल्ली के सम्पर्क से मुझको जयपुर राजस्थान संबधी काम में कुछ मदद मिल जायगी।

जयपुर राज्य का मुख्यमन्त्री बनकर मैंने अथक परिश्रम किया। महाराजा और मन्त्रिमण्डल के बीच में एक दीवान और थे। पर मंत्रिमण्डल ने दीवान का असर अपने काम पर बिल्कुल नहीं होने दिया। बाद में राजस्थान का मुख्यमन्त्री बनने से पहले ही मैंने उक्त दीवान के राजप्रमुख के सलाहकार बनने बनाने के इरादों को सफल नहीं होने दिया जिसमें मुझे बहुत ज़ोर आया। मेरा मानना है कि राजप्रमुख का वैसा सलाहकार बन जाता तो जनशक्ति के हक में ठीक नहीं होता।

राजस्थान के मुख्यमन्त्रित्वकाल में अपने आई०सी० एस० ऐडवाइजरों का मैंने पूरा मान रखा और उनके अनुभवों का पूरा लाभ उठाया। पर जब कभी उन्होंने मेरी राय के विपरीत दिल्ली की मदद से कुछ करना चाहा तो मैंने उनकी नहीं चलने दी। उस शुरु-शुरु के जमाने में दिल्ली का प्रभुत्व आजकल जैसा तो नहीं था, फिर भी काफी था। जो हो, मुझको जयपुर-दिल्ली के बीच कोई भाग दौड़ नहीं करनी पड़ी जिससे मैं राजस्थान के एकीकरण के काम में एकाग्रता के साथ लगा रह सका।

मेरे काम में किसी तरह से विघ्न आया तो वह मेरे उन साथियों में से कुछ की तरफ से आया जिनकी सिफारिश पर सरदार पटेल ने मुझको मुख्यमंत्री बनने के लिए कहा था। मुझ पर मंत्रिमंडल का विस्तार करने के लिए बेहद दबाव डाला गया। मुझको यहां तक डर दिखाया गया कि यदि मैं अमुक-अमुक को मन्त्रिमण्डल में नहीं लूंगा तो मैं मुख्यमंत्री नहीं रह सकूंगा। मैंने कह दिया कि मैं सरदार पटेल के कहने से मुख्यमंत्री बना था, वे कहेंगे तो मैं हट जाऊंगा, पर दबाव में आकर किसी को मंत्री नहीं बनाऊंगा।

आखिर मेरे उपर्युक्त साथियों ने प्रदेश कांग्रेस कमेटी में मेरे विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करवाकर सरदार पटेल को तार द्वारा सूचना भेज दी। सरदार ने तार का

जवाब तुरन्त तार से दे दिया कि हीरालाल शास्त्री को प्रदेश कांग्रेस ने मुख्यमंत्री नही बनाया था। सरदार ने मुझको कह दिया कि तुम अपने काम मे लगे रहो और प्रदेश कांग्रेस मे मत जाया करो। ऐसी हालत मे साथियो के दबाव में आकर राजस्थान के एकीकरण के अगीकृत काम को बीच मे ही छोड़ देना मुझको नही जचा।

इतना लिखते लिखते मुझको खयाल होता है कि इन तरीको मे मेरे हितैषियों तक को कुछ मेरी पदलिप्सा जैसी दिखायी दे सकती है। पर मैंने हमेशा वही किया जो मुझको ठीक लगा। जो काम मेरी राय मे ठीक नही लगा उसे किसी के दबाव मे करना मुझको अपने कर्तव्य के विरुद्ध लगा। अपने कर्तव्य को पूरा करते हुए मैंने अपने खुद के हानि-लाभ का विचार कभी नही किया। मुझको किसी पद की और अधिकार की लालसा नही थी तो आखिर मेरा हानि लाभ हो ही क्या सकता था?

यहा पर मुझको एक बात को एकदम साफ कर देना है। वह यह कि राजनीति मेरा पेशा नहीं था, मैंने राजनीति को धधे के तौर पर कभी नही अपनाया। मैंने कभी अपने आपको राजनैतिक या किसी दूसरे प्रकार का भी "नेता" नही माना। मैं तो सारी जिन्दगी अपनी औकात में सिर्फ एक कार्यकर्ता रहा हू। जो काम मुझे पसन्द आए उसे कुछ भी कीमत पर एकाग्रता व ईमानदारी से करना और उस काम की एवज मे कुछ भी नही चाहना, यही मेरा सिद्धान्त रहा है।

मैं पीछे मुडकर राजनीति से सबधित अपनी भूलो को याद करता हूँ तो मैं एक तरह से दहल सा जाता हूँ। १९४७ तक की तो किसी खास भूल का ध्यान मुझको नही है जिसका उल्लेख मुझको करना चाहिए। पर उस जमाने मे भी दुनिया की निगाह मे मुझ से कोई भूल हुई मानी जा सकती है और यह भी कहा जा सकता है कि अमुक भूल से मुझे अमुक नुकसान हुआ। पर आखिर मेरी भूल तो वही न हो सकती है जिसे मैं खुद सचमुच ही अपनी भूल मानू?

१९४८ के शुरु मे मैंने जयपुर राज्य का मुख्यमन्त्री बनना मजूर कर लिया सो मेरे जीवन की सबसे पहली बडी भूल मेरी निगाह में हुई। किन्ही भी कारणो ने मुझको मुख्यमंत्री बनने के लिए प्रेरित किया होगा, पर मुझे उन कारणों के सामने झुकना नहीं चाहिए था। मुझको महसूस होता रहता है कि मैं जयपुर के मुख्यमंत्री का पद स्वीकार नहीं करता तो मेरे जीवन का नक्शा दूसरा ही होता और जहा तक मैं सोच सकता हूँ वह सुन्दर नक्शा होता। अस्तु।

मुझको इस बात का सतोष है कि मैंने जैसे जयपुर का वैसे ही राजस्थान का मुख्यमत्री बनने की कभी कोई कोशिश नही की। पर कोशिश न करना काफी नही था। मेरे लायक तो मुख्यमत्री पद को अस्वीकार करना होता। इसलिए मैं मानता हूं कि राजस्थान का मुख्यमत्रीपद स्वीकार करके मैंने दूसरी बड़ी भूल की। जब दिल्ली की ओर से मेरे कुछ

साथियो पर मुकदमा चलाने की बात आयी तो उस तरफ विशेष ध्यान न देना, मैं मानता हू, मेरी तीसरी भूल थी।

मुकदमो के सम्बन्ध मे मैंने अपनी जिम्मेदारी न समझ कर दिल्ली की समझी सो तो हुआ सो हुआ। परन्तु, हालाकि मुझको यह मालूम था कि कुछ साथियों के कारनामे भले नहीं रहे, मुझको कम से कम यह तो देखना ही चाहिए था कि किस साथी पर लगाये गये किस इल्जाम के साबित होने की कानून के माफिक कितनी गुंजाइश है। जो हो, इसमें शक नहीं है कि यह सारा प्रकरण दुखदायी हुआ।

राजस्थान में एकीकरण के काम का मुख्य अंश पूरा हो चुका था। सरदार पटेल के देहात के बाद पडित जवाहरलालजी से बात होने पर मैंने तुरंत ही मुख्यमंत्रिपद छोड़ना तय कर लिया सो बहुत अच्छा हुआ। और यह भी अच्छा हुआ कि मेरे या मेरे किसी भी साथी मत्री के लिए नये मत्रिमण्डल मे शामिल होने की कल्पना तक मैंने नहीं की। परन्तु मेरा विरोध करने वाले मेरे साथियो ने जैसा व्यवहार मेरे साथ किया वह मुझको अर्से तक अखरता रहा और भीतर से कुरेदता रहा।

उस अखरने का नतीजा यह हुआ कि मेरे भीतर प्रतिरोध की सी भावना जाग उठी। और जब काग्रेस के कई साथी और दूसरे लोग भी उस समय की कांग्रेस सरकार का विरोध करने का इरादा लेकर मेरे पास आये तो मैं उनका साथ देने को तैयार हो गया। यह सही है कि मुझको वास्तव मे ही कुछ नही चाहिए था। ऐसी हालत मे उस निरर्थक झगड़े में किसी के भी कहने से और किसी भी कारण से मुझे अपने आपको लिप्त नहीं होने देना चाहिए था। ऐसे झगड़ों मे पडना मेरा काम नही था।

मेरे मन मे यह था कि जिन लोगो ने मेरे साथ ऐसा किया है उनको हो सके तो मजा चखाना चाहिए। उन दिनो मेरे भीतर और भी दो एक बुरे विचार उठे थे। पर वे विचार उठकर ही रह गये। बाद में एक दूसरे बड़े साथी के साथ जो व्यवहार हुआ सो मेरे साथ हुए व्यवहार से भी खराब था। जब उस साथी के बहुत से अनुयायी मेरे पास आये तो प्रतिशोध और समवेदना के मिले हुए भावावेश के कारण मैं फिर एक बार निरर्थक झगडे में पडने को झटपट तैयार हो गया।

इस प्रसग की मेरी यह दूसरी बड़ी भूल थी। दोनों ही मौकों पर मैंने अपने ऊपर पूरा बोझा ले लिया। किसी और ने कुछ कम किया या ज्यादा किया, पर मैं पर्दे के पीछे से पूरी कोशिश करते करते मर लिया। और दोनो मौकों पर मुझको मेरे पास आने वाले उन लोगों से धोखा खाना पडा जिनका भरोसा करके मैंने इस निकम्मे काम में पड़ने का कदम उठा लिया था। धोखा खाना मेरे लिए कोई नयी बात नही थी, पर मैंने अपने पूर्व अनुभवों से कुछ नही सीखा।

वही सिलसिला जारी रहा है। कुछ लोगों ने प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के बारे में अपनी प्रतिक्रिया बतायी सो भी भाग २ के परिशिष्ट १ के रूप में छप गयी। इतना हो जाने पर प्राय: सब कुछ हो गया। मेरे पास और भी बहुत सी सामग्री पड़ी है, पर पता नहीं उसका कब क्या बन सकेगा ?

सोचते सोचते मुझको लगा कि मेरा सही सही मूल्यांकन मुझको खुद अपनी कलम से भी कर देना चाहिए। मुझको पण्डित तो हर कोई कहता है, कुछ लोग शायद मुझको विद्वान समझते होंगे ? कुछ लोग सोचते होंगे कि मैं लेखक हूँ, कवि हूँ, वक्ता हूँ, नेता हूँ। मुझको कुशल प्रशासक तो कई मानते दिखते हैं। कई लोग मुझको लौहपुरुष तक बताते रहे। पर असल में मैं पण्डित, विद्वान, लेखक, कवि, वक्ता, नेता, प्रशासक, लौहपुरुष-कुछ भी नहीं हूँ। सीधी सच्ची बात यही है।

मैं अपने आपको एक मामूली आदमी मानता हूँ, ऐसा मामूली कि जिसे तत्वज्ञान का, दर्शन का कुछ भी दर्शन नहीं हुआ है, ऐसा मामूली कि जिसने पाठ्यपुस्तकों के अलावा बहुत कम पढ़ा है, ऐसा मामूली कि जो अपने हाथ में लिए हुए काम के अलावा किसी दूसरे सम्बन्ध में न कुछ लिख सकता, न बोल सकता, न काव्य रचना कर सकता, ऐसा प्रशासक जो तफसील में कभी नहीं जाता, ऐसा लौहपुरुष कि जो करुणाभाव से द्रवित होकर चाहे जब और हर किसी के सामने रो पड़ता है।

मैं अपने आपको जब मुझसे भी मामूली दिखायी देने वाले लोगों के सामने होता हूँ तो वे मुझको मेरे मुकाबले में ज्यादा जानने वाले लगते हैं। मुझको बार बार अपनी अल्पज्ञता का भान होता रहता है। मुझको जरा-जरा सी बात भी दूसरे लोगों से पूंछनी पड़ती है। मैंने पहले जो थोड़ा बहुत पढ़ा था उसमें से अधिकांश मैं भूल गया हूँ। मैं ज्यादा कभी पढ़ा नहीं, ज्यादा जानने की कोशिश नहीं की। सच पूछा जाए तो ज्यादा पढ़ने में तथा ज्यादा जानकारी करने में मेरा विश्वास नहीं है।

विचार मेरे जरूर चलते रहते हैं कि यह संसार क्या है, कहा से आ गया, कब आ गया, कब तक, किधर और कहा तक चला जाएगा ? मैं तो अनन्त की कल्पना मात्र से थर्रा जाता हूँ। मैं बचपन से ही पूछता रहा हूँ कि इससे बड़ा क्या, इससे आगे क्या ? कहते हैं ऐसे तारे है जिनकी रोशनी चलते चलते आज तक पृथ्वी तक नहीं पहुँची है ! ! ! दुनिया के किन्ही लोगों को चाद तक पहुँच जाने पर आश्चर्य होता है। पर चाद कितना नजदीक और कितना छोटा है पृथ्वी से ?

अणु-परमाणु में असीम शक्ति होती है, ऐसा कहा जाता है। यह जो दिखायी देता है सो सब कुछ निराकार ब्रह्म में से पैदा हो गया बताया। क्या सचमुच हो गया ? और हो ही गया हो तो कैसे ? दूसरों की कही हुई बातें थोड़ी बहुत सुनता हूँ मैं भी, दूसरों की लिखी हुई थोड़ी बहुत पढ़ता भी हूँ मैं। पर दूसरों को जो अनुभूति हुई होगी वह मुझे तो आज

तक जरा सी भी नही हुई है। आखिर दूसरों की कोई भी अनुभूति मेरी अनुभूति कैसे क्या बन जाए ?

जन्म-जन्मातर की बाते सुनता हूँ मैं, और भूत-प्रेत योनियो की भी सुनता हूँ। चमत्कारो की और जादू टोने की बातें भी मै सुनता हूँ। मुझे किसी बात की काट करने का जरा सा भी अधिकार नही है, मैं खण्डन-मण्डन मे कभी नही पडता। मेरा तो इतना ही कहना है कि मैं तो कुछ जानता ही नही हूँ, कुछ समझता ही नही हूँ। मुझे तो जो दीखता है सो दीखता है। पर यह पता नही कि जो मुझे दीखता है वह सत्य है क्या और वह सत्य है तो वह कितना कहा तक सत्य हैं ?

कई स्त्रियों को और पुरुषो को भी भक्ति के मारे पागल होकर नाचने देखता हूं तो मै आश्चर्यचकित हो जाता हूं। अगले दिन जयपुर मे श्रीगोविन्ददेवजी की मूर्ति के आगे एक वृद्धा स्त्री को मुस्कराते हुए, मुह मचकाते हुए देखा तो मैं देखता ही रह गया। भगवान का-भगवती का नाम मेरी जबान पर कई बार आ जाता है। पर मैं नही जानता कि मेरे भीतर के अलावा भगवान और भगवती कहा है ? मेरा यह विश्वास तो है कि कोई न कोई अदृश्य शक्ति है तो सही। पर पता नही, वह कैसे क्या काम करती है ?

मैं मूर्ति के सामने होता हूँ तो कई बार अपने आप से ही बात करने लग जाता हूँ, खुद ही सवाल पूछता हूं, खुद ही जवाब दे देता हू। मैं मशवत् पाठ और जप तक भी कभी कभी कर लेता हू। "प्रार्थना" तो मैं दिन मे दो बार करता हू, पर मैं प्रार्थना मे अधिकतर लीन नही हो पाता हूं। मैं कह चुका हूं कि मुझको किसी भी अज्ञेय तत्व की कोई अनुभूति नही हुई है, तो फिर अनुभूति के सिवाय अज्ञेय-अदृश्य का दूसरा प्रमाण क्या ? मुझको किसी दिन प्रत्यक्ष अनुभूति होगी क्या ?

मेरी बोलचाल मे, चालढाल मे तौर तरीके मे अहभाव जरूर दिख जाता है। पर मैं अपने सारे अहभाव के मुकाबले मे अपने भीतर नम्रता, अपने आपको तुच्छ समझने की वृत्ति पाता हूं। मैं अपने आप पर छोटी सी चिड़िया के और चीटी तक के व्यक्तित्व का असर मानता हूं। पर कौन जाने यह भी मेरी अहमन्यता ही होगी तो ! अतिमोह के कारण मुझसे ऐसी गलतिया भी हो गयी हैं जिन्हे मैं दूसरो को बताने लगू तो मुझको बडा जोर आवे। कितना छोटा हूं मैं ?

मुझको पता है कई लोग मुझको बडा चालाक मानते है, कोई कोई तो मुझको चाणक्य तक बता देते हैं। पर मैं अपनी गिनती मूर्खों मे करता हूं, सीधी सपाट बात करने वाला, हर किसी को खोटी खरी सुनाने की आदत वाला, मौके बे मौके चिढकर बरस पड़ने वाला, जरा जरा सी बात पर रुठ जाने वाला, चाहे जिसका चटपट भरोसा कर लेने वाला, आदमी की पहिचान नही कर सकने वाला, पद पद पर हर किसी से धोखा खाता रहने वाला, दूसरो की चिन्ता ओढ़ लेने वाला ?

आज तक के अपने जीवन मे एक ही बात मुझे अपने आप मे दिखायी दी है। और वह यह कि मैं सच्ची लगन और बेहद आत्मविश्वास के साथ कठोर परिश्रम कर सकता हूं।

मैं अपनी बात का बहुत पक्का हू । मुझे लगता रहता है कि मैं जो कुछ चाहूंगा वह होकर ही रहेगा, बशर्ते कि वह चाहना मेरे बूते के बाहर न हो। मुझको झूठे व थोथे प्रचार से नफरत है । मैं बहादुर हू या नही हू, पर ख्वामख्वाह बहादुर दिखायी देने का शौक मुझको बिल्कुल नही है।

दो एक बार असत्कार्य मे लगा तो मैं जरूर ही फेल हुआ हू और सत्कार्य मे तो हमेशा पास ही हुआ हू । मै बिना सोचे समझे किसी काम को अपने जिम्मे ले लेता हू । मुझे किसी बात की कमी ने शायद ही कभी सताया होगा। कभी कुछ कमी मेरे पास पडोस मे दिखायी देती है तो उससे मुझको तकलीफ नही होती, लबी चौडी आशा दिलाने के बाद कभी कोई मुझको निराश कर देता है तब भी मैं मस्त रहता हू । मुझको अपने इस फक्कड स्वभाव से शुरू से लेकर आज तक बडी भारी मदद मिलती रही है।

मैं नही मानता कि मैंने कभी कोई त्याग किया है। मुझे तो जो अच्छा लगा सो मैंने किया, जो बुरा लगा उसे मैंने छोड दिया। तब फिर कैसा त्याग ? असल में मैं जानता ही नही कि त्याग क्या होता है ? अपने काम की खातिर मैं "तकलीफ" का मजा जरूर लेता रहा हू । मैंने घर बार नही छोडा है, बच्चो के लालन-पालन-शिक्षण की उपेक्षा मैंने नही की है। मेरे सामने अच्छे पुत्र का, अच्छे पति का, अच्छे पिता का, अच्छे मित्र का और भले कार्यकर्त्ता का अपना चित्र उभरता रहता है।

दूसरो की-खास कर कार्यकर्त्ताओ की-सहायता करने का मेरा स्वभाव रहा है और मैं जीवनभर इस काम को करता रहा हू, किसी से भी कुछ भी एवजाना चाहे बिना। दूसरो की खातिर मैं चाहे जितनी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता रहा हूं। एक बार तो मैंने अपने ऊपर हद दर्जे का भारी भरकम कर्जा हो जाने दिया जिसे साफ करने मे मुझको एडी से चोटी तक का जोर आया ? इस काम मे मुझको कभी "जस" मिला नही। पर मैं उसमे भी अफसोस करने के बजाए सुख का सा अनुभव करता रहा ।

जितना मुझसे बना सो मैंने किया है, जितना बनता है सो आज भी करता हूं। मेरा सिद्धान्त "चरैवेति चरैवेति" रहा है। ज्यादा आशा मै कभी करता नहीं, निराश कभी मैं होता नही। मेरे भीतर कई प्रकार की क्रान्ति की लहरें बराबर उठती रही हैं। पर उन लहरो का मुझसे अब कुछ बनने वाला नही दीखता है। जो कुछ हुआ सो मैंने देख लिया, जो हो रहा है उसे मैं देख रहा हू, भविष्य को मै मानता नही हूं। मेरे हिसाब से कल कभी आता ही नही है।

इस लेख मे लिखी हुई या उनसे मिलती जुलती बातें अन्यत्र भी प्रत्यक्षजीवनशास्त्र भाग १ मे, भाग २ में, मेरी रचनाओ मे आ गयी होगी। अर्थात् इस मूल्यांकन मे कई बातें दोहराने मे आ गयी होगी ? किसी भी पुनरावृत्ति को देखकर निकाल देना मैं सभव नही मानता। पर अपने विषय मे यह इतना सा और लिख देने से अपने "अन्तस" को इस प्रकार उडेल कर बाहर रख देने से मुझको आत्मसतोष हुआ है। यह मेरे प्रियजनो को अच्छा लगना चाहिए। इतिशम् !! -

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र

भाग २

उपभाग २

: १ :

जीवनवृत्त

(नवम्बर, १९७३ से अगस्त, १९७४ तक)

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) १९७३ के प्रारम्भ मे पूरा किया जाकर छपने के लिए प्रेस मे दे दिया गया था। पर कुछ महीनो तक छपाई का काम चालू नही हो सका तो उसे वापिस मगाकर मेरे पिछले जन्म-दिन तक अपटूडेट किया गया। दुबारा प्रेस मे जाकर भी सारा मेटर यो ही पडा रहा। न जाने कितनी-कितनी कठिनाइयो के कारण ऐसा हुआ। आखिर मेटर को प्रेस मे एक बार फिर मंगवाकर उसे फिर अपटूडेट करने का विचार किया गया। अन्त मे निर्णय यह हुआ कि नवम्बर, १९७३ से अगस्त, १९७४ तक का हाल अलग मे लिख दिया जाए और उसके साथ मे कुछ थोड़ी सी अतिरिक्त सामग्री भी परिशिष्ट के तौर पर दे दी जाए। उक्त निर्णय के अनुसार प्रस्तुत लेख लिखा जा रहा है।

नवम्बर, १९७३ में मैंने अपनी उम्र का ७४ वा साल सकुशल पूरा कर लिया और इस ७५वें साल के शेष भाग मे भी मैं ठीक ठाक निभ रहा था। डॉक्टरो की लगायी सभी पाबन्दिया ज्यो की त्यो जारी है एवं औषधियों का भी वही क्रम जारी है। खाने पीने की बन्दिशो की तो कोई खास बात नही है, पर व्यायाम की दृष्टि से घूमने पर और मालिश

पर जो पाबन्दी लगायी गयी है वह मुझे बहुत ज्यादा अखरती रही। भाग दौड़ का एव शारीरिक जोर आने का कोई काम मैं न करूं यह तो मुझे मजूर है। पर बिना काम किये मैं पड़ा ही रहूँ तो वह मुझे बीमार हो जाने का रास्ता लगता है। मुझे अपने तेज स्वभाव का अफसोस रहता है, क्योंकि मैं समझता हूँ कि मेरी यह तेजी मेरे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अस्तु। कुछ समय पहले मैंने देखा कि मेरे पेडू का दाहिना हिस्सा कुछ फूला हुआ सा है। सर्जन ने देखकर बताया कि यह हर्निया है जिसका ऑपरेशन करना होगा। ऑपरेशन की दृष्टि से पूरी जाच करवायी गयी तो यह स्पष्ट हुआ कि हर्निया से पहले प्रॉस्टेट का ऑपरेशन करना पड़ेगा। जयपुर में प्रॉस्टेट के ऑपरेशन के लिए मुझे कई घण्टे तक बेहोश रखना पड़ेगा सो मेरी स्थिति में ठीक नहीं होगा। इसलिए सर्जन और फिजीशियन दोनो की राय बनी कि मुझे प्रॉस्टेट का ऑपरेशन वेलोर में कराना चाहिए। हर्निया का ऑपरेशन बाद में होगा। डॉक्टरों की इस राय को मान्य करने के अलावा कोई चारा नहीं दिखता है। दोनों ऑपरेशन सफल हो जाएगे इसका मुझे पूरा विश्वास है। हालांकि बाद में मेरे शरीर की हालत आजकल से भी कुछ ज्यादा नाजुक हो जाएगी।

मेरे रहन सहन में एक तरह की एकान्तिकता रही है। जब मैं अपने किसी काम में लगा होता हू अथवा किसी धुन में ही मस्त होता हूँ तो मुझको किसी के मेरे पास होने की जरूरत महसूस नहीं होती, बल्कि किसी का मेरे पास आना तक भी मुझे कम सुहाता है। पर जब कभी मुझे अकेलापन महसूस होने लगता है तब मेरे पास ऐसा कोई व्यक्ति चाहिए जिसके साथ होने से मेरा मनबहलाव होता रहे। जिस व्यक्ति से मेरा मनबहलाव हो ऐसा व्यक्ति सुलभ नहीं है, क्योंकि मेरे निकट के प्रियजनों को अपने-अपने कामों में रात दिन लगे रहना पड़ता है और जो मुझे अपना प्रियजन सा नहीं लगता उससे मेरा काम नहीं चल सकता।

एक तो अकेलेपन की यह स्थिति मुझको मजबूर कर रही थी कि मैं किसी एकान्त स्थान में जाकर रहूं। दूसरे मुझको अपने जीवन में दुनिया के जो अनुभव हुए है उनसे विरक्ति का जो सहज स्वभाव है उसको बढ़ावा मिल रहा था। अत्यधिक मोह का भी मेरा स्वभाव रहा है। विरक्ति और मोह के बीच जो द्वन्द्व मेरे भीतर आजकल चल रहा है वह एक तरफ तो मुझे तमाशा सा लगता है, तो दूसरी ओर वह मुझे कुछ खिन्न और व्याकुल कर देता है। इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए भी किसी एकान्त स्थान में जाकर रहना मुझे जरूरी मालूम होने लगा। अपने प्रियजनों में से रतनजी का अधिकाधिक मेरे साथ रहना मुझको अच्छा लग सकता है। बाकी प्रियजनों से मैं कामकाज के सिलसिले में और कभी मौज बहार के तौर पर मिलता रहूँ तो मेरा काम चल सकता है। हर सूरत में मेरे पास दोएक सामान्य सेवकों के अलावा एक या दो ऐसे सहायक चाहिए जो मुझे पढ़ने लिखने में मदद दे सकें और मेरा मनबहलाव भी करते रह सकें। इस सोच विचार का नतीजा यह आया कि मैं रतनजी को साथ लेकर मथुरा-वृन्दावन गया। वृन्दावन मुझे बड़ा पसन्द आया और वहाँ पर मैंने अपने रहने के लिए दो एक अच्छे मकान भी पसन्द कर

लिए। वहा पर कुछ स्थानीय भाइयों का सहयोग भी मुझे आसानी से मिल जाने की आशा हो गयी। मैंने वृन्दावन जाकर रहने के विचार को पक्का कर लिया तब रतनजी ने बहुत बड़े आग्रह के साथ कहा कि आपको वनस्थली को छोड़कर और कही रहने के लिए नही जाना है। मुझको जोर तो बहुत आया पर मुझको सोचना पडा कि रतनजी ने जिन्दगी भर मेरा कहना माना है तो इस बार मुझे भी उनका कहना मानना ही चाहिए। इसलिए अब जितना एकान्तवास हो सकेगा उतना वनस्थली मे ही मैं करूंगा।

यथाशक्य एकान्तवास में रहकर कुछ साधना जैसी करने की मेरी कल्पना है। मेरे पास जैसा कई एक दूसरो मे देखने को मुझे मिलता है वैसा भक्तिभाव नही है। पर अपने मे एक विशेष प्रकार की श्रद्धा की अनुभूति मुझे जरूर होती रहती है। अपनी कल्पना की साधना के लिए मेरी उक्त अनुभूति मेरी साधना मे बहुत सहायक हो सकती है, ऐसा मैं सोचता रहता हूं। लडकपन मे मेरे भीतर सवाल पर सवाल उठते रहे है और मैं अपने स्वल्प सामर्थ्य के अनुसार 'सत्य की खोज' में लगा रहा हूं। यह जानते हुए भी कि इस सृष्टि का रहस्य बुद्धि से समझ मे आने वाला नही है मैं अपने जीवन मे जीतोड प्रयत्न करना चाहता हूं अध्यात्म और विज्ञान को एक जगह पर आया हुआ देखने का। मुझे भरोसा होता है कि ऐसा हो सकता है, हो जाएगा। इसके लिए मुझे व्यापक और गहन अध्ययन करना होगा, कई एक सुविज्ञो की सहायता से। ऐसे सुविज्ञ मेरे पास नही आ सकते तो मैं उनके पास पहुँच जाना चाहता हू, जहा कही भी वे मिलें। बहरहाल मैं अपने अध्ययन व अन्वेषण का परिणाम एक ग्रथ के रूप मे प्रकट करना चाहता हूं जिसका नाम मैंने 'सत्य की खोज' सोचा है।

इतना कहते हुए मेरे दिमाग मे यह साफ है कि मुझे किसी तरह का प्रकट या प्रच्छन्न सन्यास नही लेना है। सन्यास मेरा मार्ग नही है। और मैं यह भी तो मानता हू कि कोई कैसा भी सन्यासी क्यो न हो उसे कर्म से मुक्ति नही मिल सकती। अधिक से अधिक यही हो सकता है कि सन्यासी कर्मफल का, आसक्ति का त्याग कर दे। और अनासक्ति की स्थिति तो सच्चे कर्मयोग मे हो ही सकती है। मैं सच्चा कर्मयोगी न रह सकूं तो मुझे सन्यासी बनना भी मजूर नही है। ऐसी हालत मे मैं जहा तक हो सके फल की इच्छा न करता हुआ और अपना मनचाहा कर्म करता हुआ दुनिया के प्रति मेरा जो कर्त्तव्य है उसे निभाता रह सकता हूं। आज तक मेरी आदत रही है मेरे पास आने वाले हर किसी की मदद करने की इच्छा रखने की। अब मैं अपने आपको सीमित कर सकता हूं, अपने निकट के–खासकर परिवार के–लोगो के लिए सो ही करने का मेरा विचार है। अपने परिवार के प्रति मेरा जो कर्त्तव्य है उसका मैं अवश्य ही यथाशक्ति पालन करते रहना चाहूगा। परिवार के प्रति मेरा कर्त्तव्य गौण और सार्वजनिक कर्त्तव्य मेरे लिए मुख्य रहा है। सार्वजनिक कर्त्तव्य का दायरा एकदम सिकुड चुका है और उसकी सीमा प्रायः वनस्थली तक ही रह गयी है वनस्थली के प्रति मेरा जो कर्त्तव्य है उसे मैं यावज्जीवन जरूर निभाना चाहूगा।

इस सामान्य भूमिका के बाद मेरे पास पिछले १० महीनों के विषय में लिखने को कोई विशेष सामग्री नहीं है। परिवार में अपने दोनों पौत्रों भैयाजी (सिद्धार्थ) और आशुजी (आशुतोष) और पौत्री सुनिजी (सुहासिनी) के सम्बन्ध के विषय में मेरी विशेष दिलचस्पी रही है। तीनों बच्चों में से सिद्धार्थ का विवाह सुधा से हो गया है जिससे मेरा पूरा समाधान है। उस विवाह के अवसर पर मैं अपने पूर्वरचित और बाद में सशोधित 'कामण' गीत को दया आदि के द्वारा गवा सका तो उससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। कामण गीत आगे के पृष्ठों में नया स्थान छप जाएगा। दूसरे, सरकार की तरफ से जो जीमने-जिमाने पर बन्दिशें लगी हुई हैं वे मुझको बेकार लगती हैं। उनकी खिल्ली उड़ाने में मुझे मजा आया तो मैंने एक जरा सी 'गाली' की रचना भी कर डाली। वह "गाली" भी "कामण" के साथ-साथ छप जाएगी। सुहासिनी की सगाई सुरेश से हो गयी है और उनका विवाह सभवत अनतिदूर भविष्य में हो जाएगा। आशुजी की सगाई तय होने में कुछ देर लगती दिखती है, क्योंकि आशुजी सगाई के लिए अभी पूरे तैयार नहीं है। आशुजी का विवाह भले ही देर से हो, पर सगाई जल्दी तय हो जाएगी तो उससे मुझे अवश्य ही विशेष सतोष होगा।

४५–४६ सालों से मेरा पक्का कार्य क्षेत्र जीवनकुटीर व वनस्थली विद्यापीठ में ही रहा है। वनस्थली विद्यापीठ की वित्तीय स्थिति को ठीक बनाये रखने का आखिरी जिम्मा मेरा अपना मज़ूर किया हुआ जिम्मा है। उस जिम्मे को निभाने की पूरी कोशिश मैंने की है, खासकर रतनजी की मदद से। हमारी वह कोशिश जारी है जारी रहेगी। हमारी कोशिश जल्दी कामयाब होगी इसका मुझको पूरा विश्वास है। भविष्य में वनस्थली वित्तीय दृष्टि से स्वावलबी हो जाए और बनी रहे, इसकी योजना कार्यान्वित की जा रही है। वित्तीय दृष्टि से या किसी अन्य दृष्टि से भी वनस्थली में किसी बाहरी सत्ता का बेजा दखल हो, यह हम वनस्थली वालों को किसी भी हालत में मज़ूर नहीं है। बेजा दखल देने की जो कोशिशें पिछले दिनों हुई वे विफल हो चुकी हैं। आगे ऐसी कोई कोशिश होगी तो वह भी अवश्य ही विफल होगी, इसमें कोई शकशुबा नहीं है। वनस्थली के हायर सैकेण्डरी स्कूल को ऑटोनामी मिली है उससे वनस्थली की पचमुखी शिक्षा को सर्वांगीणता की तरफ ले जाने में कुछ न कुछ सहायता मिलने की आशा है। असभव नहीं है वनस्थली के कॉलेजों को भी आगे चलकर ऑटोनामी मिल जाए। ऐसा हो जाएगा तो वनस्थली की करीब करीब विश्वविद्यालय की सी स्थिति हो जाएगी। यह सब कुछ हो या न हो, वनस्थली को अपनी पचमुखी शिक्षा को नीचे से लेकर ऊपर तक जिस हद तक सभव हो उस हद तक लागू रखना ही है। वनस्थली में आदतन खादी पहिनना, सायकालीन प्रार्थना में नियमित रूप से उपस्थित होना, अमुक-अमुक मर्यादाओं का पालन करना यह सब कुछ निभता रहे सो प्रयत्न भी किये गये हैं और किये जाते रहेंगे। वनस्थली में कार्यकर्ताओं और छात्राओं की सख्या पर एक सीमा तक पहुँचते ही रोक लगा देनी होगी। वनस्थली कैम्पस को जनसख्या के लिए पर्याप्त स्थान सुलभ हो इसकी कोशिश की जाती रही है, की जाती रहेगी। वनस्थली में कुछ नयी परियोजनाएं भी जरूर अमल में आजाएंगी, यथा हॉस्पिटल, सभामदिर, होम साइन्स कॉलेज, शिल्प मदिर, बी० एड० (फ़ीज़िकल) आदि। धर्म, नीति, दर्शन के अध्ययन आदि की दृष्टि से

वेदविद्यालय के अलावा उद्बोधन मदिर की स्थापना की जा चुकी है। और नया काम म्यूजियम के निर्माण का भी हाथ मे लिया गया है। एक नयी और बडी बात है वनस्थली मे एन० सी० सी० के एअरविंग की स्थापना होने की, जिसका काम चालू हो गया है। और जिसका प्रारभिक उद्घाटन महीने दो महीने मे हो जाएगा। लड़कियो के लिये एअरविंग का होना एक अभूतपूर्व और अद्वितीय बात होगी। नये जमाने मे लडकी को उसके द्वारा हो सकने वाले किसी भी काम से वचित नही रखना चाहिए, ऐसा मेरा मानना है! वनस्थली विद्यापीठ के अलावा मेरे जन्म स्थान जोबनेर मे एक छोटा सा मातृमन्दिर विद्यालय चल रहा है जिसमे प्रौढ़ महिलाए और छोटे बच्चे काफी लाभ उठा रहे हैं।

वनस्थली विद्यापीठ और मातृमन्दिर के अलावा मेरे पास अपना अगीकृत काम कोई नही है। एक बार बन्द किये गये दैनिक पत्र के काम को दैनिक या साप्ताहिक रूप मे भी पुनर्जीवित करना होगा तो उसमे समय लगेगा। प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना भी जल्दी से नही हो सकेगी। इस जमाने मे स्वतत्र नीति के अनुसार चलाने की दृष्टि से यह सारा काम एकदम जोखिम भरा हो गया है, इसलिए जल्दबाजी मे कुछ नही करना है। श्री गोकुलभाई भट्ट द्वारा सचालित शराबबदी आदोलन मे मेरी दिलचस्पी है, पर उस काम मे मैं सक्रिय भाग नही ले सकता। साथ ही मुझको सत्ताधारियो की नीयत का भरोसा बिल्कुल नही है, क्योकि वे तो प्राय सारे देश मे जगह जगह शराब के प्रचार को बढाने की कोशिश मे लगे हुए मालूम होते हैं। जयपुर मे हाईकोर्ट की बेंच पुन स्थापित होनी चाहिए, यह मेरी पक्की राय है और कुछ लोगो की तरफ से इस सवाल को लेकर राजस्थान के विभाजन का जो डर दिखाया जा रहा है वह सर्वथा निकम्मी बात है, ऐसा मेरा सोचना है। इन्दौर के श्री रामेश्वरदयाल तोतला ने एक सहमति मच बनाने का प्रयत्न किया था उसका पता नही क्या हुआ, पर मैंने तभी कह दिया और लिख दिया था कि उसमे कुछ होने जाने वाला नही है। दो एक पुराने साथियो ने एक नयी सस्था बनाने के सिलसिले मे मेरी राय ली थी। जो काम मैंने अपनी स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन की योजना के द्वारा करना शुरू किया था उसी लाइन पर वह काम होता तो कैसे भी करके मैं उसमे थोडा बहुत हिस्सा लेता। बाकी ऊपर ऊपर से केवल टहनी पत्तों का सा कोई काम हो तो उसमे मेरी दिलचस्पी नही हो सकती, खासकर जब कार्यक्रम के मुख्य प्रवर्तक के वास्तविक उद्देश्य का ही सही सही पता न हो। यहा पर मुझको एक बात जरूर कहनी चाहिए। वह यह है कि मै बीमार न होता और ग्राम मे, नगर मे क्रान्तिकारी आधार पर अपना काम जारी रख सकता तब भी क्रान्ति-कारी स्थिति शायद ही पैदा होती, क्योकि क्रान्ति ला सकने वाला अग्रणी जनसमुदाय दूसरा ही होता है। अर्थात् सामान्य ग्रामवासी अथवा नगरवासी भी अपने बलबूते पर ही क्रान्ति के मार्ग पर अग्रसर नही हो सकते। उनको आगे होकर मार्ग दिखाने वाला और सगठित करने वाले कोई दूसरे जोशीले युवक लोग ही हो सकते हैं।

वनस्थली विद्यापीठ तक से लेकर ऊपर गिनाये सब कामो को मैं मामूली समझता हूँ। असली काम तो मेरी राय मे देश का, समाज का नक्शा बदलने का है। सर्वोदय की

विचारधारा मुझे अच्छी लगती रही है। भूदान, ग्रामदान के काम को भी मैं अच्छा समझता रहा हूँ। परन्तु मुझको यह महसूस होता रहा है कि इन कामों को सुधारवादी न होकर क्रान्तिकारी होना चाहिए। मुझे वैसा न होता हुआ दिखायी देने लगा तो मैं निराश होने लग गया। परन्तु हाल ही में सर्वोदय वालों के काम की दिशा में जो मोड आया हुआ दिखायी देने लगा है उसमें मुझको फिर से आशा होने लगी है। अहिंसा पर आधारित पार्टी रहित जनतंत्र की कल्पना तो मुझे सुन्दर लगती है, पर जहाँ तक मैं सोचता हूँ उस कल्पना को व्यावहारिक रूप देना कभी संभव नहीं होगा। साथ ही मुझको नहीं लगता है कि देश की वर्तमान सत्ताधारी पार्टी की जगह कोई दूसरी एक पार्टी या कई एक पार्टियों से बनी हुई एक संयुक्त पार्टी के हाथ में सत्ता आ जाए तो कोई बड़ा भारी परिवर्तन अच्छाई की दिशा में हो जाएगा। अहिंसा तो खैर बहुत बड़ी चीज है, पर शान्तिमय रीति से कोई काम हो तो वह मुझको बहुत अच्छा लगे। हालांकि अब तक शान्तिमय काम का होना भी मुझको असंभव जैसा लगने लगा है। कैसी भी क्रान्ति किसी भी जरिये से हो, पर सर्व साधारण जनता की भलाई ऊँचे जीवनमूल्यों को अपनाये बिना नहीं हो सकती। जीवनमूल्य बदलने का सवाल सबसे ज्यादा टेढ़ा है।

स्वभावतः देश और समाज की वर्तमान दुरवस्था के विषय में मेरा व्याकुलतामय चिन्तन चलता रहता है तब मैं सोचता हूँ कि आजकल जिनके हाथ में सत्ता है वे हर प्रकार के निकृष्ट हथकंडों को काम में ले रहे हों तो दूसरे लोग उनसे कैसे बाज आएंगे? जो लोग भ्रष्टाचार के प्रवर्तक एवं पुरस्कर्ता हैं उनसे भ्रष्टाचार कैसे मिटेगा? जिनकी सत्ता काले धन पर आधारित है वे किस प्रकार देश में से काले धन का लोप कर सकते हैं? जो लोग नोट छाप छापकर जैसे तैसे काम चलाना चाहते हैं वे किस तरह से मुद्रास्फीति को रोक सकेंगे? जिन लोगों ने 'पराये' और दूषित धन पर अपना रहन सहन का ठाट बना रखा है और जिन्होंने खुद अनाप शनाप खर्च करने का अपना सामर्थ्य और तरीका बना रखा है वे खुद सादगी और किफायत अपनाये बिना कीमतों का नियन्त्रण कैसे कर सकते हैं? जो लोग नाना प्रकार के बेकार नारे जारी करने में व्यस्त रहते हैं वे किस तरह से आवश्यक सम्पत्ति के उत्पादन में देश की सम्पूर्ण शक्ति लगा सकते हैं? एक न एक राजनीतिक हेतु से हर किसी के दबाव में आ जाना ही जिनको अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अनिवार्य मालूम होता है वे किस प्रकार निर्भय होकर कोई निष्पक्ष व सही फैसला कर सकते हैं? येन केन प्रकारेण सत्ता हथिया लेना और सत्ता हाथ में आ जाने के बाद कैसे भी करके उससे चिपके रहना जिनका परम धर्म दिखता है उनका देशहित के नाम पर किया गया कौन सा काम सचमुच देशहित का हो सकता है? भ्रष्टाचार के विरुद्ध बीड़ा उठाने वालों को सत्ताधारी पूछते हैं—आप भ्रष्टाचारियों के, काला बाजारियों के, जमाखोरों के खिलाफ मोर्चा क्यों नहीं लगाते हैं, इसका जवाब यह होना चाहिए कि हम चोर को मारने की अपेक्षा चोर की मां को मार देना पहले नंबर जरूरी समझते हैं। सत्ताधारी यह भी बार बार कहते हैं कि कोई पुख्ता मामला सामने लाया जाए तो वे उसकी जांच करवाएं और किसी का दोष प्रमाणित हो जाए तो उसके खिलाफ कार्रवाई की जाए। आज तक जो पुख्ता मामले देश

किये गये उनको लेकर किसके खिलाफ क्या कारगर कार्यवाही की गयी ? अमेरिका मे तो राष्ट्रपति को निकाल बाहर कर दिया गया। अपने देश मे ऊचे से ऊचे पदो पर विराजमान हो रहे लोगो के खिलाफ न जाने कितनी बातें है, पर कोई चू तक कर दे तो उसे मार डाला जाए। न जाने कितने "वाटर गेट" हिन्दुस्तान मे निकल सकते है। विधानसभा की एक सीट के चुनाव म ४० लाख खर्च हो जाने के समाचार मे अत्युक्ति हो सकती है, और लोक-सभा की एक सीट के चुनाव मे ५० लाख खर्च हो जाने की खबर भी भले ही पूरी सही न हो, और एक ही राज्य की विधानसभा के चुनावो मे ५०-६० करोड खर्च हो जाने की बात भी भले ही बढा चढाकर कही हुई हो, पर यह तो कोई अधा भी देख सकता है कि चुनावो मे जो असीमित धन खर्च होता है वह अधिकतर चोर बाजार वालो से मिलने वाला धन है। ऐसे चुनावो के परिणामस्वरूप बने हुए तत्र को जनतत्र कैसे माना जा सकता है। इस नारकीय धधे मे मुमकिन है सभी पार्टिया किसी हद तक भागीदार हो पर असल जिम्मा तो सत्ताधारी पार्टी का ही माना जाएगा। जनतत्र की दुहाई देने वाले यह भूल जाते है कि वास्तव मे जनतत्र है कहा ? काले धन के बल पर और सत्ता के बल प्रयोग से कम या ज्यादा भी सफल होने वाले चुनावो के परिणामस्वरूप क्या सच्चा जनतत्र स्थापित हो सकता है ? सत्ताधारी कहते है - अमुक लोग देश मे अव्यवस्था और अशाति फैलाना चाहते है। इसका जवाब यह होना चाहिए कि व्यवस्था और शाति है कहा जिसे भग करने का इल्जाम हम पर लगा रहे हो ? सच तो यह है कि कोई भी क्रान्ति अव्यवस्था और अराजकता मे से ही पैदा हो सकती है। जर्जर हुई इमारत के टूट जाने के बाद ही नयी इमारत बनाने का काम शुरु हो सकता है। और क्रान्ति के बाद ही सच्ची व्यवस्था कायम हो सकती है ऊपर-ऊपर से दिखायी देने वाली व्यवस्था जितनी सी है उतनी सी भी आज डडे के जोर पर आधारित है। तो फिर उसे मजबूरी मे डडे के जोर से ही तोड देना पडे तो इसमे अस्वा-भाविक बात क्या है ? और आखिर यह तो धर्म-अधर्म की, पुण्य--पाप की, सत्य --असत्य की, न्याय --अन्याय की, सुर---असुर की सनातन लडाई है जिसमे एक बार एक की जीत होती है और दूसरे की हार, फिर दूसरे की जीत होती है और पहले की हार। यह क्रिया प्रतिक्रिया अनादिकाल से चली आयी है और अनन्तकाल तक चलती रहेगी। पर जो सत्य का, न्याय का पक्षपाती है उसे तो असत्य के, अन्याय के विरुद्ध लडना ही पडेगा, और लडते लडते उसका मर जाने का अवसर आ जाएगा तो उसे मर भी जाना होगा। सुनते है अन्त मे जीत सत्य की ही होती है। भारत के मोटो --सत्यमेव जयते --का कुछ भी अर्थ होगा तो अन्त मे सत्य की जीत होगी। जो हो, मै खुद तो उसी प्रलय की बाट आज भी देख रहा हूँ जिसकी कल्पना मे लगभग पिछली आधी शताब्दी से करता रहा हू। मेरा विश्वास है कि मेरी कल्पना के प्रलय के लिए कोई अवतार एक दिन धरती पर अवश्य उतरेगा।

इस सारे सदर्भ मे मै अपने बारे मे क्या कहूँ ? मै तो कभी भी अखबारी या दूसरी तरह का नेता नही था। आज तो मै सिर्फ एक मामूली कार्यकर्ता से ज्यादा अपने आपको कुछ नही मानता हूँ। फिर भी मै बीमार हुआ था उससे पहले मैने समुद्र मे कूद जाने का, जलती आग मे प्रवेश करने का बीडा उठाया था। पर अब समुद्र में या आग मे कूदे बिना ही मेरे शरीर की स्थिति ऐसी हो गयी है कि ज्यादा तेज चलने से, कुछ जोर-जोर से बोलने

मे और थोडी देर के लिए सीधे खडे रहने तक मे मुझे जोखिम दिखायी देती है। तब मैं कैसे क्या करू ? मौजूदा हालत मे तो मै देश मे यदि क्रान्ति लाने वाला कोई काम हो रहा होगा तो उसकी सफलता की कामना कर सकता हूँ। और अपने अगीकृत काम को करता हुआ मुझसे बने उतनी साधना कर सकता हूँ सो अपने लिए नही, बल्कि देश के व समाज के लिए। मै मानता हूँ कि सच्ची साधना का भी क्रान्ति के कार्य मे अच्छा योगदान हो सकता है।

बीमारी के बाद से मै भाषण तो दे ही नही सकता था, कुछ लेख मैंने यदा कदा जरूर लिख दिये थे। उनमे से कुछ को मै परिशिष्ट के रूप मे इन्ही पृष्ठों मे अन्यत्र दे रहा हू। लेखो के साथ अपनी कुछ रचनाओ को दे देने का भी मेरा विचार है। मेरी डायरियो मे से थोडे बहुत अश भी दे दू गा। मेरे पत्र व्यवहार मे से भी कुछ पत्रो को उद्धरित कर देने का मेरा ध्यान है।

अतिरिक्त सामग्री सहित इस लेख के जुड़ जाने से मैं अपने प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के दूसरे भाग को अपटूडेट समझ लू गा। प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के दोनो भागो मे नवम्बर, १८९९ से लेकर अगस्त, १९७४ तक के प्राय. ७५ सालो का इतिवृत्त आ जाएगा।

पुनश्च :—

उपरिलिखित लिख देने के कुछ दिन बाद मेरे एक बड़े साथी ने मुझको बताया कि "अपने एक नजदीक के बन्धु ने अपने एक स्वर्गीय बड़े साथी की जीवनी लिखी है। उसमे आपके व मेरे सम्बन्ध मे जो बातें तथ्य से परे तथा विपरीत लिखने मे आ गयी है उनके बारे मे मैं लेखक भाई को सही स्थिति लिखकर भेजना चाहता हूँ।" मैंने कह दिया कि "मैं तो कभी ऐसे वाद-विवाद मे पडता नही हूँ, आप लिखना चाहते हैं तो जरूर लिखें"। मैंने अपना इतना सा मनोभाव और प्रकट कर दिया कि "लेखक भाई के सामने हमारे सम्बन्ध मे कोई बात थी तो उसके बारे मे वे हम से भी पूछ लेते तो उनको और आवश्यक जानकारी भी हो जाती। उन्होने ऐसा नही किया तो उनकी खुशी।"

मैं यह कई स्थानो पर कई बार प्रकट कर चुका हूँ कि जिसे 'राजनीति' बोलते हैं उसमे मेरी किसी भी समय दिली दिलचस्पी नही रही, मैंने उक्त राजनीति को अपना पेशा कभी नही बनाया। मैने तो उक्त क्षेत्र मे जितना काम मेरे हिस्से मे आया उतना एक रचनात्मक कार्यकर्ता की हैसियत मे पूरा करके छुट्टी ले ली। स्वतत्रता की लडाई के सम्बन्ध मे मै अपने कुछ स्वतंत्र विचार रखता हूँ। जिनका कुछ अश मैं नीचे प्रकट करता हूँ।

पिछले सालो मे स्वतत्रता "सेनानियो" को ताम्रपत्र और "पेन्शन" देने की चर्चा और कार्यवाही चली तब मुझसे कुछ भाइयो ने मेरी राय जाननी चाही तो मैंने साफ कह दिया कि मुझको यह धधा बिलकुल पसन्द नही है, मैं इसे जिन लोगो ने देश के लिए स्वेच्छा से

कुर्बानी की थी उनको गिराने वाला काम समझता हूँ। और आखिर अपनी शान रखने वाले किसी भी स्वतः सम्मानित राष्ट्रसेवक को ताम्रपत्र के या किसी भी दूसरे जरिये से 'सम्मानित" करने का अधिकार किसको हो सकता है ? मुझे लगता है कि "ताम्रपत्र" और "पेन्शन" की चाट ने अनेक साथियों को भीख मांगने वालों के रूप में दिखा दिया है और कुछ ऐसे मेरे लोगों को ठगाई करने का अवसर दे दिया है। बहरहाल मुझको या मेरे किसी प्रियजन को कोई ऐसा कुछ देना चाहे तो मैं खुद तो हर्गिज भी मंजूर नहीं करूं और सम्बन्धित प्रियजन को भी नामंजूर करने के लिए प्रेरित करना चाहूं। यथा १९५२-१९५३ में राष्ट्रपति की ओर से सी. रतनजी को "पद्मश्री' देने की तजवीज हुई तब मैं बंगाल में था और वहीं से मैंने टेलीफोन पर कह दिया था कि अपने को सरकार से "पद्मश्री" लेकर क्या करना है। परन्तु रतनजी ने उक्त प्रस्ताव राजेन्द्रबाबू की ओर से माना इसलिए उनको मेरी राय नहीं जची।

एक पुराने साथी ने राजस्थान के स्वतन्त्रता "सेनानियों" के सम्बन्ध में एक ग्रंथ की रचना करने की शुरुआत की तब उन्होंने मुझसे भी मदद चाही। मैंने उनको लिख दिया कि अस्वस्थता के कारण मैं मदद करने की स्थिति में नहीं हूँ। बाद में जब मुझे मालूम हुआ कि वे साथी इतने अस्वस्थ हैं कि उठ बैठ भी नहीं सकते तो मैं उनको देखने के लिए चला गया। उनकी हालत देखकर मैं पसीज गया और उनकी यथाशक्य मदद करने का उसी समय मेरा विचार बन गया। मैंने उनको कुछ सुझाव भी दिये। जिनमें से अधिकतर को उन्होंने मान लिया। पर मेरी एक खास बात पर उन्होंने पूरा ध्यान नहीं दिया। वह यह कि स्वतन्त्रता के सुप्रीम कमांडर तो तीनेक दशाब्दियों तक सारे हिन्दुस्तान में एक ही थे। और उनके साथ कई एक दूसरे लोग भी थे जिनको सचमुच सेनानी कहा जा सकता था। आप हम जैसे मामूली सिपाहियों को भी "सेनानी" क्यों बनाना चाहते हो ? जो हो, मुझसे बनी उतनी मदद मैंने कर्ज लेकर उन साथी का करदी, हालांकि जैसा उनको वैसा मुझको भी मालूम था कि उन्होंने किसी समय मेरा खुल्लमखुल्ला विरोध किया था। उनका अपने ग्रंथ का मुझको समर्पण करना मुझे बिल्कुल मंजूर नहीं था, पर उन्होंने अत्यन्त आग्रह के साथ वैसा कर दिया तो उनके बिस्तर पर पड़े हुए होने के लिहाज से मैं, अपने स्वभाव के विपरीत, चुप रह गया।

एकाध पुराने साथी ने ऊपर लिखे दोनों मामलों में मेरे बारे में झूठी अनर्गल बातों का प्रचार किया तो मैंने कुछ भी ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी। मैंने कभी दावा नहीं किया कि मैंने कोई त्याग किया है या कष्ट सहा या मैंने किसी की सेवा की है मैंने अपने काम का कभी कुछ एवजाना भी नहीं चाहा। मैं जयपुर राज्य का ठीक-ठाक सा ओहदा अपनी खुशी से छोड़कर एक गांव में जाकर ग्रामों की पुनर्रचना के काम में एकाग्रचित से लग गया था। उक्त काम में मुझे कोई तकलीफ हुई तो उसे मैंने मौज समझा। प्रजामण्डल के पुनर्गठन के लिए मुझे बुलाया गया तो मैंने प्रजामण्डल का काम कर दिया। मुझको सतोष है और बड़े बड़े कई लोगों ने माना है कि जयपुर राज्य प्रजामण्डल का काम एक नमूने का काम था जिसका अच्छा असर राजपूताना के और शायद देश के कुछ दूसरे राज्यों पर भी

पड़ा था। जयपुर प्रजामण्डल के काम मे हम लोग बहादुर बनने अर्थात् बहादुर दिखायी देने के लिए बेकार झगड़े मे नही पड़े तो मौका आने पर हम सब साथियों ने मिलकर समय-समय पर वह मजबूती भी दिखादी जिसके आगे सत्ताधारियों को झुकना पड़ा। उल्लेखनीय है कि जयपुर प्रजामण्डल ने गाधीजी के मार्गदर्शन से नागरिक अधिकारो के लिए सफल सघर्ष करके राजपूताना की रियासतो मे अग्रणी का काम किया था। और यह भी याद रखने की बात है कि अपने सविधान मे से "महाराजा की छत्रछाया" शब्द जयपुर प्रजामण्डल ने ही आगे होकर निकाला था।

१९४२ के आन्दोलन के सिलसिले मे जयपुर प्रजामण्डल ने क्या क्या किया था उसका हाल मै अपनी आत्मकथा "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" मे छपवा चुका हूँ। उक्त सिलसिले की खास बात यह है कि मेरे कुछ "तेज तर्रार" (?) भाइयों के सुझावों के अनुसार ही प्रजामण्डल ने जयपुर महाराजा के प्रतिनिधि प्राइममिनिस्टर से समझौता किया था और उनमे से ही एक के मुझसे यह कहने पर कि हम तो सिर्फ यह चाहते हैं कि आप गिरफ्तार हो जाए, मैंने जयपुर के प्राइममिनिस्टर को अपना १९-६-७४ का तगड़ा पत्र लिखा था जिसके सदर्भ मे प्राइममिनिस्टर ने हमको बातचीत करने के लिए बुलाया था। उक्त बातचीत करने का पता नही क्या नतीजा निकलता। पर बीच मे ही कुछ साथियो ने प्रजामण्डल से अलग होकर महाराजा से लड़ने का ऐलान कर दिया। फलत. प्रजामण्डल और राज का समझौता कायम रह गया जिसका दोनो तरफ से ठीक ठाक पालन करने की कोशिश की गयी। १९४२ के आन्दोलन के सिलसिले मे देशी राज्यो मे कैसे क्या होना चाहिए, इस सम्बन्ध मे बम्बई मे कुछ भी निर्णय नही हुआ था। गाधीजी को गिरफ्तार करके ले गये उससे पहले से और उस समय भी मैं उनके पास ही मौजूद था। जब गाधीजी जेल से बाहर आये तब मैंने उनको जयपुर प्रजामण्डल के काम की रिपोर्ट सुनादी और उन्होने प्रजामण्डल ने जो जो कुछ किया उसको ठीक और मेरे कुछ साथियो ने जो कुछ किया उसे अनुचित बताया। बाद मे पडितजी (जवाहरलालजी) का समर्थन भी प्रजामण्डल को मिल गया। जयपुर राज्य के प्राइममिनिस्टर से मेरा जो पत्र व्यवहार हुआ उसका महत्वपूर्ण अश प्रत्यक्षजीवनशास्त्र भाग १मे छप चुका है। उसके अलावा प्राइममिनिस्टर ने किसको क्या लिखा अथवा प्राइममिनिस्टर को किसने क्या लिखा सो मेरी जानकारी मे नही है। प्राइम मिनिस्टर के अलावा मेरी बातचीत उनके या मेरे किसी भी मित्र से कभी नही हुई। दिल्ली से पोलिटिकल सेक्रेटरी महाराजा और प्राइममिनिस्टर पर प्रजामण्डल के सिलसिले मे दबाव डालने के लिए आये, इतना मुझको प्राइममिनिस्टर से मालूम हो गया था। पर महाराजा और प्राइममिनिस्टर ने पोलिटिकल सेक्रेटरी को क्या कहकर लौटा दिया होगा सो मुझे पता नही है। कम से कम प्राइममिनिस्टर ने या किसी ने भी मुझसे तो कभी कुछ कहा नहीं। जब देश भर मे आन्दोलन ठण्डा पड़ गया तो जयपुर मे भी वही हुआ। तब फिर प्रजामण्डल को पहले की तरह से मोर्चा लगाये रहने की जरूरत नही रही। उस समय प्राइम मिनिस्टर से जो चर्चा आदि हुई उसमे न केवल साक्षी बल्कि प्रेरक भी एक प्रवासी राजस्थानी भाई खासतौर से थे। दुःख है कि उन साथी का २-२½ साल हुए स्वर्गवास हो गया। अमुक

रियासत को या उसके किसी हिस्से को राजस्थान के अलावा किसी दूसरे राज्य में मिलाने के बाबत कब किसने किससे क्या "सौदा" कर लिया यह मुझे पता नहीं है। हर सूरत में यह "सौदे" वाली कल्पना परले सिरे की झूठी कल्पना है। मैंने सिरोही के सम्बन्ध में सरदार पटेल को उस समय जो तार दिये थे वे और जवाब में सरदार का जो तार आया था वह सभी कुछ प्रत्यक्षजीवनशास्त्र में ज्यों का त्यों छपा है। इतना और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मैंने कभी भी सरदार पटेल से या किसी दूसरे से भी नहीं कहा कि राजस्थान की राजधानी जयपुर में होनी चाहिए। साथ में यह भी कि एक स्वर्गीय बड़े साथी के दबाव डालने पर भी यह यत्न करना मैंने मंजूर नहीं किया कि जयपुर को न बनाकर किसी अन्य नगर को राजधानी बनाया जाए। जाहिर है कि दोनों ही प्रकार के यत्न करना मेरी मर्यादा के बाहर था। राजप्रमुख जयपुर महाराजा को बनाया जाए, इस तजवीज पर राजस्थान में बड़े माने जाने वाले हम चारों (मेरे अलावा सर्वश्री माणिक्यलालजी वर्मा, गोकुलभाई भट्ट और जयनारायणजी व्यास) ने स्टेट्स मिनिस्ट्री में हस्ताक्षर किये थे। और मुझको राजस्थान का प्रथम मुख्यमन्त्री बनना है, यह बात सरदार ने मेरे उक्त तीनों बड़ों की राय लेने के बाद उनकी मौजूदगी में मुझसे कही थी। सरदार ने मेरे बड़े साथियों को उसी समय यह चेतावनी भी दी थी कि आप लोगों की राय से यह तय हुआ है, इस मामले में आगे चलकर झगड़ा नहीं करना है।

जब ये सब बातें जिन्दा थी तब भी मैंने वाद विवाद में पड़ना ठीक नहीं समझा था तो अब इस समय जब कि सब कुछ पुराना पड़ चुका है किसी तरह के निरर्थक वितण्डावाद में समय बिगाड़ना मेरी राय में सर्वथा अनावश्यक व अनुचित होने के अलावा हानिकारक भी है। फिर भी एक बड़े साथी ने मेरा ध्यान किसी सम्माननीय बंधु की लेखनी से कुछ लिखा गया बताकर उसकी तरफ मेरा ध्यान दिलाया तो मैंने उस सम्बन्ध में तथा एकाध दूसरे साथी की ओर से समय-समय पर जो कुछ होता रहा है उसके सम्बन्ध में भी मैंने इतना सा अपने उपरिलिखित जीवनवृत्त सम्बन्धी निबन्ध में जोड़ दिया है। बाकी तो मैं अच्छा या बुरा, खरा या खोटा, सच्चा या झूठा कहने लिखने वाले सब भाइयों की वन्दना करता हूँ।

———

: २ :

परिशिष्ट

(क) पत्र व्यवहार

[अ] श्रीमती इन्दिरागांधी

(किसी विचित्र सयोग से पिछले दिनों इन्दु बहिन (श्रीमती इन्दिरा गाधी) से मेरा मिलना होने के बाद कुछ पत्र व्यवहार हो गया सो मैं नीचे दे रहा हूँ। मैंने अन्तिम पत्र मे इन्दु बहिन को लिख दिया था कि इस पत्र का उत्तर आप न भेजें। क्योंकि मैं यह महसूस करने लगा था कि इस तरह खाली पत्र व्यवहार मे से कुछ निकलने वाला नही है। मैंने अपनी बात कहदी, इन्दु बहिन ने अपनी बात कहदी, किस्सा खत्म हुआ। बीमारी की जड़ तक जाया जाए तब तो कोई मतलब निकले। बीमारी की जड है उस भ्रष्टाचार मे जिसका ज्यादा से ज्यादा जिम्मा सत्ताधारी पार्टी का है। उस बीमारी के अंग ही दूसरी बीमारिया है-सपत्ति के उत्पादन की कमी, मुद्रास्फीति, महगाई, जमाखोरी, काला बाजारी, मिलावट आदि। शासन मे बैठने वाले लोग दूध के धुले हुए हो तो सब कुछ ठीक हो जाए। पर वे जब तक सत्ता से चिपके रहना जरूरी मानते हैं तब तक उनका दूध के धुले हुए बन जाना सभव नहीं है। विचारधाराओ के चक्कर मे पडे बिना और अधिक से अधिक अपने ही साधनो के द्वारा यानी विदेशी सहायता के बिना ही सम्पत्ति का उत्पादन बढ़ाया जाए, इस बात की पर्वाह छोड दी जाए कि राजसत्ता अपने हाथ मे रहती है या नही रहती है, तभी देश की बीमारियों का इलाज हो सकता है। ऐसा नहीं होगा तो फिर देश मे शान्तिमय या अशान्तिमय कैसी भी क्रान्ति होकर रहेगी जिसके फलस्वरूप एक बार तो सबको रोटी, कपड़ा, निवास, इलाज, शिक्षा सुलभ होकर शान्ति स्थापित हो जाएगी।)

(१)

From Sm. Indira Gandhi to Hiralal Shastri

19-4-1974

This is just to acknowledge your letter of the 17th. You had made this point in our meeting also. Please let me have your suggestions.

(२)

From Hiralal Shastri to Sm Indira Gandhi

3-5-74

Herewith is a note which may be taken as a sort of amplification of the points indicated in my letter of April 23 (copy enclosed).

It was with a great deal of hesitation that I started talking to you like this. For I know I am in no position to be effective in any big way and what use it may be putting forward suggestions which I myself can do little to implement

Even so, the "strange dream" prompted me to send you my letter of March 29 to which your quick reply of April 3 came to me as a beckoning call. Then, our meeting took place which was followed by your *asking for my "suggestions."* Thus *encouraged, I have ventured to let* you know how I, along with a number of sincere worker friends, feel and think about the situation in the country.

I will be fully compensated even if any single item out of what I have said appeals to you In the existing situation and in the situation which seems to me to be inexorably following, I wish the great Indian nation (of which you are the top-most leader) all very well.

For myself, I may say, I have no exaggerated idea of my own capacity to be helpful, but I will be prepared to do what little I possibly can, if you so desire. I will be in the Capital at 15, South Avenue for three four weeks from May 6 onwards : telephone number 371664.

Extract Copy from a previous letter from Hiralal Shastri to Sm. Indira Gandhi

23-4-74

As regards the suggestions you have asked for, I would, firstly, like to say that we must have a faithful cadre in sufficient strength zealously devoted to the implementation of our policies and programmes.

Secondly, we must place the greatest emphasis on preferably decentralised production in the fields of agriculture and industry and we must do with the minimum of foreign aid. Increased production will cure many of our ills.

Thirdly, it is most essential that we adopt practical and visible measures of austerity from the top downwards : from a distance it seems to me that China can perhaps serve as a good example to follow in this particular matter.

Fourthly, you must make up your mind to put down corruption in high places with a heavy hand ; we must start from the top. We can not afford to be complacent in this matter by saying that this is so all the world over.

Finally, I venture to suggest that you, being the supreme leader, should make it possible to consult other leaders of thought and public opinion on a national basis, i e. cutting across party lines, notably Vinobaji

Note on the situation in the country

I

The situation in the country is most critical and not a single sign of improvement is visible at the moment. I am sure what is said herein does not represent an alarmist view and it is only what is being almost universally seen and realised. The people in general seem to have lost faith in the present policical system. We talk of demoeracy and democratic socialism, but in the prevailing situation these are, to be quite frank, nothing more than empty words. What is on everybody's lips is that the elections which need crores and crores of rupees to be spent and means, fair and foul, to be used can never lead to real democracy. And we all know that our existing system of election is the root cause of political corruption which, in turn, is the cause of all other forms of corruption. The attempt to win an election by any means can only be a bid for survival. And the lot of people whose first anxiety is to survive at any

cost can hardly deal with the present situation in a revolutionary manner Either the common man enjoys complete freedom or dictatorship, pure and simple, will be his lot. Democracy presupposes two parties of more or less equal strength which have their own distinct programmes. One party rule must ultimately result in dictatorship which, again is bound to be preceded by revolt and anarchy One way to deal with the existing situation may be to find a sort of national consensus for the solution of the nation's problems A national consensus would mean sacrifice on the part of the political parties. If that sacrifice is not forthcoming, than for aught I know a violent revolution will shake and overwhelm the nation

II.

In the economic sphere production of the necessaries of life must be the primary aim and the said necessaries of life must be made easily available to all classes of the people on easy and equal terms. On the other hand, there must be firm restriction on the production of all other non-essentials including luxury and demonstrative goods which may be permitted to be produced only for export purposes. We must certainly be able to do without or with the minimum foreign aid The nation's energy must primarily be utilised for the production of what the people at large barely need and strict measures of austerity from the top downwards must be taken leaving no room. for display or ostentation I think it is a good sign that authority seems to have recently begun to adopt a pragmatic approach in the economic field. Vinobaji's reported suggestion for the realisation of land revenue in kind deserves careful consideration. Thought must be given to such small scale and decentralised production as may result in giving large scale employment to the people. While doing so we must take serious note of the wide-spread student and youth unrest which we can ignore or misinterpret only at grave risk to the peaceful existence of the nation. The role of created money, that is, deficit financing must be minimised and no manipulation of figures, as is suspected by many, should be attempted to make deficit financing appear to be less than what it actually is. Our investment should be mainly determined by our real savings Non productive expenditure must be brought down to the barest minimum. Whatever the economic programme, a huge cadre of devoted workers will be the first must. The party people in whose integrity the masses have no faith cannot be trusted for its implementation of any programme. Quick revolutionary steps will have to be taken to avert the impending catastrophic revolution which not most of us would be prepared to welcome.

(३)

From Sm. Indira Gandhi to Hiralal Shastri

8-5-74

I have your letter of the 3rd May

I agree with you about the necessity of having a good and trained cadre of workers. But this is not easy to do. Perhaps we could activise and extend the scope of our Seva Dal. Normally the Sarvodaya people could have played an important part in developmental work. Unfortunately they have regarded themselves as a species apart and have not wanted to cooperate with the Government.

We are doing everything possible to increase production and have succeeded in a number of cases. We are also laying stress on small scale and on village industries although I do admit that more can and should be done in this direction However somehow people, except in the Punjab, always seem less interested in small scale industries.

In China they have killed off or allowed to die hundreds of people-they have no opposition to publicize starvation deaths or other extreme methods. I have visited China I am not prepared to accept the euphoric versions now appearing in the Western Press The question is whether we want that type of authoritarian rule in our country.

I agree with the desirability of having simplicity and even austerity. We are making an effort-but today we find that people who speak against corruption are not prepared to speak against the ostentation and the corruption of Big Business people. Is that honest ?

I am in contact with Vinobaji. I have had meetings with him and people from his Ashram come from time to time.

Vinobaji has given some suggestions which we are trying to follow up I have also been attending conferences to which Vinobaji has invited me.

(४)

From Hiralal Shastri to Sm. Indira Gandhi

24-5-74

I am grateful to you for your letter of May 8 which has been brought here by a special messenger from Banasthali where it was delivered by post only a couple of days ago.

I must make it clear at once that in referring to China I only intended to say that she might serve us as an example in austerity. In my view, there is no question of our wanting any authoritarian rule either of the Chinese or the Russian or of any other type. For myself, I stand for the self sufficiency and self reliance primarily of our villages which would naturally result from self-rule and self-discipline The spectable of corrupt power politics at higher levels deeply penetrating down into the villages can only be most distressing for one like me who has lived in a tiny village for the last 45 years and more. To my mind, the first and foremost question for us, therefore, is how to root out the political corruption which is eating into the vitals of the nation. Corruption in all other spheres will vanish automatically, if it is banished from the political sphere In the matter of austerity also, the example has to be set by the politicals from whom big business and all the rest receive inspiration and encouragement.

Another question of questions before us is how to produce the necessary goods (specially food) to the maximum extent and their equitable distribution with the least possible control No ideology, left or right, can be allowed to stand in the way of production and distribution to which the nations entire collective energy must be devoted. I, for one, do not believe that the Indian masses are prepared for any leftist slogans, nor can the common man any longer tolerate unbriddled hoarding, black marketing and profiteering which, he knows to his cost, is encouraged by corruption in the country's political life.

I can see that it is not at all easy, in fact it is most difficult, rather it is well nigh impossible to create a cadre of trained and devoted workers in sufficient strength unless the whole pattern of our public life is made to undergo a fundamental change An atmosphere in which everybody would seem to be not only seeking but also clinging to power can not be conducive to the creation of a cadre of honest and selfless workers. As for the Sarvodaya workers we all know that they have their own way of functioning under the guidance of Vinobaji and also they are too few to make a serious impact on the millions of our population particularly in the prevalent climate Further it seems to me that Sarvodaya workers can co-operate with an external authority only on mutually agreed terms.

Your ready response to what I said in my earlier letters has encouraged me to open out my heart like this to you. May I add that I have some idea of your difficulty you appear to me being pushed between left and right. Moreover, there are pulls and pulls of the politics of opportunism and expediency which make your position extremely difficult. Just as there are vested interest on the right, so the left is also not without its own interests which are more or less of an imaginary nature in the eyes of detached observers. And no one can deny that our congress has always been full of all sorts of people with different ideologies and with no ideology at all.

The real question ultimately, is what exactly to do and where and how to begin in our given conditions Deficit financing, inflation, sky-high prices, national production far below capacity, un-employment, student unrest and above all, the lack of true patriotism and the will to work hard for the nation are all signs and also causes of our chronic disease which is now growing more and more acute calling for immediate and courageous treatment

Beyond these general observations I dare not make detailed suggestions here and now for the simple reason that I am hardly in a position to help implement them.

Ratanji intends to ask you to inagurate the N. C. C. air-wing at Banasthali which may be some time in August next. Then and even before that I can, if desired, give you some practical suggestions for what they may be worth

Meanwhile, please arrange acknowledgement of this letter at the address given above, for I am likely to be here for three weeks more in connection with my Banasthali mission.

(५)

From Sm. Indira Gandhi to Hiralal Shastri

11-6-74

I have received your letter of the 8th June I had also received your earlier letter which came a few days before I was leaving Delhi.

I can assure you that I am not being pushed either to the left or to the right But the circumstances in which we have to function in today's world are far more complex than at any other time in the world's history and this is not so merely in India but in practically every country of the world. By chance only this morning some one has sent me an extract from an editorial in the London Economist about conditions in Britain which you may be interested to see.

Extract from an article in the Economist (London) of June, 1, 1974 attached with Sm *Indira Gandhi's letter of 11th June, 1974* to Hiralal Shastri

Inflation, unemployment, corruption and civil disorder are on the point of becoming part and parcel of everyday life. It almost seems as if each generation must reach the point of facing personal disaster before it works out its appropriate standards and values When no threat comes from outside the British tend to create their own from within, which is thereby all the more lethal.

The highly publicised corruption of a few people in public office in Britain is another symptom of social decay, although corruption of this kind is neither extensive nor growing visibly in Britain. The real threat is from the corruption of values by people in public office who appeal to the greed and envy of sectional interest groups, whether minorities or majorities. Labour leaders do this when they encourage workers to believe that they have the right to security of employment and ever-rising living standards, regardless of any obligation to ensure the production on which the living standards of the community depend.

(६)

From Hiralal Shastri to Sm. Indira Gandhi

14-6-74

I am happy to have your letter of June 11.

I know the situation all over the world including our own country is extremely complex and so I admire the boldness and courage with which you are facing our problems.

Even so, I have a feeling that something far more drastic–may I say revolutionary in a sense-needs to be done.

You will perhaps agree that the fact that the situation in some other countries also is equally bad can offer us only poor consolation. Any way, we have to face and fight with our own problems and solve them as best as we can

You need not reply to this letter We may get an opportunity of talking over things when we meet again at your convenience.

Meanwhile, with my best wishes.

(७)

इन्दु बहिन का चि० सिद्धार्थ के विवाह के सम्बन्ध में जो ५-६-७४ का पत्र आया उसमें उनकी खुद की कलम से लिखी हुई यह लाइन आयी थी।

"P S Your letter of the 14th has just come"

[आ] श्री सीतारामजी सेकसरिया

(पिछले महीनो मे मेरा जितना पत्र व्यवहार हुआ है वह प्राय सारा वनस्थली के कामकाज के सिलसिले मे हुआ है। उस पत्र व्यवहार को इस समय छापने का कोई अर्थ नही है। बाकी जो मेरे पास दूसरे पत्र आते गये उनमे ज्यादा पत्र मेरे पास स्नेही सीतारामजी से सबन्धित हैं। उनमे भी वनस्थली की ही कुछ न कुछ बात आ गयी है। जो हो, उन पत्रो मे से बहुत थोडे से पत्र नीचे दिये जाते है)

(१)

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री सीताराम सेकसरिया के नाम

१७-११-७३

आपका ११-११-७३ का पत्र मिला। भागीरथजी का पत्र परसों मिल गया था जिसका उत्तर मैंने कल भेज दिया।

दुनिया को, देश की हालत जो है सो ही है और जैसी बननी होगी वैसी ही बनती जाएगी। उसी मे हम रह रहे हैं, उसी मे रहते रहना होगा। उस हालत के सिलसिले मे अपने करने का या अपने से हो सकने का कुछ लगता नही है। इसलिए देखते रहना चाहिए, जो व्यावहारिक असर अपने ऊपर पडने वाला होगा उसे भुगतते रहना होगा। मेरा स्वभाव इस तरह की चिन्ता करने का नही है। आप भी चिन्ता न करने की कोशिश करें। जो बात अपने को नापसन्द है उनके बारे मे अपनी नापसन्दगी आपस में बात करते समय जाहिर करदें। और बश करने वाले हैं हम लोग ? देश मे किसी दिन बडी भारी उथल पुथल जरूर हो सकती है। अपने सामने वैसी स्थिति आएगी तो उसे भी देख लेंगे।

वनस्थली के बारे मे खास बात यह है कि मेरे अशक्त हो जाने से पहिले से अशक्त रतनजी को ज्यादा दौडधूप करनी पड रही है और श्याम पर भी ज्यादा बोझा आया हुआ है। अपने को संतोष इस बात का है कि ये लोग खुशी खुशी सब कुछ झेल रहे हैं। इस मामले मे वनस्थली का भाग्य बहुत जोरावर है। मैं निरन्तर ध्यान मे रहता हूँ, लिखता रहता हूँ व सुझाव देता रहता हूँ। जो शक्ति है वह भावना मे है और भावना अपनी बहुत पक्की और बहुत प्रबल है।

आप उन तीनो बातों पर जैसे भी हो वैसे अमल कर डालिए। जैसा चाहते हैं वैसा का वैसा न हो सके तो जैसा हो सके वैसे का ही खुशी के साथ मंजूर करलें। पर किसी भी हालत में झूलते, शंका करते न रहे।

वनस्थली समाचार के लिए कभी कभी मैं लिख देता हूँ, जैसा मेरे जी मे होता है वैसा। पर आप निश्चिन्त रहें कि मेरे पास चिन्ता जैसी चीज की जगह नही है। विचार चलते रहते हैं, सो आशा और विश्वास से भरे हुए होते हैं।

समाचार भेजते रहिए।

(२)

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

२४-११-७३

आपका १७-११ का पत्र २२ की शाम को मिला। आजकल पत्र मिलने में समय का कुछ हिसाब नहीं रहता। हमें खुशी इस बात की होनी चाहिए कि चाहे जैसे ही मिल तो जाते हैं। आजकल बिजली की गड़बड़ी भी बहुत रहती है, एक आदमी ने कहा कि बिजली चाहे जब चली जाती है इससे बहुत असुविधा होती है तो किसी ने कहा बिजली आ जाती है और सुविधा हो जाती है इसकी खुशी मानो। जो गड़बड़ सब कामों में पैदा हुई है और हो रही है उसमें चाहे जब चाहे जो हो सकता है। इसलिए मानस की यह तैयारी होनी चाहिए कि जो कुछ होगा उसमें हम अपनी सुविधा करके संतोष मानेंगे। घानी का तेल और माटी का दिया रुई की बाती से काम चलाने वालों को शायद असुविधा नहीं होगी।

मुझे याद आया कि लखनऊ कांग्रेस में मैं टंडनजी के साथ वहां के हरिजन आश्रम में ठहरा था। रात में रोशनी की जरूरत हुई। टंडनजी ने कहा किस प्रकार की रोशनी पसन्द करते हो। मैंने कहा जैसी आप पसंद करें। तो उन्होंने माटी का बड़ा सा दिया और तेल बाती की व्यवस्था करदी। इसका अभ्यास तो नहीं रहा था एक मुद्दत से इसको भुला दिया था, पर टंडनजी के साथ उसका अनुभव हुआ। जागकर पेशाब करने की जगह जाने में रात में जरा अटपटा और बुरा सा लगा। पर काम तो चल ही गया।

आपके मानस की क्रियाओं से मेरा थोड़ा परिचय तो मानना चाहिए। मैं सोच रहा हूँ आपके मानस में कुछ समय से एक परिवर्तनसा आ रहा है। कभी कभी आप कह दिया करते हैं कि "मैं भीतर चला जाऊं और बाहर नहीं निकलूं। अपने आप में या जिससे मुझे जो कहना है कराना है वह कहता कराता रहे।" यह पूरी बात नहीं है और पूरी हो भी नहीं सकती। यह तो आप ही जानते हैं कि वह क्या है कैसा है और किस प्रकार का हो सकता है या होगा। यह विचार ही है, बहुत बातें ऐसी हैं जो हम सोचते रहते हैं। यह एक मानस क्रिया है। यह सब तो मैं यों ही लिख रहा हूँ इसका न तो कोई विशेष अर्थ है न कुछ और विशेष बात।

वनस्थली के काम का बोझ रतनजी तथा अपने सारे परिवार पर ही विशेष रूप से है। अब आपके बाहर न जा सकने के कारण यह स्थिति बन गयी है। आपके मानस पर वनस्थली का बोझ तो है ही और यह होना स्वाभाविक भी है। ऐसा कोई साथी या व्यक्ति नहीं जो आपको इस बोझ से मुक्ति दे सके।

गुरुदेव के मानस पर विश्वभारती का बहुत बोझ रहता था। वे कई बार कहा भी करते थे कि विश्वभारती की जिम्मेवारी लेने वाला कोई मिलता ही नही। मैंने शायद आपको पहले भी लिखा है कि गाधीजी को वे विश्वभारती की जिम्मेवारी देना चाहते थे और उन्होने उनसे कहा भी। गाधीजी ने उनसे कहा था कि विश्वभारती चलती रहेगी यह आप मानलें। आज विश्वभारती पहले से अधिक बडी हो गयी है। उसने विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया है। पर गुरुदेव की विश्वभारती थी उसके दर्शन करके जो विचार-भाव मन मे आते थे वे इस रूप से नही आते। एक व्यक्ति विशेष की एक शक्ति होती है। उसके व्यक्तित्व का प्रभाव होता है, एक करामात होती है। वह सब मे कैसे हो सकती है। पर करामाती का बसाया हुआ खेड़ा उजडता नही, उसका लगाया हुआ वृक्ष नष्ट नही होता। वह सदा सदा अपने मूल से रस लेकर जीता है, पनपता है, प्रस्फुटित होता रहता है। वनस्थली भी सदा अपने आप मे अपनी विशेषताओ के साथ काम करती रहेगी।

आज जो कठिनाइयां है उनके लिए आप जो कर रहे हैं उसमे ही उनका हल निकलने वाला है। वनस्थली का भाग्य और उसका काम अपने आप में ईश्वर का काम है और कुछ न कुछ अच्छा होने वाला ही है उसको हम लोग नही जानते।

मुझे आपने जो तीन बाते करने के लिए कहा था उसका मुझे पूरा खयाल है।

वनस्थली समाचार की उडीक रहती है। उससे बहुत सी बातें मालूम हो जाती हैं तथा आपका लिखा पढ़ने पर आपके मानस की क्रियाओ का भी कुछ पता चल जाता है। यह बहुत ही उपयोगी पत्रिका है। इसे बराबर प्रकाशित करना और समय से करते रहना चाहिए।

रतनजी अच्छी होंगी। अपने शरीर का बोझ तो है ही, पर असली बोझ तो आपके साथ को निभाने का है, चाहे वह वनस्थली का, चाहे किसी प्रकार का हो उन्होने सदा आपके विचारो के, मन के और कामो के बोझ को ढोया है और बहादुरी के साथ, हिम्मत के साथ, बुद्धिमानी के और जिम्मेवारी के साथ ढोया है और ढोती रहेगी, इसमे जरा भी शका नहीं है। किसी बडे आदमी की पत्नी बनना क्या कोई सामान्य काम है ? क्या वह किसी प्रकार की सुख-सुविधा की माग कर सकती है ? उसको तो पिसते रहना है और वह उस पिसते रहने में ही सुखमाने तो चले, नही तो कष्ट ही कष्ट है।

सबको प्यार प्रणाम कहे। घर के लोगो का समाचार जानने और पूछने का तो समय ही नही रहता और ही और बातो से छुट्टी नही मिलती। सब अच्छे होगे। वनस्थली का वार्षिकोत्सव बहुत अच्छी तरह सफल हो गया होगा। बाई का हाल चाल तो जैसा चल रहा है चलता होगा। उनकी सेवा आप लोगो द्वारा होती है इसलिए जीती है। भाई भागीरथजी पहले से अच्छे है यह कहा जा सकता है कि अब वे पहले की स्थिति मे करीब करीब हो गये हैं।

(३)

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री सीताराम सेकसरिया के नाम

१-१२-७३

आपका २४-११-७३ का पत्र कल मिला।

आजकल अव्यवस्था कुव्यवस्था का नाम व्यवस्था है, सिद्धान्तहीनता का नाम सिद्धान्तप्रियता है, असत्य का नाम सत्य है, लोलुपता का नाम त्याग है, स्वार्थपरता का नाम सेवा है इत्यादि। इसलिए अपने को किसी तरह की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। देखते जाना, बने सो अच्छा काम करते जाना, किसी अवतार की प्रतीक्षा करना।

मैं ठीक ठाक निभ रहा हूं। घूमने पर जो बन्दिश है वह ज्यादा खटकती है, बाकी तो सब ठीक ही है। मैं वनस्थली के काम के लिए बाहर नहीं जा सकता, और रतनजी को दौड़ धूप करनी पड़ती है-इन दो बातों का कभी कभी मुझको ज्यादा ख्याल हो जाता है। बाकी वनस्थली का सितारा बुलन्द है-रतनजी के और मेरे पास प्रेमनारायणजी और गजजन हैं। उनके पास सुशीला, श्याम, शकु और थोड़ा बहुत सुधाकर भी है, श्याम के पास सिद्धार्थ सुधा तैयार होने वाले हैं। इनके अलावा रामेश्वर भी है ही और कमला को जब चाहे तब नौकरी छुड़वाकर बुलवा सकते है। और भी कई एक अच्छे अच्छे भाई बहिन वनस्थली के पास है। इसलिए अपने को किसी को यह कहने की जरूरत नहीं है कि आप वनस्थली को सम्भालना। सम्भव है कभी कभी मुझे तात्कालिक कठिनाई का हल खोजने की मुश्किल के बीच परेशानी महसूस हो जाती है। पर मेरा आत्मविश्वास अडिग है और मैं अधिक से अधिक निश्चिन्तता एवं बेफिक्रता का अनुभव करता रहता हूं। राजस्थान सरकार के निकम्मेपन से मुझको बड़ी चिढ़ होती रहती है। रुपये का सवाल अन्ततोगत्वा अपनी कमाई से और लड़कियों से अच्छी वसूली करके हल कर लेंगे। मौजूदा देनदारी चुक जाएगी, रुके हुए काम चल निकलेंगे और लाखों रुपये के नये काम भी हो जाएंगे। कैसे? जैसे अब तक होते आए हैं वैसे ही। अपन हर तरह की कोशिश तो कर ही रहे हैं।

बाई का हाल है सो है ही। और सब लोग मजे में हैं-सिद्धार्थ, सुहासिनी, आशुतोष अपना काम शुरू कर रहे हैं। वार्षिकोत्सव बहुत अच्छा हो गया। दादा धर्माधिकारी २३ को आ गये थे, २६ को गये। विवरण वनस्थली समाचार में पढ़ना।

(४)

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

१-१२-७३

आपका १-१२ का पत्र मिला। आपने जो आज की व्यवस्था के बारे में लिखा है वह बिल्कुल ठीक है। ऐसा लगता है कि फिलहाल तो ऐसी ही व्यवस्था चलती रहेगी और उसी को आधार बनाकर जो लोग अपने स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं वे करते रहेंगे। यह कहा जा सकता है कि कुए में भाग पड गयी है। सभी पागल हो जाए, स्वार्थी हो जाए तो फिर क्या कहा जाए। जब कामदेव शिवजी को अपने वस में करने गया तो उसने इस तरह की स्थिति की रचना की थी कि जड चेतन सभी काम के वस होकर कामवासना में लिप्त हो गये। उस समय का एक सोरठा तुलसीदासजी का लिख रहा हूँ—

धरी न काहूं धीर, सबके मन मनसिहो हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरहिं काम सूं ?

यह कहा जा सकता है कि आज इस समय भी नव प्रलोभनो, नव भ्रष्टाचारों तथा और अनेक प्रकार की अनैतिकता से वही उबर सकता है जे राखे रघुबीर। जिसको भगवान ने बचाया वे ही बचे।

अपना सब ठीक ठीक चल रहा है और ईश्वर कृपा से चलता रहेगा। आपके तो एक विशेष भार भी है। आज बहुत संकट और कष्ट के समय भी मस्ती में रह सकते है। इस बार आपने अबकी बार वनस्थली की अपनी कमाई और लडकियो से होने वाली आमदनी पर ही जोर दिया है यही सबसे अच्छी है, स्वावलम्बन की। इसमे कितना सुधार किया जा सकता है कि भारत सरकार, राजस्थान सरकार और अन्य राज्यो से भी सहायता मिलती है सो भी मिलती रहे। पर वह भी वनस्थली के स्वरूप के अनुकूल मिले तो ही ठीक है। चन्दे से तो किसी प्रकार भी पिण्ड छुडाना ही है। किसी से सहायता लेना या मांगना मुझे बहुत दिनो से अखर रहा है। खासकर जबसे धनी लोग देश के राजनीति वालों से यानी मन्त्रियों से अधिकारियो से सम्बन्ध जोडने लगे तथा उनको और अपने को भ्रष्ट करने मे बहादुरी जताने लगे।

वनस्थली का सितारा बुलन्द है इसमे क्या शक है, वह सदा ही बुलन्द रहने वाला है। अच्छी बातो का, अच्छे कामो का परिणाम कभी बुरा नही हो सकता। आपने जो यह लिखा है कि वनस्थली अपने को किसी को सभलानी नही है। वह ठीक है। गुरुदेव की स्थिति दूसरी थी। उनकी विश्व भारती की अपनी वनस्थली की जितनी ख्याति है उससे कम नही थी। पर उनके पास अपने कहे जाने वाले सिर्फ रथीबाबू थे जिनमे दम नही था। यह

एक बार बात करते हुए गुरुदेव ने अपने मुह से मुझे कहा था। आपके पास रतनजी है श्याम है, सुशीला है, शकु है, प्रोफेसर साहब है और भी कई लोग है बेचारे गुरुदेव तो लाचार थे। मै जानता हूं उनके मन की व्यथा को।

आपका स्वास्थ्य ठीक रहना चाहिए। बाहर नही जा सकते तो क्या? बैठे बैठे आप जो करते हैं, कर सकते हैं, उतना शायद दूसरे लोग बाहर जा आकर भी नही कर सकते। बाहर जाकर चन्दा करने वाले भी आपसे ही बल और प्रेरणा लेकर जा सकते है, काम कर सकते है।

(५)

श्री सीताराम सेकसरिया का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

२२-१२-७१

आपका १६-१२ का पत्र कल मिला।

देश मे जिस तरह की स्थिति बनती जा रही है उसमें सबका कष्ट बढ रहा है। जो लोग बडी बडी संस्थाओं को लेकर बैठे है उनके सामने नयी नयी समस्याए पैदा हो रही है। वनस्थली भी एक बडी संस्था है। उसके सामने तो आर्थिक कठिनाई रहती ही रही है, पर महंगाई के कारण वह कठिनाई और बढी ही है।

खाने, कपडे, रहने आदि पर जो खर्च आता था उसमें काफी वृद्धि करनी पड़ेगी तथा शिक्षिकाओं शिक्षको तथा अन्य कर्मचारियो का वेतन भी बढाना पडेगा। वनस्थली तो बहुत बडी है। वहा तो सैकड़ो काम करने वाले लोग हैं। अपना बजट बढता है उसका बहुत सा हिस्सा सरकार दे देती है तब भी अपने हिस्से का जो देना पडता है वह भी बढ गया है. वनस्थली का मालिक भगवान है, जो आप सबको शक्ति देता है।

सीमित आमदनी वाले लोगों का कष्ट बढ़ रहा है और उनको अभाव का अनुभव हो रहा है, अभाव का जीवन स्वीकार करना पड रहा है नौकरी पेशा लोगों का महीने का तीसरा हफ्ता काफी कष्ट का होता है। एक तो यह स्थिति है। एक वह है कि लोगो के पास इतने अधिक रुपये आ रहे है कि रखने के लिए जगह नहीं है। यह बिलकुल सत्य है कि वे रुपयो को कहा रखे। रुपयो को बही खाते म रखें तो सरकार टैक्स के रूप मे ले ले, छिपाकर रखें तो पकडे जाने का डर, जिसमें रुपये भी जाए और गुनाह के लिये शायद जेल जाना पड़े या नाना तरह के झंझट करने पड़ें। हो यह रहा है कि गलत तरह से रुपये आते हैं और गलत तरह से ही खर्च हो रहा है। विदेशो मे खूब रुपये भेजे जा रहे है, करोड़ो नही अरबो रुपये पिछले दिनो मे विदेश गये है। खुला देशद्रोह हो रहा है। यह सब जानते हैं

और करते है। इन्दिराजी के राज्य मे जिस प्रकार व्यापारियो के पास रुपये आये शायद पहिले कभी नही आये होंगे। महगाई बढने का लाभ व्यापारियों को खूब मिला है। फिर भारत का बहुत तरह का माल विदेश बहुत जोर से जा रहा है। वह वहा सस्ता है। गरीबी हटाने के नारे ने अमीरी को बढने का अच्छा मौका दिया है। देश मे शराब, व्यभिचार, चोरी और नाना तरह के व्यसन तथा ऐयाशी खूब बढ रही है। शराब पीना सामाजिक रिवाज बनता जा रहा है, ये चीजे शहरों मे खूब बढ़ रही है। क्या होगा, कैसे होगा, यह सोचा नही जा सकता न सोचना ही शायद ठीक है। जिन बातो मे अपना बस नही उनकी चिन्ता करके भी क्या करना ? आप तो एक प्रकार से जो काम करने का है जो किया जा सकता है उस पर ही विचार करते है। शायद आप कई दिनो तक अखबार तक नही पढ़ते।

अपने परिवार के सब लोग अपने अपने ढग से काम मे लगे हुए हैं यह बहुत अच्छा है। श्याम, सुशीला, शकु तो वनस्थली के हो ही गये। वनस्थली के लिए एक प्रकार से अपने घर मे ऐसे लोग तैयार होते जा रहे है कि वे हर हालत मे वनस्थली को सम्भाले रहेगे। वनस्थली तकलीफ आराम जो भी हो, पर वह अपने आपसे बडी चीज बन गयी है, बनती जा रही है तो वह अपनी रक्षा भी कर ही सकेगी। इतनी बडी सस्था है। यह क्या कम महत्व की बात है।

रतनजी बाहर से आ गयी होगी, श्याम जयपुर और दिल्ली का काम अच्छी तरह कर सकेगा यह तो एक प्रकार से साबित होना जा ही रहा है।

(६)

हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री सीताराम जी सेकसरिया के नाम

३१-१२-७३

दुनिया की और देश की हालत की जैसे मै विशेष चिन्ता नहीं करता हूँ वैसे ही मेरा आपसे कहना है कि आप भी उनकी चिन्ता न किया करें। उसका असर अपनी सस्था पर या घर पर जिस हद तक पडना होगा पड जायगा और उसे अपने को जैसे तैसे सम्भालना होगा। बाकी तो मैं कहता रहता हूँ जो गाव के साथ होगा अपने साथ भी हो जाएगा। अपने ऊपर सस्थाओं की ज्यादा जिम्मेदारी है तो है—उसे भी जैसे होगा सम्भाल लेंगे। नही सम्भलेगी, कम सभलेगी ता वह भी देखा जाएगा। बेकार की चिन्ता करने का असर अपनी शक्ति को घटाने का होता है। चिन्ता मनुष्य को चिता से भी ज्यादा जलाने वाली होती है सो तो अपन ने सुन ही रखा है ? कोशिश तो यही कर रहे है कि सुधाकर को वनस्थली के लिए कम समय लगाना पडे। पर मजबूरी हो जाती है कई बार। दूसरा आदमी सुधाकर जैसा कोई अपने पास है नही। चन्दे के लिए बाहर जा सकने वालो असल मे अकेली रतनजी ही है। मुझको दौड धूप करने की इजाजत न डॉक्टरो की है, और न रतनजी आदि की। मुझे खुद को डर नही लगता है, पर रतनजी के डर को मै कैसे निकालू ? ऐसी हालत मे उनकी गार्जियनशिप मैंने मन्जूर कर रखी है।

कुछ अन्य पत्र

ऊपर दिये गये पत्रों के अलावा मैं पांच विशेष पत्र नीचे दे रहा हूँ।

१. मेरे प्रिय शिष्य डॉ० कन्हैयालाल सहल का पत्र जो एक दिन अचानक मेरे पास आ गया था।

२. दादा धर्माधिकारी को लिखा गया मेरा एक पत्र। दादा धर्माधिकारी वनस्थली के १९७३ के वार्षिकोत्सव के अवसर पर मुख्य अतिथि बनकर आये थे।

३. डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष का एक पत्र। प्रफुल्ल बाबू वनस्थली के १९७२ के वार्षिकोत्सव के मुख्य अतिथि थे। उनका विचार वनस्थली में आकर रहने का होने लगा था, पर अन्त में उन्होंने उस विचार को छोड़ दिया।

४. दादा धर्माधिकारी का पत्र जिसमें उन्होंने संस्कृति और सभ्यता की परिभाषा करने का यत्न किया है।

५. काका साहेब कालेलकर का पत्र जिसमें उन्होंने संस्कृति और सभ्यता की व्याख्या करने के बाद मृत्यु के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। मैंने काका साहेब को लिखा था कि आपको मृत्यु की प्रतीक्षा करने की क्या आवश्यकता है? मेरा मानना है कि मृत्यु की कल्पना करना ठीक नहीं है, उसे आना होगा तब वह अपने आप आ जाएगी।

(१)

डॉ० कन्हैयालाल सहल का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

१६-११-७३

आज लगभग ५० वर्ष पहले की स्मृति ताजा हो रही है, जब सन् १९२६ में राजस्थान छात्रालय में मैंने रहना शुरू किया था। छह वर्ष आपकी छत्रछाया में रहा-न जाने, कितनी बातें आपसे सीखीं और कितनी बातें उस वातावरण से सीखीं जो आपने निर्मित कर दिया था? यह आज कौन विश्वास करेगा कि नवीं कक्षा का यह छात्र उस जमाने में Young India अथवा Harijan का प्रत्येक लेख बड़े मनोयोग से पढ़ा करता था और जो अंग्रेजी के नये शब्द आते थे, उन्हें कोश में देख-देख कर अपने शब्द-रत्नों की वृद्धि किया करता था। ऐसा ही एक शब्द है **Conundrum** जो मैं सन् २६ या २७ में सीख गया था।

आपका अच्छा पुस्तकालय था, उससे न जाने कितनी पुस्तकें मैंने पढ़ी होगी। जो हस्त-लिखित पत्रिका हम लोग निकाला करते थे, सम्भवतः उसी के सस्कारो के कारण आज मैं पिछले २१ वर्षों से 'मरु-भारती' जैसी शोध-पत्रिका सम्पादित कर रहा हूँ। मैने स्वय ही सन् १९५२ मे इसे प्रकाशित करना शुरु किया था और आज यह पत्रिका लेनिनग्राड, इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन तथा Indiana University आदि अनेक स्थानो मे जाती है और देश-विदेश मे इसे मान्यता प्राप्त है। जहा तक मुझे याद है, आप एक बार लिखकर काट छाट नही करते थे। मैंने अपनी अ गुलियों से लगभग अठारह हजार पृष्ठ लिखे होंगे जो मुद्रित रूप मे लगभग ९ हजार होगे। उनकी कोई नकल भी आज करे तो बड़ा दुष्कर कार्य होगा उसके लिए। कुछ विशिष्ट लेखो को यदि छोड दें तो भी वे सब मैंने एक ही बार लिखे हैं।

हिन्दी तो आपसे केवल १०वी कक्षा तक ही पढी थी-अपने अ ग्रेजी और सस्कृत के अर्जित ज्ञान के बल पर मै हिन्दी-सस्कृत का अध्यक्ष और प्रोफेसर बन गया। इण्टर और बी० ए० मे मैंने हिन्दी विषय ही नही लिया था। वर्षों तक मे रोज लिखता था जिसका नतीजा आज सामने, है साधना कष्ट कर होती होगी किन्तु उसका फल कितना मधुर होता है।

प्रात काल चार बजे नियम से छात्रालय के छात्रो को जगाया करता था, प्रातः काल जल्दी उठने की वह आदत आज भी बनी है। जमीन पर सोना, दीवट के प्रकाश मे पढ़ना और खेजडे के रास्ते के नुक्कड पर स्थित नल से पानी लाना आज भी कितना सुखद लगता है और गर्वपूर्वक उनका स्मरण करता हूँ। कालिदास ने रघुवश मे लिखा है कि राम ने अपने महलो मे दडक वन के चित्र लगाये थे क्योकि "प्राप्तानि दु खान्यपि दडकेपु सचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन्"

पारीक पाठशाला मे कोई भी परीक्षा शायद ऐसी न रही होगी जिसमे मैंने प्रथम स्थान प्राप्त न किया हो। अ ग्रेजी और सस्कृत मे तो आगे चल कर भी प्राय. सदा ही प्रथम आता रहा और सन् १९३२ की बी० ए० की परीक्षा मे मेरा ही स्थान सर्वप्रथम रहा था। पिलानी मे आकर पाडेजी के स्थान पर ट्रस्ट के सर्वोच्च पद पर पहुँच गया और उसके लिए भी मैंने कोई प्रयास नही किया। सोचता हूँ कि राजस्थान छात्रालय मे आपका सरक्षण और स्नेह न मिला होता तो मेरा भावी जीवन न जाने क्या रूप ले लेता। आज बड़ी श्रद्धापूर्वक आपका स्मरण करता हूँ।

(२)

हीरालाल शास्त्री का पत्र दादा धर्माधिकारी के नाम

२८ १–७४

आपका २१-१–७४ का पत्र मिला जिससे लगता है कि मेरे १–१२–७३ और ६–१२–७३ के पत्र आपको मिल चुके हैं। चि० तारा को प्रह्लाद का १८–१–७४ का पत्र पता नही मिला होगा या नही।

बड़े छोटों को सिर पर बिठा सकते हैं। तब आपसे क्या कहा जाए ?

कई कारणों से वनस्थली के आगामी उत्सव के लिए मुझको अच्युतजी ही ठीक जचते हैं। पर उत्सव नवम्बर के पहले दूसरे सप्ताहो मे रखना सम्भव नही होगा १३ नवबर को दीपावली जो है। २४ नवम्बर से ५ दिसम्बर तक किन्ही दिनो मे उत्सव करना होगा। मैं अच्युतजी को लिख रहा हूं और लिख रहा हू धीरेन दा को भी। पर उनके इधर आ सकने का भरोसा मुझको नही होता है मुख्यतया उनके स्वास्थ्य के कारण।

महादेवी बहिन का आना बहुत अच्छा रह सकता है, पर वे आने का वादा करले तब भी उनका भरोसा होना मुश्किल है।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र के बारे मे आपने लिखा उसे मैं शिरोधार्य करता हूँ, क्योंकि आप मुझको प्रसन्न करने के लिए कुछ नही लिख सकते। जीवनवृत्त के अलावा मेरी टूटी फूटी रचनाओ मे से कुछ रचनाए आपको अच्छी लग सकती हैं, सो पचास के करीब ? मेरे लिखे हुए किन्ही खास कर अंग्रेजी के पत्रो पर भी निगाह डाल लीजिए, मौका मिलने पर।

वनस्थली के बारे मे आपने लिखा उसे मैं स्वीकारता हूँ। कठिनाई यही है कि मुक्त विचार को प्रत्यक्ष व्यवहार मे लाने मे जो जोखिम हैं उससे रत्नजी और मे दोनों डरते है। पराई बेटियो के हम गार्जियन बने हुए है न ? वनस्थली मे छोटा सा आश्रम चलता होता तो बात दूसरी होती।

संस्कृति और सभ्यता की परिभाषाएं आप जब लिख सकें लिखदे।

चि० विमला को मैं आबू के पते पर लिख रहा हूँ। पर मुझको लगता है कि वह मेरे मन की शायद ही हो सके। चि० तारा से तो मेरी कुट्टी हो चुकी है। वह चाहे तो सुलह का पैगाम भेज सकती है। चि० इन्दु टिकेकर का क्या जिक्र आपने मुझसे किया था ?

और तो ठीकठाक निभ रहा है। रत्नजी लम्बे दौरे पर निकलने वाली है। मैंने उनके साथ जाने का आग्रह किया उसे उन्होने जैसे तैसे मान लिया है। मैं सोचता हूँ मेरे निकले बिना काम नही चलेगा। स्थिति विकट से विकटतर विकटतम हो रही है। मैं कहता रहता हूँ और शायद आपको भी लिख चुका हूँ कि आत्मविश्वास ही मेरा, वनस्थली का एक मात्र सहारा है।

(३)

Dr. P. C. Ghosh's letter to Hiralal Shastri

3-4-74

I ought to have written to you earlier. Sadhana was repeatedly saying "write to Apaji". I must apologise to you. I was thinking of going to Banasthali, but in view of the situation prevailing in W. Bengal now I can not now think of going elsewhere when people are suffering so much I must also share in their suffering. But I can only be a silent spectator of the tragic drama I only pray to God. Sadhana loves Banasthali. But she also does not think of leaving Bengal at this time. *Morever, her place of work is really Bengal* Sadhana has been appointed Secretary, Gandhi Memorial Museum at Barrackpore She is to join on July 1 Before joining she is even thinking of going to Banasthali once for a month or so, what would be your advice in this behalf.

(४)

दादा धर्माधिकारी का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

१८-८-७४

१४-८ का कृपा पत्र कल ही मिला। आप बीच-बीच मे मुझे याद कर लेते है मेरे लिए यह परम सद्‌भाग्य और आनन्द का विषय है। ईश्वर से प्रार्थना है कि इसी प्रकार स्नेह-कृपाभाजन बना रहू ।

मैने प्रॉस्टेट का ऑपरेशन नही कराया। होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक, ऐलोपैथिक, प्राकृतिक सभी तरह के उपचार कराता रहता हू । अब तक तो व्याधि काबू मे है। बम्बई में श्री श्यामलाल भगवती नामक एक सज्जन है। कई वर्षो तक जर्मनी मे व्यापार के लिए रहे। अब निवृत्त जीवन है। उन्होंने मुझे जर्मनी की कुछ गोलिया दी। बहुत लाभ हुआ। नागपुर से ८ मील पर खापरी एक गाव है। वहा एक तरुण सन्यासी ने एक 'इन्स्टीट्यूट ऑफ लाइफट्रांस' नाम की सस्था खोली है। 'इलेक्ट्रोन्स' और 'प्रोटोन्स' की तरह 'लाइफट्रॉन्स'। वे दु साध्य रोगो पर यत्रोपचार करते है। जाने से पहले किसी योग्य डॉक्टर से निदान कराना होता है। उपचार के बाद फिर डॉक्टर को दिखाना होता है। मैं वहाँ तारीख २१ ५ से ८-६ तक और १६-६ से २३-६ तक उपचार के लिए रहा। लेकिन प्रॉस्टेट ग्रन्थि सिकुडी नही। अभी तो होमियोपैथिक और वह जर्मन दवा लेता हूं। बीच-बीच मे सर्जन की सलाह ले लेता हू । ऑपरेशन के बिना चारा ही नही रहेगा तो करा लूंगा। आप तो 'तुरत दान महापुन्न' वाले जो ठहरे ? ऑपरेशन कराके रोग मुक्त हो जाएगे।

मेरी समझ मे सभ्यता जीवन की वह परिणति है जिसमे दूसरे जीवो के जीवन मे बाधा पहुँचाये बिना व्यक्ति या व्यक्तिसमूह अपने सुख और समृद्धि के साधनो तथा उपकरणों का आविष्कार, सयोजन तथा प्राप्ति अपने प्रयत्नों से और दूसरो के सहयोग से करता है। इसी जीवन पद्धति के स्वीकार और विकास को मैं सभ्यता कहूगा।

सस्कृति उन विशिष्ट सस्कारों, आचारधर्मों तथा उत्सवो और विधियों का नाम है जिसमें व्यक्ति या व्यक्तिसमूह की दूसरो की सुख-सुविधा के प्रति आस्था एव आदर व्यक्त होता है। ऐसी परम्पराओ और सस्कारो को मै सस्कृति कहूगा। इसमे पड़ौसी धर्म की प्रधानता है। उसी दृष्टि से साहित्य कला और सामाजिक रीति रिवाजों का विकास होता है—पारस्परिकता की भूमिका मे।

आपने जो सकेत किया है उसमें और मैंने जो लिखा है उसमें, बहुत अन्तर नही है। मैंने भी कोई वैज्ञानिक तर्कशुद्ध परिभाषा नही की है। केवल इगित मात्र है।

चि० तारा करीब एक महीना कर्नाटक यात्रा कर रही थी। उसे तारीख ६-८ को अचानक पूना जाना पडा। उसके पिताजी का ८-८ को ऑपरेशन हुआ। पेट की आतो का कैंसर है। चि० इन्दु टिकेवर केरल मे मुजफ्फरनगर होती हुई उत्तरकाशी पहुँची है। अगस्त १५ के बाद मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश राजस्थान, हरियाणा और पजाब की यात्रा करेगी। राजस्थान मे वनस्थली की यात्रा अवश्य करने के लिए मैंने उसे लिखा है। चि० विमल नॉर्वे मे है। वहा से अमेरिका जाएगी।

मैं २५-७ से यही हूं। सितम्बर के अन्त तक यही। कृपया आप अपने ऑपरेशन के समाचार अवश्य लिखावें। "सत्य की खोज" और 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' दूसरा भाग की उत्सुकता से प्रतीक्षा रहेगी तथा 'अपनी कहानी, अपनी जबानी' की विशेष।

सौ० रतनजी को सादर नमस्कार। शेष परिवार को आशीर्वाद।

(५)

काका साहेब कालेलकर का पत्र हीरालाल शास्त्री के नाम

२०-८-७४

आपका ता० १४-८ का कार्ड मेरे हाथ मे है।

'सस्कृति' के लिये culture शब्द काम मे आता है। 'सभ्यता' के लिये civilization। 'सस्कृति' मे मुख्यतया नैतिक, भावनात्मक और रसिकतात्मक आदर्श का खयाल आता है। 'संस्कृति' मे standard of culture मुख्य होता है। नैतिक आदर्श जितना

हज़म किया हो, वही है culture। उसके पीछे जो moral standard राष्ट्रमान्य अथवा समाजमान्य होगा, वह होगा उसका intellectual भाग अथवा philosophical भाग। साथ-साथ metaphysical और aesthetic दोनों के जो मान्य आदर्श हो—वही है सस्कृति।

सभ्यता मे सस्कृति का इन्कार नहीं है। लेकिन विज्ञान और कला के द्वारा रहन-सहन की जो सहूलियतें और सस्कारिता स्वीकृत होती है उसी को सभ्यता कहते हैं। सस्कृति मे standard का महत्व है, और सभ्यता मे जीवन की सफलता success in life का विचार अधिक है। सस्कृति और सभ्यता—दोनो मे समाज का खयाल है ही। लेकिन सस्कृति मे व्यक्तिगत उत्कर्ष का खयाल अधिक है।

'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' का दूसरा भाग मिलेगा तब पढूगा। रतनजी की पुस्तक मिलेगी तब देखूगा।

'सत्य की खोज' महत्व की चीज होगी।

मैं मृत्यु को सकट रूप नही देखता। वाक्य के अन्त मे पूर्ण विराम आता है, वैसा ही मृत्यु है। एक कडिका (पैरेग्राफ) पूर्ण करते है, दूसरी कडिका की तैयारी के लिए। वैसा ही मृत्यु है। मृत्यु इसी क्षण आ जाए तो उसके लिये तैयार हू। और सौ बरस तक उसकी राह देखनी पडे तो भी तैयार हू। मृत्यु टालना, या जल्दी लाना, दोनो का उत्साह मुझ मे नही है। मैं तो मृत्यु को ईश्वर की एक सुन्दर, कल्याणकारी देन मानता हूं। जीवन और मृत्यु का चिंतन एकत्र रहना चाहिए।

आजकल बहुत सी बातें भूल जाता हू, यह भी ईश्वर की देन है।

(ख) पद्यरचना

१० महीनों के अर्से में मैं बहुत थोड़े पद्यों की रचना कर सका। उनमें से कुछ पद्य नीचे दिये जा रहे हैं।

चिन्तन

(१)

दिखता नहिं बीज अदृश्य बना,
रज भी दिखता न अदृश्य बना।
यह मानव का तन खूब बना,
पशु का तन भी यह खूब बना।
इसमें कितने कल ओ पुर्जे,
फिट है यह यंत्र विचित्र बना।
यह मानव का दिल अद्भुत है,
अति अद्भुतशक्ति दिमाग बना॥

(२)

कब सूरज तारक चाद बने,
इनकी गिनती न असंख्य बने।
नजदीक बने कुछ दूर बने,
फिर शेष सुदूर अनन्त बने।
चलते कितने स्थिर हैं कितने,
चलते वह भी स्थिर से हि बने।
किसने रचना करदी इनकी,
अथवा अपने सब आप बने॥

संकल्प

(३)

हम चिन्तन वारहि बार करें,
हम केवल मन्थन माहि रमें।
हमको नहि दूसरि बात रुचे,
हम एकहि कारज माहि रमें।
यह मुश्किल है वह मुश्किल है,
इस मुश्किल से कुछ नाहि डरे।
हम जूझ रहे रण खेत डटे,
हम जीत हुए बिन नाहि टरे॥

दो की एक रूपता

(४)

हमरा जुहि रूप वही तुमरा,
तुमरा जुहि रूप वही हमरा।
हमरा जुहि काम वही तुमरा,
तुमरा जुहि काम वही हमरा।
हम काम करें तुम काम करो,
नहि मानत है तुमरा हमरा।
बस काम चले यहि चाहत है,
बिन भेद किये तुमरा हमरा॥

अर्धनारी, अर्धनर

(५)

नारी नही केवल शुद्ध नारी,
मिला हुआ है नरतत्व थोड़ा।
विशुद्ध कोई नर भी नही है,
स्त्रीतत्व भी है नर मांहि थोड़ा।

(६)

(रतनजी को दिल्ली स्टेशन पर चलता देखकर)

रतनजी तन भार लिये चलीं,
कमर से टुक वो झुकती चली।
भर गया दम तो रुकती चलीं,
तदपि वो सबला चलती चलीं॥

(७)

कामण

विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले कामण गीत का सशोधित रूप। इसमे पति-पत्नी की आदर्श एकरूपता का चित्रण है।

वना हो जाज्यो हुश्यार, कामण आज करू'ली ॥
था पर जादू करू'लीर
थां पर टोणों करू'ली
वना रीज्यो खब्बरदार, कामण आज करू'ली ॥ १ ॥

वनी म्हे भी छा तैयार, कामण वार करोजी ॥
म्हां पर जादू-करोजी र
म्हा पर टोणों करोजी
वनी टाडा खब्बरदार, कामण वार करोजी ॥ २ ॥

वना हो जाज्यो हुश्यार कामण आज करू'ली ॥
थाने वस में करू'ली र
थाने तावे करू'ली
वना वेगा हो तैयार, कामण वार करू'ली ॥ ३ ॥

वनी कद का म्हे तैयार, कामण क्यों न करोजी ॥
जाणै वस मे करोला क
जाणं वस मे होओला
वनी समझो सोच विचार, कामण फेर करोजी ॥ ४ ॥

वना हो जाओ हुश्यार, ऐस्यो ख्याल करू'ली ॥
सारा घरकां नै रूसार
सारी दुनिया ने विसार
रैस्यां म्हारी ही थे लार, देखो ख्याल करू'ली ॥ ५ ॥

वनी होजाओ तैयार, कामण म्हे भी करांजी ॥
वनी घर कां ने हरसार
वनी दुनिया ने अपणार
करस्यां मिलजुल कर ब्योवार, कामण म्हे भी करांजी ॥६॥

वना घणा थे हुश्यार, कामण थे ही कर्‌योजी ।।
मैं दासी अर थे उमराव
जद भी दिल मिलवारो च्याव
म्हारा जोड़ी रा भरतार, कामण थे ही कर्‌योजी ।। ७ ।।

वनी बराबरी रो प्यार, कामण काई करांजी ।।
ना कोई दासी ना सिरदार
नर-नारी दोन्यूं इकसार
योही विना भेदरो प्यार, कामण काई करांजी ।। ८ ।।

वना जबरो छै यो प्यार, कामण हो ही गयोजी ।।
भल हो न्यारा-न्यारा रूप
या मैं आतम एक अनूप
वना मिल्यो जुल्यो सरुप, कामण हो ही गयोजी ।। ९ ।।

वनी दो नहिं एक ही रूप, शामिल कामण भी हुयो ।।
एक आतमा एक सरीर
न्यारो कुछ नहिं सब कुछ सीर
अरधानारीसर तसवीर, कामण सीरको हुयो ।।१०।।

(८)

गाली

इसमें जीमने जिमाने पर सरकार द्वारा लगायी वन्दिसों की खिल्ली उड़ाई गयी है।

जाओ जाओ जी जनैत्यो,
कोरा आज जावोला।
राजरा कानून करड़ा,
नितरोजीना निकले खरड़ा।
ठंडो मीठो म्हारे पीयो,
जीमण घरां करोला ।।

भाग दौड कर घरां जाओ,
मिल जावे सो बेगा पाओ।
नयी वन्दिस लागगी तो,
तारा गिणता रैवोला ।।
म्हे थी काल जनेती वणस्यां,
थां सिरका ही कोरा रहस्यां,
थां वीती सो म्हा में वीत्या,
राजी थे हो जाओला ।।

(६)

मेरी धृष्टता

दामोदर मिश्र कृत वाणी-भूषण के गीतिका वर्ण छन्द के नीचे लिखे उदाहरण के कुछ अंश मुझे १६१६ से लेकर पिछले महीने भर पहले तक खटकते रहे :—

अलमीशपावकपाकशासन वारिजासनसेवया
गमितं जनुर्जनकात्मजापतिरध्यदेव्यत नो मया
करुणापयोनिधिरेक एव सरोजपत्रविलोचन:
स परं करिष्यति दु खमोपमशेप दुर्गतिमोचन ।

ईश (महेश) और वारिजासन (ब्रह्मा) के साथ पावक (अग्नि) और पाकशासन (इन्द्र) को लगाना बहुत उपयुक्त नहीं है। वैसे ही ब्रह्मा और महेश के साथ विष्णु आना चाहिए। उसके बजाए जनकात्मजापति (राम) आया सो भी कम उपयुक्त है। "मया" कहने से खुद को ही उपालम्भ देना हो जाता है। इसलिए मैंने "नो मया" की जगह "नत्वया" कर दिया। आंख की उपमा कमल से दी जाती है, न कि कमल के पत्ते से। दुर्गति शब्द अशुभ सा लगता है, उससे संकट शब्द अच्छा है।

इसलिए मैंने उपर्युक्त श्लोक को इस प्रकार बदल दिया—

अलमीश्वरस्य पितामहस्य च भक्ति संयुतसेवया
गमितं जनु कमलालयापतिरव्य सेव्यत न त्वया
करुणापयो निधिरेक एव सरोजपुष्प विलोचन:
स परं करिष्यति दु:ख मोपमशेप संकट मोचन:

ऐसी धृष्टता मैं करता ही रहा हूँ।

(ग) लेख

वैसे ही १० महीनों के अर्से में लेख भी बहुत थोड़े ही लिखने में आये। उनमें से कुछ लेख भी यहां प्रस्तुत हैं।

(१)

स्त्री बनाम पुरुष ?

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष के शरीर और व्यक्तित्व को अलग-अलग बनाया है। दोनो कुछ बातो में समान है तब भी कई एक बातो मे सर्वथा भिन्न हैं। मै स्त्री और पुरुष दोनो को एक दूसरे के पूरक देखता रहा हूँ। अर्धनारीश्वर की कल्पना मुझको बहुत सुन्दर लगती रही है।

कल यहा वनस्थली मे काका साहेब कालेलकर ने जो कुछ कहा है सो मेरी समझ मे बिल्कुल नहीं आता है। अपने यहा भारत मे कानून मे स्त्री और पुरुष दोनो के बराबर का अधिकार प्राप्त है। स्त्री मे योग्यता हो तो उसे नेतृत्व करने से कौन रोकता है, कौन रोक सकता है ?

काका साहेब ने कहा—आज तक पुरुष ने नेतृत्व किया, अब स्त्री को पुरुष से नेतृत्व छीनकर अपने हाथ मे ले लेना चाहिए। मैं सोचता हू स्त्री अपने स्वभाव और सामर्थ्य के अनुसार काम करती आयी है। उसके पास माता बनने का सबसे बड़ा और सबसे ज्यादा पवित्र अधिकार है। वह अधिकार क्या स्त्री से पुरुष के पास जा सकता है ?

काका साहेब ने कुछ विचित्र सी बातें कही जिनके कारण स्त्री के हाथ मे नेतृत्व जाना चाहिए। एक तो पुरुष में ईर्ष्या बहुत होती है। दूसरे, पुरुष युद्ध प्रेमी होता है। तीसरे, पुरुष शोषण करता है।

ईर्ष्या स्त्री मे अधिक होती है या पुरुष मे ? भारत मे जिस स्त्री के पास आज नेतृत्व है वह ईर्ष्यालु नही है क्या ? उन्होंने हाल मे ही भारत में एक वैसा युद्ध करके दिखला दिया जैसा उनके पिता (पुरुष) नही दिखा सके थे। और शोषण करना तो मुझको स्त्री का स्वभाव ही मालूम होता है।

इस नये जमाने मे भी कोई सी भी लडकी अपने से दूसरे नबर पढने वाले लडके से विवाह करना पसन्द नही करेगी। विवाह के समय वर वधू से भले ही कहना होगा—तू मेरे पीछे-पीछे चल। पर हम सब लोग वधुओं के पीछे-पीछे चलने वाले बहुत से वरों को जानते हैं।

स्त्री सन्तान को जन्म देने वाली और उसका पालन-पोषण करने वाली माता है। वह अपने पति के लिए भी कुछ काम माता के जैसा करती है। आजकल बहुत सी स्त्रिया घर के बाहर के काम भी करने लगी है। ऐसी स्त्रियो के घर के कामो मे भी उनके पतियों को हाथ बटाना चाहिए।

स्त्री के बिना पुरुष का काम नही चलता, पुरुष के बिना स्त्री का काम नही चल सकता। कोई लडका या लडकी विवाह न करना चाहे तो उनको कौन मजबूर कर सकता है। बाकी साधारणतया तो अच्छी बात यही है कि स्त्री और पुरुष विवाह सूत्र मे बधें और अपनी योग्यता के अनुसार अपने अपने हिस्से का काम करें।

(२)

सालगिरह

विचार तरंग

१५ नवम्बर को मेरी सालगिरह है। ७४ साल पूरे होकर ७५ वे मे प्रवेश होगा। आज से ५२ साल पहले मेरे एक साथी राजकर्मचारी ने अपनी खुद की सालगिरह के मौके पर कहा था कि कितनी मूर्खता की बात है कि सालगिरह को खुशी का दिन माना जाता है। उनकी राय मे सालगिरह के दिन इस बात का रज होना चाहिए कि उम्र मे से एक साल कम हो गया। मेरे सोचने के अनुसार सच बात यह है कि अनादि और अनन्त काल के सामने शताब्दियों और सहस्त्राब्दियो तक की भी कोई गिनती नही हो सकती तो किसी एक आदमी की सौ पचास साल की उम्र की क्या गिनती हो सकती है और उसकी उम्र के किसी एक साल के घटने या बढ़ने की तो बात ही क्या की जाए ? रेलगाडी मे सफर करते हुए जब एक बड़ा स्टेशन आता है तो कुछ सतोष होता है कि चलो इतना रास्ता तो कट गया और आगे अब इतना और बाकी है।

मैं अनन्त की कल्पना करते करते हैरान हो जाता हूँ। जो कुछ दिखायी देता है उसके अलावा न दिखायी देने वाला बहुत ज्यादा है। न काल की सीमा, न देश की सीमा। कहते हैं अदृश्य मे से ही दृश्य पैदा होता है। मुझे लगता है कि किसी दिन भौतिक विज्ञान ही आत्मा को सिद्ध कर देगा। इतना तो आज भी है ही है कि ज्यो-ज्यो वस्तु छोटी होती जाती है त्यों त्यो उसकी शक्ति बढती जाती है, यहा तक कि अदृश्य अणु-परमाणु की बड़ी भारी शक्ति मानी जाती है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम, ऐसे चलते चलते अदृश्यता आ जाती है और अदृश्य मे अधिक से अधिक शक्ति हो जाती है। इस प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म अदृश्य का अन्तिम रूप आत्मा ही नहीं होता होगा क्या ? और अदृश्य मे, आत्मा मे उलटे चलने लगे तो स्थूल की ओर बढ़ते बढ़ते समुद्र, पहाड़ आदि के निर्माण तक नहीं पहुँच सकते क्या ?

जो हो, इन हवाई उडानो मे क्या बडा मतलब रखा है ? मेरे लिए मतलब की बात यह है कि मैं कैसे ही पैदा हो गया, पैदा हुआ तब से मुझे सास आ रहा है और मैं जिन्दा हूँ। जिन्दा हूँ तो मुझे कुछ न कुछ करना पडता है। तब मैं सोचता हूँ कि जो कुछ मैं करूं वह अच्छा ही क्यो न करू ? इस आधार पर सत्कर्म मे लगे रहना मेरा धर्म हो जाता है। जो सत्कर्म मेरे अपनाने मे आ गया वही मेरा स्वधर्म है। स्वधर्म मे लगे लगे ही "मिट जाना" अच्छा है, क्योकि परधर्म को "भयावह" बताया है। मेरे स्वधर्म को ही अपना स्वधर्म मानने वाले समानधर्मा है। मिल जाने पर तो उनसे मुझको कुछ न कुछ अपेक्षा होने लगती है। किसी से भी अपेक्षा रखने की वृत्ति से अपने आपको बचाते हुए स्वधर्म मे लीन रहना यही प्रयास मेरे करने का है इन शब्दो के साथ मैं आज के दिन वनस्थली परिवार का अभिवादन करता हू !!

(३)

भारत की नारी

भारत के वैदिककाल मे अर्थात् प्राचीनकाल के प्रथम चरण मे नारी का स्थान बहुत ऊंचा था। नर के मुकाबले मे नारी किसी प्रकार से नीची या कम नहीं थी। बाद मे रामायण काल मे अर्थात् प्राचीन काल के द्वितीय चरण मे नारी की स्थिति मे कमी आना शुरु हुआ और पौराणिक काल अर्थात् प्राचीनकाल के तृतीय चरण मे तो बहुत ज्यादा कमी आ गयी। मध्ययुग मे पहुँच कर तो नारी की स्थिति बहुत ज्यादा बिगड गयी। फिर अग्रेजों के जमाने मे समाज-सुधारको के प्रयत्न से भारतीय नारी की स्थिति मे सुधार होने लगा। और स्वाधीनता के बाद तो नर और नारी की स्थिति मे कानून की निगाह मे कोई विशेष अन्तर रहा ही नहीं। नारी के लिए कोई सेवा क्षेत्र वर्जित नहीं रहा। एन०सी०सी० तक मे युवकों के साथ-साथ युवतिया भी दाखिल की गयी जिसे सेना क्षेत्र का पूर्वरूप माना जा सकता है।

जब हम भारत की नारी की बात करते हैं तो हमें साफ-साफ समझ लेना चाहिए कि भारत की कौनसी नारी हमारे दिमाग में है। भारत की पौन आबादी गावों में है और काफी आबादी उन कस्बों और शहरों तक में भी है जिनकी हैसियत गावों से बहुत भिन्न नही है। खेतों और कारखानों में काम करने वाली नारी से मिलती-जुलती स्थिति कस्बों और शहरों में बसने वाली नारी के अधिकांश भाग की स्थिति है। इस सारे नारी समुदाय के लिए आज कल की शिक्षा बेकार से भी ज्यादा है। तब फिर बहुत थोडी, संभवत. दो चार प्रतिशत, नारी संख्या बचती है जिसका चित्र हमारे दिमाग में उभरता रहता है, शिक्षा (कुशिक्षा ?) सुधार (बिगाड ?), आजादी (उच्छृ खलता ?) आदि की दृष्टि से। हमें यह भी नही भूलना चाहिए कि सम्पन्न घरों की नारियों के लिए मौज शौक के अलावा कोई बच्चों की संभाल तक का भी काम नही है।

अधिकांश नारी समाज को नर के साथ-साथ घर के बाहर भी काम करना पडता है। अमुक अश को काम करने की जरूरत ही नही होती और अमुक अश के सामने घर के बाहर कोई करने लायक काम नही होता। मतलब यह है कि गाव और कस्बे आदि में बसने वाले नारी समाज के अलावा कुछ अंश और हैं जो कुछ तो शौक से और ज्यादातर मजबूरी से घर के बाहर का काम करता है। इस प्रकार नारी पर नर की अपेक्षा काम का, परिश्रम का अत्यधिक भार पडता है। माता बनना अपने आपमें बहुत बडा काम है, बच्चों के पालन-पोषण का काम भी कुछ कम नही है। रसोई का और घर को संभालने का काम भी कम नही है। और इन सब बातों के अलावा नारी को प्राय नर की भाति घर के बाहर भी काम करना पडता है सो सोचकर देखा जाए तो नारी के साथ एक प्रकार से बडा अन्याय है।

इस स्थिति का क्या इलाज हो ? माता बनने का काम प्रकृति ने नारी के सुपुर्द कर दिया सो उसका पातीदार नर को बनाने की कल्पना नही की जा सकती। बच्चों के साथ अन्याय नही करना है तो अमुक उम्र तक उनको माता के संरक्षण में ही रखना होगा। इसलिए नारी को घर के बाहर काम करना हो तो वह न्याय से उसको अमुक उम्र के बाद ही हो सकता है, होना चाहिए। भारत में कानून की ओर से नारी के मार्ग में कोई रुकावट नही है। सेना क्षेत्र की पाबन्दी का हट जाना भी मुझको असभव नही लगता है। इजरायल जैसे छोटे देश में ही नही बल्कि रूस जैसे बडे देश में भी ऐसी कोई पाबन्दी नारी के लिए नही है। मेरी खुद की राय में नारी के लिए सेना का द्वार भी खोल देना चाहिए। साराश यह है कि नारी को भारत में नर के तथाकथित अन्याय के खिलाफ झगडा करने की कोई जरूरत नही है।

आज के मशीनयुग में शारीरिक शक्ति की उतनी जरूरत नही रह गयी है। फिर भी कई काम ऐसे साफ दिखायी देते हैं जो नारी के बस के नही माने जा सकते। नारी का सहज स्वभाव भी नर से भिन्न है। बहरहाल नारी नर नही बन सकती न उसे नर की बराबरी या उससे स्पर्धा करने की कल्पना ही करना चाहिए। नर के बराबर अधिकार वाली

स्वाधीन नारी को निर्भय और स्वरक्षित होना चाहिए। उसे दब्बू नहीं तो निर्लज्ज भी नहीं होना चाहिए। पर नारी में एक प्रकार की कमजोरी तो है, नर के सामने दब जाने की। ऐसी हालत में नारी के शील की रक्षा करना जरूरी मालूम होता हो तो उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करना भी अनिवार्य होगा, खासतौर से समाज के निठल्ले और सभ्य कहलाने वाले भाग में और वह भी नारी की कुमारीअवस्था में। सवालों के इस सवाल का जवाब है सावधानी, मर्यादापालन।

(४)

विरोधाभास, धृष्टता

किसी दिन मैंने गाया —

न काम मेरा भगवान का है,
चिन्ता मुझे क्यों भगवान को हो।।
संकोच क्यों हो मुझको जरा भी,
संकोच हो सो भगवान को हो।।

बाद में मेरी जवान से निकल गया —

किमु आस करे इससे उससे,
हम आस करें न विसंभर से।।

इन दोनों बातों का मेल नहीं खाता है। एक तरफ तो अपने काम को भगवान का काम बताकर निश्चित होना चाहा, दूसरी ओर यह अहंकार प्रकट हो गया कि हम इससे उससे यानी किसी मामूली से तो आशा रखें ही क्या हम तो स्वयं विश्वभर तक से आशा नहीं रखते।

अभी चार पांच दिन हुए होंगे, मैं अपने यहां के स्थानीय कार्यकर्ताओं से बातें कर रहा था तो मेरे भीतर छिपी हुई धृष्टता बाहर निकल पड़ी। मैंने कहा, "जानते हो, आजकल की घोर कठिनाइयों के बीच में निश्चित मस्त कैसे दिखायी देता हूं? मेरे सवाल का उत्तर मैंने ही दे डाला। मैंने बताया कि मेरे पास दो "नौकर" हैं, बड़े ही वफादार, मेहनती और मुफ्त के नौकर? उन दोनों को मुझे कोई सा भी काम बताना नहीं पड़ता। वे दोनों अपने आप ही, मेरे किसी निर्देश की प्रतीक्षा किये बिना ही, दौड़-दौड़ कर मेरा काम करते रहते हैं। और वे दोनों बहुत ज्यादा समर्थ हैं, उनके बस के बाहर का कोई काम नहीं है। ऐसे एक नहीं, दो-दो नौकरों के होते हुए भला मुझको चिन्ता करने की क्या जरूरत पड़ी है।

वे दोनो नौकर कौन हैं ? उनके नाम क्या हैं ? मैं अपनी झाडशाही बोली मैं बोल रहा था । एक को नाव छै "भगवानो' और दूसरा को नाव छै 'भागौतो" अर्थात एक भगवान और दूसरी भगवती । क्या यह ढीठना की हद नहीं हो गयी ।

रतनजी ने कहा कि यह सर्वथा अनुचित है, एकदम गलत है । भगवान और भगवती को 'नौकर" समझना और ऐसे मुहफट तरीके से नौकर बना भी देना । उसी समय किसी एक दूसरे ने यह कहा कि भगवती-भगवान अपने भक्तों के वशीभूत तो होते ही हैं न ? इस पर से रतनजी बोली–"आप भक्त कब से हुए ?"

पता नहीं ऐसी स्थिति मे मै क्या करू ? मुझे एक बात अचानक सूझी और मैंने उस बात को तपाक से दूसरो के सामने प्रकट कर दी और आज उसे लिख भी डाला । मैं भीतर-भीतर ही कुछ-कुछ सिकुडता तो हूँ, बाकी मेरे मन मे मे यह बात निकलना नही चाहती कि भगवती और भगवान दोनो ही मेरे काम के लिए रात-दिन हाजिर रहते है, तभी तो यह सब कुछ हो रहा है । एक बार मैंने यह भी कहा था कि मालिक नौकर होता है और नौकर मालिक । जो कुछ हो, "अब तो बात फैल गयी, जाणे सब कोई ।" हे भगवती ! हे भगवान !! मैंने तो अपनी कह डाली, तुम्हारी तुम जानो !!

(५)

अपनी कठिनाइयां, अपना आत्मविश्वास

अपनी मूल कठिनाई शुरू से आज तक वित्तीय रही है । वित्तीय कठिनाई मे से पैदा होकर अच्छे और काफी मकान न होने की कठिनाई किसी न किसी रूप मे अपने यहा बनी हुई है । शुरू के मकान अभाव मे बने थे, बाद मे रुपये की कमी रहते हुए बनते रहे हैं । इसी प्रकार अन्य साधन भी जुटते रहे ह । कई एक साधनों की तो अपने पास समयानुसार कभी भी कमी नहीं रही, कुछ साधनों की कमी आज तक बनी हुई है । पिछले सालो मे अपनी वित्तीय कठिनाई बढ़ती ही रही और वह वर्तमान मे तो बहुत ही ज्यादा बढी हुई है । अपनी वित्तीय कठिनाई का सबसे बडा जिम्मा राजस्थान सरकार का है जो अपने अनुदानो मे लगातार लाखों की कटौती करती रही है । जो हो, वित्तीय कठिनाई का हल अपन जैसे तैसे कर ही लेंगे ।

अपनी दूसरी बडी कठिनाई देश की बराबर बिगडती जा रही आर्थिक स्थिति के कारण है । देश की आर्थिक स्थिति का असर अपने यहा भी पहुँचा है जिसकी अपने को आज तक तो कोई बडी पर्वाह नहीं हुई, परन्तु अब लगता है कि उस कठिनाई ने अपने को हिलाना शुरू कर दिया है । बाजार मे जरूरत का सामान अव्वल तो मिलता ही नहीं है, जो मिलता है वह बहुत खराब, मिलावट का मिलता है और वह बेहद महगा भी होता जा रहा है ।

वनस्थली में हजारों व्यक्तियों के लिए व्यवस्था करना कितना कठिन है, यह कल्पना हर किसी को कपा देने वाली है। अपने को आमदनी बढानी होगी और छात्राओं के यहा से भी ज्यादा रुपया मगवाना पडेगा। और कई एक आवश्यक वस्तुओं मे स्वावलंबी बनने के अपने प्रयत्नो की गति को भी बढ़ाना होगा।

अपनी तीसरी बडी कठिनाई उपर्युक्त मानव सामग्री की कमी मे से पैदा होती है। अपने कार्यकर्ताओ को, छात्राओ को बाहर की अवाछनीय हवा के असर से बचाये रखना वनस्थली के लिए भी कभी न कभी बहुत ज्यादा मुश्किल हो सकता है। मैं पिछला एक महीना अपने यहा के जनसमुदाय से सीधा सपर्क साधने मे लगा चुका हूँ। जो कुछ मैंने देखा, सुना, उससे मुझको कुल मिलाकर सतोष हुआ है। मुझको आशा है, विश्वास है कि अपन अपने को बाहर की दूषित हवा से बचाये रखने मे आगे भी आवश्यक सफलता प्राप्त करते रहेगे। इस सम्बन्ध की कठिनाई देश मे देशभक्ति की, भावना की और अपने यहा परिवार भावना की कमी मे से पैदा होती है। दुःख का विषय है कि देश मे सर्वत्र स्वार्थ, छलकपट, चोरी का दौर-दौरा है और देश मे ही अपन भी रहते हैं।

अपनी चौथी कठिनाई का मूल देश की चालू शिक्षाप्रणाली मे खोजा जा सकता है। देश की जो भी जैसी स्थिति है उसी मे से अपने यहा की मानवशक्ति का पोषण हुआ है और जो भी जैसी भी शिक्षाप्रणाली प्रचलित है उसी मे से अधिकतर अपना भी शिक्षण-कुशिक्षण हुआ है। अपन ने अपने यहा शिक्षा के पूर्ण रूप की जो कल्पना कर रखी है उसे पूर्णतया सिद्ध कर सकना अकेले अपने वश की बात नहीं है। तथापि जी तोडकर कोशिश करते रहना अपना काम है। सतोष की बात है कि राजस्थान मे सर्वप्रथम अपने उच्च माध्यमिक विद्यालय को स्वायत्तता मिलने जा रही है जिससे अपन कुछ न कुछ लाभ तो उठा ही सकेंगे। आगे चलकर किसी दिन किन्ही महाविद्यालयो को भी स्वायत्तता मिलेगी तो अपने महाविद्यालयों को भी अवश्य मिल जाएगी।

मैंने पिछले महीने के अपने सपर्क—कार्यक्रम के दौरान वनस्थली परिवार के छोटे बडे सभी व्यक्तियों से कहा है कि अपन सवको वनस्थली के आत्मा की अर्थात् अपने आत्मविश्वास की और अपनी निर्भयता की, उसके दिल की अर्थात् उसके प्यार और परिवारभावना की, उसके दिमाग की अर्थात् अपने यहा के स्वीकृत विचारो की, उसके शरीर की अर्थात् उसकी स्थूल रचना की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। वनस्थली के शरीर का परिचय कार्यविवरण, झाकी, गाइड आदि से हो सकता है। बाकी आत्मा, दिल, दिमाग का परिचय भी मैं देता रहूंगा। सवाल इतना ही है कि अपने मे से किसी को भी किसी भी हालत मे किसी भी प्रकार का सदेह, सशय न सताया करे और अपन सब रचनात्मक दृष्टि अपनाकर बात और व्यवहार किया करें। तथास्तु।

(६)

वनस्थली वनस्थली ही है !

मेरे चार हफ्ते वनस्थली परिवार से यत्किंचित् परिचय बढाने में लग चुके थे। फिर दो हफ्ते लग गये अपने यहा की मानव शक्ति की खोज मे। आखिर के तीन हफ्तो मे जब मुझको एक दूसरी ही धुन मे लग जाना पडा तो मुझसे दूसरा कोई काम नही बन पडा। सिर्फ एक लेख "सावधान !" शीर्षक से वनस्थली समाचार के १६ जनवरी के अक के लिए मकर सक्रांति के दिन मैं लिख सका और यह दूसरा लेख आज वसन्त पचमी के दिन। १ फरवरी के अक के लिए लिखने जा रहा हूँ। आज से लेकर ज्यादा से ज्यादा एक हफ्ता मैं वनस्थली और जयपुर में रह सकूंगा। फिर मैं चल पडूंगा अपनी उसी पुरानी दौड–धूप के लिए जिसके फलस्वरूप चालू सेशन मे मेरा वनस्थली में बहुत कम रहना हो सकेगा।

बात यह है कि वनस्थली वनस्थली ही है तो अपन भी अपन ही है। सच तो यह है कि अपन वनस्थली है और वनस्थली अपन हैं। दूसरो के बनाये पाठ्यक्रम अपने को पढाने पडते हैं और देश की प्रचलित शिक्षाधारा में ही अपन भी बहे चले जा रहे हैं, फिर भी मूलत अपने मालिक अपन खुद ही हैं। शुरू से लेकर आखिर तक अपने ऊपर ही अपना जिम्मा है, अपना दारोमदार अपने ऊपर ही है। अपने लिए अन्न-वस्त्रादि तथा अन्य सभी साधन जुटाने का और उनका उपयोग सदुपयोग करने का अधिकार भी अपना ही है। अपन जनता का, सरकार का, अपनी बच्चियो को जन्म देने वाले सरक्षको का सहारा स्वीकारते है। पर अपन याद रखे कि ठेका अपना ही है, तमाम नफे–नुकसान के मालिक अपन ही हैं।

इस विचित्र स्थिति मे मुझ व्यक्ति की "दुर्गत" होती रही है जिसमे बचत मेरी इसीलिए होती रही कि मेरा "दुर्गत" मे से मजा लेने का स्वभाव बन गया है। मैंने सोचा था कि मैं बाहर नही जाऊगा, यहा वनस्थली मे पडे-पडे मुझसे जो कुछ बनेगा सो ही मैं करता रहूँगा। पर आज मुझको अपना यह विचार बदलना पड रहा है। मैं कई बार बता चुका हूँ कि अपने खास प्रशासन विभाग मे शक्ति बहुत कम है। यह स्थिति मुझको चैन से पडा नही रहने दे सकती। मेरे शरीर की जो हालत हो गयी है उसी को पक्की मानते हुए मुझको तो जूझना ही पडेगा। उन चार पाच व्यक्तियो को मदद से जो अपने यहा उपलब्ध है। मैं सोचता हूँ इस भोगी हुई जान को बचाने की ज्यादा फिक्र क्यों करनी चाहिए ?

साधन जुटाने के अलावा मुझको चिन्ता है वनस्थली मे उस स्थिति को बनाये रखने की जिसकी खातिर ही साधन जुटाना मेरा धर्म बना हुआ है। वह स्थिति क्या है ? एक तो परायी बेटियो के गार्जियन बनने से उनकी सुरक्षा व शील रक्षा का जो भारी और नाजुक जिम्मा अपने ऊपर आया हुआ है उसे मजबूती से, ईमान से निभाते जाना है। किसी भी प्रकार की स्वतत्रता के फेर मे पडकर हम बेटियो के मामले मे जरा सी जोखिम भी नही उठा सकते। दूसरे, वनस्थली गुरुकुल है जहा अन्तेवासिनियां रहती हैं जिनके लिए यह स्थान

स्कूल या कॉलेजमात्र नही है, बल्कि जिनका यह अपनाया हुआ "घर" है जहा से उनको अपने जन्म के घर जाने देने के लिए गर्मी की छुट्टियो को अपन ने समझौते के तौर पर मजूर कर रखा है।

तीसरी बडी बात खादी की है। खादी जितनी छोड़ सकते थे उतनी अपन ने छोड दी है, परिवारो को छूट देकर। बाकी कार्यकर्ताओ और छात्राओ को वनस्थली मे रहते हुए किसी प्रकार की छूट देना अपने लिए सभव नही हो सकता, हितकर नही हो सकता। और कुछ नही तो अपने को अपने यहा की सादगी को तो हर सूरत मे खादी के जरिये भी कायम रखना ही है न ? खजूर के पेड पर चढा हुआ व्यक्ति किसी प्रकार नीचे की तरफ फिसल जाए तो वह ठेठ जमीन पर आकर ठहरेगा। हाल मे अपने तिवारीजी एक प्रसिद्ध शिक्षा-सस्थान मे गये थे। उनसे पूछिए वे वहा पर क्या-क्या देखकर आये हैं ? खादी के साथ-साथ अपने यहा की खान-पान की जो स्वच्छता है, उसे भी अपने को कायम रखना है।

अपने यहाँ की शिक्षक—शिक्षिका मण्डली प्रशासन प्रबन्ध मे योगदान दे, ऐसी मेरी कल्पना नही है। मैं ऐसी कल्पना करू तो वह सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो जाने वाली है। जो शिक्षा के आसनो पर विराजमान है उनका साधन जुटाना उनका साधनो के विनियोग के झझट मे पडना "स्वधर्म" न होकर "परधर्म" हो सकता है। कोई भाई या बहिन धनोपार्जन के योग्य अपनी प्रतिभा समझते हो तो उनको अपने शिक्षा के काम को प्राय. छोड़कर ही उस अत्यन्त कठिन काम मे जुट जाना पडे। जब मै शिक्षा की बात करता हूँ तो मेरा मतलब अपनी पचमुखी शिक्षा से है, केवल पुस्तकीय शिक्षा से नही। मेरा शिक्षको के लिए कुछ-कुछ मतलब शिक्षा विभाग मे उनके पीर बवर्ची भिश्ती खर बनने से है।

मैं यह कहना चाह रहा हूँ कि प्रत्येक शिक्षक—शिक्षिका को अपने नियमित काम के अलावा पचमुखी शिक्षा के किसी न किसी दूसरे काम के लिए भी यथाशक्ति कुछ न कुछ समय देने की अपनी वृत्ति बनाना ही चाहिए। किसी को भी यह नही मान लेना चाहिए कि कुछ पीरियड पढा दिया, कुछ समय पढाने की तैयारी करने मे लगा दिया और फिर छुट्टी। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार एक न एक दूसरा काम भी और कुछ नही तो तफरीह के तौर पर ही किया जा सकता है अर्थात् थोडा "डाइवर्सन" भी तो चाहिए न ? मेरी कल्पना के अनुसार आवश्यक जोड-तोड बिठा लिया जाए तो काम भी हो जाए, मन बहलाव भी हो जाए-आम के आम गुठली के दाम। प्राण शक्ति हो तो ऐसी योजना सफल हो सकती है।

साधन जुटाना मुख्यतया रतनजी का और मेरा काम है। साधनों का विनियोग करना विद्यापीठ-सचिवालय और प्रशासन विभाग का काम है। उपलब्ध साधनों से जैसे-तैसे अपना गुजर इस कठिन समय मे कर लेना बाकी सब भाई बहिनो का फर्ज है। "स्वे स्वे कर्मण्यभिरत संसिद्धि लभते नर:"। वनस्थली वनस्थली ही है, अपन अपन ही हैं। इसका अर्थ

क्या है ? अपन सब अपने मालिक हैं तो अपन सभी अपने नौकर भी है। दूसरो से अपन मदद मागते हैं, पर आखिरी जिम्मा तो अपना ही है न ? अपन कम ही साधन जुटा पाए तो अपन किस दूसरे को कहने जाए ? ज्यादा से ज्यादा लाने की कोशिश करना और जो जितना मिले उसे बाट चूटकर खाना-यह अपना परम सिद्धान्त है–जिस पर अपन चलते आये हैं।

मैंने पचमुखी शिक्षा के किसी भी अग मे अपना थोडा बहुत अतिरिक्त समय देना चाहने वालो के नाम चाहे थे। मेरे पास बीसेक भाई–बहिनो के नाम आ गये थे। फिर बीच मे ही मुझको दूसरे काम मे लग जाना पडा। ज्ञानविज्ञान मन्दिर की सवा सौ से ज्यादा छात्राओ ने भी अपने नाम दिये थे, किताबी पढाई के अलावा दूसरे कामों को करने की अपनी इच्छा बताते हुए। मैं बाहर जाने से पहले सम्बन्धित व्यक्तियो से बात करके योजना की रूपरेखा बनाने की कोशिश करूंगा। फिर उसे सम्बन्धित आचार्यों आदि के सामने रखूंगा। इस प्रकार से कुछ थोडा बहुत भी नतीजा इस सेशन के लिए निकल सकेगा तो फिलहाल मेरा सतोष हो जाएगा। बाकी अगले सेशन मे तो अपने को ऐसी योजना को पूर्ण रूप देना ही है।

(७)

मेरा कार्यक्रम

पिछले महीनो मे दौरे की भाग दौड ने, गर्मी के मौसम मे मेरे हिस्से मे आयी हुई बेकारी ने, छोटे मोटे झझटो ने, शरीर की कमजोरी ने, अपने कर्तव्यपालन की विशेष चिन्ता ने मुझको थका दिया है। मै महसूस करता हूँ कि मुझको अपने रहने के लिए एकान्त एव शान्ति का स्थान खोजना चाहिए और एक बार उसे ही अपना हैडक्वार्टर मुझे बना लेना चाहिए। ऐसे हैडक्वार्टर पर रहता हुआ मैं रुपये की खोज मे यत्र तत्र जाया करूगा, और जरूरत पडने पर वनस्थली आया करूगा। पिछले घाटे की पूर्ति का भारी काम तमाम मुश्किलो के बावजूद मुट्ठी मे आने लगा है। तथा ज्यादा से ज्यादा सालभर मे उसके पूरा हो जाने की आशा और सभावना है। उक्त काम मे सी० रतनजी की पूरी मदद मुझको मिलेगी, कुछ मदद श्याम व सुधाकर से मिलेगी, और कुछ मदद मिलेगी प्रह्लाद व वीरेन्द्र से भी। कुछ महीनो मे निर्माण के काम मे रोकड की टाण की आशका हो सकती है, पर ऐसा न हो इसके लिए पूरी से पूरी कोशिश की जाएगी।

वनस्थली का अवश्यभावी विकास मेरे दिल मे बसा है। पर उसकी मुझको विशेष चिन्ता नही है। जैसे-जैसे साधनों का जुगाड़ होता जाएगा वैसे-वैसे हॉस्पिटल, पोलिटेकनिक, होमसायन्स कॉलेज, बी० एड० (फीजिकल), सभा भवन आदि के काम होते जाएंगे। वे सब काम ३, ४, ५ सालो मे पूरे हो जाने चाहिए। उद्‌बोधन मन्दिर का काम चालू हो

गया है। उसमे धर्म नीति तथा दर्शन का अध्ययन-अध्यापन चालू करना होगा। उत्साह के साथ चालू हुए प्राकृतिक चिकित्सालय के काम को अपने यहा परिसर में लोकप्रिय बनाना होगा। म्युजियम का काम शुरू करना होगा। सभवत केमिस्ट्री मे रिसर्च का काम भी शुरू करने लायक माना जाएगा। और भी एकाध काम हो सकता है। पर ये सब काम खर्चे की निगाह से बहुत भारी नही पडेंगे और अपने को इन्हे अपनी जैसी चाल बनेगी उसके अनुसार करते जाना चाहिए। अपने यहा वनस्थली में जितनी सी निष्ठाशक्ति है वह इन सब कामो के लिए पर्याप्त सिद्ध होगी ऐसी आशा मुझको है।

मेरी अनुपस्थिति के समय के लिए कुछ बातों के विषय मे मेरा कुछ चिन्तायुक्त विचार चलता है। एक तो यह कि अपने यहा छात्राओ की सख्या ज्यादा बढे या कम बढे, उनके लिए पाव धरने को ठोर तो होनी ही चाहिए। साथ ही कई एक कार्यकर्ता भाई-बहिनो को काफी तकलीफ मे रहना पडता है सो उनको तकलीफ जल्दी से कम न हो सके तो बढनी तो नही चाहिए। थोडी बात करने से किसी हद तक मेरा इतमीनान हो गया है कि निवास के मामले मे अपन तकलीफ को भले ही चालू सेशन मे कम न कर सकें पर बढने तो नही देंगे। दूसरी बात है अपने यहाँ छात्राओ की कुल सख्या की जिसे पिछले सेशन की १७०१ से थोडी बहुत जरूर बढने देना चाहिए। क्योकि मेरी राय मे अपने विकासशील सस्थान मे अभी कुछ समय तक सख्या का घटना अनुचित होगा। बहरहाल इस सम्बन्ध मे भी मुझको आश्वस्त किया गया है, हालाकि विश्वविद्यालय की परीक्षाओ के परिणाम निकलने का अभी कोई ठिकाना न होने से अन्दाजा करना मुश्किल है।

तीसरी बात है रुपये पैसे की कमी के कारण चालू काम मे विशेष रुकावट न आने देने की। इस सम्बन्ध मे मैंने जितना हिसाब लगाकर देखा है उस पर से मुझको पूरा भरोसा है कि कोई खास तकलीफ होने की नोबत नही आएगी। आवर्तक बजट मे घाटा तो नही ही रहने दिया जाएगा। चौथी बात है पुस्तकीय शिक्षा के शुरू होने के साथ-साथ नीचे से ऊपर तक की सभी कक्षाओ मे पचमुखी शिक्षा के बाकी चारों अगो की शिक्षा को चालू करने की अनिवार्य आवश्यकता की। यह काम महाविद्यालयो मे अत्यन्त कठिन माना जाता रहा है। पर पिछली बार जो थोडा सा यत्न किया गया था उसमें जो सफलता मिलने की रिपोर्ट मेरे सामने पेश हुई उससे मुझको भरोसा होता है इस सेशन मे इस काम के सफल हो जाने का। पाचवी बात है साल भर के ३६५ दिनो मे ज्यादा से ज्यादा दिनो मे अपने काम को नियमित रुप से चालू रखने की जिसके लिए आवश्यक उपाय यथाशक्य अमल मे लाने होंगे।

उपरोक्त पाचो बातो मे से मुझको यह आखिरी बात सबसे ज्यादा मुश्किल लगती है। देश की शिक्षणसस्थाओ मे छुट्टियो की बेहद चाट पडी हुई दिखायी देती है। अपन वनस्थली वालो को उक्त चाट पर विजय पाने वाले बनना चाहिए। दूसरी सस्थाओ के मुकाबले मे अपने पास काम भी तो ज्यादा है। अपने काम के प्रति अपन कार्यकर्ता भाई बहिनो को जितनी निष्ठा होगी उतनी ही सफलता अपने को इस कठिन काम मे मिलती

जाएगी। वनस्थली विद्यापीठ को खड़ा रखने और इसे स्वस्थ अवस्था मे चलाते रहने के लिए जो जान पर खेलने की निष्ठा चाहिए उस निष्ठा की बात मैं अभी नही कर रहा हूँ। अपने पास कुछ साधन निश्चित जैसे हैं तो कुछ साधन सर्वथा अनिश्चित। अनिश्चित साधनो को आवश्यकतानुसार निश्चित बनाने की शक्ति अपने पास काफी नही। पर उपलब्ध साधनो का सदुपयोग करने की शक्ति तो अपने पास होनी ही चाहिए। इस सम्बन्ध मे अवसर मिलने पर मैं कभी बाद मे विशेष लिखूगा।

(८)

परिवर्तित कार्यक्रम के प्रकाश में.

परिवर्तित कार्यक्रम

"समाचार" के पिछले (१६-७-७४ के) अक मे मैने एकान्तवास करने का अपना विचार प्रकट किया था। उसके अनुसार मै रतनजी सहित वृन्दावन हो आया। वहाँ पर मेरे रहने के लायक दो एक स्थान पसन्द कर लिये गये और मेरे लिए स्थानीय मददगार खोजने का जिम्मा दो तीन पुराने परिचितो को दे दिया गया। मेरा मन उधर जाकर रहने की तैयारी मे लीन होने लग गया। पर एक दिन अचानक ही रतनजी ने मुझसे कह दिया कि आपको वनस्थली छोड़कर किसी भी हालत मे अन्यत्र रहने के लिए नही जाने दिया जाएगा। रतनजी ने जिन्दगी भर मेरा कहा किया है तो मैंने सोचा कि इस बार रतनजी का कहा मुझको करना चाहिए। इस प्रकार मुझे स्थान परिवर्तन का अपना विचार क्षण भर मे छोड़ देना पड़ा। अब मै वनस्थली मे ही यथाशक्य एकान्तवास करना चाहूगा, साधना के लिए और "सत्य की खोज" नामक ग्रंथ की रचना के लिए। उक्त परिवर्तन के कुछ समय बाद ही डॉक्टरो ने मुझसे कहा कि आपका हर्निया का ऑपरेशन करना होगा और उससे पहले प्रॉस्टेट का ऑपरेशन भी। प्रॉस्टेट का ऑपरेशन बड़ा माना जाता है सो डॉक्टरो ने उसे वेलोर मे कराने की राय दी है। बाद मे हर्निया का ऑपरेशन जयपुर मे हो जाएगा। अचानक पैदा हुई इस नयी स्थिति से प्रियजनो को चिन्ता होना स्वाभाविक है। मेरी बचत इतनी ही है कि मुझे खुद को चिन्ता नही हुआ करती।

वनस्थली का जिम्मा

वनस्थली के सम्बन्ध मे मुझे अधिक से अधिक विचार आता है तो यह एक ही कि अपने इस अगीकृत काम को जिस तरह से मै पहले करता था उसी तरह से करते रहने की स्थिति मे अब अपने आपको मैं नही पा रहा हू। वनस्थली मे मेरा एक खास जिम्मा रुपये देने का है और उसके अलावा मैं अपना जिम्मा मानता हू यह देखते रहने का कि आजकल के बहुत खराब जमाने मे भी वनस्थली का काम जिस लाइन पर चाहिए उसी लाइन पर चल रहा है न ? रुपये की खोज मे मैं खुद दौड़ धूप नही कर सकता तो अब रतनजी का बाहर जाना भी न सभव होगा, न उचित। दूसरे, श्याम तो अपनी मर्यादा मे दूसरे कामो

के साथ रुपये का काम भी करता ही है, सुधाकर भी यथाशक्य अपना समय वनस्थली के काम मे लगाता है। कुछ काम प्रह्लाद और वीरेन्द्र की पाती मे आता रहता है। इनके अलावा सिद्धार्थ और आशुतोष को भी एक वार तो इस काम मे जोतना पड़ेगा। मुझे खुद को वाहर जाना ही पडेगा तो मैं रतनजी को साथ लेकर यदा कदा चला जाया करूंगा। बाकी तो सारा काम मुझे पत्र व्यवहार के जरिये से ही करना पडेगा। धन सग्रह के साथ ही वनस्थली के काम को ठीक लाइन पर रखने मे, और अपने पचमुखी शिक्षा आदि के कार्यक्रम को अच्छी तरह से चलाने मे भी मै अपना योगदान देता रहूंगा। इसके अलावा वनस्थली शिक्षा को उद्योगोन्मुख बनाने की बडी लगन मुझको है।

दिल का दर्द

आज मैं अपनी एक और बात भी कहना चाहता हूं। मेरे दिल में देश की बिगडती हुई हालत के लिए बडा दर्द है। देश की कितनी भी खराब हालत होती तो उसमे भी मै बेफिक्र रह सकता था, अगर मेरी स्थिति उस हालत को ठीक करने के प्रयत्नों मे अपनी ताकत लगाने की होती तो। वनस्थली के काम को करते हुए मैंने कई बार सोचा और एक से अधिक बार एक न एक नया कार्यक्रम हाथ मे लिया। पिछली बार तो मैने अपने 'स्वाधीन ग्राम-नगर-सगठन'' के कार्यक्रम को कुछ जोर शोर से शुरू किया था। पर उसमें सर्वोपरि विघ्न मेरे दिल के दौरे ने उपस्थित कर दिया जिसमे मेरे सारे विचार धरे ही रह गये। बाद मे मुझको ज्यादा गहराई से सोचने का मौका मिला तो मेरी समझ मे आने लगा कि न केवल सामान्य ग्रामवासी बल्कि सामान्य नगरवासी भी खुद आगे होकर क्रान्ति के काम मे नही जुट सकते। उन सबको क्रान्ति के लिए प्रेरित कर सकने वाली एक सेना युवकों की चाहिए, ऐसे युवकों की जो देश के काम के लिए पागल होकर सब कुछ भुगतने को तैयार हों। इस खराब जमाने की खराबी ज्यो-ज्यो बढेगी त्यों-त्यों ऐसी युवक सेना जरूर सामने आती जाएगी। वह युवक सेना कमाल करके दिखाएगी, भले ही एक बार सम्पूर्ण अव्यवस्था ही क्यो न हो जाए। मेरा विश्वास है कि उस अव्यवस्था मे से ही नयी व्यवस्था पैदा होगी। काश, मैं भी मेरे सपने के इस काम मे सक्रिय होकर लग पाता।

(घ) मेरी डायरियों से

मैं अपनी डायरियों में से कुछ अंश यहां पर दे रहा हूँ।

वनस्थली, २२ नवम्बर, १९७३

कार्यसमिति और शिक्षासमिति की मीटिंग हुई। मैंने दोनों में ही थोड़ा थोड़ा कहा। नतीजा ऐसा निकलता हुआ दिखायी दिया कि एक कमेटी तो नियमों की स्थिति को देखे, उनके अनुसार काम करने के तरीकों पर विचार करे और नियम-पालन किस तरह से कराया जाए इस पर विचार करे। यही कमेटी सेशन के बीच में छुट्टी करने न करने के बारे में, खादी के बारे में विचार करे-कार्यकर्त्ताओं में, लड़कियों से कैसे अमल कराया जाए इस पर विचार करे। दूसरी कमेटी आजकल जो कठिनाइयां सामने आती हैं, साधनों आदि की कमी के कारण उनके सबंध में विचार करे कौन कौन से साधन चाहिए, कितने रुपये खर्च होंगे और एक तीसरी कमेटी भी बने जो बड़ी योजना बनाने का काम करे-काम का कितना विस्तार करना है, उसके लिए रुपया मकान, आदमी आदि जुटाने के बारे में क्या क्या किया जाए इत्यादि। मैंने कार्यकर्त्ताओं का आह्वान किया कि आप लोगों में से कुछ तो ऐसे सामने आने चाहिए जो अपनी पूरी शक्ति काम में लगाने को तैयार हों। रुपये पैसे लाने का न सही, पर शिक्षा का काम तो अच्छी तरह से करें, दो चार पीरियड पढ़ाने के अलावा भी शिक्षा के बाकी कामों में हिस्सा लिया करें।

वनस्थली, १० दिसम्बर, १९७३

रात को बाई की तबियत बहुत खराब हो गयी बतायी। रतनजी को तिलक चौक में बुलाना पड़ा। रतनजी का पलंग खाली देखकर मुझे शक हो गया था—मैंने तिलक चौक जाना भी चाहा था, पर गया नहीं। बाई की छाती में बड़े जोर का दर्द हो गया था-एकदम चीखने चिल्लाने जैसा। एक दवा देने से राहत मिली। डॉक्टर साहब ने इंजेक्शन भी

लगाया। श्याम का खयाल है कि हॉर्ट ग्रटैक तो नही है। पर भरोसा नही हॉर्ट ग्रटैक भी अचानक ही जाए। इसका एक असर तो यह होगा कि रतनजी का तत्काल बाहर जाना नही होगा। इसका उपाय भी क्या है? मैं खुद बाई के कमरे मे जाकर बैठा-उनको खुश करने की निगाह मे कई बाते उनको सुनायी-तालाव को ठीक करवाना है सो-भैयाजी, मुनिजी, ग्राशुजी के काम पर लगने की बात, मोहन-सुधाकर के काम के तय करने की बात, भैयाजी का विवाह, मुनिजी-ग्राशुजी की सगाई की, ग्राभा के विवाह की गुन्नू की सगाई की, बसत की सगाई की भी। यह सब कुछ मैंने अपनी तरफ से बाई को सुना दिया। मैंने बाई के ८ बेटे बताये ग्रव्वल ग्रौर दूसरे नबर पर रतनजी-सुशीला तीसरे नबर मुझको। बाई ने ग्रव्वल नबर का बेटा मुझको बताया।

वनस्थली, २ जनवरी, १९७४

सायकालीन प्रार्थना मे गया। जहा तक मैंने देखा ज्ञानविज्ञान महाविद्यालय की एक भी लडकी प्रार्थना मे नही ग्रायी। शिक्षा महाविद्यालय की सभव है कुछ ग्रायी हो। कार्यकर्ता भी बहुत कम दिखायी दिये। यह दृश्य मुझको बहुत बुरा लगा। विश्वनीडम् मैं गया कुछ लडकिया छुट्टी पर गयी हैं। कुछ शायद घूमने को गयी हैं, कुछ स्नान कर रही बतायी। प्रार्थना मे किसी एक के भी जाने की खबर नही मिली। मैं चारपाई बिछवाकर चौक मे बैठ गया। ५–७ लडकिया ग्रायी, उनसे बातें करने लग गया। सस्कृत के कुछ श्लोक सुना दिये। एक मेरा श्लोक भी। गोठ के दिन के गीतो को कुरुचिपूर्ण बताया मैंने। पर ध्वनिया ठीक थी। मैने बातो ही बातो मे यह कह गया कि मैं पोल नही चलने दूगा। पोल रखने वाली लडकी या कार्यकर्ता से कुछ बनने वाला नही है। मैं शान्तायतन मे भी गया। लडकियो को भोजन करते देखा। कई एक जगह तीन-तीन चार-चार लड़किया शामिल भोजन कर रही थी। मैने ग्रलग थाली मे एक ग्रास ले लिया लडकियो के कहने पर भी मैने ज्यादा कुछ नही लिया। खादी का तो पता ही नही चलता। एक लड़की मिथिलेश चौधरी ने पिक्चर दिखाने को कहा तो मैंने कह दिया कि मै तो सिनेमा का शत्रु हूँ।

दिल्ली, १७ फरवरी, १९७४

ग्राज की बहुत खास बात······· की है। उसने बहुत उत्साह दिखाया ग्रौर ऐसा लगता है कि उसके द्वारा बडी ग्रच्छी सहायता मिल सकती है। उसको मैने बताया कि १८ लाख से वनस्थली दबी हुई है। ६ लाख का तो ऐडजस्टमेंट हो जाएगा या उसका बड़ा हिस्सा किश्तो मे चुक जाएगा। ६ लाख चालू खर्चे के घाटे के है जिनको छोटे चदे से चुकाना है। ६ लाख मकानो के लिए उधार लिये हुए चुकाने है सो बड़े चदे से चुकायेगे। मदन ने······· से बात की है। उसे भरोसा है कि·······से वनस्थली को बडी रकम मिल जाएगी।······· को वह वनस्थली भी ले जाएगा। एक दो दिन मे दुबारा बात करके मुझको बताएगा।······· से भी उसे ग्रच्छी ग्राशा है। उससे उसका ६–७ मार्च को ग्रजमेर मे मिलना होगा। तब

उसे वनस्थली भी लाएगा ।""""मे २० ता० के बाद बात करेगा । उसके मामले मे उसको पूरा भरोसा नही है । उसने कहा कि"""को भी """से बात करनी चाहिए । वह कुछ ऐसे लोगो की सूची भी बनाएगा जिनसे थोडा थोडा २-२, ४-४, ५-५ हजार मिल सके ।"" के पास शिल्प मदिर के एक लाख की कोशिश करेगा । यह स्थिति बहुत आशाजनक लगती है । बाकी तो समय बताएगा ।

नोट——इसमे प्रकट की गयी आशा रत्ती भर भी पूरी नही हुई है । नाम जिनके भी ये उन सबको छोड देना ठीक समझा है ।

वनस्थली, २७ अप्रेल, १९७४

बी० एड० मे सेंट्रलाइज्ड ऐडमिशन के सवाल का बडा रूप हो जाता दिखता है । ग्रोव साहब का ढ ग मजबूती का नही बताया । उनके मन में कमजोरी लगती है। ऐडमिशस के मामले मे रतनजी को मुख्यमत्री से बात करनी चाहिए । कोर्ट की कार्यवाही भी जल्दी से जल्दी करनी होगी । शिक्षा महाविद्यालय के स्टाफ से बाते हुई उसका सार प्रोफेसर साहब ने बताया । आमतौर से लोगो की मन स्थिति ठीक है । अपने को इस मामले मे युनिवर्सिटी से किसी भी हालत मे दबना नही है । परिणाम जो होगा सो हो जाएगा ।

जयपुर से वनस्थली, २९ अप्रेल, १९७४

सेंट्रलाइज्ड ऐडमिशस के बारे मे ग्रोड साहब से बात । आज सिंडिकेट मे वे कैसे क्या बात करेंगे सो उनसे जाना ।""""सिंडिकेट मे बात करके आये तब उन्होने मुझको हाल बताया । उन्होने कहा कि सेंट्रलाइज्ड ऐडमिशन्स की बात प्रिंसिपल मे मजूर कर चुके है । आज प्रोमीज्नोर की बात हुई ।" " " ने कई सवाल पूछे जिसमे से वे अपने अनुकूल रहे । बाद मे "" " स्टेशन पर मिल गया । उसने बताया कि हम लोगों ने सेंट्रलाइज्ड ऐडमिशन को नामजूर कर दिया है । और मामले को वापिस अकेडमिक कौसिल मे भेज दिया है ।

दिल्ली, २८ मई, १९७४

अपने काम की स्थिति ऐसी बन गयी है कि कुछ ज्यादा सोचते नही बनता । चडीगढ़ से कुछ आशा नही है रतनजी को, न आशा है उनको पटियाला मे । पूरा दारोमदार "" "" पर है । उनसे रतनजी का दो बार मिलना हो गया । पर अच्छी तरह से बात एक बार भी नही हो पायी । """का कल दिल्ली आना होगा तब उससे मैं बात करूंगा, उससे कहूँगा कि आपके नाम १।। लाख रुपया लिखा हुआ है । उसमे से लाखेक रुपया एक हफ्ते भर मे कही से भी कराकर दो । सभव है मेरी बात का उन पर असर हो जाए और वे कुछ न कुछ करादे जल्दी से ।"" " है ""पर भार डालकर चले गये । वहा से ३० ता० को जयपुर आएगे तब उनको पकडा जाएगा और मेरी बात उनसे हो जाए तब ठीक है । आशा तो है कि""के द्वारा ठीक ठाक काम हो जाए ।""शायद कुछ न कुछ करादे । सभव है"" "" भी कुछ दे दे । बाकी तो किसी मे भी आशा करने का आधार नही है, आशा माने जल्दी रुपये दिलाने की आशा । आगे पीछे तो आखिर काम होगा ही ।

वनस्थली, १६ जून, १९७४

आज ज्यादातर विचार वृन्दावन निवास के बारे मे चलते रहे। एक पत्र तो भालानीजी को लिखा, दूसरा जयदयालजी डालमिया को, तीसरा सीताराम जयपुरिया को। वृन्दावन मे कौन सा स्थान ठीक रह सकता है। अथवा वृन्दावन के अलावा कोई गाव हो सकता है क्या ? एक तो उस जगह टेलीफोन हो। वहा से जयपुर-दिल्ली आना जाना ज्यादा मुश्किल न हो। उधर मामूली तागे, इक्के सवारी से काम चल जाना चाहिए। खुली हुई जगह हो। एकान्त मे भी हो। मेरे साथ एक तो मामूली सहायक हो, भले ही ''''' जैसा ही हो सकता है। एक पी० ए० जैसा हो जो लिखा पढ़ी करता रहे। मैं एक विशेष ग्रथ की रचना करना चाहता हूँ। अध्ययन करके वह मुझको पढकर सुना दिया करे। कम से कम हिन्दी का टाइप जानने वाला होना चाहिए। रतनजी साथ हों तब तो कहना ही क्या ? इनके अलावा कोई एक सेवाभावी बहिन हो जो भोजन भी बनादे और मेरी दवादारू की देखभाल भी करले। रतनजी मेरे पास हो तो उनकी मदद भी वह करदें।

जयपुर से वनस्थली, ६ जुलाई, १९७४

डॉ सघवी के यहा सुधाकर और रतनजी भी मेरे साथ गये। आज उन्होने ब्लड प्रेशर भी लिया-सदा की भाति देखभाल करके बताया कि बिल्कुल ठीक है। कमजोरी लगती है सो गर्मी के कारण होगी। १४६ ब्लड शुगर आयी है सो नॉर्मल के भीतर है। १५० से ज्यादा न होनी चाहिए। वजन ७४ किलो बना है सो ठीक है। लेसिक्स आधी से ज्यादा न लें। पगतली की जलन के लिए दिल्ली वाले डॉक्टर की दवा भी लिखदी। कमजोरी के लिए एक पीने की दवा लिखदी। रतनजी को सन्तोष हुआ इस सबसे। ब्लड शुगर को १४६ से नीचे लाना जरूरी मालूम होता है।

वनस्थली, १३ जुलाई, १९७४

विनोबाजी ने सर्वोदय वालो को इजाजत दे दी है कि जो सत्य, अहिंसा और आत्म सयम का पालन करते हुए जयप्रकाशजी के आन्दोलन मे भाग लेना चाहे वे ले सकते है। जो भूदान, ग्रामदान का काम करना चाहे वे वह काम कर सकते हैं। सिद्धराज और उसके १६ साथियो ने त्यागपत्र दे दिये थे सो वापिस ले लिये। इस प्रकार सर्वोदय सघ के टुकडे होते होते बच गये। अब देखना है कि जयप्रकाशजी के आन्दोलन का कब क्या नतीजा आता है। वे बात तो एक साल मे क्रान्ति हो जाने की करते है। देखा जाएगा।

वनस्थली, ३ अगस्त, १९७४

एक वृद्ध सिख आये। प्रह्लाद ने कहलवाया था इसलिये मैं उनसे मिल लिया। उन्होंने मुझको देखते ही आशीर्वाद दे दिया। बाद मे प्रह्लाद ने उनके बारे मे कई बातें बतायी जिससे लगा कि सन्त पहुँचे हुए होने चाहिए। वे वनस्थली फिर आएगे। तब वे ८ दिन

ठहरेंगे। उन्होंने अपनी उम्र ७९-८० साल बतायी और १२० साल तक जीने की बात कही। मुझसे कहा कि तुम बहुत साल रहोगे। मैंने कह दिया कि मुझे १२० साल तक जीने की जरूरत नहीं है। बोले तुमको बहुत काम करना है। तुम्हारे सब काम सफल होंगे।

वनस्थली, २४ अगस्त, १९७४

सुधाकर कल दिये हुए ब्लड की रिपोर्ट लाया। डॉ जी सी शर्मा ने बताया कि ब्लड की रिपोर्ट ठीक आयी है। उन्होंने अपना एक वहम निकालने के लिए ब्लड का यह सिवाय टेस्ट कराया मालूम होता है। जी. सी ने राय दी है कि ऑपरेशन वेलोर में कराना चाहिए। जयपुर में ऑपरेशन हो सकता है, पर यहां पर कई घण्टों तक बेहोश रखना पड़ेगा जिसमें हॉर्ट पेशेंट होने के कारण जोखिम है। आप लोग चाहेंगे तो मैं ऑपरेशन कर दूंगा। पर मेरी राय वेलोर के पक्ष में है। इसलिए कि वहां पर ऐसे साधन हैं जिसमें बिना चीर फाड के ही प्रॉस्टेट के बढ़े हुए हिस्से को रफा दफा किया जा सकता है। वहां पर हॉस्पिटल में तीन-चार दिन से ज्यादा नहीं रखेंगे। फिर कार से मद्रास जा सकते हैं। और मद्रास से हवाई जहाज के द्वारा दिल्ली-जयपुर आ जाए। इस प्रस्ताव में सुधाकर को चिन्ता हुई और रतनजी तो घबड़ा ही गयी। पर मेरे यह प्रस्ताव तुरन्त जच गया और फौरन फैसला हो गया वेलोर के पक्ष में। डॉ. जी सी शर्मा वेलोर के डॉक्टरों को लिख देंगे। जयप्रकाशजी का ऑपरेशन वहीं हुआ है सो मैंने सिद्धराज से कह दिया है कि उनसे बात करके पूरे समाचार मुझको वनस्थली के पते पर तुरन्त भेजदे। दादा धर्माधिकारी ने लिखा है कि उनकी प्रॉस्टेट की व्याधि किसी जर्मन गोली के लेने से काबू में है। वे ऑपरेशन कराना पड़ेगा तभी कराएंगे। मेरे लिए दादा ने लिखा है कि आप तो "तुरन्त दान महापुन्न" वाले हैं सो ऑपरेशन करा कर झटपट रोग मुक्त हो जाएंगे।

———

(च) विशेष परिशिष्ट

श्री गोकुलभाई भट्ट का पत्र श्री शंकरसहाय सक्सेना के नाम

प्रस्तावना

अनुक सम्माननीय बन्धु द्वारा लिखित अनुक स्वर्गीय साथी की जीवनी के सम्बन्ध में अमुक साथी से जो थोड़ा बहुत मुझे मालूम हुआ था उनका जिक्र मैं अपनी टिप्पणी के साथ प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ २७४ में कर चुका हूँ। किसी भी साथी का खासकर किसी स्वर्गीय साथी का नाम लेकर सार्वजनिक रूप से कुछ कहना या लिखना मुझे साधारणतया अच्छा नहीं लगता है। पर श्री गोकुलभाई ने श्री शंकरसहायजी सक्सेना को लिखे गये अपने पत्र की जो नकल मेरे पास भेजी है उस और उसके साथ संलग्न प्रतिलिपियों को नीचे प्रकाशित करते समय मुझे नाम लेकर भी थोड़ा सा लिख देना जरूरी मालूम होता है।

सक्सेनाजी को मैंने सदा आदर की दृष्टि से देखा है और मैं मानता हूँ कि वे भी मुझको सही या गलत थोड़ा बहुत तो जानते ही है। वर्माजी, व्यासजी व गोकुलभाई तीनो को ही मैंने सदा अपने से बड़ा माना। वर्माजी और व्यासजी अब हमारे बीच में नहीं हैं तो उनकी शान मे कुछ भी ऐसी वैसी बात प्रकट करना मैं किसी भी हालत मे ठीक नही समझता। मैंने अपने आपको एक मामूली कार्यकर्ता से ज्यादा कभी भी कुछ नहीं माना। मुझे "नेता" शब्द से ही चिढ़ रही है और मैं सोचता रहता हूँ कि इस शब्द ने हम लोगों मे से बहुतों को नीचे गिराने का काम किया है।

मुझे इस बात का सन्तोष है कि जो जो काम मेरे हिस्से में आये उनको मैंने अपने प्राण झोंक कर करने की पूरी कोशिश की है, बहुत ज्यादा जिम्मा करीब करीब अकेले उठाते हुए। जयपुर प्रजामण्डल, राजपूताना कार्यकर्त्ता सम्मेलन, अखिल भारत देशी राज्य लोकपरिषद् की राजपूताना रीजनल कौंसिल, फिर अखिल भारतीय देशी राज्य लोकपरिषद्, फिर कांग्रेस का जयपुर अधिवेशन-सबकी वित्तीय आदि अन्तिम जिम्मेदारी मुझ पर रही थी। इसके अलावा कहीं के भी कोई भी साथी कार्यकर्त्ता मेरे सामने आये तो-और कई बार तो किसी के कहे सुने बिना आगे होकर भी-मैंने सदैव मदद करने की कोशिश की है। मेवाड़ प्रजामण्डल का सत्याग्रह चल रहा था उन दिनों में श्रीमती नारायणी देवी वर्मा दो चार दूसरे साथियों को लेकर मेरे पास आयी तो मैंने उधार लेकर कई हजार रुपये उनको भेंट किये थे। छोटी और मझली रियासतों के अलावा बीकानेर जैसी बड़ी रियासत से भी मैंने ज्यादातर अकेले ने खासतौर पर टक्कर ली थी। उदयपुर और जोधपुर रियासतों में उलझी हुई राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने का भी मैंने मुझसे हो सका सो यत्न किया था। वर्माजी उदयपुर राजधानी वाले राजस्थान के मुख्यमन्त्री बनें, इसके लिए गोकुलभाई के अलावा मैंने भी पण्डित जवाहरलालजी से पूरे आग्रह के साथ कहा था। पर इन सब प्रसंगों को अब याद करने से किसी को भी क्या मतलब है?

गोकुलभाई ने मुझे राजस्थान का प्रथम मुख्यमन्त्री बनाने के लिए सरदार पटेल से कभी भी कुछ भी नहीं कहा यह मुझे मालूम है। वर्माजी ने सरदार पटेल से जो कहा बताया कि हीरालाल शास्त्री को सत्ता न सौंप दी जाए, यह मुझे आज से पहले नहीं मालूम था और उनकी ऐसी बातचीत सरदार पटेल से कब हुई होगी इसका पता तो मुझे इस समय भी नहीं है। और वर्माजी ने सचमुच सरदार से ऐसा कहा होगा तब भी मुझे इस बात का अफसोस नहीं है कि मैंने क्यों पंडित जवाहरलालजी से वर्माजी को उदयपुर राजधानी वाले राजस्थान का मुख्यमंत्री बनाने की सिफारिश की थी। वर्माजी मुझसे नाराज हुए सो शायद इसीलिए हुए कि जयपुर का राजप्रमुख, जयपुर का मुख्यमंत्री और जयपुर ही राजधानी-यह सब क्यों हो गया। और इसलिए कि मैंने उनकी सिफारिश के अनुसार अमुक को मन्त्री बनाना उचित नहीं समझा।

सिरोही को राजस्थान में ही रखा जाए, इसके लिए गोकुलभाई ने शुरू से आखिर तक जी तोड़ कोशिश की सो मुझे अच्छी तरह से मालूम है। मैंने सरदार पटेल को दो तार दिये उनकी प्रतिलिपियां गोकुलभाई ने सक्सेनाजी को लिखे गये अपने पत्र के साथ सलग्न की है। जयपुर के तत्कालीन प्राइममिनिस्टर सर मिर्जा को मैंने कब क्या लिखा और उन्होंने मुझको क्या लिखा सो तो मैं जानता हूँ। बाकी उन्होंने किसी दूसरे को क्या क्या लिखा या कहा अथवा किसी दूसरे ने उनको क्या लिखा या कहा उसकी जानकारी मुझको बिलकुल नहीं है।

बंबई में वर्माजी ने मुझसे तथा हरिभाऊजी से कब क्या कहा या पूछा था सो तो इस समय मुझको याद नहीं है। पर मैं यह पक्के तौर पर कह सकता हूं कि राजाओं को

अल्टीमेटम की बात यो ही ग्रापस मे चली थी ग्रौर गाधीजी ने या किसी ने भी ऐसा कोई फैसला नही किया था। मेरे सामने तो यह भी सवाल ही है कि जब मैं गाधीजी के पास ही ठहरा हुग्रा बराबर उनके साथ ही बना हुग्रा था तो वर्माजी को गाँधीजी से ग्रलग बात करने का मौका कब कैसे मिल गया होगा ? ग्रौर गाधीजी से बात करके निकलने पर हरिभाऊजी ग्रौर मैं कहा पर ग्रौर कैसे बाहर मिल गये होंगे। यदि राजाग्रो को अल्टीमेटम देने की बहस चलती तो मैं ऐसे प्रस्ताव का जरूर विरोध करता। क्योंकि मैं यह नहीं समझ रहा था कि हम ग्रग्रेजो के खिलाफ लडें तो हम राजाग्रो को साथ लेने के बजाए उनसे जबर्दस्ती ग्रागे होकर लडाई क्यो छेडनी चाहिए। सयोग से जयपुर राज्य मे ग्रग्रेजो का तथा युद्ध प्रयत्नो तक का विरोध करने के मामले मे प्रजामण्डल का महाराजा से समझौता हो ही गया। मैंने ग्रपने कुछ साथियो के दबाव को प्रजामण्डल की एकता की खातिर एक हद तक माना ग्रौर जयपुर के प्राइममिनिस्टर को ग्रपना १६-६-४२ का पत्र लिख दिया परन्तु कुछ साथियो ने जल्दबाजी को तो प्रजामण्डल ने महाराजा से हुए समझौते को ग्रपनी तरफ से तोडना उचित नही समझा। ग्रौर जहा कहीं पर राजा को ग्रल्टीमेटम दे दिया गया था उसका क्या नतीजा निकला ? कही के भी प्रजामण्डल ने जैसा सघर्ष किया वैसा ही प्रजामण्डल जयपुर मे करके पहले ही विजयी हो चुका था। १६४४ मे जयपुर प्रजामण्डल ने ग्रग्रेज विरोधी ग्रौर युद्धविरोधी काम मे जितना सहयोग पड़ौस के "ब्रिटिश" इलाको को दिया वह हमेशा याद रखने जैसी बात रहेगी।

ग्रन्त मे मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि हम राजस्थान वाले दिखावटीपन से, व्यक्तिगत रागद्वेष से, प्रादेशिक भेदभाव से ऊपर उठे हुए साबित होते तो राजस्थान का बहुत भला होता। इन शब्दो के साथ गोकुलभाई के उपरोक्त पत्र को मैं नीचे ज्यों का त्यो उद्धृत करता हूँ।

मारफत भूदान, त्रिपोलिया
जयपुर-२ (राज०)
२३-८-७४

प्रिय भाई श्री शकरसहायजी,

जब मैं ग्रापसे बीकानेर मे जून (१६७४) को ता० २६ को मिला था तब ग्रापने मुझे बिजोलिया सत्याग्रह का इतिहास, तथा स्व० माणिक्यलालजी की जीवनी ग्रापकी लिखी भेट की थी। दोनो के लिए मैंने ग्रापका ग्राभार एक पत्र द्वारा माना था तथा "यशोगाथा माणिक्यलाल वर्मा" ग्र थ के कुछ भ्रमित उल्लेखो की ग्रोर ग्रापका ध्यान ग्राकर्षित किया था।

उस मेरे पत्र का उत्तर प्राप्त नहीं होने से ऐसा लगता है कि शायद वह पत्र ग्रापको मिला ही नहीं। ग्रापको पत्र मिलता तो ग्राप जरूर उत्तर देते।

ऐसी हालत मे मैं मेरी भावना, विचार और स्पष्टीकरण इस पत्र मे व्यक्त करता हूँ।

आपने दोनों ग्रंथ भेंट रूप दिये इसका आभार प्रकट करता हूँ। स्व० वर्माजी की जीवनी पढने पर मुझे स्व० माणिक्यलालजी के व नारायणी देवी के कष्टमय, सघर्षमय जीवन का दर्शन हुआ। कई बाते मैंने प्रथम बार जानी। और आपका उनसे कितना पुराना सबध है यह भी इस पुस्तक ने बताया और इसीलिए आपने आत्मीय भाव से वर्माजी को चित्रित किया है। अन्य लेखक की लेखनी ऐसे भावोद्गार नही निकाल सकती थी। आपने उनकी तस्वीर उस भाव-प्रेरणा से खीची है। पुस्तक मे वर्माजी के जीवन के विविध अंगो का दर्शन आपने एक इतिहासकार की दृष्टि से कराने की चेष्टा की है। जो जो सामग्री आपको उपलब्ध हुई वही आधार आपका होना स्वाभाविक ही था। और आपने स्व० माणिक्यलालजी को नजदीक से देखा था, जोखा था, परखा था इसलिए आपकी लेखनी उसी धारा मे चली।

पर कई ऐतिहासिक घटनाये घटी जिनके जो जो साक्षी आज मौजूद है उनसे भी आप पूछ लेते तो अच्छा रहता, यह मेरी स्पष्ट राय है। सन् १९४० मे मैं स्व० वडिल बधु तुल्य माणिक्यलालजी को पहचानने लगा था। उनकी दिलेरी के गुणगान करने वालो मे मैं हूँ। पर उनकी कुछ प्रश मे अखरने वाली बातो का भी मैं साक्षी रहा हूँ।

आपकी लिखी हुई जीवनी पढने के बाद मैंने स्व० बधु व्यासजी के विषय मे सपादित ग्रंथ "धुन के धनी" को फिर से देखा, तथा पडित हीरालाल शास्त्रीजी की "प्रत्यक्षजीवन-शास्त्र" नामक आत्मकथा भी (सन् १९७० तक की) अभी देखी पढी। उनसे "यशोगाथा माणिक्यलाल वर्मा" के कुछ अशो के विषय मे पूछा तब शास्त्रीजी ने अपनी आत्मकथा का हवाला दिया।

१९४२ के "भारत छोडो" "करेंगे या मरेंगे" का वातावरण तय्यार करने वाले महात्माजी के दिव्य भाषण को सुनने के बाद मैं बबई के बिडला हाउस गया था, महात्माजी का और क्या सदेश देशी राज्यो के लिए है यह जानने तथा महात्माजी से मिलने। महात्माजी अत्यन्त व्यस्त थे इसलिए स्व० रामेश्वरदासजी बिडला ने हम लोगो को यही कहा कि कल ९ तारीख को आप लोग आ जाना, तब सब तय होगा। मैं तो दूसरे दिन ही बबई मे बडी फजर मेरे बीले पारले के निवास स्थान से गिरफ्तार हो गया था। इसलिए तारीख ९ को न महात्माजी बाहर थे न अन्य नेतागण। पर आपने उनकी जीवनी के पृ० १४० पर उनके शब्द उद्धृत किये हैं।

"गाधीजी से चर्चा करने के उपरान्त मे जब बाहर आया तो इन्दौर के एक मित्र श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा हीरालालशास्त्री मुझे बाहर ही मिल गए। मैंने श्री हीरालाल शास्त्री से पूछा "कहिए गाधीजी की सलाह के सबध मे आपका क्या विचार है" तो शास्त्रीजी ने उत्तर दिया कि उनकी समझ मे यह नही आता कि आखिर राजा लोग अंग्रेजो का साथ

कैसे छोड देंगे। फिर मैंने इन्दौर के मित्र से पूछा तो उन्होने मेरे विचार जानने चाहे मैंने उत्तर दिया 'भाई हम तो मेवाडी है हर बार हर हर महादेव बोलते आए हैं, इस बार भी बोलेंगे।"

स्वर्गस्थ वर्माजी ने जिन दो नामो का उल्लेख किया उनमे आज शास्त्रीजी ही मौजूद हैं उन्होने अपनी आत्मकथा के पृ० ७० से ७२ मे जो वर्णित किया है उसे आप पढोगे तब आपको भी स्थिति की पूरी जानकारी हो जाएगी। जिस सामग्री को आप राजस्थान के बीकानेर स्थित अभिलेखागार मे नही देख पाये, सभवतः उसका एक हिस्सा श्री शास्त्रीजी ने अपनी आत्मकथा मे वर्णित किया है। मुझे इस विषय मे और कुछ कहना नही है। क्योकि शास्त्रीजी ने सारी स्थिति साफ तौर से बतायी है तथा शास्त्रीजी ने अपनी आत्मकथा के पृष्ठ ७४ पर लिखा है—"जब गाधीजी जेल से छूटकर आये तो मैंने उनको सारा हाल सुनाया। वे बोले तुम (यानी जयपुर प्रजामडल) ने ठीक किया और कुछ दूसरे साथियो ने जो कुछ किया वह ठीक नही था। जो कुछ तुमने जयपुर महाराजा से ले लिया उससे ज्यादा होने वाला भी क्या था ? पडित जवाहरलाल नेहरू पी० ई० एन० कार्फ्रेंस के लिए जयपुर आने वाले थे तब प्रजामण्डल और वनस्थली की ओर से भी उन्हे निमत्रित किया गया। उनकी ओर से प्रजामण्डल को पूरा समर्थन मिला। भाई हरिश्चन्द्रजी ने पडितजी को एक स्लिप लिखदी कि यह आजाद मोर्चा आपको भेंट है। पडितजी ने स्लिप मुझको दे दी और उसे मैंने अपनी जेब मे रख ली। इस प्रकार आपसी झगडे की सब बाते क्रमश, भूल मे पड गयी।"

स्वर्गस्थ वर्माजी शास्त्रीजी से नाराज थे उन्ही दिनो की जो बात आपने लिखी वह सही हो सकती है। पर राजपूताना कार्यकर्ता सम्मेलन, अन्तंभारतीय देशी राज्य लोक-परिषद की राजपूताना रीजनल कौंसिल जयपुर का काग्रेस अधिवेशन, अन्य राज्यो का दौरा वगैरह कार्यक्रमो मे हम चारो भाई स्वर्गस्थ व्यासजी, स्वर्गस्थ वर्माजी, शास्त्रीजी तथा मैं एक दिली से निष्ठापूर्वक राजस्थान का एकीकरण का काम करते रहते थे। कोई मनमुटाव मौजूदा राजस्थान का मत्रिमण्डल बनने के पहले नजर नही आया। मेरा मानना है कि स्वर्गस्थ वर्माजी ने कभी अपने रोष का जिक्र नही किया।

मौजूदा राजस्थान के मत्रिमडल का सवाल हमने आपस मे बैठकर के इस तरह से तय किया था कि हम चारो दिल्ली मे सरदार से मिलने गये उससे पहले बैठे थे और पूर्ण एक राय से हमने तय किया था कि हम चारो मे से स्वर्गस्थ वर्माजी और मैं बाहर रहेगे तथा स्वर्गस्थ व्यासजी और शास्त्रीजी मत्रिमण्डल मे जाएगे। स्वर्गस्थ सरदार के यहा हम गये तब सरदार साहब ने मुझे पहले अन्दर बुलाया और पूछा कि आप लोगो ने क्या तय किया है। मैंने जवाब दिया कि हमारी निश्चित राय यह है कि स्वर्गस्थ वर्माजी और मैं बाहर रहेगे, स्वर्गस्थ व्यासजी और शास्त्रीजी मन्त्रिमण्डल मे जाएगे। उसके बाद सरदार साहब ने स्वर्गस्थ वर्माजी और स्वर्गस्थ व्यासजी को अलग अलग बुला करके पूछा। क्या पूछा, क्या जवाब दिया इसके बारे मे मुझे कुछ मालूम नही है, न मुझे स्वर्गस्थ वर्माजी या

व्यासजी ने कहा। पर सरदार साहब ने हम चारो को आखिर मे बताया कि मुख्यमन्त्री शास्त्रीजी को बनाया जाए। स्वर्गस्थ वर्माजी को उस समय यह भ्रम हुआ कि मैने शास्त्रीजी के बारे मे सरदार को कहा। यह भ्रम उनका शायद आखिर तक रहा हो। मेरे लिए तो सरदार स्वर्गस्थ व्यासजी या शास्त्रीजी किन्ही को बना देते वह मान्य था। स्वर्गस्थ वर्माजी का मेरे प्रति बहुत प्रेम था इसलिए उन्होने मेरे बारे मे कुछ कहा हो यह हो सकता है। आपने उस विषय मे लिखा है। लेकिन एक बात मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि राजस्थान मे हम चारो मे से किसी के भी मन मे पद की लालसा नही थी। आपने खुद ने ही स्वर्गस्थ वर्माजी के बारे मे लिखा है कि उनको उदयपुर राजस्थान का मुख्यमन्त्री बनना पड़ा। महाराणाजी किसको मुख्यमन्त्री बनाना चाहते थे यह बात शायद आपको मालूम नही है। वे स्वर्गस्थ वर्माजी को चाहते ही नही थे। लेकिन मैने बार-बार महाराणाजी को समझाने की कोशिश की थी कि मुख्यमन्त्री तो वर्माजी ही बनेंगे, अन्य कोई नही। महाराणा भी अड गये थे। स्वर्गस्थ जवाहरलालजी को मैंने निवेदन कर दिया था कि अगर वर्माजी को मुख्यमन्त्री की शपथ महाराणा नही दिलवायेंगे तो हम महाराणा की शपथ के समारोह मे उपस्थित नही रहेंगे। शास्त्रीजी ने भी अलग से जवाहरलालजी को वर्माजी के पक्ष मे कहा था। उस पर मे जवाहरलालजी ने महाराणा को बाद मे समझाया था। और हम लोग देर से समारोह मे उपस्थित हुए थे।

सिरोही का प्रश्न आते ही आबू की बात सामने आती है। आपने वर्माजी की जीवनी मे एक बहुत ही गम्भीर उल्लेख किया है जिसको पढकर मुझे बहुत दुख हुआ। मुझे मालूम नही कि स्वर्गस्थ वर्माजी ने यह बात कहा से सुनी या जानी। आपने वर्माजी के सस्मरण को उद्धृत किया है (पृष्ठ १६९–१७०):

श्री वर्माजी ने इस सम्बन्ध मे अपने सस्मरण मे लिखा है "सरदार पटेल ने मुझे, व्यासजी, हीरालाल शास्त्री तथा गोकुलभाई को बुलाया और कहा कि बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर चारो मिलना चाहते है, क्या राय है? हम चारो ने स्वीकृति दे दी। श्री व्यासजी, हीरालाल शास्त्री तथा गोकुलभाई के चले जाने पर मैंने कहा कि हीरालाल शास्त्री को सत्ता मत दे देना। राजस्थान के कार्यकर्त्ता इसको पसन्द नही करेगे। सरदार ने मेरे विचार सुन लिए बोले नही। मुझे पता नही लगा कि आबू को गुजरात को दे देने के सौदे पर, जयपुर राजधानी, जयपुर का राजप्रमुख और जयपुर का मुख्यमन्त्री बनाना तय हो रहा है।"

"बडा राजस्थान बनने के समय श्री गोकुलभाई तथा श्री हीरालाल शास्त्री मेरे पास आए। कहा कि सरदार सिरोही को गुजरात मे मिलाना चाहते है। यदि हम आबू छोड दें तो वे तसल्ली कर लेंगे और सिरोही छोड़ देंगे। मैंने कहा कि शरीर छोड दिया जाय तो नाक कटा लेने मे क्या हर्ज है। आबू राजस्थान की नाक है, हम नही देंगे। दोनो उठकर चले गए। गोकुलभाई उस समय सिरोही के मिनिस्टर थे।" (श्री माणिक्यलाल वर्मा के सस्मरण)

इस विषय में कई गलत फहमिया मेरे बारे में बड़ा राजस्थान बनने के बाद प्रवाहित की गयी। लेकिन वर्मा साहब के ऊपर के संस्मरण पढ़कर गहरा क्षोभ हो रहा है। मैं पूरी जिम्मेदारी के साथ कह सकता हूँ कि उनका यह संस्मरण बेबुनियाद है। उदयपुर का राजस्थान बनने के समय राजस्थान के हम सब कार्यकर्ता रेल के खास डिब्बे में (सैलून) में सरदार के समक्ष बैठे थे तब मैंने कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से भी और सिरोही के निवासी की हैसियत से भी प्रश्न उठाया था कि सिरोही को राजस्थान में अब तो मिला दीजिए ? तब सरदार ने अपनी लाक्षणिक शैली में जवाब दिया "सिरोही को भूल जाओ" मैंने संक्षेप में इसका प्रतिवाद किया—भूलें कैसे ?

जब सिरोही का विभाजन १९४९ में जाहिर किया गया तब से आबू को राजस्थान में मिलाने के मेरे प्रयत्न जारी थे और भगवान की दया से सिरोही के और आबू रोड़ के कार्यकर्ताओं के अथक परिश्रम से तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटी की थोड़ी बहुत सहायता से १९५६ में आबू राजस्थान में मिलाने की घोषणा हुई। घोषणा होने के पहले भी श्री सुखाड़ियाजी वगैरह तो अत्यन्त निराशक ही बात कर रहे थे। मुझे इस पत्र में अभी ज्यादा कुछ नहीं लिखना है लेकिन श्री शास्त्रीजी ने अपनी आत्मकथा में सिरोही को राजस्थान में मिलाने के विषय में जो दो तार दिये थे वे तथा सरदार साहब का उत्तर इस पत्र के साथ संलग्न है।

सिरोही के विभाजन के विरोध में मैं तत्कालीन पार्लियामेंट में बजट के समय Cutmotions दिया करता था। जिसमें राजस्थान के सब लोगों को शामिल करता था। एक मरतबा गुजरात के एक सदस्य के हस्ताक्षर भी मैंने करवा लिये। वे सदस्य राजपीपला के श्री वैद्यजी थे। सरदार ने Cutmotions के कागज देखे तब मुझे बुलाकर कहने लगे कि अभी भी तू आबू को भूल नहीं गया। मैंने नम्रता से पर आग्रहपूर्वक उत्तर दिया। आबू को कैसे भूलूं, आबू राजस्थान में रहना चाहिए। स्वर्गस्थ सरदार इस एक बात पर मुझसे नाराज थे पर राजस्थान के मेरे कई भाई अभी भी यही कहते हैं और इल्जाम लगाते हैं कि मैंने आबू को गुजरात में दिया। यह मेरे विघ्न संतोषी मित्रों का हथियार है पर सच्चाई मेरे ही हक में है।

उदयपुर राजस्थान के चीफ सेक्रेटरी की बात के बारे में हमारा सबका ही आग्रह था कि बाहर से आदमी न लाया जाए अगर हमारे वहां योग्य आदमी है तो। सरदार से इस विषय में जब हम लोग यानी उदयपुर राजस्थान का मंत्रिमंडल और मैं मिले तब सरदार ने समझाने की बहुत कोशिश की थी। उन्होंने यह भी कहा था कि अनुभवी सलाहकार की उनको खुद को भी जरूरत रहती है। हम हमारे आग्रह में अड़े हुए थे इसलिए सरदार ने हमारी बात मान ली। इसमें वर्मा साहब का आग्रह था ही।

मैंने दो तीन मुद्दों के बारे में ही ध्यान आकर्षित करना चाहा। माणिक्यलालजी राजस्थान के नेता थे। उन्होंने कई काम किये। स्वर्गस्थ पथिकजी के बारे में आखिर-आखिर में उन्होंने अपनी भूल कबूल की थी यह आपने मुझको कहा था। अपने बड़ील बंधु वर्माजी को श्रद्धांजली देते हुए यह पत्र समाप्त करता हूँ। मेरी कोई गलती हो तो बताइयेगा। आप कुशल होंगे।

आपका
गोकुल भाई दौ० भट्ट

पंडित हीरालाल शास्त्री की आत्मकथा "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" से उद्धृत
(पृ० ७० से ७२)

१९४२ के "अंग्रेजो भारत छोडो" आन्दोलन का समय आ पहुँचा। १९४२ की गर्मियों में हम लोग वनस्थली में राजपूताना व मध्यभारत के कार्यकर्त्ताओं का शिविर कर चुके थे, खासकर आने वाले संघर्ष की तैयारी के तौर पर। कांग्रेस महासमिति की बैठक के समय देशी राज्यों के कार्यकर्ताओं की बैठक भी ७–८ अगस्त, १९४२ को बंबई में हुई थी। किसी ने राजाओं को लिखे जाने के लिये एक पत्र का मसविदा तैयार किया था। उसमें राजाओं को लिखने के लिए खास बात यह थी कि या तो अंग्रेजों से लड़ो या २४ घंटों के भीतर हमको यानी प्रजामण्डल को राज संभला दो। उक्त मसविदे पर विचार होना उसमें पहले ही गांधीजी आदि पकड़े जा चुके थे और देशी राज्यों में क्या हो इस विषय में कुछ भी फैसला नहीं हो सका था। उस समय जिसकी जो समझ में आया होगा वही उसने समझ लिया होगा ऐसा मेरा मानना है। मैंने जयपुर पहुँच कर अपने साथियों से सलाह की और तुरन्त ही जयपुर प्रजामंडल की वकिंग और जनरल कमेटियों की बैठकें बुलायी जिनमें हिन्दुस्तान की आजादी की राष्ट्रीय मांग का पूरा समर्थन किया गया और हिन्दुस्तान के प्रति जो ब्रिटिश रुख था उसकी तथा नेताओं की गिरफ्तारी की निन्दा की गयी और महाराजा से जल्दी से जल्दी उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए कहा गया। उत्तरदायी शासन के सम्बन्ध में इस आशय का उत्तर आया कि महाराज की नीति राजकाज के काम में जनता को शामिल करने की है। महाराजा को यह लिखने की बात मेरे नहीं जच रही थी कि या तो आप अंग्रेजों से लड़ो या २४ घन्टों के भीतर प्रजामंडल को राज संभला दो। इसके बजाय जयपुर प्रजामंडल की ओर से महाराजा को यह कहना तय हुआ कि हम लोगों को ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी कार्यवाही करनी पड़ेगी जिसका नतीजा आपके और हमारे बीच में लड़ाई छिड़ने का आजायेगा। इस पर मैं उसी दिन प्राइमनिस्टर सर मिर्जा इस्माइल ने मुझे मिलने को बुलाया और कहा कि महाराजा आप लोगों की ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी कार्यवाही में दखल न दें तब भी आप उनसे लड़ेंगे क्या? इस बात पर में प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं की आपस में फिर सलाह हुई और उसके अनुसार सर [illegible] से बातचीत की गयी जिसका नतीजा नीचे [illegible]-अनुसार समझौता आया:

१–जयपुर राज्य मे ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी प्रचार के लिये राष्ट्रीय झण्डे के साथ प्रभात फेरी व जुलुस निकाले जाएगे तो राज्य सरकार की ओर से कोई बाधा नही पहुचायी जाएगी।

२–युद्ध के लिये अग्रेजो को जयपुर राज्य की ओर से आगे धन जन की नयी सहायता नही दी जाएगी।

३–ब्रिटिश भारत मे चल रहे आदोलन में सक्रिय भाग लेने वाले कोई भी लोग जयपुर राज्य मे आएगे तो उन्हे प्रजामडल की ओर से सब तरह की सहायता दी जायेगी और राज्य सरकार उनमे से किसी को भी गिरफ्तार नही करेगी।

४– जयपुर महाराजा की ओर से जनता को उत्तरदायी शासन देने की दृष्टि से कार्यवाही जल्दी से जल्दी शुरू की जाएगी।

५–महाराजा की ओर से यह सब कुछ होगा तो जयपुर प्रजामडल की ओर से महाराजा के खिलाफ सीधी कार्यवाही नही की जाएगी।

इसके अनुसार जयपुर मे आदोलन का काम चालू हुआ, परन्तु प्रजामण्डल के कुछ साथियो को, मैंने देखा, गिरफ्तार हुए विना सतोप नही हो रहा है। आखिर उन्होने मुझ पर बहुत दबाव डाला कि जयपुर महाराजा के खिलाफ सीधी कार्यवाही होनी ही चाहिए। उनकी यह बात मेरी समझ मे नही आ रही थी तो मैने सम्बन्धित साथियो को प्रजामण्डल का काम संभालने के लिए कह दिया। परन्तु वे उसके लिये तैयार नही हुए। ऐसी हालत मे प्रजामण्डल की एकता को कायम रखने की दृष्टि से मैंने एक सख्त पत्र महाराजा की अनुपस्थिति मे सर मिर्जा इस्माइल को लिख दिया कि जनता आजादी की लडाई के सिलसिले मे महाराजा के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने के लिए उतावली हो रही है और उसे मैं नही रोक सकता। उस पत्र पर से फिर एक बार सर मिर्जा ने हम लोगो से बातचीत करनी चाही। बातचीत होना शुरू हुआ। पता नही उसका क्या नतीजा आता। परन्तु उससे पहले ही प्रजामण्डल के कुछ साथियो ने प्रजामण्डल से अलग एक आजाद मोर्चा बनाकर महाराजा के खिलाफ लडाई का ऐलान कर दिया जिससे सर मिर्जा को लिखे गये मेरे उस पत्र का आधार ही निकल गया और वह वास्तव मे प्रभावहीन हो गया। फलस्वरूप प्रजामण्डल अपने पूर्व निश्चित ढग से ऊपर लिखे समझौते के आधार पर आदोलन मे हिस्सा लेता रहा और दूसरे मित्रो की कार्यवाही उनके ढग से चली जिससे कुछ लोग गिरफ्तार भी किये गये। जयपुर सरकार और प्रजामण्डल दोनो की ओर से समझौते का ठीक-ठीक पालन हुआ। सरकार पर पोलिटिकल डिपार्टमेंट का बडा भारी दबाव आया, यहा तक कि खुद पोलिटिकल सेक्रेटरी सर हेनरी क्रेक जयपुर आए। उस सारे दबाव को महाराजा और सर मिर्जा किसी भी तरह झेल गये। प्रजामण्डल ने भी अपने हिस्से की कठिनाइयो का हिम्मत के साथ मुकाबला किया।

पंडित हीरालाल शास्त्री की आत्मकथा "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" (पृ० ३३४) से

FROM PANDIT HIRALAL SHASTRI
TO SARDAR VALLABHBHAI PATEL

Telegram, 9-4-48

Glad to hear Udaipur joining Rajasthan Union This makes Sirohi joining Rajasthan still more inevitable Besides to us Sirohi means Gokulbhai more than anything else Without Gokulbhai we can hardly expect to run Rajasthan *Therefore I very strongly urge that Sirohi should be allowed to join Rajasthan at least for present if no permanent* settlement possible just now But for my pre-occupations here I should have personally come to make this representation to you I do hope you will fulfil our hopes in this matter Praying incessantly four your health.

FROM PANDIT HIRALAL SHASTRI
TO SARDAR VALLABHBHAI PATEL

Telegram 14-4-48

Reference previous telegram regarding necessity of Sirohi joining Rajasthan We are greatly disappointed at Sirohi's question not being decided and we see no reason what for one moment it is imagined Sirohi can ever join any group other than Rajasthan. As you know we in Rajputana have full faith in your wise leadership and we have always *tried to act according to your guidance but I must submit on this question* there is universal strong feeling which I hope you will not ignore Please, therefore, permit Sirohi join Rajasthan immediately. In any case nothing should be done without satisfying Rajputana workers whose minds are agitated on this point beyond imagination. I consider my duty to inform you of depth of our feelings which together with our respect for your judgement place us in most difficult position Trust you will help us by granting our unanimous request.

"प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" (पृ० ३३८) से

FROM SARDAR VALLABHBHAI PATEL

TO PANDIT HIRALAL SHASTRI

Telegram 15-4-48

Your telegrams regarding Sirohi. Decision regarding Sirohi has been taken after full consideration and discussion with Prajamandal workers It is quite clear to me that what Rajasthan wants is not so much Sirohi as Gokulbhai Bhatt. You can have Gokulbhai without Sirohi. Sirohi was in the past linked with Gujarat and it was only by comparatively recent political arrangements that British transferred it to Rajasthan This shortlived political relationship cannot obviously be set against much longer previous connections with Gujarat. If you come here I can explain to you all the circumstances that have led me to come to this decision. I fully appreciate your confidence in me. That should ave convinced you that I would take a decision only for good reasons and not merely out of any personal predilection I am rather constrained to observe that if you feel Gokulbhai is so indispensable for Rajasthan and feel that you cannot manage without him the future of Rajasthan fills me with some dispair Dependance on one man hardly augurs well for democracy. I also suggest that before troubling yourself about Sirohi you deal with other States on whom Rajasthan has got more claims.

अपनी कहानी,
अपनी जबानी

सौ० रतन शास्त्री

रतनजी और शास्त्रीजी की एकरूपता

वनस्थली में जब मैंने देखा कि हीरालाल शास्त्रीजी की धर्मपत्नी श्रीमती रतन बहन भारतीय आदर्श का जीवनव्यापी स्वीकार पूर्ण हृदय से करके पति के जीवन में और सेवाकार्य में एक लय हो गयी है तब मैंने हृदय से रतनदेवी का अभिनन्दन किया।

वनस्थली विद्यापीठ को अखिल भारतीय संस्था बनाने में रतनदेवी का कुछ योग अधिक ही है और उन्हीं के व्यक्तित्व के कारण यह विद्यापीठ इस तरह का विकास कर सका है।

— काका कालेलकर

• •

रतनजी जब से प्रिय सा बनी।
तबहि मैं हम भी प्रिय सा बने।
जगत को दिखते हम दो जने,
असल में हम एक न दो जने॥

—हीरालाल शास्त्री

मेरे पिता पू० दा साहब

श्री रघुनाथजी व्यास

की

पुण्य स्मृति में

—रतन

नम्र निवेदन

मेरे लिए अपने बारे में कुछ लिखने लिखाने की नोबत कभी आ भी सकती है, यह मेरी कल्पना से बाहर की बात थी।

घर के और दूसरे नजदीक के कई लोग मुझसे अपनी जीवनी लिखने को कई बार कहते रहे। मैं उनको यह कह कर टालती रही कि मेरे पास लिखने जैसा कुछ है ही नहीं तो मैं क्या लिखूं?

परन्तु पिछली बार पूज्य काका साहेब कालेलकर के पास शास्त्रीजी और मैं गये तब वहां पर शास्त्रीजी की आत्मकथा 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' के बारे में बात चली। तब काका साहेब मुझे हुक्म देते हुए बोले—तुमने शुरू से शास्त्रीजी के साथ एक होकर काम किया है, तुम्हें भी कुछ लिखना ही चाहिए उसका उपयोग होगा। मेरे मन का जो भाव था वह मैंने काका साहेब को भी बता दिया।

बचपन मे जिस घर में और जिस वातावरण मे मेरा पालन-पोषण हुआ वहा पर यह सीखने को मिला था कि मुझे शास्त्रीजी की इच्छा को अपनी इच्छा बनाकर चलना चाहिए। उसी शिक्षा और भावना का मेरे मन पर असर था। इसलिए मुझे खादी पहनने, जेवर व पर्दा छोड़ने और छोटे से गाव मे जाकर रहने मे सुख मिला और मुझे कभी तकलीफ जैसा कुछ अनुभव नहीं हुआ। मेरा मानना और सोचना सदा यही रहा कि जिस काम से शास्त्रीजी को प्रसन्नता हो और सुख मिले वही काम जीवन भर मेरे करने का है। यही बात मेरे पास कहने और लिखने लायक है। बाकी जो कुछ मैंने लिख दिया, लिखवा दिया, उसकी कोई खास कीमत मैं नहीं मानती।

शास्त्रीजी ने अपने स्वभाव के वशीभूत होकर अपने "सा की नजर में सा" लेख में न जाने क्या-क्या लिख दिया है! मैंने उनसे दबी जबान से कहा कि आपने इतना और ऐसा क्यो लिखा है। जो हो, मैं इस "अपनी कहानी, अपनी जबानी" को शास्त्रीजी के शब्दों मे उनके प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) के साथ नत्थी कर दे रही हूं। कहना न होगा कि मेरी इस जरा सी कहानी के अन्त मे शास्त्रीजी के उपरोक्त लेख को दे देना भी हम सबको उपयुक्त लगा है।

वनस्थली

प्र० भाद्रपद शुक्ला १५ स० २०३१ वि०

१ सितम्बर, १९७४

सौ० रतन शास्त्री

अपनी कहानी, अपनी जबानी

(१) मेरे कुछ विचार

मैं बहुत थोडी शिक्षा पायी हुई एक साधारण नारी हूं। मेरे पास अपनी बात प्रकट करने की शक्ति भी बहुत कम है। शास्त्रीजी का और मेरा जीवन इतना मिला हुआ है कि सचमुच यह कहा जा सकता है कि शरीर दो भले ही हो, पर आत्मा एक ही है। ऐसी हालत में शास्त्रीजी के विचार सो मेरे विचार हैं। यह शास्त्रीजी की विशेषता है कि वे मुझको अपने आप से विशेष मानते है। मैं यह तो क्या कहूँ कि शास्त्रीजी के मुझको विशेष मानने का अर्थ उनको खुद को विशेष मानना हो जाता है।

शास्त्रीजी के साथ साथ मैं भी यह मानती हू कि स्त्री और पुरुष का जीवन एकदम, एकरस होना चाहिए। मेरी निगाह में स्त्री प्रकृति से ही ऐसी बनी हुई है कि वह दूसरो के आराम के खातिर खुद तकलीफ उठाने में रस लेती है। मेरी राय में पुरुष को भी ऐसा होना चाहिए और मेरा जाना हुआ सतपुरुष ऐसा ही है भी। जब कभी जहाँ कही पुरुष की ओर से स्त्री के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की कल्पना मुझको होती है तो मैं सिहर उठती हूं फिर भी मैं यह मानने को तैयार नही हूं कि कुपुरुष की देखादेख स्त्री को भी कुस्त्री बन जाना चाहिए। स्त्री में देवी का दर्शन किया गया है तो उसका देवी बना रहना ही उसके स्वरूप के अनुरूप है। पति की ओर से ज्यादा ही तकलीफ हो तो उसे मजबूर होकर पति से अपने अलग रहने की व्यवस्था करना पड़ सकता है। फिर भी मैं यह कल्पना

किसी हालत मे नही कर सकती कि जैसा भी है वैसे ही अपने पति को छोड़कर दूसरे पुरुष की ओर दृष्टिपात करे। भारतीय नारी की यही शोभा है, यही उसकी शान है। स्त्री को पुरुष की बराबरी करना है तो वह अच्छी बातों में करे, पुरुष की बुरी बातो मे बराबरी करना स्त्री का धर्म कदापि नही हो सकता।

इस विचारधारा मे से एक बात निकलती है। वह यह है कि इस नये जमाने मे स्त्री को स्वावलम्बी होना पड़ेगा। वह अपना अलग बैंक खाता रखने वाली न बने पर उसके गुजर बसर का सारा आधार पुरुष की कमाई पर ही नहीं होना चाहिए। वैसे भी इस भयावह काल में अकेले पुरुष की कमाई से सारे परिवार का गुजारा चलना बहुत मुश्किल है। इसका मतलब यह हुआ कि स्त्री को पुरुष से भले ही कम सही पर कमाई करने वाली बनना होगा। कमाई किन जरियों से की जाए, इसका मैं एक ही जवाब दे सकती हूं कि अच्छे से अच्छे निष्पाप निष्कलंक जरियों से। यदि पापाचार पुरुष के लिए बुरा है तो वह स्त्री के लिए तो और भी ज्यादा बुरा है। क्योकि अपने यहा स्त्री को धर्म को धारण करने वाली माना गया है। मुझे ऐसा लगता रहता है कि यदि स्त्री धर्म विमुख हो जाएगी तो प्रलय हो जाएगा। पूज्य बापूजी कहा करते थे कि स्त्री पुरुष की सहधर्मिणी होती है, इसलिए उसे पुरुष के प्रत्येक धर्मकृत्य मे उसके साथ शामिल होना चाहिए। पर बापूजी को क्या पता था कि धर्मकृत्य नाम की चीज तो राष्ट्र मे से प्रायः लुप्त हो जाने वाली है।

स्त्री को कमाई करने वाली बनना होगा और घर बैठे कमाई हो सकेगी सो बहुत मुश्किल है। इसलिए स्त्री को घर के बाहर निकलना पड़ेगा और पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करना पड़ेगा। मेरी अदना राय में स्त्री को सभी काम करने का अधिकार होना चाहिए जो अपने देश मे है भी। अपवाद एक ही हो सकता है और वह यह कि स्त्री अपने शरीर की बनावट के कारण और खासकर अपने मातृत्व के कारण भारी काम को न कर सकेगी तो वह नही करेगी। बाकी जो कई एक वीरागनाएं भी हुई हैं जिन्होने युद्ध क्षेत्र मे पुरुषों से बराबर का लोहा लिया है। जो स्त्री अपने आप मे दिल की मजबूत हो उसे तो किसी से भी किसी प्रकार का भय मानने की जरूरत नही होगी। परन्तु खास कर कम उम्र की युवती का प्रलोभन में फंस जाना कोई खास मुश्किल नही होता। और आज कल तो यह भी सुना जाता है कि लड़किया आगे बढकर लड़कों को फंसाने की कोशिश कर लेती है। मेरा तमाम जोर इस बात पर है कि नारी को हर परिस्थिति मे अपने शील की रक्षा करनी ही चाहिए। इसी वजह से लड़कियों की सुरक्षा की चिन्ता उसके माता-पिताओं को, अभिभावको को, संरक्षकों को करनी पड़ती है।

मैंने अपने नारीविषयक विचार संक्षेप में प्रकट कर दिये हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक मामलो मे मैं ज्यादा तो समझती हूं नही। पर भारत की निवासिनी की हैसियत से और गाधीजी के प्रति श्रद्धा रखने वाली होने की वजह से मै व्याकुलता के साथ सोचती रहती हू कि आखिर क्या बनने वाला है संसार के मोरमुकुट भारत का ? कहां भारतीय सभ्यता और कहा आजकल का बढ़ता हुआ यह दिखावा ? नारी अपने स्त्री स्वभाव से अपनी सजावट मर्यादित रीति से करती हो तो उसमे क्या आपत्ति हो सकती है ? पर स्त्रियों का आजकल वाला अंगप्रदर्शन आदि तो मुझ जैसी के दिल को दहलाने वाला है। एक ओर लडकिया लड़के बनना चाहती हुई दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर लड़को की कोशिश लड़कियों का रूप लेने की मालूम हो रही है। सिनेमा ने नीचे दर्जे की कहानियों आदि ने सारे वातावरण को कृत्रिम और विषाक्त कर दिया है। आर्थिक मामलो मे भारत के नेता गांधीजी की सीख को भुलाकर पश्चिम की नकल कर रहे हैं सो मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। और आज की इस गन्दी राजनीति ने तो मानो हमको नरककुण्ड मे ढकेल दिया है। मैंने देखा है, आजकल राजनीति में कोई किसी का सगा नही। स्वार्थ, संकुचित स्वार्थ, नीचे दर्जे का स्वार्थ जिस तरफ देखिए स्वार्थ। स्वार्थ के सिवाय कुछ देखने को नही मिलेगा। इस कलियुगी अन्धकार मे अपने राष्ट्र का और इस दुनिया का क्या होने वाला है, सो पता नहीं। मानव जाति इसमे से कैसे उबरेगी सो किसी को—कम से कम मुझको तो मालूम नही। मैं गीता के प्रवचन पर श्रद्धा रखती हुई मानती हू कि एक दिन धरती पर कोई न कोई उतरेगा ओर वह फिर एक बार सतजुग लाएगा।

(२) व (३) बचपन और शिक्षा

मेरा जन्म मध्य प्रदेश के खाचरोद कस्बे मे हुआ था परन्तु लालन-पालन और जो भी कुछ मामूली पढ़ना लिखना हुआ वह रतलाम में हुआ।

मेरे पिताजी का जन्मस्थान भी खाचरोद ही था। उनके चाचा ओंकार लालजी ने उनको गोद ले लिया और पढाने लिखाने के विचार से उनको बम्बई ले गये। ओंकारलालजी का देहान्त दो चार साल बाद ही प्लेग से हो गया। मेरी दादीजी को कई लोगो ने सुझाया कि आप बम्बई रहकर ही इनकी पढाई लिखाई का काम कराओ परन्तु उनके यह बात जची नही। उन्होंने सोचा कि जितना खर्चा हम दोनो मा बेटों पर बम्बई में लगेगा उतने ही खर्च में रतलाम मे रहते हुए चारो बच्चो का काम चल जाएगा। मेरे पिताजी के तीन भाई और थे इस तरह से खाचरोद के होते हुए भी मेरे पिताजी का स्थान रतलाम बन गया था। पिताजी आदि के रतलाम मे रहते हुए भी मेरा जन्म खाचरोद मे हुआ। क्योकि मेरी दादीजी के मन मे यह भावना थी कि बच्चे का जन्म तो अपने घर के मकान में

होना चाहिए। इसलिए सब लोग मेरे जन्म के समय खाचरोद चले गये। मेरा जन्म शारदीय नवरात्रि की द्वितीया को सुबह ६ बजे हुआ। मेरे पिताजी का जन्म भी नवरात्रि की द्वितीया का ही था। मेरे बाबाजी वगैरह को यह संयोग कुछ विशेष लगा। मेरे जन्म की खबर जब मेरे बाबाजी को दी गयी तब उनको सुनते ही कुछ कम अच्छा लगा। परन्तु वे ज्योतिषी थे अतः समय देखकर ग्रह आदि का मिलान करके बोले कि लडकी के ग्रह बहुत अच्छे हैं। फिर बोले अपने को क्या जिस घर में जाएगी उसको लाभ होगा।

जब मैं अन्दाजन ३-४ साल की हुई होऊंगी उसके बाद की कुछ बातें मुझे हल्की-हल्की सी याद आती है। हमारे घर का रतलाम के राज परिवार से मेरे बाबाजी व दादाजी के कारण काफी नजदीक का सम्बन्ध था। मेरे बाबाजी बम्बई रहते थे और बम्बई से जो भी खास-खास चीजें राजमाताजी को मंगवानी होती थी उनका इन्तजाम वे किया करते थे। रतलाम राजमाताजी को मेरी दादीजी ने गीता व विष्णुसहस्रनाम सिखाया था और वह उनको गुरुआनीजी कहा करती थी। मेरी दादीजी और भुआजी जो कि बालविधवा हो गयी थी दोनों ही शाम के ४-५ बजे के करीब राजमाताजी के पास जाया करती थी। उस समय वहां राज परिवार की कुछ स्त्रियों के भी आने का तरीका था। मुझे भी वे अपने साथ ले जाती। वहां पर शाम को कुछ रामायण आदि का पाठ, भजन और कथा आदि हुआ करती थी। जब से मैं समझने लगी तब से भी मुझे रतलाम राजमाताजी और महारानीजी का अपने बच्चे जैसा ही स्नेह मिला। राजमाताजी के एक भतीजे की लडकी रूपकुंवर भी मेरे बराबर की थी। वह भी रतलाम ही रहती थी। उनका मेरा बराबर की होने से खेलना आदि साथ-साथ था। अनजाने ही उस वातावरण का मेरे मन पर काफी असर हुआ लगता है।

जब मैं ५-६ साल की हुई होऊंगी तब मेरे पिताजी के बड़े भाई की, जो बम्बई रहते थे, इच्छा हुई कि वे मुझे अपने साथ बम्बई ले जाएं। परिवार में उस समय चारों भाइयों के बीच में अकेली बच्ची होने की वजह से सबका आग्रह रहा कि मुझे बम्बई न ले जाया जाए। राजमाताजी ने भी आग्रह किया कि बच्ची को बम्बई न भेजा जाए। परन्तु मेरी बड़ी मा अड ही गयी कि मैं तो इसको लिए बिना नही जाऊंगी। उनका आग्रह चला और मेरे कारण से मेरी दादीजी भी उनके साथ मुझे लेकर बम्बई गयी। बम्बई में हम लोग चौपाटी के पास सेंडहर्स्ट रोड पर रहते थे। ताऊजी (बड़े दा साहब) मुझे घुमाने के लिये शामको चौपाटी ले जाया करते थे जो कि वहां से बहुत नजदीक पड़ती थी। हमारे कमरों के पास ही एक गुजराती बहन रहा करती थी हरमुख बेन नाम की। उनके दो भतीजियां थी। उनको व मुझको वे शाम के समय कुछ प्रार्थना सिखाती

व कुछ कहानियां आदि सुनाती। मेरे ताऊजी जिनके यहां मैनेजर थे उनके लडके धनराजजी बम्बई रहा करते थे। कभी-कभी शाम के समय वे भी मुझको बुलवा लेते थे। और वे भी मुझे खूब प्यार से खिलौने आदि चीजे मंगवाकर देते। बाद मे भी इस बात का उनके मन मे बहुत ध्यान था। संयोग से किसी शादी में इन्दौर मे उनको शास्त्रीजी मिल गये और वहा मेरा जिक्र चल गया। धनराजजी को पहले शास्त्रीजी से मेरे सम्बन्ध के विषय मे मालूम नही था। वे बम्बई की मेरे बचपन की सारी बाते शास्त्रीजी को बताने लगे कि रतनजी को तो मैंने बहुत गोद में खिलाया है।

बम्बई मे मेरे ताऊजी मुझे एक नाटक दिखाने ले गए थे। उस की दो एक बाते मुझे अभी भी याद आती है। एक बात तो यह थी कि एक मजाकिया एक कपडा अपने हाथ में लेकर गुजराती भाषा में कहने लगा पांच रुपया नो कापड़ो ने साठ रुपया सिलाई। आशुं छँ आज नू फंशन। दूसरी बात यह भी आयी थी। वह नाटक शायद पद्मिनी का था कि धोबी कपडे धो रहा है और उधर से राजा निकला, तो धोबी बड़े अभिमान से कहता है। अयाँ नयी आवानो, महाराज ना कापडा सूखे छे।

एक नाटक राजा भर्तृहरि का था। उसका और कुछ तो ध्यान मुझे नहीं है। लेकिन ऐसा सुना गया कि कोई भाटिया सेठ का लडका नाटक को देखकर घर छोड़कर चला गया जिससे वह नाटक बाद में खेलना ही बन्द करवा दिया गया।

बम्बई मे मैं कितने समय रही यह तो मुझे पक्का ध्यान नही है। पर शायद १०-१२ महीने रही होऊंगी। बम्बई से वापिस आने पर हमारे मकान के पास ही स्थित एक छोटे से सरकारी स्कूल में मुझे पढाई शुरू करने के लिए भेज दिया गया। वहा पर पढाने वाली तीन अध्यापिकाएं थी। जिनमें दो तो रतलाम की ही थी और एक उत्तरप्रदेश की थी। उत्तरप्रदेश वाली कब वहां पढाने लगी, यह तो याद नही है, लेकिन बाद में वे कुछ दिनों के लिए इन्चार्ज के रूप में रहीं। वह प्रधानाध्यापिका स्कूल के पास ही एक किराये का मकान लेकर रहा करती थीं। उसकी कुछ आदत ऐसी थी कि कभी किसी लडकी को कहती कि तुम्हारे यहां से आचार ले आना, किसी से कहती कि पापड ले आना। कभी कहती कि अमुक काम कर आओ। एक दिन उन्होने मुझे भी कुछ लाने को कहा, मैंने जाकर के घर पर दादीजी (बा साहब) से कहा। संयोग से पिताजी के पास उनके मित्र जो प्रधानाध्यापक थे, बैठे हुए थे। उस समय शायद मैं नौ साल की होऊंगी। उन्होने मुझे बुलाया और पूछा रतनजी, क्या बात है? बचपन में भी शुरू से ही सब लोग मुझे प्यार से रतनजी नाम से ही सम्बोधित करते थे।

उन्होने मुझे बुलाकर पूछा था (साहब) को तुम क्या कह रही थी ? मैंने उनको भी बता दिया कि हमारी प्रधानाध्यापिका ने कोई चीज मंगवायी है। मुझे उस समय यह पता भी नही चला कि वे मुझसे क्यो पूछ रहे है ? बाद में मैंने सुना कि उन्होने उस प्रधानाध्यापिका को बुलाया और काफी भला बुरा कहा और शायद यह भी कहा कि उनके बारे मे ऐसी बाते सुनने मे आएंगी तो नही रखा जाएगा। हमारा स्कूल उन प्रधानाध्यापक के चार्ज में ही था। अब तो कभी-कभी मुझे खयाल होता है कि बिना समझे बूझे भी वह बात प्रधानाध्यापिका के खिलाफ शिकायत करने जैसी हो गयी।

मैं स्कूल की अन्तिम परीक्षा में प्रथम आयी और पिताजी से आकर मैंने कहा कि मैं प्रथम आयी हूँ तो वे हंसकर मजाक मे कहने लगे "अन्धों मे काना राजा बडी खुश हो रही है फर्स्ट आकर"। मेरे पिताजी रतलाम के हाईस्कूल में ही पढाते थे। बीच मे भयंकर संग्रहणी हो जाने से उन्होने साल भर की छुट्टी ले ली। जब उनकी तबियत ठीक हुई और वे वापिस काम पर जाने की स्थिति में हुए तो उनको रतलाम सरकार की तरफ से यह बताया गया कि आपको सायर-दार (चुंगी ऑफीसर) बनाया है। पिताजी ने कहा कि यह काम मेरे अनुकूल नहीं पड़ेगा। संयोग से उन्ही दिनो वे उनके एक मित्र के यहा खाना खाने गये। वहा पर सैलाना के जज, जो कि पिताजी के मित्र के दामाद थे, आये हुए थे यह चर्चा चल पड़ी कि लोग तो सायरदारी की नौकरी के लिए कोशिश करते है और इनको रतलाम महाराज सायरदार बना रहे है सो ये मंजूर नही कर रहे हैं कहते है यह काम मेरे बस का नही है। वे बोले आपको पसन्द हो और आप चलना चाहो तो आप सैलाना चले चलो। वहां पर पढ़ाने के साथ-साथ हम लडको को बोर्डिंग मे रखकर उनके लिए और भी कुछ करेंगे। यह बात मेरे पिताजी के जच गई और वे स्तीफा देकर रतलाम से सैलाना चले गये। वहा पर मेरे पिताजी और जज साहब गोवर्धनलालजी और उत्तरप्रदेश से आये हैडमास्टर साहब सरयूप्रसादजी मिश्र इन तीनों ने राजा साहब सैलाना से कहकर एक बोर्डिंग हाऊस की शुरुआत करवायी। उस बोर्डिंग की ऐसी अच्छी शोहरत हुई कि सैलाना के आसपास के ही नही बरन् उदयपुर आदि से भी लोग सैलाने के बोर्डिंग में लड़को की भर्ती करवाना चाहने लगे। उस बोर्डिग मे से निकले हुए कुछ विद्यार्थियों का तो हमारे साथ परिवार जैसा ही सम्बन्ध बना जैसे निरंजननाथजी आचार्य, विष्णुदत्तजी शर्मा आदि। ऐसे लोग मेरे पिताजी का बहुत ज्यादा अहसान मानते है।

मेरे पास होने तक रतलाम में ही हमारा सारा परिवार रहता था। मै भी मेरी दादीजी के साथ वही रही। बीच-बीच में एकाध बार सैलाना आना जाना भी हुआ। रतलाम मे हम जिस मुहल्ले मे रहते थे उसका नाम श्रीमाली मुहल्ला था। हमारे मकान के नजदीक ही एक गोपालजी का मन्दिर था। वहां

पर मैं सुबह मेरी दादीजी के साथ कभी कभी जाया करती थी और वहां के महन्त रंगाचार्यजी ने सबसे पहले मुझे "शान्ताकारं भुजगशयनं" श्लोक बोलना सिखाया। शुरू से ही पता नही कैसे और कब रामायण पढने मे मेरी रुचि हो गयी थी। हमारे स्कूल मे रामनरेश त्रिपाठी की 'कन्या सुबोधिनी नाम की' पुस्तक पहले से लेकर पाचवें भाग तक पढ़ाई जाती थी। उसमे दमयन्ती, सावित्री आदि की कहानिया थी। उनको मै पढती और मुझे ऐसा ध्यान है कि उनका मेरे मन में काफी असर हुआ।

स्कूल के दिनों मे ही कभी-कभी मैं खाचरोद में रहने वाली एक भुआजी के यहां चली जाती थी। वहां की दो तीन बातें मुझको चाहे जब याद आती रहती हैं। एक तो उन दिनों में जो लोग पढाते थे उनको वहा पंड्याजी कहते थे। वह मामूली पढना लिखना और व्यापारिक ढंग का काम जिसे वाण्यावाटी कहते थे, लडको को सिखाते थे। पढाई का तरीका यह था कि यदि कोई लडका अपने मन से पढने को नही आए तो उसको पंड्याजी के यहा से दो चार लडके जाते और उस लडके के दो लडके हाथ पकडते व दो पैर पकडते और टंगाटोली कर ले आते। स्कूल न जाने पर छडी से पोटने की बात भी प्रचलित थी। स्लेट की जगह एक लकडी की तख्ती होती थी, उसको पीली मिट्टी से पोतकर फिर उस पर लिखते थे।

दूसरी बात यह थी कि जितने लडके वहा पढने को आते थे वे सुबह ६ बजे खाना खाकर आते थे और अपने साथ एक कपडे मे कोई चने, कोई मक्का, कोई ज्वार बांधकर ले आते और उनको जब दोपहर में ३-४ बजे के करीब नाश्ते की छुट्टी होती तब पास मे ही भडभूंजा से सिकवा लाते और अपने कुरते की झोली मे लाकर अपने गुरुजी के सामने रखने जो पास में रखी टोकरी में एक एक-दो दो मुट्ठी ले लेते। उसके बाद बच्चे बाहर नाश्ता करने को चले जाते।

खाचरोद में शायद १०-१५ मन्दिर होंगे। वहा पर बारिश के दिनो में भादवे के महीने में एकादशी के दिन एक पालकी सी बनाकर उसके आसपास दो लड़को को सजा कर खड़ा करते। सब मन्दिरो की पालकियो का जुलूस सा निकलता और जो लड़के खडे होते वे कुछ दोहे से बोलते हुए अलग अलग पालकी (राम रेवाडी) लेकर तालाब तक जाते। वहा पहुँचने में उन लोगों को काफी घण्टे लग जाते। आसपास के गावों के लोग भी खाचरोद की रेवाड़ी मशहूर होने के कारण देखने को आया करते थे। जिस मन्दिर की रेवाड़ी सब तरह से खास मानी जाती, उसको उस समय की ग्वालियर स्टेट का सूबेदार इनाम देता।

राजा साहब सैलाना को चैत्र महीने की तीज का मेला लगाने का शौक था। वैसे तो इसको गणगोर बोलते हैं जो कि पार्वती का स्वरूप माना जाता है

और सब जगह की देशी रियासतो मे इसकी सवारी निकालते हैं। परन्तु वहा सैलाना का मेला कुछ विशेष होता था जिसे देखने के लिए काफी दूर-दूर से लोग आते थे।

परीक्षा के वाद पिताजी मुझे अपने पास रतलाम से सैलाना ले गये। वहा पर उन्होंने मुझको कुछ अंग्रेजी सिखाने की कोशिश की। कुछ अंग्रेजी सीखूं उसके पहले शादी की वात तय हो जाने से वह वैसे ही रह गयी।

४. विवाह

उन दिनों समाज की कुछ ऐसी ही स्थिति थी कि लड़की की शादी जल्दी कर देनी चाहिए। मेरी दादीजी और भुआजी दोनो मेरे पिताजी के पीछे पडी रहती थी कि वे जल्दी से मेरी कही भी सगाई तय करें। मैं सुनती थी तो मुझे वड़ा दुख और आश्चर्य सा होता था कि जो दादीजी मुझे इतना प्यार करती है, वे क्यों मुझे दूर भेजना चाहती हैं। मैं जन्मी तव से शादी हुई तब तक दादीजी को ही मा मानती रही और उनके पास ही रही। मां से मेरी ज्यादा निकटता मेरी दादीजी से ही रही, इसलिए दादीजी पर मुझे ज्यादा गुस्सा आता था। उस समय का घर का व आसपास का जो वातावरण था उसमे मेरे मन मे शादी क्यो करना चाहते है कोई अन्दाज नही था। इस मामले में मुझको वाद मे अनुभव हुआ कि मैं कितनी अनजान और एक प्रकार से महामूर्ख थी। मेरे पिताजी रतलाम के आसपास और दूर भी पता नही कितनी जगह गये होंगे। जयपुर में भी उनके कुछ परिचित थे जिनमे एक खास राजवैद्य श्यामजी थे। उनका और रतलाम के गोपाल-मन्दिर के महन्त रंगाचार्यजी का एक दूसरे के यहा आना जाना था। इस हिसाव से पिताजी से भी उनका परिचय था। जहा तक मुझे याद है पिताजी पारीको की महासभा मे मेडता गये थे। वहा से लौटते हुए वे जयपुर ठहरे और उनसे कहा कि आपके ध्यान में कोई लड़का हो तो वताएं। यह वात करके वे सैलाना आ गये। पिताजी सैलाना में थे। हम सारे परिवार के लोग रतलाम में थे। एक दिन कोई सज्जन आये हमारे ही रतलाम के किसी रिश्तेदार को साथ लेकर। वे पिताजी को पूंछने लगे। मेरे चाचाजी ने कहा-वे तो सैलाने है। फिर वे कहने लगे कि मैं किशनगढ़ का हूं और मेरी वहन के पास आया हू। उनसे भी मिल लेता। असल में वे आये थे मुझे देखने के लिए। उस समय मैं और मेरी चाचीजी हमारे घर के अन्दर के कुएं पर कपड़े धो रही थी। वे सज्जन वोले-देखे आपके यहा कुए कितने गहरे होते हैं। वे अन्दर आये। मेरे चाचाजी को तो कुछ खयाल नही हुआ, लेकिन जव वे कुआं देखकर वाहर आ गये तो मेरी दादीजी ने कुछ ऐतराज सा किया। उच्छव, तू पगला है क्या, पारीक के वेटे को अन्दर ले आया। फिर उन सज्जन ने मेरे चाचाजी से सैलाने का पता

पूंछा और बोले मैं उनसे सैलाने मिलता हुआ जयपुर चला जाऊंगा। वे सैलाने गये, पिताजी से मिले। लेकिन मतलब नहीं बताया मिलने का। उसके १०–१५ दिन बाद ही अचानक जयपुर से राजवैद्य श्यामजी का तार आया कि आप जयपुर एक बार जल्दी आ जाएं। पिताजी जयपुर पहुंचे। उन्होंने कुछ मित्रों से शायद बात की होगी। जयपुर में एक खास बडे बुजुर्ग थे उनसे वे बात करने को गये। पूंछा हीरालाल के साथ सगाई तय करदे क्या ? आपका क्या खयाल है ? वे बोले सब बात ठीक है, पर लड़का बड़ा जिद्दी और आग्रही स्वभाव का है। पिताजी ने कहा इसकी तो कोई बात नही है, वे जिद्द करेंगे तो मैं नही करूंगा। और सर गोपीनाथजी के यहां आकर के उनसे बात करके सगाई तय कर दी। रतलाम आकर के मेरी दादीजी से बोले-वा साहब, रतनजी की सगाई तय कर आया हूं। उन दिनो में मालवे वाले जयपुर को परदेश मानते थे। बोली-रघुजी इतनी दूर परदेश मे लड़की को देने का अचानक ही तय कर आये ? पिताजी कहने लगे-वा साहब, ज्यादा सलाह करने का मौका नही था, इसलिए मैंने तो तय करदी। थोडे दिनों के बाद खाचरोद से शादी की जाए यह बात तय हो गयी। खाचरोद मे जब सब लोगो ने सुना तो कुछ हलचल हुई। उन दिनों जाति में आपसी राग द्वेष कुछ अधिक ही था। कुछ लोगो ने जो नजदीक के रिश्ते मे थे, परन्तु पिताजी से कुछ नाराज थे जयपुर आकर पुरोहितजी साहब सर गोपीनाथजी से कहा कि आपने इनको सगाई कहां तय करवा दी, वे तो जाति से बाहर है। पुरोहितजी साहब ने पूंछा-क्या उनके कुल मे कोई कमी है ? इसका उत्तर वे लोग नही दे सके-बोले कुल मे तो कोई कमी नही है। संयोग से खाचरोद से जयपुर जाने वालों में मेरे दूर के मौसा भी थे। बोले वे तो हमारे रिश्तेदार ही है, पर हैं जाति से बाहर। उन लोगों की कुछ नही चली और वे जयपुर से वैसे ही लौट आये। पिताजी को यह बात बाद मे मालूम पडी। कुछ चर्चा खाचरोद मे ऐसी भी फैलायी गयी-इतनी दूर लड़की को दिया है, पता नही क्या बात है ? मेरी शादी तो मेरे पिताजी को सारे परिवार के आग्रह से खाचरोद में ही करनी पड़ी। जयपुर में उस समय हमारी पारीक जाति के जितने ग्रेजुएट थे वे प्रायः सभी शास्त्रीजी की बरात मे गये थे। इसलिए उस बरात को ग्रेजुएटो की बरात कहा गया !

विवाह के बाद बरात खाचरोद कस्बे से स्टेशन को रवाना हुई तब मुझको तांगे में शास्त्रीजी के बराबर बिठाया गया था। तांगा बहुत तेज जा रहा था और एक जगह में उससे लुढ़कने सी लगी। शास्त्रीजी ने झट से मुझे एक बाह से पकड़कर गिरने से बचा लिया। क्या यह भी कोई शकुन था ? पता नही। शादी होकर जयपुर आते ही मुझको बिल्कुल नया वातावरण नयी परिस्थितियां मालवे से बिल्कुल भिन्न मिली जिन्हें समझने और अपने आपको उनके अनुकूल बनाने में मुझे काफी मुश्किल हुई।

दुबारा जब मैं रतलाम से रवाना हुई तो राजमहल में राजमाताजी को प्रणाम करने गयी। वे मुझे लडकी के समान ही मानती थीं। मेरे सिर पर प्यार से हाथ रखती हुई बोली-देख बेटा तू यहा से बहुत दूर जा रही है, अपने रतलाम व मालवे के बारे मे यह मत कहलवाना कि वहा की लड़की लाकर हमने गलती की। जैसी तेरी मा ने शोभा ली है वैसी ही लेना। घबराना नही। हम लोग भी कितनी दूर से आते हैं, मै खुद जोधपुर की हूँ, वहू भुज की है। इन सब बातों का जयपुर मे मेरे मन पर असर रहता कि कोई रतलाम वालो को कुछ ओलम्भा न भेज दे। रतलाम मे मेरे ताऊजी के बम्बई रहने से आजादी का वातावरण था, पहनना ओढना भी दूसरी तरह का, खाना पीना भी जयपुर व मालवे का बहुत भिन्न था। जयपुर मे उस समय पुरुषो से ही नही स्त्रियो तक से भी परदा करने का रिवाज था। बाहर भी काफी सख्त परदे के साथ आना जाना होता था। आने के दस पाच दिन बाद ही मेरे मन मे आया कि अपने को तो कुछ काम करना है। पर कुछ काम तो समझ मे आया नही, सोचा चलो अपन तो रोटी बनाने का काम करें, यह सबसे ठीक रहेगा। पर उसमे भी मुश्किल आ गयी।

गलती से शुरू मे जौ के आटे को गेहूँ के आटे जैसे गूंद लिया। क्योंकि रतलाम मे गेहूँ सफेद होते हैं अतः सफेद आटा देखकर गूंद लिया और उसके फुलके बनाना शुरू कर दिया। फुलके बन ही नही पाये। मन मे यह खयाल हुआ कि सब लोग कहेंगे इसे रोटी बनाना नहीं आता है क्या ? फिर बाद में मालूम पड़ा कि यह आटा तो जौ का है। सब लोग मजाक करने लगे कि जौ-गेहूँ को ही नही जानती क्या ? शास्त्रीजी को जौ की रोटी खाने का शौक था। अतएव चाहे-जैसे करके जौ की रोटी बनाना सीखा। लंहगा, साड़ी का अभ्यास न होने पर दिन भर लंहगा साडी पहनने मे भी दिक्कत होती थी।

जयपुर आने के कुछ दिन बाद परिवार के लोगो के साथ शास्त्रीजी के जन्मस्थान जोबनेर जाना हुआ। वहा जाने पर मुझसे कहा गया कल अपन अपनी कोठी पर चलेंगे। कोठी शब्द सुनने से मेरे दिमाग में यह आया कि कहीं दूर बगीचे में कोई मकान होगा। दूसरे दिन सुबह बैलगाड़ी में बैठकर शास्त्रीजी की चाचीजी के साथ घर से रवाना होकर हम "कोठी" पहुँचे। तब मालूम हुआ कि राजस्थान मे खेत में स्थित कुँए को कोठी कहते है और उस जगह उस कुंए से सिंचाई करने वाले किसान ने अपने रहने के लिए एक मामूली झोपड़ी बना रखी थी। मैंने वहां पहुँचकर पूछा-अपन तो कोठी पर चलने वाले थे न ? तब भेद खुला कि कोठी तो यही है। जोबनेर मे ही हमारे घर मे शास्त्रीजी की चचेरी बहिन की शादी थी। वहा रिवाज यह था कि नाई, वगैरह को खाना खिलाने के बजाए रोटी घर ले जाने के लिए देते है। मुझे तो जौ की रोटी ठीक से बनाना आता नही था, काफी कोशिश करके मैंने जितनी मोटी रोटी बना सकती थी

बनायी, पर फिर भी वहा की नायन ने मेरी रोटी की यह टीका की, बीनणी तो मंडक्या पोया है।

शादी होकर आने के बाद मैंने यह सोचकर कि लोग आलोचना करेंगे जो की रोटी वगैरह उसी तरह से खाने की कोशिश की जैसे और लोग खाते थे। परन्तु उस कोशिश का नतीजा अभ्यास नहीं होने से, पेट मे दर्द होकर भयंकर दस्त होने का आ गया। उन दिनों में तबियत खराब होने पर भी मेरे लिए यह बताना कठिन था कि मेरी तबियत खराब है। ज्यादा तबियत खराब होने पर ही सब लोगों को मालूम हुआ। सैलाने से पिताजी को तार देकर बुलाया गया और वे आकर मुझे ले गये। यह समय सुधाकर के जन्म के आस पास का था। सैलाने जाने पर मेरी तबियत कुछ सुधरी। इसके बाद हम लोग रतलाम आये। रतलाम में ही सुधाकर का जन्म हुआ। वैसे तो शास्त्रीजी का परिवार काफी बड़ा है, परन्तु मेरी दादीजी का मुझ से ज्यादा स्नेह होने के कारण जब कभी बीमारी की या बच्चा होने की बात आती वह पिताजी को भेज कर तुरन्त मुझे बुलवा लेती। पिताजी के मन में भी हमेशा यह भावना रही कि मेरी बीमारी के कारण से या बच्चों की बीमारी के कारण से शास्त्रीजी को कोई तकलीफ न हो जाए और उनके काम मे कोई अड़चन न आ जाए।

(५) सैलाना की सैल

दा साहब की दरियादिली

श्याम के जन्म के समय मेरी बीमारी की वजह से और श्याम के नौ दस दिन तक दूध न पीने से घर भर में काफी चिन्ता और परेशानी रही। मेरी दादीजी ने प्रेमवश न जाने कितनी मानताएं ले डाली। जिस दिन मुझे नहलाया गया सवा डेढ सौ आदमियों का मजमा हो गया। मोहल्ले वाले और मित्र पिताजी का मजाक करने लगे कि मास्टर साहब के पहले दोहिता हुआ है। पिताजी हंस कर कहने लगे-जो बच्चा जनमता है वह पहला ही होता है। संयोग से स्वाभाविक ढंग से मैंने पूछा-दा साहब कितने रुपये लग गये होंगे? कहने लगे चुकाएगी क्या? पागल, खर्च का हिसाब लगाती है! श्याम ठीक हो गया, तू ठीक हो गयी। आइन्दा इस तरह कभी न सोचना। पिताजी का मेरे साथ और शास्त्रीजी से अटूट प्यार था। वैसे ही बा साहब और बाई का भी हमारे साथ प्रगाढ़ प्यार था। बा साहब शास्त्रीजी को अपने हाथ से पत्र लिखकर वनस्थली भेजा करती। शास्त्रीजी उनको जवाब लिखा करते। कभी कभी मुझको भी शास्त्रीजी के सुन्दर पत्र मिलते। कभी मौका मिलने पर मैं भी शास्त्रीजी को कुछ लिख देती। बाई का प्यार प्रच्छन्न था वे आज भी शास्त्रीजी से पर्दा करती हैं। शास्त्रीजी

जब सैलाने जाते तो दा साहब बहुत सी चीजों के लिए सब लोगों से पहले कह आते, देखना मुझे अमुक चीज इतनी चाहिएगी। लोग उनसे मजाक करते क्यों मास्टर साहब किसी की शादी है क्या? कहते अरे! तुमको मालूम नही है, कुंअर साहब और बच्चे आएंगे। गर्मियों का मौसम होता था तो टोकरे के टोकरे आम लाकर रख देते। सब कहते इतने का क्या होगा? अरे अमरस बनाना और कुंवर साहब के साथ बच्चे आम भी तो चूसेंगे? मा से कहते आज फलां चीज बढिया बनाना, हलवाई से जाकर कह आते, सेव कचौरी शाम को चार बजे भेज देना। कुछ लोग उनसे कहते मास्टर साहब आप इतना खर्च क्यों करते है, तो हंसकर कहते-भाई तुम्हे क्या चिन्ता है तुम्हारे घर रोटी खाने को आऊं तो मना कर देना। स्वास्थ्य उनका बहुत नाजुक होते हुए भी और बड़े परिवार की पूरी जिम्मेदारी होते हुए भी कभी उनके मन में नही आया कि मै इस तरह की सारी जिम्मेदारी किस तरह से उठाऊं?

(६) शास्त्रीजी ने त्यागपत्र दे दिया

शादी के कुछ दिनो बाद ही मुझे शास्त्रीजी के रहने सोचने के ढंग से लगा कि फॉरेन व होम सेक्रेटरी का काम उनकी इच्छा के विरुद्ध है। मैंने एक दिन काफी झिझक के बाद पूछा, आप क्या सोचते रहते है? तब मालूम हुआ कि १७-१८ साल की उम्र से ही पता नही क्यों गाव मे जाकर कुछ काम करने की बात शास्त्रीजी के दिमाग में जमी हुई थी। परन्तु इस समय इनको हम लोगों के कारण वह बात संभव नही लग रही है। उस समय मेरे ज्यादा सोचने समझने की बात तो नही थी। परन्तु मैंने स्वाभाविक ढंग से यह कहा था कि हमारे कारण से तो आपको इस परेशानी मे नही रहना चाहिए। मै तो जहां आप रहेंगे वही रह लूंगी और आप निश्चिन्त होकर आपको ठीक लगे वैसा करें। संयोग से उन्ही दिनो में दा साहब हरिभाऊजी भी उधर आये हुए थे। उनसे भी शायद शास्त्रीजी की बात हुई होगी। क्योंकि वे मजाक मे मुझसे कहते कि रतनजी मुझे आप गालियां देती होंगी। मैं कहा करती आपको गालियां क्यों दूंगी? मैंने तो मेरी इच्छा से ही हा की है। इसके बाद मैं तो बीमार होने के कारण रतलाम चली गयी और एक दिन अचानक शास्त्रीजी का तार आया-"मैंने स्तीफा दे दिया है।" घर में चिन्ता का वातावरण बन गया। मां, दादीजी और सब परिवार के लोग बहुत परेशान हो गये। कहने लगे कि कुंअर साहब ने कितनी बड़ी गलती की है। मुझे तो यह बात मालूम थी, इसलिए कोई तकलीफ होने का सवाल ही नही था। हा, पिताजी जरूर ऐसे रहे कि वे न तो नाराज हुए और न शास्त्रीजी को सरकारी ओहदा छोड़ने का ओलम्भा ही दिया। पिताजी ने यह तय कर रखा था कि जैसी शास्त्रीजी की इच्छा हो उसी के अनुसार सब कुछ करना। किसी बुजुर्ग ने जयपुर मे सगाई के समय पिताजी से कहा था कि

शास्त्रीजी बड़े आग्रही स्वभाव के हैं। तब पिताजी ने कह दिया था कि मैं आग्रह नहीं करूंगा। अपनी इस बात को पिताजी ने अपनी जिन्दगी में अक्षर अक्षर निभाया। जिसमें शास्त्रीजी की अनुकूलता थी उसी में उनको खुशी थी।

(७) कलकत्ता प्रवास, वर्धा यात्रा

शास्त्रीजी सरकारी काम छोडने के थोडे दिन बाद कलकत्ता अकेले गये। मैं दोनों बच्चों-शान्ता और सुधाकर—को लेकर रतलाम में रही। मेरे पिताजी का परिवार सम्मिलित था सो पिताजी के सैलाने रहते हुए भी ज्यादातर मां वगैरह का और खासकर जब मैं जाती थी तब तो रतलाम ही रहना होता था। कलकत्ता जाने के थोड़े दिन बाद शास्त्रीजी हम लोगों को कलकत्ता ले जाने के लिए आये। परन्तु मेरे ताऊजी ने जिनको मैं बड़े दा साहब कहा करती थी मना कर दिया। बोले अभी थोडे दिन पहले सुधाकर को निमोनिया हुआ है, रतनजी बच्चे को वहा अकेली कैसे परदेश में संभालेगी। आखिर शास्त्रीजी हम लोगो को बिना लिये ही गये। बाद मे दुबारा वे जयपुर आये तब हम लोग कलकत्ता गये। सियालदह स्टेशन पर पहुँचे उस समय और कौन लोग थे यह तो मुझे ध्यान नही है, परन्तु भाई सीतारामजी सेकसरिया, बसन्तलालजी मुरारका, जोबनेर निवासी विश्वेश्वरदयालजी अवश्य थे। मैं दो दिन की यात्रा से रेल में थकी थकाई परेशान सी पहुँची थी और मेरी समझ ही नही पड रहा था कि कैसे क्या सामान आदि ठीक करूं, इन सब लोगों की मौजूदगी में। उस समय तक मेरा पर्दा छूटा नही था। याद नही कौनसी किताब ले जाकर एक तरफ खिड़की में मैं पढने को बैठ गयी। सीतारामजी उस बात की मुझे चाहे जब याद दिला देते है। कलकत्ते मे बासतल्ले में लडकियों का स्कूल है जिसकी देखरेख सीतारामजी किया करते थे। रोज तो नही पर कभी कभी शान्ता और सुधाकर दोनो बच्चों को लेकर मै भी वहा चली जाया करती थी। उसी समय मेरे मन में आया अपन कोई परीक्षा ही दे डाले क्या ? हम लोग कलकत्ता सात आठ महीने रहे होगे। मैने वहा मारवाडी विद्यालय मे विनोदिनी की परीक्षा का फार्म भरकर दे भी दिया। शास्त्रीजी का गांव में जाने से पहले थोडे दिनो के लिए दूसरी जगह रह कर कुछ जानकारी आदि लेने का ध्यान था उस समय। और कलकत्ता प्रवास उसी का हिस्सा था। कलकत्ता कांग्रेस के थोडे दिनो पहले यह तय हुआ कि शास्त्रीजी, ब्रजमोहनजी और मैं पुरी वर्धा जाएं। ब्रजमोहनजी तो पुरी तक ही हमारे साथ जाने वाले थे सो पुरी से खड़गपुर होते हुए वापस कलकत्ता चले गये। मै और शास्त्रीजी खडगपुर से वर्धा पहुचे। भाई सीतारामजी और बहन भगवानदेवी भी वर्धा पहुंच गये थे। मेरे लिए व बहन भगवानदेवी के लिए वर्धा का सारा वातावरण बिल्कुल नया था। जाते ही तो हम काकाजी जमनालालजी बजाज के शहर वाले मकान पर पहुचे। वहा नहाना-धोना, खाना-पीना आदि

किया। रात को वहीं सोये। पहली बार उस दिन काकाजी की बड़ी लड़की कमलाबाई से थोडी जान पहचान हुई। दूसरे दिन हम सब लोग वर्धा में महिला आश्रम जहा बापूजी एवं बाहर के बहुत से कार्यकर्ता ठहरे हुए थे, ठहरने के लिए चले गये थे। वहा जाने पर काकाजी और काकीजी जानकी देवीजी से मिलना हुआ। भाई कपूरचन्दजी पाटनी भी जयपुर से वर्धा उसी समय आये थे। वर्धा के आश्रम के वातावरण मे बहन भगवानदेवी को काफी दिक्कत रही। मुझे खुद को तो एकाध दिन के बाद ही सबसे मिलना जुलना, जान पहचान होने के बाद कोई अटपटापन नही लगा। वहां भोजन करने को सब बहिनें एक पंगत लगाकर बैठती थीं। जिसको जो चाहिये वह परोसने वाले से अपनी जरूरत के माफिक मांग कर ले लेती थी। इसमे बहिन भगवान देवी को बडा संकोच होता था। इसलिए हम दोनों साथ बैठती और उनकी सारी जरूरत की बात मैं ही पूरी कराती। ठीक से तो ध्यान नही है पर हम लोग शायद १५-२० दिन ठहरने के विचार से वर्धा गये थे। परन्तु ८-१० दिन के बाद ही बापूजी से बातचीत होकर गाव मे रहने वाली बात शास्त्रीजी की तय हो गयी। शास्त्रीजी जब बापू के पास से आये तब बाहर सीतारामजी खडे थे और मैं भी पहुच गयी। सीतारामजी ने पूछा क्या तय हुआ? बोले गाव मे रहना तय हो गया, पर जमनालालजी और घनश्यामदासजी सहमत नही हुए है। जमनालालजी ने मुझको तकलीफ होने की आगाही दी है। और घनश्यामदासजी ने मुझको रुपया न देने का चैलेंज सा दिया है। सीतारामजी कहने लगे-गाव के काम मे कितना क्या खर्च अपने को करना पड़ेगा? १०० रुपये मासिक तो अपन ही खर्च कर सकते है। और उसी दिन हमारे वर्धा से रवाना होने की बात तय हो गयी। बहिन भगवान देवी घबराई हुई सी बोली रतनजी तुम चली जाओगी तो मेरी अकेली का निभाव कैसे होगा? सीतारामजी से कहने के लिए कहा कि उनसे भी कहो कि अब कलकत्ता चलें।

(८) वनस्थली की खोज

वर्धा से हम लोग रतलाम पहुचे। मुझे और बच्चो को रतलाम छोडकर शास्त्रीजी गाव को तलाश करने के लिए जयपुर रवाना हो गये। इसके बीच में वे बारडोली भी गये। वहा से लौटते वक्त खादी की चार साड़ियां और पेटीकोट व ब्लाउज का बारडोली का अच्छा छपा हुआ परन्तु बहुत मोटा कपडा भी लेकर आये। क्योंकि जब शास्त्रीजी वर्धा से चले थे तब मन मे यह बात तय हो गयी थी कि शास्त्रीजी को खादी पसन्द है तो अपने को जल्दी ही खादी पहनना शुरु कर देना है। जो चीज इनको पसन्द नही उसके पहनने से क्या फायदा? वैसे तो जेवर और विदेशी कपडा पहनना तो मैं कलकत्ते गयी उसी समय छोड दिया था। भाई सीतारामजी बोले—जेवर नही पहनना है तो फिर इसको रखने से

क्या फायदा ? मैंने उसी समय उनसे कह दिया था कि आप इनको जरुर बेचदे मैंने तो छोड ही दिया है। उसके साथ मैंने यह जरुर कहा था कि हाथ की चूडी, नाक का लोंग व कान के ईयररिंग ये चीजें मैं नहीं छोड़ूंगी क्योंकि मेरी मां आदि को यह उतारने से बुरा लगेगा और अपशकुन माना जाएगा। इस प्रकार चार चूड़िया, एक अंगूठी और एक पतली सी चेन रखी गयी। वह चीजें जीवन-कुटीर की स्थापना के बाद तक मेरे पास उसी रूप में काम में आती रही। शास्त्रीजी वाग्डोली से आकर जयपुर के गावों में घूमकर स्थान पसन्द करने की योजना बना रहे थे और मैं अपने ननिहाल एक शादी मे जाने की तैयारी मे थी। अचानक जोबनेर से तार आया कि शास्त्रीजी की भुआजी चल बसी है। हम लोग सैलाने से जोबनेर पहुचे। मुझे जोबनेर छोडकर शास्त्रीजी गाव की तलाश में वहा से रवाना हो गये। बीच में मेरी कुछ ज्यादा तबियत खराब हो गयी और मुझको पिताजी को बुलाकर सैलाना भेजना पडा। वह समय प्रभाकर के (जिसका दो साल की उम्र मे ही देहान्त हो गया) जन्म के आसपास का था। शास्त्रीजी ने अपने शिष्य दुर्गाप्रसाद के साथ महीनो तक गावो मे घूमकर निवाई तहसील के वनथ्ली गाव को पसन्द कर लिया और दो-चार-पाच झोंपडिया बन गयी और कुछ साथी कार्यकर्त्ता भी जुट गये।

(९) वनस्थली के प्रथम दर्शन

मैं वनस्थली की स्थापना के काफी दिनों बाद शान्ता, सुधाकर और दो महीने के प्रभाकर को लेकर निवाई स्टेशन पहुची। निवाई स्टेशन पर हमको लेने के लिए एक बैलगाडी और एक छोटी बहली आयी। उस छोटे दो महीने के बच्चे को एक आदमी की गोद मे दे दिया और दोनो बच्चो को लेकर मैं उस बहली मे बैठी। थोडी दूर चले होंगे कि बहली को उछाला लगा और शान्ताबाई उसमें से गिर पडी। उसके ज्यादा लगी तो नही, पर मैं अन्दर से काप गयी। बडी मुश्किल से धीरे धीरे हम लोग वनस्थली पहुचे। वनस्थली जैसे छोटे गाव को देखने का यह मेरा पहला मौका था। यहा पहुचने पर एक गाव के ब्राह्मण ने हम लोगों के लिए उड़द की दाल, मोटी मोटी गेहू की रोटिया और मोटा मोटा गुड़ का दलिया तैयार कर रखा था। वह सारा देखकर मैं बडी परेशानी में पड़ गयी। इतने छोटे बच्चे के होते हुए ये चीजे मैं खाऊं या नही ? साथ में रतलाम से आया हुआ कुछ खाना था। उससे व थोडा बहुत उन चीजो में से लेकर उस रात सो गये। फिर दूसरे दिन सारी चीजों को देखकर रोटी आदि बनाने का हिसाब बिठाया। शास्त्रीजी के एक शिष्य की पत्नी कौशल्या भी वनस्थली पहुच गयी थी। बच्चे को संभालने का जिम्मा उसका किया।

(१०) जीवनकुटीर का जीवन

उस समय जीवनकुटीर में शास्त्रीजी ने यह तय कर रखा था, कि चूंकि हम गाव के लोगों के लिए काम करने को आये है तो हमारा रहन-सहन व खाना-पीना भी बिल्कुल सादा होना चाहिए। और जो चीजें गाव मे मिलती हो उन्ही को काम में लेना चाहिए। उन दिनों में वनस्थली के आस पास एक दिन की मजदूरी छह पैसे थी तो हम लोगों को भी अपना काम ६ पैसे रोज में ही चलाना चाहिए। क्योंकि गाव के लोग गुड तेल के अलावा कोई चीज निवाई से लाकर नही खाते है, इसलिए हमको भी इसके अलावा निवाई या जयपुर से कोई खास चीज मंगवाकर काम मे नही लेनी चाहिए। वनस्थली उन दिनों मे किसान कोई साग वगैरह पैदा नही करते थे। सिर्फ गाजर, कचरी और गंवार की फली ही होती थी। हर मौसम में गाजर व फली भी नही होती थी इसका नतीजा यह आता था कि मूंग की दाल सुवह व शाम को सूखी पत्तियों की कढी। मुझको तो उस स्थिति में भी मन मे कोई खास परेशानी नही थी। पर दोनो छोटे बच्चे वहुत तंग करते थे। मूंग की छिलके वाली दाल उनको बिल्कुल पसन्द नही आती और नाराज होकर कहते हम काली दाल नही खाएंगे। तूने चावल तो वनाये ही नही। उन दिनो गेहू वनस्थली में लाल ही पैदा होते थे। शान्ता तक यह कहती थी कि भाभी इन काली रोटियों मे माजी के हाथ का रंग लग जाता है। इनसे रोटी मत वनवा। हम दोनों को तो नानाजी के पास सैलाने भेजदे, तू रह यहा। एक दिन सुवह इसी तरह का झगडा सुधाकर खाने के समय पर कर रहा था। तब आस पास के गांव के कुछ किसान लोग आये और बोले हम तो पण्डितजी महाराज के दर्शन करने आये है। हमारी झोपडियो को देखकर बोले महाराज आपके "कमठाणो" का क्या कहना? आप तो दाल फुलके खाने वाले है। सुधाकर नाराज होकर झगड़ ही रहा था सो गुस्सा करके बोला यह दाल फुलके तुम ले जाओ। वैसे तो निवाई मे आलू आदि कुछ चीजें मिला करती थी और रोज एक आदमी निवाई से पैदल डाक लाने ले जाने को आया जाया करता था। परन्तु निवाई से कोई चीज नही मंगवाने का तो नियम वना रखा था न?

जीवनकुटीर मे धीरे धीरे काफी साथी कार्यकर्त्ता जुट गये। स्त्रियां दो तीन से ज्यादा कभी उनके साथ नही रही। जीवनकुटीर में इन लोगो ने यह नियम वना रखा था कि सुवह ४ वजे घण्टी लगे तव सव भाई-वहिनों को उठकर प्रार्थना में शामिल होना चाहिए। यदि किसी भी कारण से किसी साथी को एकाध मिनट की देर हो जाए तो वह क्षतिपूर्ति के लिए १६० गज सूत अपने समय में से कात कर दे। सुवह ४ वजे से रात १० वजे तक के संध्या के समय के अलावा अपना समय होता था। उन दिनों कार्यकर्त्ताओ की जीवनचर्या वहुत कठिन थी। ७ वजे तक तैयार होकर रोटी खाकर गावों में जाना, शाम की साथ

ले जाना। दिन में कताई पिंजाई आदि सिखाना। कोई बीमार हो तो दवा आदि करना और शाम ६ बजे के बाद रात्रि पाठशाला चलाकर वनस्थली लौटना। वनस्थली के आस पास के ६ मील के क्षेत्र के गावों मे से हरेक कार्यकर्त्ता के अलग अलग क्षेत्र बंटा हुआ था। सब कार्यकर्ताओं को सुबह ७ बजे खाना मिल जाए यह जिम्मा मेरा था। उस समय मेरे मन में भी यही भावना रहती थी कि सुधाकर वगैरह जब बड़े होगे तब होंगे अपने सच्चे लड़के व भाई तो ये लोग ही है जो अपने इस काम मे अपना सहयोग देते है। इस कारण से कभी भी उन लोगों के लिए रोटी बनाने, खिलाने—पिलाने में मुझे तकलीफ नही हुई बल्कि सुख मिलता था और अच्छा लगता था। कभी कभी तो ऐसा मौका भी आया कि मेरे बुखार आ गया, पर मन मे यही रहता था कि ये लोग थके थकाये आये है आते ही उन्हें रोटी तो मिलनी ही चाहिए न ? एक दिन शास्त्रीजी गाव के दौरे से आये। मेरे बुखार था, मैं ओढकर सो रही थी। मजाक मे बोले तुम सो रही हो, हमारे खाने का क्या होगा ? मैंने कहा आप सबका खाना बनाकर सोयी हूं। मुझे मालूम था कि शाम तक मुझे बुखार हो जाएगा। उन दिनो मेरे एक दिन छोड़कर एक दिन बुखार हो जाया करता था। एक बार ऐसा मौका आया कि हम २०–२५ कार्यकर्त्ता होंगे और गांव की जो बहिनें आटा पीस कर देती थी वे कुछ पैसे बढ़ाने के लिए अड़ गयी। शास्त्रीजी के आग्रही स्वभाव को वह बात जची नही। इसलिए यह तय हुआ कि आटा सब लोग मिलकर पीस लेंगे। चार पांच चक्कियां मगवायी गयीं। सब लोग मुझसे कहने लगे पीसना आपके वस की बात नही है। मैंने कहा यह तो ठीक है कि आप सब लोगो को मै अकेली पीसकर नही खिला सकती, पर यह भी मुझ से नही होगा कि आप लोग पीसो और मैं खाऊं। मेरे और कम से कम दोनों बच्चो के लिए आटा तो मैं खुद ही पीसूंगी। क्योंकि और चक्कियां तो भारी थीं और उन दिनो मेरे संग्रहणी की बीमारी भी थी। इसलिए मेरे लिए उनसे आटा पीसना किसी भी स्थिति मे संभव नही हुआ। गाव मे एक बुढ़िया के पास छोटी चक्की थी। जैसे तैसे उसे राजी करके वह चक्की उससे ले ली। यह कार्यक्रम करीब ४–५ महीने चला। मैं तो हमारा आटा दोनो वक्त दो बार मे पीसा करती थी। शास्त्रीजी सहित उनके साथी कार्यकर्त्ता तो एक समय मे ही पीसकर रख देते थे। क्योंकि ७ बजे तो उन्हें गांव मे जाना होता था। शास्त्रीजी ने कुआ बनवाया, जिसके बनाने में उन्हे खुद को बैल की जगह जुतना पड़ता था।

जलाने के लिए वनस्थली में ईंधन भी सुलभ नहीं था। जंगल से छोटे मोटे छाणे बिनवा कर काम मे लेते थे। रोटी बनाने मे एक वनस्थली के ब्राह्मण कार्यकर्त्ता रहते थे उनकी मदद मिल जाती थी मुझको। एक बार ऐसा मौका आया कि कार्यकर्ताओं को मासिक अलाउन्स देने के लिए रुपया नही था और शास्त्रीजी ने यह तय कर लिया था कि होगा सो देखा जाएगा मैं तो किसी से

कुछ कहने जाऊंगा नही। कार्यकर्त्ताओं से बोले-घर में जो अनाज है उसकी रोटी बनाकर खाओ और मौज करो। यह स्थिति शायद दो एक महीना चली होगी। जमनालालजी को किसी ने बताया कि शास्त्रीजी तो बड़ी तकलीफ में काम कर रहे हैं और यह तय कर रखा है कि किसी से कुछ कहना नही। शास्त्रीजी के पास बम्बई से जमनालालजी का तार आया कि तुरन्त बंबई आओ। शास्त्रीजी वहा गये, बातचीत हुई। जमनालालजी ने उनको यह सुझाया कि आप वस्त्र स्वावलम्बन का काम करते हैं तो चरखा संघ से अनुदान लेने में क्या दिक्कत है? शास्त्रीजी बोले कि मैं अपने ढंग से काम कर रहा हूं, चरखा संघ वालों की एक हजार शर्तें होगी और वे रोज रोज मेरे काम में अड़ंगा लगाएंगे। आखिरकार राजेन्द्रबाबू ने बीच में पडकर यह तय कराया कि आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा, आप तो चरखा संघ से अनुदान ले लो जिससे आपका वस्त्र स्वावलम्बन का कार्य ज्यादा अच्छी तरह व तेजी से चले।

इस सारी कठिन स्थिति में भी मैंने मन में कभी कोई तकलीफ अनुभव नही की और हमेशा संतोष और खुशी ही रही। एक बार जयपुर में मेरी बड़ी बहन सर गोपीनाथजी की पत्नी मुझसे कहने लगीं-तुम वनस्थली में इतनी तकलीफ व परेशानी में रहती हो। यदि तुम वनस्थली नहीं जाती तो शास्त्रीजी भी जयपुर ही आ जाते। तुम्हारा घर का अच्छा मकान है। मैंने उनसे कहा जीजीबाई जब उनको गाव व झोंपड़े में रहना पसन्द है तो मैं शहर व मकान का क्या करूं? संयोग की बात थी कि शास्त्रीजी ने नौकरी छोड़ी उसके दो चार महीने पहले ही जयपुर का मकान दो हजार रुपये में खरीदा गया था। पहले हम सर गोपीनाथजी के एक मकान में रहते थे। हम लोग जब कलकत्ता जाने लगे उस समय नया खरीदा हुआ मकान मरम्मत होकर ठीक हुआ था। मकान की मरम्मत होते ही यह प्रश्न आया कि अपने को तो वहां रहना नही है तो इस मकान का क्या करें? एक बार तो यह विचार हुआ कि इस मकान को किसी काम में दे डाला जाए। फिर मित्रों की सलाह से मकान को रखना तय हो गया। शास्त्रीजी का शुरु से ही कुछ लड़कों को तैयार करने का विचार था। शास्त्रीजी जिस समय सरकार में थे उस समय भी एक घंटा पारीक पाठशाला में ऑनरेरी पढ़ाने जाते थे। रात को कभी कुछ लड़के भी आ जाया करते थे। उस समय शास्त्रीजी ने सामने के एक मकान में कुछ लड़कों को रखने की व्यवस्था करली थी। मेरे दिमाग में यह बात आयी कि जो लड़के उस मकान में रहते हैं उनको ही अपने पास मकान में क्यों न रहने दिया जाए। इस तरह से जयपुर के मकान की नागल राजस्थान छात्रावास के रूप में हुई? मैं जब कभी जयपुर जाती तो मेरी यह इच्छा रहती कि अपन इन लोगों को कुछ अच्छी चीज बनाकर खिलाएं। उस मकान में छात्र के रूप में रहे हुए कुछ लड़के तो बड़े योग्य व प्रतिभाशाली निकले। जैसे बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट के सचिव व हिन्दी-संस्कृत के विद्वान डॉ० कन्हैयालाल

सहल, राजस्थान के भूतपूर्व होम कमिश्नर श्री शिवशंकर, श्री प्रकाशचन्द्र गोयल जिन्होंने ३५-४० सालों तक जीवनकुटीर और वनस्थली विद्यापीठ का कार्य संभाला। उन सबसे आज मेरे मन में बडा संतोप व खुशी होती है।

११. शान्तावाई चली गयीं

जीवनकुटीर का कार्यक्रम चल ही रहा था। इस वीच मे मुझे प्रभाकर के ज्यादा बीमार होने से व मेरे संग्रहणी हो जाने से काफी दिनों के लिए सैलाने जाना पड़ा।

श्याम जन्म से ही नाजुक और वहुत बीमार रहा। एक वार हमें शान्ता, सुधाकर, सुशीला तीनों को वनस्थली के श्रीधरजी नाम के कार्यकर्त्ता के पास वनस्थली छोडकर श्याम के इलाज के लिए जयपुर जाना पड़ा। पता नहीं क्यों शान्ता का प्यार श्याम से ज्यादा था। वह मुझे कहने लगी तू जाकर के श्याम को ठीक कराला। हम तीनो जने वनस्थली में अच्छी तरह रह जाएंगे। श्याम थोड़ा ठीक हुआ तो हम लोग उसे लेकर वनस्थली आये। उस दिन शान्ता को जो खुशी हुई इसकी कल्पना नही हो सकती। फिर श्याम की तवियत खराब हुई तो उसे व दोनो वच्चो को लेकर सैलाने जाना पड़ा। वहा पर वह श्याम को लेकर वरावर झूले में झूलती और कहती रहती थी कि नानीजी आप भाभी को संभालो, इसको तो मैं संभाल लूंगी। श्याम के वाद एक लड़की का जन्म हुआ था। वह ७ दिन की होकर चली गयी। हम लोग श्याम के थोड़ा ठीक होने पर वापिस वनस्थली आये। जिस दिन हम लोग सैलाने से रवाना हुए उस दिन पता नही क्यों शान्ता को सैलाना छोड़कर आने में वड़ा जोर आया। वह मेरी मा और दादीजी के चिपटी ही रही। कहने लगी नानीजी अबके तो हमारा मन नहीं भरा। बड़ी मुश्किल से हम लोग वस में वैठकर रतलाम पहुचे।

शान्तावाई के वारे में मैं क्या कहूं? सुशीला—सुधाकर को संभाल लेने के अलावा वह घर का सारा काम कर डालती थी। गाव के वच्चों को पढाने के लिए वैठ जाती, कभी हारमोनियम वजाती हुई उनको भजन सुनाने लगती। एक वार उसके सिर में वड़ा भारी फोडा हो गया। उसका ऑपरेशन विना क्लोरोफार्म के हुआ तो भी छोटीसी शाता ने चूं तक नही की। लाठी से जीवनकुटीर के युवक कार्यकर्ताओं को वह परास्त कर देती थी। इतना समय हो गया—शास्त्रीजी के आज भी शान्तावाई का नाम सुनकर, उसका फोटो देखकर आंसू आ जाते है। ऐसी थी शान्तावाई? शास्त्रीजी की मदद से मैंने और शान्तावाई ने एक एक परीक्षा पास करली थी। बाद मे शास्त्रीजी का हम दोनों को वी०ए० पास कराने का संकल्प हो गया था। पर ....—कहा गयी शान्तावाई और क्या हुआ हमारे—वी०ए० पास करने का?

जो हो, बकौल शास्त्रीजी के शान्ताबाई शाश्वत होकर वनस्थली के कण कण मे रम रही है, रमी रहेगी।

वनस्थली आने के थोड़े दिनो बाद ही पता नही क्यों शान्ता को एक अजीब सी धुन सवार हुई कि हम तो एक बच्चो का स्कूल बनाएंगे। हमको औजार व परातें देदो, हम ईंटे बनाएंगे। शान्ता, सुशीला व सुधाकर रोज खेल-खेल में दस दस, पन्द्रह-पन्द्रह ईंटे बनाते। कोई पूछता क्या करते हो तो कहते कि हम स्कूल बनाएंगे। उन दिनों वनस्थली मे सबको शौच के लिए जंगल में ही जाना पड़ता था। एक दिन अचानक १२ बजे के करीब शान्ता बाहर निमट कर आयी। मैंने हाथ धुलाये तब कहने लगी मेरे सिर मे दर्द है। जाकर लेट गयी। थोड़ा बुखार हो गया। फिर ४ बजे के करीब कहा कि मुझे फिर शौच जाना है। मैंने हठ करके उसे बाहर तो नही जाने दिया, पर वह तो बिठाते-बिठाते ही ऐसी बेहोश हो गयी सो फिर होश में आयी ही नही। टेम्परेचर १०७ डिग्री तक पहुंच गया था। उन दिनों यहां कोई मोटर आदि तो थी नही। बैलगाड़ी भेजकर निवाई से डॉक्टर बुलाने की कोशिश की, जयपुर एक कार्यकर्त्ता को भेजा। जयपुर से एक खास मित्र-वैद्य व डॉक्टर को लेकर पहुंचे। परन्तु कोई भी चीज कारगर नही हुई और जो जीवनकुटीर का सुखमय जीवन था उसमे न सहने लायक हम लोगों के लिए आघात आ पहुंचा। एक दो दिन तो मेरी यह स्थिति रही कि न तो एक आंसू आया और मन मंजूर न ही कर रहा था कि यह घटना घट भी गयी। शास्त्रीजी के मन की स्थिति तो करीब-करीब पागल की सी हो गयी थी। इसके दो तीन दिन बाद हम लोग सैलाने पहुंचे। वहा सारे लोगो के साथ रहने से इस तकलीफ को सहन करने मे मदद मिली। मन को सांत्वना देने के हिसाब से वनस्थली से ही हमारा यह विचार हो गया था कि चलो शान्ता की जगह अपन दो चार दूसरी लड़कियो को बुलाकर रख लेंगे।

लड़कियों को रखने के लिए वर्धा जाकर बापूजी से इजाजत चाही गयी। बापूजी की इजाजत मिल गयी कि तुमने जितना काम हो सके उतना करो। सैलाने में नवीन के जन्म के आस पास का समय था। नवीन के दो महीने के होते ही मैं वनस्थली आ गयी और सुशीला सहित तीन चार और लड़कियों को लेकर जीवनकुटीर के झोपड़ों में शिक्षाकुटीर की स्थापना हो गयी और इस प्रकार जीवनकुटीर मे से शिक्षाकुटीर का जन्म हुआ।

शिक्षाकुटीर की स्थापना आदि के विषय में दो एक बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अप्रेल, १९३५ में शान्ताबाई का विछोह हुआ उसके तुरन्त बाद हम लोग सैलाना चले गये थे। प्रसव का समय नजदीक होने से मुझे सैलाना में ही रुक जाना पड़ा। इसलिए शिक्षाकुटीर की शुरूआत में देर लगी। मैं दो महीने के छोटे बच्चे को लेकर वनस्थली लौटी तभी दो- तीन लड़कियों को

वनस्थली बुलाना संभव हुआ । कुछ समय के बाद नया बच्चा नवीन बीमार हुआ। उसे लेकर हम लोगों को जयपुर में रहना पड़ा। उन दिनों डॉ० प्रभुदयालजी ने बच्चे को बचाने की जो जी तोड़ कोशिश की उससे हम लोग इस जिन्दगी में उऋण नहीं हो सकते । पर बच्चा बचाया नहीं जा सका। नवीन अत्यन्त सुन्दर बच्चा था । उसके जाने से जो आघात लगा उसका असर शास्त्रीजी पर और मुझ पर यह हुआ कि कलकत्ता जाकर मेरा ऑपरेशन करा दिया गया । हमने यह सोचा था कि जब शिक्षाकुटीर का काम करना है तो प्रसूति का काम तो बंद होना ही चाहिए । अन्दाजन दो साल के बाद एक दिन खोलते हुए गर्म पानी की तपेली अचानक गिर जाने से मेरी टांग बुरी तरह से जल गयी । हमको पता नहीं था कि इस तरह से जलना कोई बड़ी भारी बात है । आखिर मैं जयपुर में इलाज के लिए डॉ० प्रभुदयालजी के सुपुर्द हो गयी और शास्त्रीजी मुझे उसी हालत मे छोड़कर दौरे पर चले गये । शास्त्रीजी को अपने काम का ऐसा नशा छाया रहता था कि उनके दिमाग में यह बात नहीं आयी कि मेरा इतनी जली हुई का क्या हो जा सकता है ? मैं जितनी जली थी उससे मेरा बच जाना चमत्कार जैसा हुआ । डॉ० प्रभुदयालजी के उपचार ने और कम्पाउंडर रघुनाथजी की परिचर्या ने मुझको जीवनदान दे दिया । जयपुर में और जीवनकुटीर में संभवतः जौ की रोटी खाने से मैं संग्रहणी की शिकार हुई, फिर ऑपरेशन का मेरे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर हुआ । फिर टांग के जल जाने का भी न जाने कैसा क्या असर हुआ । कुल मिलाकर सब बातों का नतीजा यह आया कि मेरा स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया—और साथ ही मेरा वजन भी बढ़ता गया। मैंने सोचा कि शान्ताबाई को खोकर हमने शिक्षाकुटीर पाया और फिर स्वास्थ्य की कुर्बानी के साथ-साथ फलता फूलता वनस्थली विद्यापीठ मिल गया । जो कुछ हमने पा लिया उसके मुकाबले में स्वास्थ्य की भी आखिर क्या कीमत हो सकती है ।

(१२) शिक्षाकुटीर

संयोग की बात, जिस समय वनस्थली में शिक्षाकुटीर की स्थापना हुई उसी समय देशी रियासतों में जनता के अपने बलबूते पर संगठन खड़ा करने का विचार जोर पकड़ रहा था । जयपुर में भी राज्य प्रजामण्डल को पुनर्गठित करने की बात सोची गयी और शास्त्रीजी रचनात्मक से राजनैतिक कार्यक्रम की तरफ लगे । मैं और हमारे एक पुराने साथी कार्यकर्त्ता प्रकाशचन्द्रजी गोयल ने यह तय किया कि हमको जिन्दगी भर शिक्षाकुटीर का काम करना है। जीवनकुटीर के झोंपड़े शिक्षाकुटीर को मिल गये और शिक्षाकुटीर शुरू हो गया । लड़कियों का मन कैसे लगाया जाए इसके लिए एक छोटा सा टट्टू पांच रुपये में खरीद लिया गया । क्योंकि शास्त्रीजी प्रजामण्डल का कार्य करते थे इसलिए उस समय सर-

कार की दृष्टि मे वनस्थली का रूप भी शिक्षणसंस्था के बजाए राजनैतिक रहता था। अंग्रेज आई० जी० पी० मिस्टर यंग वनस्थली को "जवानकुटीर" बोला करते थे। शिक्षाकुटीर का पहला उत्सव और जीवनकुटीर का एक प्रकार से अन्तिम उत्सव साथ साथ एक ही स्टेज पर वनस्थली मे हुए। जीवनकुटीर के उत्सव की अध्यक्षता जमनालालजी ने की। उस उत्सव मे शास्त्रीजी का राज के खिलाफ खूंखार भाषण हुआ। पुरानी जयपुर रियासत मे यह कायदा था कि कोई भी बिना सरकार की अनुमति के स्कूल नहीं चला सकते। शिक्षाकुटीर के लिए सरकार से "इजाजत लेने जाने का तो सवाल ही नही था।"

सुनने सुनाने से यह खबर लगी कि जयपुर सरकार शिक्षाकुटीर को नही चलने देगी। उन दिनों मे शिक्षामंत्री जोबनेर ठाकुर साहब थे और डायरेक्टर एक अंग्रेज मिस्टर ओवेन्स थे। संयोग से शिक्षाकुटीर की स्थापना से पहले एक बार जीवनकुटीर के समय वे दोनो वनस्थली आ चुके थे। हम मिस्टर ओवेन्स के पास गये और उनसे पूंछने लगे कि हम एक कच्चा हॉल बनाने वाले है उसके लिए चन्दा करेंगे। वे कहने लगे-पहले आप स्कूल को अनुमति तो मिल जाने दो। मेरे मन में यह सुनकर बहुत तकलीफ हुई व गुस्सा आया। मैंने कहा मिस्टर ओवेन्स मैं डायरेक्टर से बात करने नही आयी हूं, मैं तो मिस्टर ओवेन्स से बात कर रही हूं। मै कोई स्कूल चला ही नही रही हूं। मै तो अपनी बेटी के स्थान पर आयी हुई कुछ बच्चियो को पढ़ाती लिखाती हूं। ऐसी कौन सरकार होगी जो माता पिता को अपने बच्चों को पढाने लिखाने नही दे। "आप वनस्थली को बन्द करने के लिए फौज पलटन लेकर आ जाना। मै आपको दरवाजे पर मिलूंगी।" शास्त्रीजी प्रजामण्डल का काम करते है इसकी सजा शिक्षाकुटीर को थोड़े ही मिल सकती है। मुझे अंग्रेजी नही आती है और वे हिन्दी नही जानते थे। मेरा गुस्से का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर शास्त्रीजी से पूछने लगे श्रीमती शास्त्री क्या कह रही है? शास्त्रीजी ने उनको मेरी बात बतादी। वे शास्त्रीजी से कहने लगे कि आप इन्हें समझा दीजिये मेरा मतलब यह नही था। मैने तो सिर्फ सुझाव दिया था। इसके बाद शिक्षामंत्री जोबनेर ठाकुर साहब के पास जाने का सवाल आया कि उनसे भी जाकर बात की जाए। क्योंकि वनस्थली की शिक्षाकुटीर की बात थी इसलिए उनसे बात मुझे ही करनी थी। परन्तु मन में काफी झिझक व संकोच था कि अपना परिचय अपन उनको कैसे और क्या देगे? उनके यहा उन दिनों मे किसी मिलने जुलने वाले के लिए कोई खास रुकावट नहीं थी। मैं हिम्मत करके गयी। एकाध आदमी खड़े थे, उन्होंने मुझे बैठने को मुड्डा दिया। ५-७ मिनट में ठाकुर साहब अन्दर से आये। उन्हे कल्पना ही नही हो सकती थी कि मैं वहा पहुँच जाऊंगी। बोले—कहिये बाईजी, कैसे आयी। मुझे हंसी आयी कि मै बाईजी नही, बहूजी हूं। मैंने कहना शुरू किया-अपन वनस्थली मे जो लड़कियों का काम कर रहे है उसके लिए मैने सुना है कि सरकार की इजाजत लेनी पड़ती

है सो मैं आपसे यह जानने के लिये आयी हूं कि क्या करना है। मैं तो कुछ कायदा कानून जानती नहीं। एक लड़की चली गयी उसकी कुछ तकलीफ कम करने के लिये दूसरो की बच्चियों को बुलाया है और पढाने का काम शुरू किया है। तब उन्होंने समझा कि मैं कौन हूं और क्यो आई हूं? उसके कुछ दिन बाद ही जयपुर में वनस्थली के लिए १०,०००/–करने का संकल्प करके चन्दा शुरू किया। उन दिनों में १००-२०० बडा चन्दा माना जाता था। चन्दे की बात लेकर आई० जी० पी० मिस्टर यंग के पास में गयी। यंग साहब बहुत चतुर और घाघ आदमी थे। उनकी वनस्थली देखने की भी थोड़ी बहुत इच्छा थी। मिस्टर यंग ने कहा आप 'जवानकुटीर' के लिए चन्दा लेने आयी है क्या? मैंने उन्हें बताया कि हम कुछ छोटी लड़कियो को अपनी लड़की की जगह अपने पास रख-कर कुछ लिखना पढ़ना और कुछ अन्य बातें भी सिखाना चाहते है। यह चन्दा उनके लिए बैठने व प्रार्थना आदि करने के लिए कच्ची ईंटो का एक छोटा सा हॉल बनाने के लिए करना चाहते है। कहने लगे इस महीने में तो मैं जयपुर शहर में लगी आग के सिलसिले मे काफी चन्दा दे चुका हूं। मैंने कहा इस महीने में न सही, अगले महीने दे दें पर आप इस लिस्ट मे लिख तो दीजिए। उन्होंने २०१/–का चन्दा लिख दिया। मैंने उनको वनस्थली आने का निमन्त्रण भी दे दिया। राजकीय अस्पताल में डॉक्टर ह्यूवन थे उनसे भी मैं १०१/–का चन्दा लिखा लायी। जोबनेर ठाकुर साहब से भी मैंने १०१/–का चन्दा लिखवा लिया था।

[१३] जयपुर सत्याग्रह

वनस्थली का काम शुरू होने के दो साल बाद ही जयपुर में प्रजामण्डल के सत्याग्रह की चर्चा शुरू हो गयी। शास्त्रीजी सत्याग्रह शुरू करने के बारे मे बापूजी और जमनालालजी से सलाह करने के लिए वर्धा गये। मैं भी बापू को प्रणाम करने की इच्छा से उनके साथ गयी।

हम लोग रतलाम होते हुए वर्धा जाने वाले थे। मन में आया पिताजी बीमार है, उनको भी देखते हुए चलें चलें। वे अस्पताल में थे उनके पास पहुचते ही उनको देखकर मेरा दिल काप उठा। उनके बहुत बड़ा ऑपरेशन हुआ था और उनकी अपने आपसे पलंग पर बैठने की स्थिति नही थी। मैंने उनसे कहा-आप तो जो पत्र लिखते थे उनमे यह लिखते रहे थे कि कोई छोटा सा ऑपरेशन होने वाला हैं, खास बात नही है। इधर इतनी बडी बात हो गयी। उधर आपके पत्रो से मै निश्चित सी थी। कहने लगे मेरा इलाज ठीक चल रहा था। कुंवर साहब और तुम दोनों अपना काम छोड़कर भाग कर आते। वहां जाने पर यह भी मालुम

हुआ कि वे सैलाने से मेरे एक मामा के लड़के भाई की तबियत खराब होते ही लेकर रतलाम क्रिश्चियन अस्पताल में पहुँचे थे। डॉक्टर से बात की तो वह कहने लगा मास्टर साहब, आपको ऑपरेशन तुरन्त करना होगा और ऑपरेशन मेजर भी है। आप जिनको बुलवाना चाहते हैं बुलवा लीजिए। बोले ऑपरेलन करना है कर दो, मैं दस्तखत करता हूं। जिनको आना है आते रहेंगे। उनका ऑपरेशन हो गया। ऑपरेशन के समय मां भी रतलाम में मौजूद नहीं थी। हमको वर्धा जाना था सो वर्धा गये ही, पर मेरे मन में बराबर यह विचार चलता ही रहा कि अपन तो ऐसी तकलीफ के समय दो-चार दिन भी दा साहब के पास नहीं रह सके।

प्रजामण्डल के और सरकार के बीच मे मौलिक अधिकारों को लेकर खींचतान तो चल ही रही थी। सत्याग्रह शुरू हो सकता है ऐसा प्रजामण्डल वाले मानते थे। सरकार भी मौका देख रही थी कि किस बात को लेकर प्रजामण्डल वालों को कैद किया जाए व दबाया जाए।

मेरा मुख्य काम तो शिक्षाकुटीर का ही था। लेकिन उन दिनों प्रजामण्डल के काम के बारे मे भी मैं थोडी बहुत जानकारी रखती थी और कुछ कार्यकर्ताओं के साथ प्रजामण्डल के काम में जितना बन पड़ता उतना सहयोग भी देती थी।

उन्ही दिनों जयपुर सरकार ने जमनालालजी का जयपुर में आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी बात पर जयपुर सत्याग्रह शुरू हुआ।

हमारे खेजड़े के रास्ते के मकान में प्रजामण्डल वर्किंग कमेटी की मीटिंग चल रही थी। उसी समय शास्त्रीजी के एक पुराने मित्र जो कि पुलिस ऑफीसर थे वहां पहुँचे। संयोग से मैं किसी काम से मीटिंग के कमरे से बाहर आयी हुई थी, मैंने उन्हे देखा और पूंछा आप कैसे आये, अभी तो मीटिंग हो रही है। वे बोले—मुझे सब लोगों को गिरफ्तार करने का हुक्म है, मैं गाड़ी लेकर आया हूँ। आप मेरी शास्त्रीजी से बात करवा दीजिये। मैं उनको बिठा कर अन्दर गयी और शास्त्रीजी को बताया। शास्त्रीजी बाहर आये। पुलिस अधिकारी ने कहा मुझे दो घण्टे के अन्दर-अन्दर आप सब लोगों को यहां से अरेस्ट करके ले जाने का हुक्म है। शास्त्रीजी ने हंस कर कहा कि दो घण्टे लगने की क्या जरूरत है। हम तो अभी तय्यार है। पुलिस अधिकारी ने यह कुछ नहीं बताया कि वे इन लोगों को किस जगह ले जाकर रखेंगे। इन लोगों के जाने के बाद सब वर्किंग कमेटी के सदस्य बाबा

हरिश्चन्द्रजी, कपूरचन्दजी पाटनी, चिरंजीलालजी अग्रवाल, हंस डी० रायजी आदि सब के घर यह खबर पहुचायी। प्रजामण्डल का आन्दोलन शुरू हो गया और बहुत से जो साथी पीछे थे उन लोगो ने बातचीत करके सत्याग्रह के जत्थे आदि निकालने की योजना बनाना शुरू किया। मेरे जिम्मे तो खास काम यह था कि जगह-जगह जो लोग अलग-अलग जगहो के कैम्पो मे है उनसे मिलना, उनके परिवारो के समाचार लेना, जेल मे उन सब लोगों से मिल कर उनके समाचार लेना और उनके घर पहुचाना और जो काम चल रहा है उसकी जानकारी इन लोगो को देना और इनका जो कुछ सुझाव हो वह सब साथी मित्रो को बताना। शास्त्रीजी लम्बे चौडे पत्र लिख कर किसी न किसी जरिये से बाहर भेज देते थे। उसमे से कई एक पत्र कई प्रकार से ऐतिहासिक कहे जा सकते है। यदा-कदा मै भी शास्त्रीजी को छोटे-छोटे पत्र लिख दिया करती थी।

शास्त्रीजी को थोडे दिन मोहनपुरा कैम्प मे रखा गया। वहा जब उन लोगों ने भूख-हडताल शुरू कर दी तो उन्हें माल्पुरा के पास लाम्वा के किले मे ले जाकर रखा गया। लाम्वा मे इनके जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट एक बहुत सज्जन व्यक्ति डॉक्टर मोहनलालजी को रखा गया था।

वैसे तो जहा तक मेरा ध्यान है एक व्यक्ति से महीने मे दो-बार मिलने की इजाजत मिला करती थी। परन्तु उसमे यह बात जुडी हुई थी कि घरवालो के साथ उनके मित्र भी मिलने जा सकते है। जिस किसी के घर वाले मिलने की इजाजत लेते वे मित्रो की लिस्ट मे मेरा भी नाम जोड लेते। इस तरह से मेरा हर तीसरे-चौथे दिन सब लोगों के पास पहुचना हो जाता था। साथ मे छोटा लडका श्याम था, वह उन दिनो रतलाम से जयपुर आया हुआ था। उसको तो सब लोगो से खूब आजादी से मिलने की छूट थी। इस तरह से उसके जरिए से अन्दर से समाचार बाहर आ जाते और बाहर से अन्दर चले जाते। उसको जेल मे सबसे मिलने जाने मे और जुलूस मे शामिल होने मे बडा मजा आया करता था। कभी किसी कार्यकर्त्ता के कन्धे पर चढ कर नारे लगाता, कभी मोटर की छत पर बैठ जाता और जिस जेल के बाहर जाकर हम खड़े होते तो वहा तो उसका नारे लगाने का पक्का नियम ही था। जेलर आदि सब उसको देखकर हसते। वह मुझसे कहता कि मुझे तो नही पकडते है? मुलाकात की सुविधा के अलावा भी लावा आदि कैम्पो के जीवन मे जेल जैसा कुछ नही था। खाने-पीने की पूरी आजादी थी, बाहर से आयी मिठाइयो आदि के ढेर लगे रहते थे। पर शास्त्रीजी ने बिना ऐलान किए हुए ही यह तय कर लिया था कि जौ की बिना चुपडी रोटी और एक साग खाना, नाश्ता भूंगड़े-धाणी का करना। पूरे समय तक शास्त्रीजी ने अपनी इस बात को निभाया, चुपचाप।

जयपुर से लाम्वा पहुंचना उन दिनों में वहुत कठिन काम था। जयपुर से मालपुरा तक तो सडक थी। परन्तु मालपुरा से लाम्वा वहुत देर मे मुश्किल से पहुंचना होता था। मिलने जाने के लिए भी इधर-उधर से मोटर मांग कर इन्तजाम करना पडता था। वैसे एक पुरानी फोर्ड मोटर प्रजामण्डल को भी थी। परन्तु उसके जिम्मे तो और ही वहुत-सा काम रहता था। एक मोटर वाले श्री चुन्नीलालजी माधी प्रेमभाव से ज्यादातर मोटर का इन्तजाम करते थे। मोटर उनकी, पेट्रोल अपना।

देश में कई जगह आन्दोलन चल रहा था कि वापू ने कई स्थानों से लोगो को दिल्ली बिडला हाउस मे मिलने के लिए वुलाया। जयपुर में सत्याग्रह जोर-शोर से चल रहा था। जयपुर से राधाकृष्णजी वजाज और मैं, हम दोनों दिल्ली गये। जहा तक मेरा खयाल है कई जगहो के कुल मिलाकर ४०–५० लोग आए होंगे। वापू ने कहा मैं चाहता हूं कि सभी जगह सत्याग्रह स्थगित कर दिए जाएं। वापू के हुक्म के आगे किसकी जवान खुलने वाली थी? सव उठकर चल दिए और राधाकृष्णजी व मैं दोनो विड़ला हाउस के एक कमरे में घुसे तो एक खास मित्र ने राधाकृष्णजी से पूछा-क्या हुआ? राधाकृष्णजी ने कहा वापू ने सत्याग्रह वन्द करने का आदेश दिया है। मित्र कहने लगे वापू ने आदेश दिया है या तुम्हारी ताकत नही है। यह सुनते ही मुझे अजीव तरह का आवेश आ गया। मैंने कहा आगे की वात तो मालूम नहीं, परन्तु सीतारामजी सेकसरिया और सिद्धराजजी ढड्ढा दो सत्याग्रही तो अभी जेल जाने के विचार से आये हुए यही मौजूद हैं। इनके अरेस्ट होने के वाद कोई तीसरा न होता तव यह सवाल पैदा होता। वहा खड़े-खडे ही मैंने राधाकृष्णजी से कहा आप देखो वापू सो गये क्या? वोले क्यों? मैंने कहा आप देखो तो सही। वापू आराम करना चाह रहे थे, पर नींद नही आयी थी। राधाकृष्णजी को देखकर वोले क्यों? उन्होंने कहा कि रतनजी आपके पास आना चाहती है। मैं गयी, एकाध मिनट खड़ी रहकर मैंने कहा—वापू आपका आदेश चार लाइन मे लिखा हुआ मिल जाए क्या? वोले क्यों? मुझे यह मजूर करना चाहिए कि वापू के सामने जिस काम के लिए लिखा हुआ चाहती थी वह न वनाकर मैंने कह दिया कि जेल में काकाजी, शास्त्रीजो वगैरह को हम आपका लिखा हुआ आदेश देंगे तो उनका समाधान ज्यादा होगा। वापू ने अपनी कलम से उसी समय चार लाइन हम लोगों को लिख कर दे दी। हमने वापू के लिखे हुए का ब्लाक वनाकर अखबार में छपवा दिया।

(१४) शास्त्रीजी प्रजामण्डल, कांग्रेस के काम में।

गाधीजी के आदेश से जयपुर सत्याग्रह स्थगित हो जाने के वाद काफी अर्से तक जयपुर सरकार से प्रजामडल की खेंचतान चलती रही। अन्ततोगत्वा सत्याग्रहियों का धीरे-धीरे छोड़ना शुरू हो गया। आखिर में शास्त्रीजी आदि दस

सत्याग्रहियो का नम्बर आया। उन्हे लावा से झालाना कैम्प लाया गया था। फिर झालाना कैम्प से बस्सी के पास के दूसरे मोहनपुरा कैम्प मे लाया गया। शास्त्रीजी आदि को अलग-अलग तीन काउन्टो पर कुल मिलाकर १८ महीनो की सजा हुई थी, पर उसे एक साथ भुगतना था सो करीब ५।। महीनो मे वह सजा पूरी हो गयी। बस्सी के पास वाले मोहनपुरा कैम्प से जब शास्त्रीजी आदि छूटकर आये तो जयपुर शहर में बड़ा भारी जुलूस निकला। जनता का उत्साह देखते ही बनता था। कुछ समय बाद जमनालालजी को छोडा गया। उनके छूटने पर भी वैसा ही संगीन जुलूस जयपुर शहर मे निकला। प्रजामंडल की ओर से हिन्दुस्तानी प्राईममिनिस्टर की माग की जा रही थी। उसके जवाब मे भारत की अ ग्रेजी सरकार ने राजा ज्ञाननाथ जैसे प्रतिक्रियावादी और जी हुजूर व्यक्ति को जयपुर राज्य पर प्राईममिनिस्टर के रूप में थोप दिया गया। राजा ज्ञाननाथ से प्रजामंडल वालो की आपसी समझौते के बारे मे लम्बी बाते चली जिनमें कई तरह के खट्टे कडुए अनुभव हुए। अन्त मे जयपुर सरकार ने प्रजा-मडल को मान्यता दे दी और जिन नागरिक अधिकारो के लिए प्रजामडल ने सत्याग्रह किया था वे भी स्वीकार कर लिए गए।

राजा ज्ञाननाथ को एक तरह की बदसूरती के साथ जयपुर से विदा होना पडा और उनकी जगह नये प्राइममिनिस्टर आये सर मिर्जा इस्माइल जो अपनी उदार नीति के लिए ख्यातिप्राप्त थे। उनके आने के कुछ महीनो बाद ही १९४२ के "अ ग्रेजों भारत छोड़ो" आन्दोलन का समय आ गया। यह जानी हुई बात है कि उक्त आन्दोलन को प्रजामण्डल ने अपने अनूठे ढग से चलाया था। महाराजा से प्रजामडल का समझौता हो गया जिसके अनुसार प्रजामंडल को राज्य मे अ ग्रेजविरोधी और युद्ध विरोधी काम करने की आजादी हो गयी और बदले मे प्रजामडल ने महाराजा के विरुद्ध सीधी लडाई न छेडना स्वीकार कर लिया। उत्तरप्रदेश, बिहार आदि राज्यो के प्रच्छन्न आन्दोलनकारियों के लिए हमारा खेजड़े के रास्ते का मकान और बनस्थली दोनों खुले हुए थे। समझौते के अनुसार उनको जयपुर राज्य में गिरफ्तार नही किया जा सकता था। शास्त्रीजी उन लोगो की हर तरह से मदद करते थे।

देश मे भारत छोडो आन्दोलन के सिलसिले मे पकडे हुए लोगो का बाहर आना शुरू हुआ। तब उदयपुर मे राजपूताना के कार्यकर्त्ताओ का एक सम्मेलन श्री गोकुलभाई भट्ट की अध्यक्षता मे हुआ। उक्त सम्मेलन मे पहले तो राजपूताना के कार्यकर्त्ताओ का अलग से सगठन बनाया गया। फिर यह हुआ कि राजपूताना की सब रियासतों के प्रजामंडलो का अखिल भारत देशी राज्य लोकपरिषद् की रीजनल कौसिल के रूप मे सयुक्त सगठन हो गया। रीजनल कौसिल के अध्यक्ष श्री गोकुलभाई भट्ट और प्रधानमत्री शास्त्रीजी बने। बाद मे शास्त्रीजी अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् के प्रधानमंत्री बनाये गये।

आखिर देशी राज्य लोकपरिषद् का विलय भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस में हो गया। जब भारतीय संविधान परिषद् का निर्माण हुआ तब जयपुर की ओर से शास्त्रीजी, जोधपुर की ओर से श्री जयनारायणजी व्यास, उदयपुर की ओर से श्री माणिक्यलालजी वर्मा और सिरोही आदि कुछ छोटी रियासतों की ओर से श्री गोकुलभाई भट्ट परिषद् के सदस्य बनाये गये। धीरे-धीरे देशी राज्यों में लोकप्रिय मंत्रिमण्डल बनने लगे। जयपुर में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल बना तब मुख्यमंत्री शास्त्रीजी को बनाया गया। १६४८ के दिसम्बर मे जयपुर शहर मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का महान अधिवेशन हुआ जिसके लिए आज तक आम राय यह सुनने मे आती है कि कांग्रेस का ऐसा शानदार अधिवेशन "न भूतो न भविष्यति"। कांग्रेस महाधिवेशन के लिए जो लाखो रुपये जुटाने पडे सो सारा जिम्मा शास्त्रीजी पर था।

(१५) वनस्थली विद्यापीठ का उदय

प्रजामण्डल कांग्रेस की उपरोक्त कथा से मेरा कोई सीधा सम्बन्ध नही है। पर शास्त्रीजी की शक्ति जैसे-जैसे लोकपरिषद्-कांग्रेस के कामों में लगती गयी वैसे-वैसे उनकी शक्ति वनस्थली के काम मे क्रमशः कम लगने लगी। और इसका असर स्वभावतः मुझ पर पडा। यों तो वनस्थली विद्यापीठ का जन्म किसी ऐसे क्षण में हुआ समझा जाता है कि वह कठिनाइयों के बीच लगातार प्रगति के मार्ग पर अग्रसर रहा है। शिक्षाकुटीर ने अपने जन्म के थोड़े समय बाद ही राजस्थान बालिका विद्यालय का रूप ले लिया जो और भी थोडे समय के बाद वनस्थली विद्यापीठ कहलाने लग गया। अपने जीवन के प्रथम १२–१३ सालो में वनस्थली विद्यापीठ को अपने कच्चे झोपड़ों मे ही आशातीत सफलता और ख्याति मिल गयी। शास्त्रीजी का पंडितजी (पंडित जवाहरलाल नेहरू) से निकट संपर्क शुरू होने के कुछ ही समय बाद पंडितजी का पहले पहल वनस्थली आगमन हुआ। उस अवसर पर भाषण देते हुए पंडितजी ने वनस्थली विद्यापीठ के बारे में जो उद्‌गार प्रकट किये वे आज तक हर एक की जबान से सुनने को मिलते हैं-अगर मैं लडकी होता तो अपनी तालीम के लिए वनस्थली आता। न जाने पंडितजी पर वनस्थली का ऐसा क्या प्रभाव पड़ गया? उनको एक कच्चे झोंपड़े में ठहराया गया था और एक अत्यन्त पुराने ढंग का बाथरूम शौच स्थान के लिए उनकी पांती में आया था। बाद में पंडितजी का जब जब वनस्थली आना हुआ तभी उन्होंने एक न एक नयी बात वनस्थली के बारे में कह दी या बाद में लिख भेजी—यथा "वनस्थली भारत मे अद्वितीय संस्था है"। वनस्थली का काम राष्ट्रीय महत्त्व का है। "वनस्थली राष्ट्रीय एकीकरण में मदद पहुंचाने वाली संस्था है" इत्यादि। पंडितजी के बारे मे मैं क्या कहूँ—वे गजब के महापुरुष थे, इतने महान् और इतने सादा मिजाज, इतने व्यस्त और समय के इतने पाबन्द। कृतज्ञता के साथ मैं यह कह सकती हूं कि पंडितजी के शब्दों ने वनस्थली विद्या-

पीठ को हिन्दुस्तान के नक्शे पर मोटे-मोटे अक्षरों में अंकित कर दिया। पंडितजी ने ही आगे होकर हिन्दुस्तान भर में एक देशी राज्य की शिक्षण संस्था को सबसे पहले भारत सरकार से आवर्त्तक और अनावर्त्तक अनुदान दिलवाया। उससे पहले वनस्थली को सरकारी अनुदान लेना मंजूर नहीं था, और किसी भी सरकार को कब मंजूर था वनस्थली जैसी संस्था को ग्रांट देना? हम लोगों ने वनस्थली में लड़कियों की शिक्षा के काम को सोच समझ कर शुरू नहीं किया था। न हमने इस काम को किसी तरह की योजना बनाकर चलाया। न जाने कैसे वनस्थली विद्यापीठ बन गया, न जाने कैसे इसका उत्तरोत्तर विकास होता चला गया। शास्त्रीजी के प्रजामंडल-कांग्रेस के काम में चले जाने से मैं अपने आपको कुछ असहाय सी महसूस करने लगी थी। पर दैव की दया से वनस्थली का काम कई एक मित्रों व कई एक निष्ठावान साथियों के सहयोग से जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे मैं अपने जीवन को कृतार्थ समझती गयी।

(१६) सत्ता का प्रपंच

जयपुर में लोकप्रिय मंत्रिमंडल बनने का जिक्र मैं ऊपर कर चुकी हूं। मुझे उस सम्बन्ध में इतना सा और कहना है कि शास्त्रीजी का जयपुर राज्य का मुख्यमन्त्री बनना मुझको कुछ अच्छा नहीं लगा था। शास्त्रीजी के मुख्यमंत्रित्व काल में कांग्रेस का महाधिवेशन जयपुर में हुआ जिसका जिक्र भी ऊपर आ चुका है।

कांग्रेस महाधिवेशन के कुछ समय बाद ही विशाल राजस्थान बनने की योजना ने जोर पकड़ लिया।

शास्त्रीजी द्वारा राजस्थान के मुख्यमन्त्री पद का भार सभालने के समय मैंने सबसे ज्यादा तकलीफ व परेशानी का अनुभव किया। और जब शास्त्रीजी ने मुख्यमन्त्रित्व छोड़ना तय कर लिया तब मैंने राहत की सांस ली। सरदार के स्वर्गवास के थोड़े दिन बाद ही एक दिन हम दोनों दिल्ली गये थे। शास्त्रीजी बोले—मैं जरा पण्डितजी के पास हो आता हूं। पंडितजी थोड़े दिनों बाद ही विदेश जाने वाले थे। उधर शास्त्रीजी पंडितजी के पास जाने के लिए रवाना हुए इधर मैंने कैनिंग लेन के मकान के बाथरूम में घुसकर हम दोनों के कपड़े धोना शुरू कर दिया। कुछ देर बाद ही किसी ने बाथरूम का दरवाजा खटखटाया। मैं जल्दी में बिना नहाये ही साड़ी बदल कर बाहर आयी और मुझे थोड़ा आश्चर्य भी हुआ कि शास्त्रीजी इतनी जल्दी कैसे आ गये। शास्त्रीजी बहुत खुश दिखायी दिये। मैंने पूछा आपको क्या मिल गया जो इतने खुश हो? बोले मैं पंडितजी के पास मुख्यमंत्रिपद छोड़ देने की हां कर आया हूं। शास्त्रीजी बोले मैंने कह दिया है कि राजस्थान के एकीकरण का काम मेरे जिम्मे था वह पूरा हो गया। अब आप यह काम जिसको कसरतन राय हो उसे सभला दीजिए। पंडितजी कहने लगे

मै विदेश से आऊं तब अपन बात करेंगे। शास्त्रीजी अपने स्वभाव के माफिक बोले इस काम की सलाह करने के लिए तो मैं आपके पास नही आऊंगा। पंडितजी मजाक मे बोले तो क्या सन्यास लोगे? शास्त्रीजी ने कहा खुदा जाने क्या काम करूंगा बहर हाल सन्यास तो नही लूंगा।

मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र देकर शास्त्रीजी तो उसी समय सीधे वनस्थली आ गये और हम लोगो ने शाम से पहले पहले अपने सारे सामान को स्वाधीन कुंज से सेजडे के रास्ते वाले मकान में लाकर डाल दिया। जिस समय शास्त्रीजी वनस्थली आये उस समय विद्यालय पर चारो तरफ का काफी रुपया (करीब ६ लाख रुपया) देना हो गया था। राजस्थान के एकीकरण के सिलसिले में अत्यधिक परिश्रम होने से शास्त्रीजी का स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो गया था। इसलिए यह तय किया कि वे थोडे दिनो तक चन्दा आदि लाने के उखाड़ पछाड़ के काम में समय न लगाकर हल्का हल्का काम ही करें। मित्रो की मदद से और भगवान की दया से धीरे धीरे वनस्थली के लिए उस कठिन स्थिति को पार करना भी आसान हो गया। सीतारामजी, भागीरथजी, आदि मित्रों ने उस समय जो मदद की और उनका जो दिली सहारा मिला उसको मुझे जब याद आती है तो मैं गद्‌गद् हो जाती हू। साथ ही मुझे यह भी बताना चाहिए कि एकाध बडे सहायको की ओर से जो चैलेन्ज उस कठिनाई के समय आया था उसकी जो प्रतिक्रिया शास्त्रीजी की जबान से प्रकट हुई उसका विचार करते करते गर्व से मेरा मस्तक ऊंचा हो जाता है।

(१७) सरकारों से पाला

लगभग उन्ही दिनो भारत सरकार से वनस्थली विद्यापीठ को मिलने वाली २५०००/- सालाना ग्रांट की इनकारी लिखी हुई आ गयी। शास्त्रीजी ने तो कह दिया कि वनस्थली ने भारत सरकार के पीछे जन्म नही लिया है। अपने को किसी से भी कोई बात करने के लिये जाने की जरूरत नही है। मैंने व भाई मोहन ने बडी मुश्किल से शास्त्रीजी को राजी किया कि आप हमको एक बार दिल्ली जाकर बात तो करने दीजिए। मैने शास्त्रीजी से कहा अपने को पंडितजी ने भारत सरकार से चलाकर ग्रांट दिलवायी थी। अपन मागने नही गये थे। दिल्ली वालों को जानकारी तो जाकर करानी चाहिए। हमने दिल्ली पहुंच कर शिक्षा मंत्री मौलाना आजाद के यहा समय के लिए टेलीफोन किया। उसी दिन शाम को उन्होंने सचिवालय में मिलने के लिए बुला लिया। मै पहुची तो बडे मिठास से और जैसा उनका ढग था मौलाना ने शास्त्रीजी के लिए पूछा और बोले आप कैसे तशरीफ लायी? मेरे मन में थोड़ा बुरा तो लगा हुआ था ही, मैंने कहा हरेक आदमी अपनी जरूरत से ही आता है। फिर बहुत सी वनस्थली की, शास्त्रीजी की बातें पूछने लगे। फिर बातों ही बातों में उन्होंने कहा—मैंने जयनारायणजी से कह दिया है कि वनस्थली के कामो में गडबड़ न करें। मै तो

भरी बैठी ही थी। मैंने कहा कि मैं आपके पास इसलिये हाजिर हुई हू कि वनस्थली का जो काम है उसमे भारत सरकार ने अपने आपसे ग्राट देना तय किया था। अब यह पत्र पहुँचा है। मैं समझी नही कि यह चिट्ठी आपकी जानकारी में गयी है या बिना जानकारी के। राजस्थान वाले मदद दे या न दे यह दूसरा सवाल है। परन्तु आप तो वनस्थली की ग्राट मे से एक पैसा भी कम कर देंगे तो उसका मतलब यह होगा कि हमारा काम पहले ठीक था और अब ठीक नही है। मैं तो कार्यकर्त्ता हू, काम करना है यह नही तो और कोई काम कर लू गी। वनस्थली की चाबी आप सभालिए। फिर वे हस कर कहने लगे ऐसा नही हो सकता है। बोले अब आप दिल्ली कब तशरीफ लाएगी? मैंने कहा—आप जब बुलाएंगे। इस काम के लिए तो आपको दुबारा तशरीफ लाने की जरूरत नही है।

इस काम मे श्री रफी अहमद किदवई ने जो कुछ किया सो भी एक दम काबिले तारीफ था। और एक डिपुटी सेक्रेटरी ने मुझसे कहा आप कहती हो कि वनस्थली की ग्राट जारी हो जाएगी सो कैसे हो सकता है? क्या भारत सरकार अपने हाथ से अपनी नाक काट लेगी। मैंने कह दिया कि यह सब तो भारत सरकार जानें और आप जानें। मैं तो इतना ही दोहरा सकती हू कि वनस्थली को ग्राट जरूर जारी होगी। इस सिलसिले मे मुझे आजादी के पहले की कुछ बाते भी याद आ रही है। इधर तो वनस्थली मे शिक्षाकुटीर का काम बढने लगा, उधर जयपुर मे प्रजामडल के पुनर्गठन का काम शुरू हो गया। जयपुर सरकार के लिये शिक्षाकुटीर और प्रजामडल मे भेद करना बहुत मुश्किल हो रहा था। परन्तु उस समय भी कुछ लोग जयपुर सरकार में ऐसे थे कि वनस्थली की अन्दर ही अन्दर पूरी मदद करना चाहते थे। जब राजा ज्ञाननाथ प्रधानमत्री बने तो उन्होने वनस्थली से छेडछाड करने के लिए एक तरकीब खोज निकाली। उन दिनों हम वनस्थली मे कुछ नये कच्चे मकान बनवा रहे थे। हमारे पास जयपुर से हुक्म आ गया कि अब कोई मकान बिना इजाजत के नही बनाये जाए। हमारे लिए काफी सोचने का मसला पैदा हो गया। थोडे से दिनो के बाद बारिश आने वाली थी और बारिश होते ही कच्ची ईंटे वापिस मिट्टी हो जाती। उस समय निवाई के तहसीलदार भले व सज्जन आदमी थे। उनको हमने समझाया कि देखिये यह झगडा तो राजा ज्ञाननाथ का और हमारा है। हम किसी भी हालत में मकान बनाना बन्द नही कर सकते। मकान हमें बनाने पड़ेगे। आपको भी नौकरी करनी है। आप तो छुट्टी लेकर चले जाओ हम जल्दी मकान पूरे कर लेंगे। फिर आप आकर रिपोर्ट कर देना। वे बेचारे हमारी सलाह के माफिक छुट्टी पर चले गये, क्योंकि उनको हमने बता दिया था कि आपके हमारे झगडा होगा, क्योंकि आप जानते ही है कि हम किसी हालत मे चेजे का काम बन्द नही करेंगे। उन्होंने वापस आकर रेवेन्यू मिनिस्टर को रिपोर्ट भेजदी कि वहा तो

मकान बन गये. तब क्या कहना है ? जयपुर से एक आफिसर श्री अब्बास अहमद शेरी को उन्होंने देखने को भेजा। वैसे साहब वनस्थली के अनुकूल नहीं हैं। यह हमको मालूम था। जब वे आये तो छात्रावास का राउन्ड लगाते समय मैं उनके साथ गयी थी। वे अपनी छड़ी दीवारों पर लगाकर पूंछते जाते थे कि ये कच्चे हैं या पक्के ? मैंने कहा कि ये तो लोहे की ईंटों के हैं, न कच्चे हैं, न पक्के। आप क्या पूछते हैं। उन दिनों में जो अमल था उसके माफिक गांव में रहने वाला कोई भी यदि गांव के भीतर कच्चा मकान बनाता तो उसको सरकार से इजाजत लेने की जरूरत नहीं थी। सारी छेड़छाड़ करके सरकार ठिकाने बैठ गयी। बाद में जमनालालजी ने यह सुझाव दिया कि आप तो मामूली रुपया देकर वनस्थली विद्यापीठ की जमीन का पट्टा बनवा लो। बड़ी मुश्किल से हम लोगों के यह बात समझ में आयी और एक आना वर्ग गज में उस समय जितनी जमीन कब्जे में थी उनका वनस्थली विद्यापीठ को पट्टा मिल गया। जमीन की बात के सिलसिले में ही एक दिन मैं तत्कालीन गृहमंत्री ठाकुर अमरसिंहजी से मिलने गयी थी और मैंने पूछा कि वनस्थली की जमीन की बात चल रही उसमें अपने पक्ष विपक्ष में कौन है ? वे बोले वनस्थली की किसी भी बात में अमरसिंह आपके साथ है। उन्होंने दूसरे विश्वयुद्ध के समय में शक्कर, मिट्टी का तेल, पेट्रोल आदि की बड़ी भारी कठिनाई के बीच वनस्थली को कभी तकलीफ नहीं पाने दिया और हमेशा उनकी वनस्थली के साथ हमदर्दी रही।

राजा ज्ञाननाथ के बाद सर मिर्जाइस्माइल प्रधानमंत्री बने। सर मिर्जा में और राजा ज्ञाननाथ में रातदिन का अन्तर था। सर मिर्जा चतुर, होशियार और साथ में दिलदार भी थे। उन्होंने वनस्थली आना मंजूर किया। वनस्थली आये और कहने लगे आपका काम तो बहुत बढ़ेगा। इस इतनी सी जमीन से आपका क्या होगा ? उन्हीं के समय में वनस्थली से निवाई तक की सड़क बनी और वनस्थली को कई सौ एकड़ जमीन भी मुफ्त में मिली।

भारत सरकार से वनस्थली को ग्रांट मिलने लगी उसके बाद जयपुर सरकार की ग्रांट मिलना भी शुरू हो गयी। राजस्थान बना तब स्वभावतः वही जयपुर वाली ग्रांट राजस्थान से मिलने लग गयी। बाद में तो देश की सभी सरकारों ने बिना अपवाद वनस्थली को ग्रांट देना मंजूर कर लिया।

(१८) वनस्थली विद्यापीठः स्त्री शिक्षा का अखिल भारतीय संस्थान

आश्चर्य की बात है कि १९३५ में एक छोटे से बीज से शुरू होकर वनस्थली में आज स्त्रीशिक्षा का अखिल भारतीय संस्थान बन गया है। शास्त्रीजी ने कहा है :

एक म्हांको फूल प्यारो, अधखिल्यो कुमला गयो।
सोग बीत्यो हरस छायो, फूल बाग लगा गयो।।

जब शान्ताबाई की जगह लेने के लिए कुछ लडकियो को वनस्थली बुलाने की बात मन मे आयी थी तब हमारे दिमाग में भविष्य की कोई कल्पना नही थी। एक प्यारी बच्ची चली गयी तो कुछ दूसरी लडकियो को अपने पास रखने की जी में आ गयी। दो चार लडकियां आ गयी और उनको हमने शान्ताबाई की तरह रखना, पढाना शुरू कर दिया और शिक्षाकुटीर बन गया। झोपडे जोवनकुटीर से मिल गये। कुछ रुपया जयपुर से इकट्ठा किया, कुछ रुपया कलकत्ते से आने लगा। लड़कियाँ बढती गयी, झोंपडे बढते गये, कार्यकर्त्ता आते गये, काम बढता गया। १२ साल तक हमारे पास जिसमें पत्थर, पक्की ईंट, चूना, सीमेंट लगा हो ऐसा एक भी मकान नही था और रुपया तो जितना आया उससे कुछ न कुछ ज्यादा ही लगता गया। आज वनस्थली विद्यापीठ बहुत बडा हो गया है। लाखो रुपये का बजट, सैकडों कार्यकर्त्ता, पौने दो हजार लडकियां, सैकड़ो एकड जमीन, एक करोड के करीब सपत्ति, शुरू से लेकर बी० ए०, एम० ए०, बी० एससी०, एम० एससी०, बी. एड्, एम. एड्, पी एच डी. की पढाई और घुड़सवारी और हवाई जहाज उडाना, सगीत, वाद्य, नृत्य, पाक, सिलाई आदि-आदि नाना प्रकार के काम सीखने का मौका। वनस्थली मे एन. सी सी. का बढिया काम तो कई सालों से चल रहा है। अब एन. सी. सी के एयरविंग का काम बहुत जल्दी शुरू होने वाला है। जमीन और हवा के अलावा वनस्थली की लड़किया वनस्थली सागर मे नाव आदि चलाने मे भी प्रवीण हो जाऐंगी।

(१६) आज की हवा और वनस्थली की कठिनाई

जैसे-जैसे विद्यापीठ का काम आगे बढा वैसे-वैसे हमेशा मेरे मन मे यह भाव उठता रहा कि जिस भावना को लेकर हमने इस काम को शुरू किया और करते रहना चाहते है उसको निभाने वाले साथी कार्यकर्त्ता व उस भावना को समझने वाली लड़किया कैसे मिलें ? वनस्थली को अच्छे से अच्छे कार्यकर्त्ता मिलते रहे है, उनमें कई एक ऐसे भी है कि बहुत कम उम्र में आये और यहा पर वे बेटे-पोतों वाले हो गये। वनस्थली में कई एक साथियो की निष्ठा भी अनुकरणीय है। आखिर उन्ही के बल पर यह महान् सस्थान खडा है। वनस्थली से कई एक अच्छी-अच्छी लड़कियाँ भी शिक्षा पाकर निकली है जिन्होने सार्वजनिक क्षेत्र में वनस्थली की कीर्ति को बढाया है और आमतौर पर जिन्होने अपने दोनो घरों को बड़ा सतोष दिया है। हम लोग सुनते रहते है कि लडकी वनस्थली में शिक्षा पायी हुई है यह मालूम हो जाने पर सगाई की बात करने वाले दूसरा सवाल किये बिना ही सबन्ध तय कर डालते है।

फिर भी सारे देश मे इस समय सौदे बाजी की व स्वार्थपरता की जो हवा है उसमे इस काम को अपने बहुत बडे राष्ट्र के हित की दृष्टि से और भारतीय सस्कृति की आधारशिला के रूप में करना चाहने वाले कार्यकर्त्ताओं की और यही

समझ कर यहा शिक्षा पाने के लिए आने वाली लड़कियों की एक फौज वनस्थली को चाहिए तो कैसे क्या मिले यह बड़ी समस्या है। मेरी समझ में भारतीय संस्कृति का मूलाधार प्यार और त्याग मे है। वनस्थली की सीमा में जो कोई लड़की एक बार प्रवेश कर जाए उस लड़की का वनस्थली पर घर में पैदा होने वाली लड़की के समान हक है। साथ ही उस लड़की को राष्ट्र में कुछ न कुछ वह जिस परिस्थिति मे रहे कुछ न कुछ कर गुजरने की लगन और भावना पैदा हो। काम के विस्तार के साथ मन की भावना को व्यावहारिक रूप में प्रकट करना और उसे निभाना काफी मुश्किल होता जा रहा है। मुझको सबसे बड़ी तकलीफ तो यह देखने से होती है कि जहा हिन्दुस्तान में लड़की या स्त्री अपने तरफ किसी के आख उठाकर देखते ही आग बबूला हो जाती थी वहां आज यह प्रवृत्ति पैदा हो रही है कि लड़की की पोशाक इस तरह की हो कि जिसमें हर किसी की दृष्टि चाहे अनचाहे–उसकी तरफ पड़े। इस चीज मे वह आपका गौरव मानती हुई प्रतीत होती है। इस बात का कोई विचार नही होता है कि वह प्रदर्शन की चीज बनती जा रही है। अब तक हिन्दुस्तान की संस्कृति को बनाये रखने में स्त्री का बहुत बड़ा योगदान रहा है। ऐसा लगता है कि जो धारा चल रही है उसमें पढ़े लिखे समाज मे से यह चीज शायद लुप्त ही हो जायेगी। यहा तक तो ठीक है कि स्त्री जब समाज मे बराबरी की साझेदार बनकर काम करना चाहेगी और पुरुषों के साथ कंधा से कंधा लगा के काम करना चाहेगी तो उसे अपने व्यवहार में परिवर्तन करना होगा, पर फिर भी अवश्य ही उसको सादगी को, सुशीलता को और अधिक महत्व देना होगा।

दूसरी विचारधारा यह चल रही है कि स्त्री और पुरुष दोनों का हक बराबर है। जहा तक काम करने का सवाल है वहा तक तो यह बिल्कुल ठीक है। पर पुरुष की किसी भी कम अच्छी बात में उसकी बराबरी करना न तो भारतीय संस्कृति की परम्परा के अनुकूल होगा और न खुद स्त्री के हक मे ही ठीक होगा। जहा बराबरी के सौदे की कुभावना आयी वही स्नेह की नीव हिलने लगती है। स्नेह तो त्याग चाहता है। स्त्री की महत्ता हमेशा त्याग मे रही है।

इस हवा में लड़की का जो चित्र हमारे मन में है उसको कायम रखने में व लड़की को उसके अनुरूप बनाने में जी जान से कोशिश करने पर भी हम कितने सफल होंगे इसका मेरे मन में हर क्षण डर ही रहता है। फिर भी मेरा विश्वास है कि यदि हम जी जान से डटे रहेंगे तो इतनी विकट स्थिति में भी परिणाम अच्छा ही आएगा।

इसके अलावा एक बात मेरे मन में और आती है। सामाजिक स्थिति ऐसी है कि जिसमें बच्चों को जन्म देने का और उन की शिक्षा व संभाल का भार तो स्त्री पर आता ही है। पुरुष यदि अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा सके तो स्त्री पर

परिवार के पालन पोषण का जिम्मा भी कुछ न कुछ आ ही जाता है। ऐसी स्थिति में उनकी योग्यता अपने पाँव पर खड़ी होने लायक होनी ही चाहिए जिससे वह अपनी दोहरा जिम्मेदारी को अच्छी तरह से पूरी करने में सफल हो सके।

वनस्थली शिक्षा के द्वारा हम कैसी नारी का निर्माण किया चाहते है, इस विषय में मैंने अपने कुछ विचार प्रकट किये है। इस संबंध में मुझे अपनी व्यक्तिगत स्थिति भी स्पष्ट कर देना जरूरी मालूम होता है। वह यह है कि अस्वस्थता के कारण मैं वनस्थली का जैसा और जितना चाहिए वैसा और उतना काम कुछ सालों से नहीं कर पा रही हू। मेरा बहुतसा समय रुपये पैसे की खोज में वनस्थली के बाहर घूमते रहने में चला जाता है। इस कारण से मैं वनस्थली में जमकर नहीं रह पाती। और जमकर रहे बिना मैं अपनी छोटी बड़ी सैंकड़ों बच्चियों के निर्माण में जैसा हिस्सा मुझको लेना चाहिए वैसा हिस्सा मैं नही ले सकती। इस स्थिति से मुझको आन्तरिक वेदना होती रहती है।

(२०) शास्त्रीजी के दिल का भयंकर दौरा

जिस तेजी से वनस्थली विद्यापीठ का विकास हुआ उस तेजी से जरूरत के लायक रुपया नही आने से शास्त्रीजी के मन में यह विचार हुआ कि लगातार कोशिश करके साल भर के अन्दर अन्दर वनस्थली की वित्तीय स्थिति को ठीक कर दिया जाए। इस सिलसिले मे आम चुनाव के दिनों में सुधाकर-श्याम को दो तीन बार जोधपुर क्षेत्र मे राजस्थान के शिक्षामंत्री के पास जाना पड़ा, फिर खुद शास्त्रीजी ने जयपुर, अलवर, जोधपुर के बीच दौड़ लगाकर राजस्थान सरकार से ३।।। लाख रुपये मंजूर करवा लिये। उसके बाद शास्त्रीजी और मैं बंबई पहुँचे। वहा पर महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री से वनस्थली की ग्रांट की बातचीत करके आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री से मिलने के लिये हैदराबाद गये। हैदराबाद पहुचने पर मालूम हुआ कि मुख्यमंत्री बाहर गये है। इसलिए शास्त्रीजी कलकत्ता के लिए रवाना हो गये और कलकत्ते से उनका तार मेरे पास आया कि वनस्थली का काम करने की कलकत्ता में काफी गुंजाइश है। अतः मैं हैदराबाद से जयपुर न लौटकर कलकत्ता गयी। वहा यह तय हुआ कि मुझे कलकत्ते मे ठहर कर कम से कम एक लाख रुपया जुटाने की कोशिश करनी चाहिए। पचास हजार तक पहुँचते-पहुँचते मेरे पास खबर आयी कि मुझे एक दिन लखनऊ ठहर कर दिल्ली पहुँचना है। मुझे कलकत्ते से बनारस होकर लखनऊ जाना था। बनारस स्टेशन पर शास्त्रीजी मिल गये। वे कलकत्ता से रवाना हुए थे तब उनका स्वास्थ्य ठीक ठाक था। बनारस के प्लेट फार्म पर शास्त्रीजी को देखते ही मुझे लगा जैसे वे कितने ही दिनो की बीमारी से उठे हो। मेरे दिल मे काफी हलचल पैदा हो गयी। पूछने पर मालूम पड़ा कि शास्त्रीजी को तेज बुखार हो गया था और

जोर के दस्त हो गये थे। और उसी हालत मे शास्त्रीजी उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री आदि से मिलने जुलने का काम करते रहे थे। बनारस से लखनऊ स्टेशन तक शास्त्रीजी आराम करने के बजाए मेरे कलकत्त के चन्दे को जोड़ तोड़ लगाकर रोकड मिलान करने में लगे रहे। रोकड में थोड़ासा फर्क आया तो उसे निकालने में बहुत समय लग गया। लखनऊ स्टेशन पर मोहन मिल गया। आपस मे बात करके हम लोगो ने तय किया कि लखनऊ मे जो बात मंत्रियों आदि से करनी है सो मैं और मोहन करले। और शास्त्रीजी भोजन, विश्राम के बाद पत्रादि लिखने का काम कर डाले। शास्त्रीजी आराम किये बिना ही पत्र लिखने में जुट गये। जब मैं और मोहन चार बजे के करीब हमारे जिम्मे का काम करके गेस्ट हाउस में लौटकर आये और दिल्ली के लिए रवाना होने की तैयारी करने लगे तब शास्त्रीजी की बातो से मालूम पडा कि उनको कुछ घुटन सी हो रही है। घुटन का कारण ठीक से समझ मे नही आया। फिर भी मोहन ने एक आयुर्वेदिक औषधि शास्त्रीजी को दी और स्टेशन पहुँच कर उनको सोडा पिलाया जिसे शास्त्रीजी ने जिन्दगी मे पहले पहल चखा था। शास्त्रीजी को कुछ राहत मिली। और वे ट्रेन मे सो गये।

दूसरे दिन हम सब दिल्ली पहुँचे तब शास्त्रीजी ठीक हुए लगे और मेरी भी चिन्ता कम हो गयी। मुझे तो ग्रांट के काम के लिए दिल्ली ठहरना था, पर शास्त्रीजी के लिए तय हुआ कि वे जयपुर चले जाएं और मेडिकल चैक-अप करवाले।

दिल्ली से मैंने सुधाकर को टेलीफोन किया कि आपाजी की तबियत ठीक नही लग रही है, तुम तुरन्त उनका चैक-अप करवा देना। पर शास्त्रीजी वैद्यजी से अपनी कमर के दर्द का थोड़ा उपचार कराकर बिना चैक-अप कराये ही वनस्थली चले गये। घर से निकलकर रामनिवास बाग के पास एक मौका देखा और शिक्षासचिव से मिले। उस समय बहुत कड़ी धूप थी। आखिर शास्त्रीजी वनस्थली सकुशल पहुँच गये। शास्त्रीजी ने सोचा कि ३१ मार्च के बाद चैकअप करवालेंगे। बीच मे डॉक्टर लोग न जाने क्या कह दें और अपने जरूरी काम में विघ्न आ जाए।

वनस्थली मे शास्त्रीजी दो तीन दिन तो ठीक रहे। पर २४-२५ मार्च के बीच की रात को उनकी तबियत एक दम ज्यादा खराब हो गयी। कुछ समझ मे नही आया कि क्या बात है। जोर-जोर से सांस चल रहा था, बेचैनी हो रही थी, खड़े होकर जरा सा चलना मुश्किल हो गया था, बोला नही जा रहा था। उसी हालत में शास्त्रीजी खुद ही दवा खोजते रहे और पंखे के नीचे बैठे कुछ उपाय करने की कोशिश करते रहे। आखिर शकुन्तला, हरीश, डॉक्टर साहब

आदि आये। कुछ उपचार किया गया। उपचार से अथवा वैसे ही शास्त्रीजी के सांस का उठाव कम हो गया और उनको नींद आ गयी। सवेरे जगते ही शास्त्रीजी ने जयपुर जाने के लिए गाडी मगवायी। और वे डॉक्टर साहब, रामेश्वरजी, हरीश आदि को लेकर जयपुर डॉ० संघवी के घर पहुँच गये। डॉ० संघवी शास्त्रीजी का चेहरा देखकर विस्मित से हो गये। उन्होने शास्त्रीजी का ब्लड प्रेशर लिया सो तो ठीक निकला, पर कार्डियोग्राम से मालूम पडा कि दिल का सख्त दौरा पड गया है। शास्त्रीजी की समझ में नही आया कि मेरे दिल का दौरा कैसे पड सकता है। वे भीतर ही भीतर कुछ हंसते से रहे और सोचते रहे कि इतने बड़े डॉक्टर यह क्या गलत बात कर रहे हैं। बहरहाल डॉ० संघवी के हुक्म से शास्त्रीजी को हॉस्पिटल पहुँचाया गया वहाँ पर शास्त्रीजी ने पहियेदार कुर्सी पर बैठकर वार्ड मे जाने से इनकार करते हुए पैदल चलना चाहा। पर डॉक्टरों ने उनको ऐसा नही करने दिया।

डॉ० भण्डारी के वार्ड मे एक छोटी सी अलग जगह शास्त्रीजी को लिटादिया गया। शास्त्रीजी वैसे तो अपने आपको ठीक मानते रहे, पर पेशाब बंद हो जाने से बड़ी तकलीफ हुई। वार्ड में से शास्त्रीजी को कॉटेज में पहुँचाया गया, क्योकि उन्होंने कहा कि मुझे ऐसी जगह रखा जाएगा तो मै घर चला जाऊँगा। असल मे डॉ० संघवी आदि शास्त्रीजी को खतरे से बाहर होने तक पूरे इन्तजाम के साथ वार्ड में रखना चाहते थे।

कॉटेज मे पहुँचते ही शास्त्रीजी पर कड़ी पाबन्दियां लगादी गयी। उनको खाने-पीने में कोई रुचि नही रही, यहाँ तक कि फल का रस भी वे नहीं ले सके। पेशाब बंद हो जाने की तकलीफ होती ही रही, पर शास्त्रीजी ने यह माना ही नही कि उनके दिल का दौरा है, चाहे उनकी अपने आपसे उठने बैठने की ताकत नही रही थी, उन्हे हिलने डुलने और बोलने तक से मना कर दिया गया था। और किसी तरह से पेशाब नही हुआ तो आखिर शाम तक कैथेटर मे पेशाब कराया गया। ऑक्सीजन में तो उनको शुरू से ही रख दिया गया था। बार-बार डॉक्टरो का इतना आना जाना और शाम तक तो अपने कमरे मे डॉक्टरों की भीड़ देखकर भी शास्त्रीजी को विश्वास नही हुआ कि उनको कोई बड़ी बीमारी हो गयी है।

सुधाकर ने मुझको दिल्ली फोन किया—बोला कि आपाजी का चैक अप हो रहा है, आप लोग कार लेकर जयपुर आ जाओ। जयपुर हॉस्पिटल पहुंचने पर मुझे बताया गया कि आप आपाजी के सामने किसी तरह की कचाई मत लाना, उनको अपने दिल के सख्त दौरे का एहसास नही हो रहा है सो अच्छी बात है। शास्त्रीजी को खतरे के बाहर होने मे कुछ दिन लगे। तब तक डॉ० संघवी आदि

का चेहरा मुझे मुर्झाया हुआ सा लगता रहा। दूसरी ओर, शास्त्रीजी यह सोचते रहे कि मुझे ५-७ दिन में हॉस्पिटल से छुट्टी हो जाएगी। यह सब कुछ होते हुए शास्त्रीजी ने आदर्श पेशेंट का सा व्यवहार किया। जैसा डॉक्टरों ने कहा वैसा ही वे करते गये। डाक्टरों को बड़ी आशंका थी कि शास्त्रीजी जैसे प्रखर व्यक्तित्व वाले बीमार को सभाल कर कैसे क्या अपने काबू में रखा जा सकेगा। भगवान की कृपा से दिन पर दिन निर्विघ्न निकलते गये। शास्त्रीजी की ब्लड शुगर कंट्रोल में आ गयी, यूरिनरी इनफेक्शन ठीक हो गया, ई० एस० आर० ठीक आ गया, खासी दस्त आदि कुछ नहीं हुआ जिनकी शका के मारे डॉक्टर लोग बहुत डर रहे थे। शास्त्रीजी बिस्तर पर पड़े पड़े अपनी बीमारी के बारे में कविता करते रहते थे। १०-१२ दिन के बाद आखिर उनकी समझ में आ ही गया कि दिल का भयंकर दौरा पड़ा है जिसमें से न जाने किस चमत्कार के प्रभाव से वे बच निकले हैं। पहला चमत्कार तो यह हुआ कि वनस्थली में रात को ही शास्त्रीजी को जादू के प्रभाव की भांति नींद आ गयी और उसके पांच घंटे बाद वे कार से सकुशल जयपुर पहुच गये। फिर भी शास्त्रीजी डॉक्टरों से बराबर मजाक करते रहे—मुझ जैसे फौलादी शरीर वाले को आप लोगों ने बीमार कर दिया। डेढ़ महीने तक हॉस्पिटल में रह कर हम लोग जयपुर में घर पर आ गये। घर पर भी हास्पिटल जैसी बन्दिश में रहना पड़ा। फिर वनस्थली में भी वैसे ही रहना पड़ा और अब तक भी बन्दिशों के बीच ही शास्त्रीजी को रहना पड़ रहा है।

(२१) शास्त्रीजी की बीमारी के बाद मेरी मनः स्थिति

साल भर अच्छी तरह से निकला। फिर अचानक एक दिन शाम को शास्त्रीजी के हल्का सा सांस का उठाव हुआ। वह तुरत ही ठीक हो गया और शास्त्रीजी ने उसका कुछ भी ख्याल नहीं किया। पर हरीश आदि ने जयपुर में मुझको खबर कर दी और मैं रातो रात चलकर वनस्थली आ पहुंची। शास्त्रीजी बोले आप अचानक कैसे आ गयी? बड़ा आग्रह करके शास्त्रीजी को हम जयपुर ले गये। पर वहां उन्होंने डाक्टरों के पास जाने से इनकार कर दिया। आखिर डा० सघवी ने उनको एक प्रकार से पकड कर बुलवा लिया। और देख कर कुछ दिन आराम करने के लिए कह दिया और व्यायाम के लिए घूमना तो हमेशा के लिए बन्द कर दिया। शुरू से लेकर आज तक मेरी कैसी क्या मनः स्थिति बनी हुई है सो मैं ही जानती हू। मुझको पहले साल में और इस तीसरे साल के ४-५ महीनों में तो मेरा जी जानता है कि यह समय कैसे निकला है। मैं हर घड़ी डरी हुई सी रहती हूं। मेरा खुद का स्वास्थ्य एक अर्से से ठीक नहीं रह रहा है। पर मैं अपनी बात को तो भूली हुई हूं। मुझको ख्याल होता है तो यही कि वज्र का शरीर होने का दावा करने वाले, और वृद्ध बता देने वाले के थप्पड़ मार देने वाले शास्त्रीजी को इन तमाम बन्दिशों में रहना पड़ रहा है—ज्यादा मेहनत मत करो,

तेज मत चलो, बोझा मत उठाओ, सीढ़िया मत चढ़ो, खड़े होकर भाषण नहीं देना है सो तो है ही, ज्यादा देर तक बोलो भी मत। नमक मत खाओ, मीठा मत चखो, घी को न छूओ-थोड़ा ही खाओ वजन को न घटने दो, न बढ़ने दो। जो व्यक्ति हर एक काम में सदा ही बिना नाप के रहा उस पर इतनी नाप तोल रखने की बन्दिशें का लगाना और प्रतिदिन १५-१६ टिकिया दवाओं की लेना कैसी अजीब बात है। शास्त्रीजी को चिकित्सक के नाम से चिढ़ रही है, पर अब चिकित्सक की राय के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। मैं घबड़ायी हुई कहती हूं—आपको अब घर के किसी खास व्यक्ति के साथ लिये बिना कहीं नहीं आना जाना है, अच्छे डॉक्टर, अच्छे हास्पिटल से दूर नहीं जाना है, कोई भारी काम आपको नहीं करना है—सब काम हम कर लेंगे, आप तो परहेज से रहो और आराम करो।

शास्त्रीजी मुझसे कहते है कि इतना डरने की क्या बात है। आप यह पक्की बात मान लीजिए कि किसी स्वस्थ से स्वस्थ आदमी को दिल का दौरा पड़ जाने की जितनी भी शंका हो सकती है उससे कहीं कम शंका मेरे दुबारा दिल का दौरा पड़ने की है। आप समझती नहीं हो, दिल के दौरे ने मेरी उम्र बढ़ादी है। अच्छा हुआ कि मेरे हार्ट अटैक-हार्ट फेल्योर होकर दिल पर जख्म हो गया। और फिर यह कितने आश्चर्य की बात है कि मैं उससे बच निकला। ऐसा दौरा पड़ने के बाद मुझको वनस्थली में नींद आ गयी। और मैं कई घंटो बाद हंसता खेलता डॉ० सबवी के घर और हास्पिटल पहुंच गया। कोई बड़ी बात होने वाली होती तो उसी रात को हो जाती। उस रात कुछ नहीं हुआ तो अब कई सालों तक कुछ भी नहीं होने वाला है। मैं पूरे जापते से रहता हूं—खाना, पीना, चलना, फिरना, बोलना-चालना, दवादारू लेना सब कुछ नियमित रूप से चल रहा है। फिर चिन्ता किस बात की? रही आराम करने की बात सो दुनिया जिसे आराम कहती है उसे मैं तकलीफ समझता हूं। सच मानिए, दिन भर पड़ा पड़ा मैं अपने आपको बीमार सा मानने लगता हूं। मैं लगातार काम में लगा रहूं यही एक तरीका मेरे स्वास्थ्य को बनाये रखने का है। मुझ जैसा व्यक्ति जिसके जीवन में प्रतिदिन १२ से लेकर १४, १६, १८ घंटे काम करने की चाहत रही है इससे भिन्न कैसे सोच सकता है? मैं डाक्टरों के पास न जाता तो न जाता, पर एक बार उनके पास चला गया तो मैं तिल राई भी उनकी राय के इधर उधर नहीं जाने वाला हूं। अलबत्ता मेरा स्वभाव गुस्सैल है—उसे ठीक करने की कोशिश मैं कर रहा हूं। गुस्से को ठीक करने की बात मेरी अपनी है—बाकी मेरे प्रेमियो का है मुझको निश्चित रखने का—न किसी प्रेमी को खुद को डरना चाहिए, न मुझे डराने की सी बातें करनी चाहिए।

शास्त्रीजी का यह सब कुछ कहना ठीक है। पर मैं अपनी कमजोरी के चक्कर में से नहीं निकल पा रही सो इसका क्या उपाय? मैं गोपाल गोविन्द

से और भगवती से यही मनाती रहती हूं कि शास्त्रीजी का बाल बांका न हो। शास्त्रीजी बोलते है—भगवान् भगवती दोनो अपनी बिना वेतन की नौकरी मे हैं—उनको मनाना क्या है, उनको अपन हुक्म देने का अधिकार रखते हैं। और भगवान् और भगवती है कहां—वे अपने भीतर ही तो विराजमान हैं—यानी हम खुद ही भगवान् है, खुद ही भगवती हैं।

शास्त्रीजी की इस आस्था और इस दृढ़ता के भीतर मैं अपने सास ले रही हू।

(२२) बापू के चरणों में

पंडितजी (जवाहरलालजी) ने वनस्थली के लिये जो कुछ किया उसका जिक्र मैं ऊपर कर चुकी हूँ। अब मै उन बापू के साथ कुछ प्रेरक प्रसंगों का जिक्र करूंगी जिन्होंने एक बार मुझ को अपने हाथ से लिखकर भेजा था—"वनस्थली मेरे दिल मे वसी है"।

शिक्षा कुटीर का काम शुरु ही हुआ था और शास्त्रीजी और मैं फैजपुर काग्रेस में गये थे। काकाजी जमनालालजी बजाज शास्त्रीजी के साथ मुझे प्रणाम करने को बापू के पास पहली बार ले गये। जहां तक मेरा ध्यान है हम लोग मुश्किल से बापू के पास दो चार मिनट ठहरे होंगे। काकाजी मुझे पूछने लगे—वनस्थली का क्या हाल है? मैंने कहा—सब ठीक है, पर मुझे अकेली के लिये वह काम ज्यादा भारी हो रहा है। कोई बहन मददगार मिल जाए तो अच्छा रहे। काकाजी बोले वर्धा मे मेरे पास दो लडकियां हैं तो सही। उनको तुम राजी करके ले जा सकती हो तो ले जाओ। इस कारण से शास्त्रीजी और मैं फैजपुर कांग्रेस से अलग-अलग दिशा में रवाना हुये। शास्त्रीजी और दोसाहब हरिभाऊजी बम्बई गये और मै वर्धा पहुँची। जमनालालजी के साथ बापू को प्रणाम करने के लिये वर्धा से रवाना हुई। आधे रास्ते पहुँचे होने और काकाजी के पास वापिस वर्धा आने का संदेश आ गया। हमारे साथ में एक यूरोपियन बहन भी थी। वह हिन्दी नही जानती थी और मै अंग्रेजी नही जानती। काकाजी बोले बापू तुम्हें नही पहचाने तो शास्त्रीजी का नाम बता देना। मैंने काकाजी से कहा प्रणाम करने जाने मे परिचय की क्या जरूरत है? जब मैं सेवाग्राम पहुँची तब बापू अपनी कुटिया के बरामदे मे बैठे कुछ लिख रहे थे। सोमवार का उनका मौन का दिन था। मेरे प्रणाम करते ही स्लिप पर लिखकर पूछा अकेली ही आयी हो क्या? हीरालाल कहां है? मैंने बताया कि वे बम्बई है और काकाजी आधे रास्ते से वापिस वर्धा चले गये हैं। बापू ने दूसरी स्लिप पर लिखा दिन भर यहाँ ठहरो, बा के पास जाओ, भोजन यही करना। उस समय तक मेरा बा से कोई नजदीक से परिचय नही था। मैं अकेली और वहाँ कोई

दूसरा जानने वाला नहीं था। पर आश्रम में अपनापन तो था ही न ? दो घण्टे बाद मैं बापू से छुट्टी लेकर लौट आयी और मैंने सारा हाल काकाजी को बताया। वर्धा की इस यात्रा का यह फल हुआ कि सज्जन और वासन्ती दोनों का वनस्थली आना हो गया। वासन्ती वनस्थली में ज्यादा नहीं ठहरी। पर सज्जन आज तक मैदान में डटी हुई है। सज्जन की बडी जीजी ने सालों तक काम किया है।

एक दिन फिर मैं वर्धा में बापूजी के पास अकेली पहुँची। यह वनस्थली शुरु होने के २-४ साल बाद की बात है। बापू को किसी ने बताया था कि वनस्थली में लड़कियो के रहन सहन पर ज्यादा पाबन्दी है। बापू हँसकर बोले- वनस्थली में तूने जेल बना रखी है। मैं बोली बापू आपको किसी ने सही ही बताया है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। मैं कमजोर मां हूँ। दूसरों की बच्चियों को लेकर बैठी हूं। कुछ ऊँच नीच हो जाए तो मेरा तो हार्ट फेल हो जाए। इसके अलावा वनस्थली में अंग्रेजी का पढाया जाना भी बापू को कुछ कम पसन्द था। कहने लगे बी०ए० एम०ए० पढाकर क्या करेगी ? बी०ए० की पढाई से तो आदमी बेकार हो जाता है। मैंने कहा बापू, अपनी लडकियों को कार्यकर्त्ता बनाना चाहते हैं। देश से अंग्रेजी खतम हो जाएगी तो उसकी आजकल जितनी पढाई वनस्थली मे होती है वह भी अपने आप बन्द हो जाएगी। मैं आपके पास आती हूँ मुझे किसी को भी साथ लाने की जरूरत नहीं होती। परन्तु मुझे अंग्रेजी नहीं आने से कहीं भी अंग्रेजी जानने वाले के पास जाना पडता है तो किसी को साथ ले जाना होता है। यह बात मुझको बहुत अखरती है। जो कमी मुझ में रह गयी, वह कमी मेरी लडकियों के लिये तो कभी परेशानी का कारण न बने। बापू हंसकर बोले— तुम को वकील होना चाहिये था। मैंने कहा उसमे भी तो अंग्रेजी चाहिए ?

जयपुर में सत्याग्रह चल रहा था। बापू अहमदाबाद से दिल्ली जाने वाले थे। जयपुर से कुछ साथी कार्यकर्ता आबू रोड गये थे, उनके साथ मैं भी चली गयी थी। जयपुर में मेल रात को १२ बजे पहुचता है। जयपुर के लोगों के मन मे बापू के दर्शन करने की प्रबल इच्छा थी। बापू जगह जगह जगने और शोरगुल से बडे थके हुए थे। कहने लगे रात को १२ बजे तो बहुत मुश्किल होगी। मैंने कहा बापू लोग स्टेशन पर आएंगे आपके दर्शन के लिए और जब तक मेल ठहरेगा

डटे रहेंगे और नारे लगाकर अपने मन की भावना प्रकट करते रहेंगे। नीद तो उस समय आपको आ नही सकती। यदि खिड़की में से आप उनको दर्शन दे देंगे तो उनका समाधान सतोष हो जाएगा और नारे आदि वे लोग न लगाएं यह बात भी उन लोगो को समझायी जा सकती है। बोले–यह हो जाएगा? हम कोशिश करेंगे तो हो जाना चाहिए और नही हो तो आप खिड़की वन्द कर लेना। मुझे खूब सतोष के साथ याद है कि मेल के जयपुर पहुंचते ही "महात्मा गांधी जिन्दाबाद" का जो एक बार नारा लगा उसके बाद लोगों ने एक भी नारा नहीं लगाया और बापू भी जब तक मेल नही रवाना हुआ बराबर खिड़की में बैठे हुए लोगो को दर्शन देते रहे।

सन् १९४२ के आन्दोलन के बाद बापूजी से मिलने के लिए हम लोग वर्धा गये हुये थे। उस समय जयपुर प्रजामडल ने जो निर्णय लिया था उसकी बात शास्त्रीजी बापूजी को बता रहे थे। बीच में मैंने कहा बापू अबकी बार तो मेरा भी इनसे झगड़ा हो गया। बोले–तू भी झगड़ा करती है क्या? मैं कहने लगी बापू मेरे मन में भी यह आयी कि मैं भी जेल में जाकर बैठ जाती तो अच्छा होता।

बापू कलकत्ता गये हुये थे। उन्ही दिनों शास्त्रीजी और मैं कलकत्ता पहुंचे। ठक्कर बापा का हम लोगों के साथ बड़ा स्नेह था। वे मुझसे मजाक में बोले–तुमको बापू ने राजस्थान का गवर्नर बनाया है। मुझे उस मजाक का आगा पीछा कुछ भी मालूम नहीं था। ठक्कर बापा के पास सुधाकर सहित हम लोग जहा बापू ठहरे हुये थे वहां पहुंचे तो बापा कहने लगे—बापू इनको तो राजस्थान की बात मंजूर नही है। बापू मजाक के मूड मे थे, बोले ठीक तो है, यह पर्दे में रहने वाली गांव मे जाकर कैसे काम करेगी? मैंने बापू से नम्रता से कहा बापू मै तो कई सालो से गाव में ही हूं, और पूज्य बा के सिलसिले मे कोई काम कर सकूं उससे मुझको ज्यादा प्रिय लगने वाली बात और कौन सी हो सकती है? मेरे मन में संकोच और झिझक सिर्फ यही है कि वनस्थली का काम करते हुए जो कि पहले से अंगीकृत किया हुआ है मैं कितना उस काम को कर पाऊंगी। बापू बोले कोई चिन्ता की बात नही है—जितना हो उतना कर लेना। पसन्द तो है ना? इस तरह से ठक्कर बापा और बापू के आदेश से राजस्थान में कस्तूरबा

कोष का काम करना मेरे जिम्मे हुआ। कस्तूरबा कोष की हिन्दुस्तान भर की सब प्रतिनिधियों की मीटिंग उरुली कांचन मे बापू ने बुलायी थी। मीटिंग में सब जगह की बहिनों ने अपने अपने स्थान की रिपोर्ट दी। मैंने भी राजस्थान के काम की रिपोर्ट दी। सयोग से राजस्थान मे जो काम हुआ था वह हुआ तो अच्छा था परन्तु विस्तार कम था। झिझक के साथ मैंने बापू के सामने कहा-बापू मैं तो कुछ कम ही काम कर पायी हूं।

बापू जब पूना जेल से छूट कर आये, हम लोग बापू के पास वर्धा पहुंचे। बापू उन दिनों मे मौन रहते थे और सप्ताह में एक बार तीनेक घंटे के लिए मौन छोड़ा करते थे। शास्त्रीजी को स्लिप पर लिख कर दिया-तुम लोग परसों तक ठहरो तो मै एक घंटा तुमको दे सकता हूं। हम तो बापू के पास बातचीत करने के लिए ही गये थे, ठहर गये। बापू ने रात को आठ बजे का समय दिया। और हम, काकोजी जानकी देवीजी, शास्त्रीजी और मैं बापू के पास पहुचे। बापू से बातचीत करते करते एक घंटा पूरा होने को आ गया। (राजकुमारी) अमृत-कौर बहिन उन दिनों बापू को सभाल के चार्ज मे थी। उन्होने समय का ध्यान दिलाने की कोशिश की। उस समय एक मिनिट बाकी था। मजाक में अपनी धोती की अंटी मे से घड़ी निकालकर बापू बोले घड़ी म्हारे पास पण छे। हमारे रवाना होते होते बापू के ये शब्द कान मे पड़े—इतनी दूर से ये आये हैं। खास काम करने वाले हैं। ऐसे लोग रोज रोज थोडे ही आते हैं।

हिन्दुस्तान के बटवारे के आस पास का समय होगा. मै बापू के पास किसी हरिजन कालोनी में गयी थी और मैंने उनसे कुछ मेरे मन की बात कहने के लिए थोडा समय चाहा था। बापू उन दिनो हिन्दुस्तान के बटवारे को लेकर बड़े परेशान व व्यथित थे। बोले बाद मे समय दूंगा। बापूजी ने अनशन किया था दिल्ली में। शास्त्रीजी मिलने को गये। सुशीला बहन से कहलवाया—उससे कहो मुझे अभी घंटा भर लगेगा। इतना समय क्यों खराब करे, वे बोले मैं वनस्थली जा रहा हूं, बापू को देखने आया था। अन्दर से बापू ने कहलवाया कह देना मैं ठीक हूं। पता नहीं मेरे मन में घबराहट थी कि बापू का इतना नाजुक स्वास्थ्य है और इस अनशन का उनके स्वास्थ्य पर कहीं ले बैठने वाला असर न हो जाए।

शास्त्रीजी वोले तुम्हारे मन मे जवरदस्ती घवराहट है, वापू कोई इस तरह से थोडे ही जाएगे। मै चुप हो गयी।

वापू की वनस्थली ग्राने की वातचीत चल रही थी। वापू वोले मैं ३-४ घटो के लिए वनस्थली नही ग्राऊंगा। मैं वहा ५-७ दिन ठहरूंगा ग्रौर तेरी सव पोल खोलूंगा। उसके वाद वापू वोले ग्रवकी वार दिल्ली से ग्राते जाते मैं वनस्थली ग्राऊगा। मैंने कहा—वापू वनस्थली सवाई माधोपुर से ग्रलग हटकर है। ग्ररी कैलाश जहां होगा वहीं तो शकर को जाना पड़ेगा वापू वोले। दिल्ली से एक पोस्टकार्ड ग्राया मै वर्धा जा रहा हू १०-१५ दिन वहां ठहरूंगा, तुम लोग ग्राना चाहो तो ग्रा जाना। वह पोस्टकार्ड लेकर शास्त्रीजी मेरे पास ग्राये ग्रौर कहने लगे—वापू वर्धा जा रहे है, तुम भी चलोगी ना ? मैं उन दिनों में वनस्थली से काफी वाहर रहकर ग्रायी थी। मैंने कहा वापू के पास जाने व वात करने की इच्छा तो मेरी भी है पर ग्रभी तो ग्राप ग्रकेले ही जाग्रो। पता नही क्यों शास्त्रीजी की जवान से यह निकला कि तुमको वापू को वनस्थली लाना है इसलिए ग्रपन दोनों ही चले, पता नही ग्रापू को कव क्या हो जाए, इसलिए चले चलना ही ग्रच्छा है। यह वात शास्त्रीजी की जवान से सुनकर मेरे मन मे एक ग्रजीव तरह की शंका पैदा हो गयी कि यह वात इनके जैसे दिमाग में क्यो ग्रायी ? मैंने कहा—ग्रच्छी वात है ग्राप वर्धा लिख दीजिए ग्रपन दोनों चलेंगे। पता नही वह कोई भावी का सकेत था या क्या। उसके ५-७ दिन वाद ही जयपुर में ग्रचानक वापू के महाप्रयाण की खवर मिली। न वापू वर्धा पहुचे, न हम। सव वातें स्वप्न सी हो गयीं।

पता नही वापू के पास कौन सी ऐसी चीज थी कि कितनी भी कठिनाई में कोई पहुचता था पर वहा जाते ही उसको नया वल मिल जाता था।

(२३) हमारा परिवार

मै वता चुकी हूँ कि मेरे पिताजी के एक वड़े भाई थे, ग्रौर दो छोटे भाई। मेरे ताऊजी श्री गौरीशंकरजी का स्वर्गवास हो चुका है। उनकी एक लड़की मधु जयपुर में ग्रपने पुत्रों के साथ रहती है। ताईजी रतलाम मे रहती है। मेरे एक

चाचाजी श्री भगवानलालजी का भी स्वर्गवास हो चुका है। उनका पुत्र नगेन्द्र मध्यप्रदेश सरकार में किसी अच्छे से ओहदे पर काम करता है। मेरे दूसरे चाचाजी, मेरी चाची और छोटे पुत्र सहित रतलाम मे रहते है, उनका दूसरा पुत्र रेलवे में नौकरी करता है। मेरे पिताजी का स्वर्गवास एकदम अचानक क्षण भर मे ही—रतलाम मे हो जाने के बाद शास्त्रीजी की प्रेरणा से मेरी दादीजी, माताजी, तीनो भाई और सबसे छोटी बहिन जयपुर-वनस्थली आकर रहने लगे। बिचली बहिन हमारे पास पहले से थी। मेरी दादीजी स्वर्ग सिधार गयी। वे अद्वितीय महिला थी—उन्होने ही हम बहिन भाइयो का खासकर मेरा पालन पोषण किया था। मेरे पिताजी भी असाधारण पुरुष थे। दूसरो की सहायता करना उनका स्वभाव था। अपने काम से रिटायर होने के बाद उनका वनस्थली विद्यापीठ की सहायता करने का विचार था। मेरी बाई (माताजी) को सब लोग साक्षात् लक्ष्मी का रूप बताते है। आजकल वे बहुत बीमार हो रही हैं। और सब लोग अनन्त श्रद्धा के साथ उनकी सेवा करते है। मेरे तीनो भाइयो मे सबसे बडा मोहन बडा होशियार है—वह कही भी किसी के पास भी पहुँच कर व्यवहार बना लेता है। उसकी पत्नी दया वनस्थली मे अर्थशास्त्र की लेक्चरार है। उसके तीन लड़किया और एक लडका है। दूसरा भाई सोहन भी शान्त प्रकृति का है। वह खासकर खानों की खोज कर लेने मे बडा दक्ष है। उसकी पत्नी आर्ट की डिप्लोमा होल्डर है। वह जयपुर मे रहती है, उसके दो लडकियां और एक लड़का है। सबसे छोटा भाई हरीश बडा व्यावहारिक और प्रेमी युवक है। मुझसे छोटी बहिन सुशीला बचपन से ही हमारे पास रही, वह शान्ताबाई के साथ खेली हुई और पढी हुई है। उसने वनस्थली के खातिर अपना विवाह नहीं किया है और आजकल विद्यापीठ के ज्ञान विज्ञान महाविद्यालय की आचार्य है। सबसे छोटी बहिन चित्रा जयपुर मे कानोडिया कॉलेज मे राजनीति शास्त्र की लेक्चरार है। चित्रा का पति डॉ० गोपाल राजस्थान विश्वविद्यालय मे गणित का लेक्चरार है। चित्रा गोपाल के दो लड़किया है। यह मेरे पीहर के परिवार का परिचय है।

मेरे ससुराल के परिवार मे मेरे ससुर श्री श्रीनारायणजी जोशी और उनके पांचो भाइयो का स्वर्गवास हो चुका है। मेरी सास और चार काकी सासुएँ भी गुजर गयी है। मेरे ससुर बडे प्रभावशाली और त्यागी महापुरुष थे।

मेरी सास भी मेरी बाई की तरह, सुना है, साक्षात् लक्ष्मी थी। एक काकी सास मौजूद है। मेरे एक काका ससुर के तीन लडके और तीन लड़कियां है, दूसरे काका के दो लडके है। सब लडके अपने-अपने परिवार के साथ जोवनेर, जयपुर, बम्बई और वनस्थली में रहते है। वनस्थली में रहने वाले श्री रामेश्वरदयालजी वनस्थली विद्यापीठ के स्तंभ रूप हैं। रामेश्वरदयालजी की बड़ी बहिन वनस्थली मे ३८ साल बहुत बढ़िया काम करके हाल में ही रिटायर हुई हैं। शास्त्रीजी अपने माता पिता की अकेली संतान है, माता के गुजर जाने की वजह से और पिताजी ने दृढतापूर्वक दूसरा विवाह न करने देने की वजह से उनकी दादीजी और भुवाजी ने शास्त्रीजी का पालन पोषण किया। पुत्री शान्ताबाई शाश्वत शान्ता होकर वनस्थली की अधिष्ठात्री देवी के रूप में विराजमान है। हमारे दो पुत्र सुधाकर और दिवाकर है। सुधाकर जयपुर में सीमेंट आदि एजेंसियों का काम करता है और वह वनस्थली का निष्ठावान सेवक भी है। सुधाकर की पत्नी कमला जयपुर के राजकीय हायर सैकेण्डरी स्कूल में प्रधानाध्यापिका है। सुधाकर-कमला के दो पुत्र है। बड़ा सिद्धार्थ वनस्थली विद्यापीठ में अर्थशास्त्र का लेक्चरार है—उसका विवाह सुधा के साथ हुआ है। छोटा आशुतोष सुधाकर के साथ जयपुर में काम करता है। सुधाकर की बड़ी लड़की सुहासिनी का विवाह सुरेश पारीक से होने वाला है। दूसरी लडकी अनुपम अभी छोटी बच्ची कक्षा १ की छात्रा है। हमारा दूसरा लडका दिवाकर (श्याम) वनस्थली विद्यापीठ में प्रोफेसर है और वह मंत्री का काम भी करता है। उसकी पत्नी शकुन्तला वनस्थली विद्यापीठ शिक्षा महाविद्यालय के शोध केन्द्र की संयोजिका के अलावा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में बड़ी जिम्मेदारी से काम करती है। शकुन्तला—दिवाकर का बच्चा आदित्य छोटा है वह वनस्थली के सरकारी स्कूल में कक्षा ७ में पढता है। बच्ची ज्योति अभी बहुत छोटी कक्षा १ की छात्रा है। मेरे तथा दो तीन दूसरो के एवं छोटे बच्चों के अलावा हमारे परिवार में प्रायः सभी बी०ए, एम० ए०, बी० एससी०, बी० एड्०, एम० एड०, एम० एससी०, आदि कुछ न कुछ है।

मेरी माताजी अपने पुत्रों आदि के साथ हमारे साथ ही रहती है हमारे परिवार दो न होकर एक ही संयुक्त परिवार हैं। कुल मिलाकर प्रायः तीस व्यक्ति है जिनका एक दूसरे के साथ अपूर्व प्यार है। मोहन आदि अपना व्यवसाय करते हैं। सुधाकर अपने व्यवसाय के साथ वनस्थली का बहुत काम

करता है। कमला शिक्षा के काम में है—और एक दिन वनस्थली की सेवा मे पहुँच जाने की उम्मीदवार है। सुशीला-श्याम-शकुन्तला तो वनस्थली के काम मे तन मन से सर्वथा लीन है ही। शास्त्रीजी की महिमा का बखान करना मेरे सामर्थ्य के बाहर है, हालाकि शास्त्रीजी मेरा बखान जरूरत से ज्यादा करते रहते है। मेरी माताजी—लक्ष्मी स्वरूपा लक्ष्मीवाई की छत्रछाया मे हमारा यह भरे पूरे सयुक्त परिवार का कई प्रकार से आदर्श रूप है। मेरी बाई अपने सब पुत्रों से और अपनी सब पुत्रियो से बढकर श्रेष्ठ पुत्र शास्त्रीजी को मानती है और शास्त्रीजी अपनी वैकुण्ठ वासिनी माताजी के स्थान पर मानते हुए बाई की पूजा करते है।

(२४) अभाव में वैभव

मेरे पिताजी की आमदनी कम थी, पर मेरी दादीजी के पास कुछ सपत्ति होने के कारण हमारा घर सपन्न माना जाता था। मेरे ताऊजी बम्बई मे काम करते थे। वे मेरे लिए नाना प्रकार के कपड़े भेज दिया करते थे। उन कपडों से मेरी शाहजादी की सी सजावट कर दी जाती थी, यहा तक कि रतलाम के राज-महल मे रहने और आने जाने वाली राजकुमारियों को मुझसे कुछ ईर्ष्या जैसी हो जाती थी। मेरे पिताजी बडे दरिया दिल थे। दूसरे जरूरतमन्दों को लाकर भी मदद करते रहने का उनका स्वभाव था। वे घर मे खाने पीने की चीजो की इफराद् रखते थे। इसलिए मेरा कुमारी अवस्था का खाना, पहिनना—तमाम रहन सहन—ऊंचे स्टेन्डर्ड का माना जा सकता है। मेरे पिताजी अपने साधनो की कमी का कुछ भी असर हमारे ऊपर नही आने देते थे और मेरी दादीजी का हृदय भी अत्यन्त विशाल था और मेरी बाई (मा) की उदारता का तो कहना ही क्या? मेरी दादीजी को उनके अन्तिम क्षणों मे सास बन्द होने के दो चार मिनट पहले तक उनकी सेवा के लिए उपस्थित बहिनो को खिलाने पिलाने का आग्रह करती देखकर हम लोग गद्गद् हो गये थे। और मेरी बाई आजकल उठने-बैठने, बोलने-चालने की स्थिति में नही है तो भी दूसरो की खातिर करने के लिए तकाजा करती रहती हैं।

अपने ससुराल मे जयपुर मे आकर मैंने शास्त्रीजी का भी यही हाल सुना और देखा। शास्त्रीजी ने १७ साल की उम्र मे अपनी दादीजी के श्राद्ध के लिए

जयपुर से उधार लाकर अपने पिताजी को रुपया दिया था। शास्त्रीजी ने अपने खुद का विवाह का और अपनी चचेरी बहिन के विवाह का काम भी बहुत कुछ उधार से चलाया बताया? शास्त्रीजी को खाने पीने में छाछ, दही, दूध, मक्खन के अलावा खास शौक था हरी पत्ती के और गंवार की फली के साग का, लहसुन का, जौ की रोटी का व बाजरे की खिचडी का। अपनी मौज के कारण शास्त्रीजी जौ की बिना चुपडी रोटी खाये बिना कभी तृप्त नही होते थे। ऐसी स्थिति मे मेरे हिस्से में भी जौ की रोटी बनाना, खाना आ ही जाता था। मेरी सग्रहणी की बीमारी का खास कारण जौ की रोटी रही हो तो ताज्जुब नही। शास्त्रीजी को नगे बदन, नगे पाव रहने का भी बड़ा शौक था। वे जो कपड़े पहनते थे सो भी चार छ आने गज के भाव के होते थे। उनकी जूतियां भी रुपये सवा रुपये की कीमत की देशी ठाठ की होती थी। और खादी पहिनना भी उन दिनों की गुदड खादी से शुरू हुआ? इस प्रकार अपने आपको तकदीर के सिकन्दर मानने वाले और खर्च करने में शाही तबीयत वाले शास्त्रीजी के पड़ोस मे एक प्रकार निर्धनता का दर्शन किया जा सकता है। और शास्त्रीजी के जन्मस्थान जोबनेर का घर तो कच्चा था ही। वे वनस्थली में आकर बसे तो गांव वालों के जैसे कच्चे झोंपडों में रहे। वे गाँव मे वैसा ही खाने की कोशिश करते जैसा गांव वाले खाते थे। अपने विद्यार्थी काल से लेकर आज तक मुख्यमंत्रित्वकाल सहित शास्त्रीजी मामूली बिछायत-पर बैठते रहे है और वही खाना, वही काम करना, वही मिलना-जुलना सब कुछ करते रहे है। हमारे घर में शास्त्रीजी की लायी हुई एक कुर्सी भी नही हैं। मुझे संतोष है कि शास्त्रीजी के इस रहन सहन की भागीदार बनने का मेरा सौभाग्य है। राज्य की नौकरी छोड़ते-छोड़ते शास्त्रीजी ने जयपुर शहर मे एक मकान दो हजार रुपये में जरूर ले लिया था। सार्वजनिक उपयोग के कारण उस मकान का नाम राष्ट्रीय धर्मशाला पड़ गया था। बाद में शास्त्रीजी ने जोबनेर मे अपने जन्म के स्थान पर मातृमन्दिर नाम से एक बड़ा सा कमरा उस मकान में बनवा दिया जो उनको ठाकुर साहब ने ३५००/- मे बेच दिया था। जोबनेर के मकान में १४-१५ साल से प्रौढ़ महिलाओं का और छोटे बच्चों का विद्यालय चल रहा है। जयपुर में रघुश्री नाम का मकान सुधाकर श्याम का है—मेरे पिताजी रघुनाथ, और शास्त्रीजी के पिताजी श्रीनारायण इन दोनों

नामों से रघु और श्री लेकर मकान का नाम रघुश्री किया गया है। शास्त्रीजी के पास अपना कहने को एक पैसा कभी नही रहा और कर्जा तो वरावर सा ही वना रहा। मेरे पाम जो जेवर था, वह ठीक-ठाक था पर जेवर पहिनना छोड दिया गया, तव जो कुछ मेरे पास था वह बेच डाला गया। और बिक्री से जो पैसा आया वह पता नही कव कहा चला गया। घर में कमला आदि का जो जेवर था उसे गिरवी रखकर अमुक उम्मीदवार को चुनाव में जिताने के लिए जरूरत लायक रुपया उधार लाया गया। जीवनकुटीर, वनस्थली की शुरूआत कर्ज में हुई है, और आज भी वनस्थली पर जिस साल कर्जा कम हो तो उसे शास्त्रीजी अशुभ मानते है। किसी ने आकर अपनी जरूरत शास्त्रीजी के सामने पेश कर दी तो शास्त्रीजी उधार लाकर उसकी जरूरत पूरी करते रहे है। शास्त्रीजी ने अपने पास एक छोटा सा वैंक जैसा वना रखा था जिसमें किसी का भी रुपया उधार आकर जमा हुआ और वह किन्ही भी लोगों को कभी उधार और ज्यादातर तो आगडा ही दे दिया गया। जिनका रुपया उधार लाया गया था उसे चुकाने का जिम्मा तो शास्त्रीजी का था ही। ऐसी विचित्र स्थिति मे हमारा निभाव होता रहा कुछ मित्रों के प्रेम के आधार पर। पैसे वाले कुछ मित्रो ने हमारी सदा ही मदद की है। शास्त्रीजी के अक्खड स्वभाव के वावजूद शास्त्रीजी ने जिन्दगी भर न जाने कितने लोगो का भला किया होगा, न जाने कितने को तकलीफ के समय मदद पहुँचायी होगी, पर किसी के दवाव मे या प्रभाव म आकर शास्त्रीजी ने उसकी वात मानकर कोई न करने का काम कर दिया हो—ऐसा कुछ भी मेरी जानकारी मे कभी नही आया।

विवाह होकर शास्त्रीजी के पास आते ही मैंने महसूस कर लिया कि शास्त्रीजी का और मेरा जीवन तो एक ही है। कुछ मौके ऐसे भी आये कि शास्त्रीजी मुझे मुश्किल से आये रुपये को लुटाते हुए से लगे। मैने शास्त्रीजी को रोकना भी चाहा, कभी तो डरते-डरते मैंने यहाँ तक कह दिया क्यों आप सापो को दूध पिलाते हो ? पर शास्त्रीजी का दिल ऐसा ही मैंने देखा कि वे मेरी ऐसी वैसी वात कभी सुन नहीं सकते थे। मेरे मना करने में उनको अनुदारता दिखायी देती थी। और मैं तो जव से आयी तव से शास्त्रीजी की कामदार बनी हुई हूँ। और यह कामदारा अक्सर मेरे लिए वहुत भारी, वहुत महंगा पड़ता रहा है।

शास्त्रीजी ने हुक्म दे दिया—जाओ फला जगह जाकर फलां से कुछ रुपया ले आओ। हुक्मी बन्दे की हैसियत से मै जाती और कुछ ले आती और रुपया हाथ मे आते ही शास्त्रीजी उसे किसी न किसी को दे डालते। मुझे हमारे वे दिन भी याद है जब शास्त्रीजी ने दूसरों के कारण से अपने सिर पर लदे हुए कर्जे को उतारने के लिए साधारण से साधारण कार्यकर्ताओं को बुला-बुला कर कहा था—सवा लाख का कर्जा चुकाना बाकी है, थोड़ा सा रुपया ला दो, पास मे नही हो तो अपनी स्त्री का जेवर बेचकर लाओ। एक साथी को शास्त्रीजी ने मुश्किल से मना किया, वह अपने मकान को बेचकर शास्त्रीजी को रुपया लाकर देने के लिए तैयार हो गया था। परन्तु हमारी इस निर्धनता को किसी ने भी ठीक से नहीं समझा। आमतौर से लोग यही समझते रहे कि शास्त्रीजी के पास क्या कमी है, ये तो खेल कर रहे है—आजमाइश के लिए। सादगी-अमीरी के इस प्रकरण में मेरे पास लिखने को बहुत कुछ है, पर ज्यादा लिखने से क्या फायदा। किसी दिवालिया सरकार के खजाची को तकलीफ भले ही होती हो, पर वह अपना काम भी बना लेगा ही। पर मै तकदीर के सिकन्दर शास्त्रीजी की ऐसी खजांची जिन्दगी भर रही हू कि मेरे पास न अपना एक पैसा है न कहने लायक कोई खास जेवर है। हमारा यह अभाव न केवल दूसरों को वैभव दिखायी देता रहा, बल्कि हम खुद को भी-अलग से सोचू तो मुझे भी यह अभाव शानदार या हमारी शान बढाता हुआ लग रहा है।

(२५) उपसंहार

मुझे पता नही मै और क्या कहूं। मेरी यह "अपनी कहानी, अपनी जबानी" अब सम्पूर्ण होना चाहती है। असल मे सम्पूर्ण हो ही गयी है। मैंने पूज्य काका साहेब के हुक्म की तामील करने के लिए कुछ लिखना दिल्ली मे महाशिवरात्रि के दिन शुरू किया। वनस्थली में पहुंचकर मैंने कुछ बाते सुहासिनी को लिखा दी। उसमे भी मेरी काकी सास के अचानक देहावसान का समाचार मिलने से विघ्न आ गया। उस विघ्न के बीच मे मेरी लिखने की या बोलकर लिखाने की ताकत नही रही। इस काम को शुरू करने के बाद पूरा किये बिना अधूरा भी छोड़ नही सकती थी और काका साहब से हमारा वादा जल्दी लिखकर दिखा देने का था। ऐसी हालत में यह सोचना पड़ा कि श्याम

(दिवाकर) के सामने मैं अपनी बातें एक सांस में कह जाऊं और फिर वह मेरी बतायी हुई बातों को लिखित रूप दे दे। शास्त्रीजी का और मेरा जीवन मिला हुआ होने से उनके हाथ की कारीगरी भी इस रचना मे आये बिना नही रह सकती थी। उन्होंने मुझको कई बातों की याद दिलायी। अन्त मे इस कहानी का प्रारूप सुधाकर के सुपुर्द कर दिया गया। जिसे वह प्रेस के लायक बनाकर छपने के लिए दे सके। इस प्रकार पंचम मंजिलो में यह काम पूरा होने को हुआ है। अब मैं अपने चित्त का भार उतर गया ऐसा अनुभव करती हूं।

जैसा कि इस लघु रचना मे कई जगह उल्लेख हो चुका है, मैं तो शास्त्रीजी के जीवन में अपना जीवन शामिल मानती हूं और यह मेरा अहोभाग्य है कि शास्त्रीजी भी अपने जीवन को मेरे जीवन में शामिल मानते हैं। यहा तक कि "पंडिताई और कविताई" मे बोलते हुए शास्त्रीजी कहते हैं "असल मे हम एक, न दो जने"। उनके स्वर में स्वर मिलाकर मैं कहती हूं कि आप बड़े भाग्यशाली हो, मेरी भी आपके साथ साथ पार लग जाएगी। आखिर मैं क्या चीज हूं—क्या मेरा अस्तित्व है? यह शास्त्रीजी की विशालता है कि मुझ जैसी ना चीज को अपने आपे में मिला लिया और हम दो न रहकर एक हो गये। बाकी की सब बातें गौण है? शास्त्रीजी गाते रहते हैं—'आराम क्या है तकलीफ क्या है—पत्ता नही है, सुख दुःख क्या है।' मेरा सोचना है कि दुःख अलगाव में है और सुख एकीकरण में। शास्त्रीजी ने अपने लेख के शुरू में मंगलाचरण का श्लोक लिखा है। वे कहते हैं कि हम दोनों सनातन अद्वैत हो ही चुके है तो फिर अद्वैत सिद्धि के लिए किसी की भी वन्दना करनी क्या बाकी है?

शास्त्रीजी को अहंकारी और हठीला बताया जाता है। मैं भी मानती हूं कि शास्त्रीजी में बालहठ जैसा हठ देखने को मिल जाता है कभी कभी। शास्त्रीजी को किसी से कभी भी दब जाना मंजूर नहीं हुआ। इसलिए वे अहंकारी से भी दिखायी दे जाते हैं। और कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि शास्त्रीजी ने मुझे बिना बताये बहुत बड़े फैसले कर डाले—ऐसे फैसले कि जिन्हे मैं मुझको पहले से पता होता तो उनको शायद ही करने देती। परन्तु इसका रहस्य यह है कि शास्त्रीजी निश्चयात्मा हैं, अपने आत्मविश्वास पर आरूढ रहने वाले हैं। मैं

शास्त्रीजी जैसी ही निश्चयात्मा और आत्मविश्वास रखने वाली नही बन पायी हूँ। इससे मैं अपना समाधान खोज लेती हूँ कि शास्त्रीजी और मै अलग होते तभी यह सवाल उठता। नही तो फिर शास्त्रीजी की ताकत सो मेरी ताकत और मेरी कमजोरी है सो भी शास्त्रीजी की ताकत।

इन शब्दो के साथ मे मै अपनी इस कहानी को पूरा करती हुई विश्राम लेती हू। अपनी कमियो के लिए मै पाठको से माफी चाहती हूँ। इसमें भी मेरी बचन यह है कि यह लघुकृति शास्त्रीजी के "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" (भाग २) के साथ नत्थी होने से मेरी जो कोई भी कमिया होगी वे शास्त्रीजी के ग्रंथ के गुणो मे मिलकर गुण हो जाएंगी।

जो सा वही सा वह सा वही सा,
सदैव सा से बनता सही सा।
सा से घटे सा बच जाए सा ही,
सा मे जुड़े सा बन जाए सा ही॥

—हीरालाल शास्त्री

रतन हीरा का अनूठा अद्‌वैत

रतनजी की इस कहानी मे 'शास्त्र' के लिए गुंजाइश नही है। इसमे तो प्रत्यक्ष और खालिस जीवन ही जीवन है। उनके निवेदन मे जो सहजता और ऋजुता है उसके कारण इस कहानी मे अपनी एक अनोखी मनोज्ञता आ गयी है। उसमे भाषा के कौतुक नही है अलंकारो की गुलकारी नही है और न बात कहने मे कोई घुमाव फिराव है। एक विनययुक्त प्रांजलता है। रतन हीरा के अनूठे अद्वैत मे रतन ने हीरा की द्युति की उग्रता को कम किया है और दीप्ति को बढाया है।

—दादा धर्माधिकारी

"सा" की नजर में "सा"

(हीरालाल शास्त्री)

वागर्थाविव संपृक्तौ पार्वतीपरमेश्वरौ।
अमू वन्दावहे वन्दे नित्यमद्वैतसिद्धये ॥

स्पष्ट है कि इस अनुष्टुप के दो चरण-प्रथम और द्वितीय-महाकवि कालिदास के रघुवश के मगलाचरण मे मे टीपे हुए है। वाक् और अर्थ की भांति अभिन्नभाव मे मिले हुए शकर-पार्वती की (हम दोनो अपने) अद्वैत रूप की सिद्धि के लिए नित्य वन्दना करते हैं। द्विवचन "वन्दावहे" कहते ही कवि ने सोचा कि "दो" तो हैं नही, इसलिए उसने एकवचन "वन्दे" कहकर अपनी भूल का सुधार कर लिया।

न जाने कब और कैसे रतनजी को "सा" कहना शुरू हो गया। मुझे इतना याद है कि जीवनकुटीर के हम सभी साथी रतनजी को "सा" कहते थे। तभी से रतनजी ने खुद की भांति मुझको भी "सा" कहना शुरू कर दिया। कई-कई सालो से हम दोनो आपस मे एक दूसरे को "सा" कहकर ही पुकारते आये हैं। इसी पर से नीचे लिखा छन्द बन गया :—

रतनजी जबसे प्रिय सा बनी,
तबहि से हम भी प्रिय सा बने।
जगत् को दिखते हम दो जने,
असल मे हम एक, न दो जने ॥

इसी आशय का यह दूसरा छन्द है—

अभिन्न है सा - प्रिय मा - प्रिया से,
अभिन्न है सा - प्रिय से प्रिया - सा
अभिन्न है "सा" प्रिय से प्रिया से,
अभिन्न सा प्रियसा प्रियासा ।।

इसी हिसाब से आगे बढ़ते-बढ़ते ईशोपनिषद् के शान्तिपाठ के तर्ज पर यह तीसरा छन्द प्रकट हो गया :—

वो सा वही सा यह सा वही सा,
सदैव सा से बनता सही सा ।
सा से घटे सा बच जाए सा ही,
सा मे जुड़े सा बन जाए सा ही ।

"क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टाः" जैसे मेरे स्वभाव को सही सही पहिचानती हुई रतनजी अवसर विनोद मे मुझको 'शकर' बताती रहती है। तब मैं उनसे कहता हूँ-आप पार्वती बनना चाहती हो सो मुझको शकर बनाकर अपनी इच्छा पूरी करने की कोशिश कर रही हो क्या ? इस पर मे बना हुआ यह छन्द है —

मुझे सदा शंकर ये बताती,
औ पार्वती मैं इनको बताता ।
मिले हुए शंकरपार्वती जो,
सो अर्धनारीश्वर मे बताता ।।

कहते है नारद ने पार्वती की मा को शकर के खिलाफ बहका दिया था । कहा "पार्वती-शकर" और कहा ' रतन-हीरा" । पर सामान्य मनुष्य का सामान्य स्वभाव अपनी चापलूसी करने का होता है न ? मैंने अपनी आत्मकथा "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" (भाग १) मे इस प्रकार लिखा है —

"मेरी सगाई की बातें चल पडीं । अब तो मैं खुद ही हा ना करने वाला था । धन का लोभ दिखाने वाले एकाध को मैंने टाल बतायी तो मै लोगो की निगाह मे जिद्दी दिखायी दिया । उन्ही दिनो रतलाम निवासी श्री रघुनाथजी व्यास मेरे पास आ पहुँचे । वे मेरे कुछ मित्रो से परिचित थे । उनकी बात मेरी समझ मे आने लगी । मैंने अपने प्रियपात्र सुखदेव को चुपके से रतलाम भेजा, लडकी को देखने के लिए । सुखदेव बहुत अच्छी रिपोर्ट लाया । मेरी सगाई मास्टर रघुनाथजी व्यास की लड़की रतनबाई से हो गयी । मास्टर साहब से द्वेष रखने वाले लोगो का शिष्टमडल मध्यभारत से चलकर पुरोहितजी साहब (सर गोपी-नाथजी) के पास पहुँचा, यह कहने के लिए कि रघुनाथजी व्यास 'जात बाहर' हैं । ऐसे लोगों

की कौन सुनने वाला था ? दो-चार महीने बाद मेरा विवाह रतनजी से हो गया, साचरोद मे। रतनजी की माताजी (बाई) के पास मेरे बारे मे विरुद्ध रिपोर्ट पहुँचायी गयी थी, इसलिए वे उस समय बहुत खुश नही थी। विवाह के कुछ ही दिन बाद मैं रतनजी को लाने के लिए रतलाम पहुँचा तब रतनजी की 'बाई' ने मुझे (अच्छी तरह से) देखा और वे खुश हो गयी।"

मीठी मालवा से रूखे राजस्थान मे आकर रतनजी ने घर को अच्छी तरह से सभाल लिया सो मनरज की बात लगी मुझे। मैं अपने "सिकत्तरी" के काम के नशे मे पागल जैसा रहता था। महकमा खास से फाइलो का ढेर घर पर आ जाता था। सारे काम को निपटा कर ही मैं सोने के लिए लेट सकता था। मेरी फाइलो के बीच मे पडी हुई रतनजी को नीद आ जाती थी। पर रतनजी ने कभी शिकायत नही की।

जब मैंने किसी छोटे से गाव में जाकर बसने की अपनी इच्छा प्रकट की तो रतनजी क्षण भर मे सहमत होती हुई बोल उठी—"चलिए, जहा राम होंगे वही होगी अयोध्या"। मैं जानता था कि रतनजी का और मेरा कोई मुकाबला नहीं। मैं एक तरह के किसान परिवार मे पला हुआ था। शरीर से मजबूत था और भरू जैसी आबहवा मे कुछ भी ला पीकर रह सकता था, रतनजी थी उस घर की जिसके रहन-सहन का स्टैण्डर्ड काफी ऊचा था, शहर से भागी हुई रानियो-राजकुमारियो के बीच रही हुई और राजकुमारी की भांति पली हुई। रतनजी ने पर्दा और जेवर तो विवाह के बाद तीन साल के भीतर ही छोड दिया था। फिर खादी पहनने का समय आया तो रतनजी से खादी धुलने मे ही न आवे, इतनी भारी खादी उनसे सम्भले ही नही। परन्तु उन्होने कोई परवाह नही की और खादी का प्रण ले डाला। बच्चो की पोशाक भी खादी की हो गयी। शहर मे रही हुई रतनजी के सामने एक छोटे से गाव मे रहने की समस्या तो थी ही, गेहू-चावल खाने वाली रतनजी को जौ के टिक्कड बनाने और (खास कर बिना साग-सब्जी के) खाने का अभ्यास भी नही था। जो हो, रतनजी ने अपने जीवन का बोझ बिना मेरे जीवन मे शामिल कर लिया। जीवनकुटीर के जमाने मे रतनजी ने मेरे साथ-साथ कुटीर के काम के लिए अपनी जान झोक दी।

एक बार जयपुर शहर मे चन्दा करते-करते मैंने हार मान ली। और मैने रतनजी से कहा कि जोबनेर (मेरे जन्मस्थान) के ठाकुर साहब से चन्दा आप लाओ। रतनजी ठाकुर साहब से जा भिडी। ठाकुर साहब पर्दे मे रही हुई रतनजी को कैसे पहिचानते ? रतनजी ने वनस्थली की बात छेडी तब ठाकुर साहब समझे कि वे किस से बात कर रहे हैं। और उनके जनाने मे से स्त्रिया झाक कर बतियाने लगी—'अऐ देखो ए, सकराण्या जोस्या का बेटा की बहू सिरदारा की बराबर कुर्सी पर बैठी छै"। रतनजी ठाकुरसाहब से चन्दा लिखवाकर ही हटी।

उस जमाने मे रतलाम जैसी "राजधानी" में भी लडकियों की शिक्षा की कोई खास व्यवस्था नही थी। एक मामूलीसा ही स्कूल था वहा। रतनजी की पढाई उस स्कूल की

"उच्चतम परीक्षा" पास करते ही छूट गयी। उसके बाद जल्दी ही उनका विवाह हो गया। मेरे दिल मे यह खटक आज तक बनी हुई है कि मैं रतनजी की शिक्षा के मामले मे अपना कर्त्तव्य जैसा चाहिए वैसा पूरा नही कर सका। बहुत देर से मैंने शान्ताबाई और रतनजी को खुद पढाना शुरू किया—दोनो ने एक-एक परीक्षा भी पास करली। पर शान्ताबाई तो अचानक हमे छोडकर चली गयी। और रतनजी को वनस्थली विद्यापीठ का अतिकठिन काम सम्भालना पड गया।

रतनजी अंग्रेजी नही पढी हैं। फिर भी वे जयपुर राज्य के उन दिनों के बडे-बड़े अंग्रेज अधिकारियो से टक्कर ले लेती थी। एक दिन डायरेक्टर ऑफ एजूकेशन ग्रोवेन्स से रतनजी लाल होकर बोली—"आप हमारा स्कूल बन्द करवाने के लिए अपनी फौज पुलिस लेकर आ जाना, मैं आपको फाटक पर तैयार मिलू गी।" साहब सकपका गया।

जयपुर सत्याग्रह के जमाने मे अंग्रेज इन्सपेक्टर-जनरल ऑफ पुलिस यंग से लोहा लेने का काम रतनजी के ही हिस्से मे आया हुआ था। हमारा आठ साल का छोटा बच्चा श्याम (आजकल वाला दिवाकर शास्त्री) रतनजी का खास साथी था। वह भी 'यंग साहब" को खूब सुनाता था और जेल के फाटक पर पहुँचकर जोर-जोर से नारे लगाता था। प्रजा-मण्डल के सत्याग्रही जुलूसो मे तो श्याम की धाक थी।

गाधीजी ने जयपुर सत्याग्रह को स्थगित करने का अचानक हुक्म सुना दिया। तब राधाकृष्णजी (बजाज) और रतनजी दोनो उनके पास दिल्ली मे ही थे। एक खास मित्र ताने के स्वर मे बोले—जब सत्याग्रह करने वाले नही रहे तो गाधीजी सत्याग्रह को स्थगित करने के अलावा और क्या करते? रतनजी ने मित्र को याद रखने लायक जवाब देते हुए कहा-सत्याग्रह के लिए व्याकुल दूसरे असख्य लोगो को तो छोड़िये-ये सीतारामजी (सेकस-रिया) और सिद्धराजजी (ढड्ढा) तो जेल जाने के लिए तैयार आपके पास ही बैठे है। यह कहकर रतनजी गाधीजी के कमरे मे दुबारा गयी और उनके द्वारा सत्याग्रह स्थगित करने का लिखा हुआ हुक्म लेकर बाहर निकली।

रतनजी को मेरी ओहदेवाली राजनीति मे घिसट जाना—खासकर राजस्थान का मुख्य-मन्त्री बनना—बिल्कुल पसन्द नही था। मेरे ओहदे के दिनों मे रतनजी खुश नहीं रहती थी। और जीवनकुटीर के समय के सुखमय जीवन को याद किया करती थी। जीवनकुटीर के पुराने साथियो का और प्रजामण्डल के नये साथियो का हलका व्यवहार रतनजी को बहुत अखरता रहा। जिन लोगो को रतनजी १०३-१०४ डिग्री बुखार मे रोटिया बनाकर खिलाती थी वे ही मेरे ही नही रतनजी तक के विमुख हो गये थे।

वनस्थली विद्यापीठ के लिए तो रतनजी ने अपना सभी कुछ-स्वास्थ्य तक भी-अर्पण कर दिया। वनस्थली मे कुछ और लोग भी है निष्ठा से काम करने वाले। पर वनस्थली विद्यापीठ की प्राण तो रतनजी ही हैं। रतनजी न सिर्फ हजारो लडकियो की स्नेहमयी और

दण्डधारिणी मा है, बल्कि वे जरूरत पड़ने पर बड़े से बड़े नेताओ और मन्त्रियो से भिडन्त करने वाली भी है। एक बार अचानक ही केन्द्रीय सरकार का वनस्थली की ग्राट बन्द करने का (राजनीतिक कारणो से प्रेरित) हुक्म आ गया तो रतनजी शिक्षामन्त्री मौलाना आजाद के पास विद्यापीठ की चाबिया उन्हे सौप देने के लिए जा पहुँची। वनस्थली की ग्राट कौन बन्द कर सकता था, कौन बन्द करवा सकता था, उस दिन की रणचडीस्वरूपा रतनजी के मुकाबले मे ?

ऐसी "सा" और ऐसी रतन शास्त्री के बारे मे मैं और क्या कहू ? उन्होने अपने जीवन की कहानी लिखना लिखाना न जाने किस कमजोरी के किन क्षणो मे मजूर कर लिया ? वे जो कुछ लिख-लिखा सकी वह पिछले पृष्ठो मे प्रस्तुत हो चुका है। चू कि हम दो न होकर एक ही है, इसलिए मेरे प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) के साथ ही रतनजी की "अपनी कहानी अपनी जबानी" नत्थी कर दी गयी है। बस अब मैं अपने ऊपर दिये हुए एक छन्द के दो चरणो को फिर से दोहराता हुआ अपने आनन्दातिरेक को प्रकट करता हूँ—

जगत को दिखते हम दो जने,
असल मे हम एक, न दो जने ॥

इति शुभंभूयात् ॥



रतनजी और शास्त्रीजी की एकरूपता

(काका कालेलकर)

प्राचीन ऋषियो ने तय किया कि शादी करनी है तो अपने खानदान मे नही करनी चाहिए। जहा कुल यानी खानदान एक हैं, वहा सब लोगो का रहन-सहन एक सा होता है। आहार-विहार भी एकसा। साथ रहने मे हर तरह की अनुकूलता है। फिर भी एक ही कुल मे यानी खानदान मे शादी नही होनी चाहिए।

आगे जाकर उन्ही ऋषियो ने तय किया कि एक ही ऋषि के गोत्र मे भी शादी नही होनी चाहिए। गलती से एक गोत्र मे शादी न हो जाय इसलिए शादी तय करने से पहले दोनो बाजू का गोत्र पूछा जाता है।

अब इस तरह से, कुछ भिन्नता-दूरता सम्भालने के बाद, जब शादी होती है, तब वही ऋषि कहते है कि पति-पत्नी के बीच स्वभाव का और जीवनादर्शक भेद जितना कम हो उतना अच्छा। पति-पत्नी साथ रहेंगे, साथ खायेंगे, पीयेंगे इत्यादि। अपने बाल-बच्चो को अच्छे सस्कार देंगे। इसमे पति-पत्नी जितने नजदीक हो उतना अच्छा। यानी दोनो एक हृदय होने चाहिए। कितना सुन्दर आदर्श और साथ-साथ कितना कठिन! भेद में अभेद। भेद जरूरी है और अभेद पाला जाय।

अब पाया तो यह जाता है कि खानदान चलाने का भार पुरुष का। कमायेगा पुरुष। समाज के साथ कही सघर्ष करना पड़ा तो वह भी पुरुष ही करेगा। स्त्री घर चलायेगी,

खाना-पीना सम्भालेगी, बच्चो को अच्छे सस्कार देगी और खानदान के सस्कारो की जो भी खासियत हो, वह भी स्त्री सम्भालेगी। फलत पत्नी को ही अपने जीवन मे जरूरी परिवर्तन करके, और अपने मा-बाप का आकर्षण कम करके पति के साथ एक रूप हो जाना यही बताया गया है-आदर्श पत्नी का उत्तमोत्तम स्व-धर्म।

अब दुनिया मे जितनी शादिया होती है, उनमे से कितनी स्त्रिया होगी जो अपने इस स्व-धर्म का पालन कर सकती है ? मायके का घर छोड दिया, ससुराल मे आकर रही, वहा का खानपान पसन्द किया, नये रस्मरिवाज अपनाये, यह तो करना ही पडता है। लेकिन यह सारा अदल-बदल हृदय से मान्य करना और पति के साथ पूर्णतया एक रूप हो जाना-यह कितनी स्त्रिया कर सकती है ? (आजकल की स्त्रिया पूछती भी है कि "यह सारा भार स्त्री पर क्यों ? शादी की गरज दोनो को है। बच्चो की जिम्मेदारी दोनो की है। और शादी होते ही नया घर बनाने की आवश्यकता आजकल पैदा होती है। ऐसी स्थिति मे पति ही पत्नी के लिए अनुकूल होने का प्रयत्न क्यो न करे ?" इस विषय को यहां बढाने की आवश्यकता नही है।)

जहा पत्नी बुद्धिमान है, कर्तृत्व शक्ति पति से तनिक भी कम नही है, तो भी पूरे हृदय से, पति के अनुकूल होकर रहने को तैयार हो जाये, और जिस तरह सारी जिन्दगी पति को सुख देकर कौटुंबिक जीवन सफल बनाकर दिखावे, ऐसे उदाहरण अगर हमारे जमाने मे कहीं दिख पडे तो सारा समाज ऐसी पत्नी का गुणगान करने लग जाता है।

बम्बई, कलकत्ता और मद्रास जैसे प्रदेश को छोड दें। राजस्थान जैसे प्रदेश मे भारतीय आदर्शों को सम्भालते हुए अपनी सस्था द्वारा शिक्षा का एक प्रयोग चलाते-चलाते, स्त्री जाति के अनुकूल एक प्रगतिशील विद्यापीठ चलाने वाले एक खानदान मे, पति-पत्नी का आदर्श नमूना देखकर भारतीय समाज पूर्ण रूप से प्रसन्न हुआ।

महात्मा गाधी जैसे युग पुरुष भी ऐसे उदाहरण की स्तुति करने लगे। और हर प्रदेश के लोग इस विद्यापीठ को और विद्यापीठ की स्थापना करने वाले लोगो को देखने के लिए जयपुर के पास वनस्थली पहुँचने लगे।

राष्ट्रीय शिक्षा को ही अपना जीवनकार्य मानने वाला, और गाधीजी के आदर्शो का प्रयोग उन्ही के आश्रम मे और उनके विद्यापीठ मे चलाने वाला मै वनस्थली देखने न जाऊ यह कैसे बन सकता है।

मै वनस्थली गया। उसके सस्थापक पण्डित हीरालाल शास्त्री के बारे मे मैंने काफी पढा था। सारी दुनिया मे स्त्री जाति की परिस्थिति सन्तोषकारक नही है। स्त्री जाति की उन्नति के कार्य को राष्ट्रीय शिक्षा मे प्रधान स्थान होना चाहिए, ऐसा प्रचार करने वाला मैं वनस्थली के कार्य को देखकर खुश हो जाऊं तो उसमे आश्चर्य क्या ?

वनस्थली मे जब मैंने देखा कि हीरालाल शास्त्रीजी की धर्मपत्नी श्रीमती रतन बहन भारतीय आदर्श का जीवनव्यापी स्वीकार पूर्ण हृदय से करके पति के जीवन मे और सेवा

कार्य मे एक रूप हो गयी है तब मैंने हृदय से रतनदेवी का अभिनन्दन किया। शास्त्रीजी तो इस अपूर्व सहयोग को कदर करते ही हैं।

हीरालाल शास्त्रीजी ने अपनी आत्मकथा लिखी है। प्रत्यक्षजीवनशास्त्र जैसी सुन्दर आत्मकथा पढ़ने का उत्साह हर एक समाज सेवक को होता ही है।

वनस्थली का प्रयोग देखने के बाद, और शास्त्रीजी की आत्मकथा पढ़ने के बाद, मैंने रतन बहन से कहा कि "आपको भी अपनी आत्मकथा लिखनी चाहिए। आपकी लोकोत्तर आत्मशक्ति ने शास्त्रीजी के साथ पूर्ण रूप से एकता स्थापित की है। अपनी बुद्धि और कार्य शक्ति ही केवल नही, किन्तु अपनी भावनाए और अपनी रसिकता को भी आपने अलग रहने नही दिया। आत्म-समर्पणकारी यह व्यक्तित्व देश के सामने आना ही चाहिए। कितनी अन-पेक्षित और प्रेरक चीजे उसमे हमे मिलेंगी।"

सौ० रतनदेवी ने जवाब मे कहा "अनेक लोगो का आग्रह होते हुए भी मैंने अपने बारे मे लिखने से आज तक इन्कार किया है। लेकिन आप हैं गाधीजी के शिक्षाशास्त्री। आपकी आज्ञा का भग कैसे करूं ? लिख दूगी थोडा सा।"

अब रतनदेवी ने 'अपनी कहानी, अपनी जबानी' लिखकर भेजी है। और वह अलग न छपते हुए शास्त्रीजी की आत्मकथा के दूसरे भाग मे ही स्थान पा सकेगी, ऐसा भी उसके साथ समझा दिया है।

सौ० रतनदेवी ने मेरी सूचना मान्य की इसका मुझे सन्तोष है। पाठक देखेंगे कि हीरालाल शास्त्री और रतनदेवीजी केवल अपने वैवाहिक जीवन मे ही नही, किन्तु सस्कृति सेवा की इस युग की इस उत्कृष्ट प्रवृत्ति मे–'वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना और विकास मे' एकमेक के साथ पूर्णतया एक रूप है। शास्त्रीजी ने सही लिखा है'—

'जगत को दिखते हम दो जने,
असल में हम एक, न दो जने ।।'

मैं तो कहूगा कि शास्त्रीजी प्रधानतया शिक्षाशास्त्री होते हुए भी राजनैतिक क्षेत्र में काफी फस चुके थे। इसी कारण वनस्थली की सेवा मे और इस अखिल भारतीय सस्था के बनाने मे रतनदेवी का कुछ भाग अधिक ही होगा। और उन्ही के व्यक्तित्व के कारण यह विद्यापीठ इस तरह का विकास कर सका है।

मेरी सूचना के अनुसार रतनदेवीजी ने अपनी आत्मकथा का यह एक प्रकरण लिख दिया, इसलिये अपना सन्तोष और हार्दिक आशीर्वाद प्रगट करने के लिये ये चार शब्द मैंने लिखे हैं।

उनके व्यक्तित्व के फलको देखकर मैं प्रभावित हुआ हूँ।

———

रतन–हीरा का अनूठा अद्वैत

(दादा धर्माधिकारी)

सौ० रतनजी की 'अपनी कहानी, अपनी जबानी" पढने में मुझे आनन्द और बोध भी मिला। श्री हीरालालजी शास्त्री के "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" के दूसरे भाग के साथ इसे नत्थी किया गया है। परन्तु यह हीरालालजी के ग्रंथ का परिशिष्ट नही। एक प्रकार से उसकी सपूर्ति भले ही कहले। किसी भी व्यक्ति की कहानी उसी के मुह से उसकी अपनी वैयक्तिक शैली मे सुनने में एक अनूठा मजा होता है। रतनजी की इस कहानी मे 'शास्त्र' के लिए गुंजाइश नही है। इसमे तो प्रत्यक्ष और खालिस जीवन ही जीवन है। उनके निवेदन में जो सहजता और ऋजुता है उसके कारण इस कहानी मे अपनी एक अनोखी मनोज्ञता आ गयी है। उसमे भाषा के कौतुक नही हैं अलकारो की गुलकारी नही है और न बात कहने मे कोई घुमाव फिराव है। एक विनययुक्त प्राञ्जलता है। शायद इसीलिए वह हृदयगम हो सकी है।

शास्त्रीजी ने जिन घटनाओ का वर्णन अपने ग्रथ मे किया है, उन्ही मे से कई प्रसगों का वर्णन रतनजी ने अपनी विशिष्ट भूमिका के सदर्भ मे अपनी शैली मे किया है। उस शैली मे एक 'अशिक्षित पटुत्व' (अनट्रेंड एक्सलेन्स) है, एक अनलकृत रुचिरता। उदाहरण के लिए, शान्ताबाई के विछोह के करुण प्रसग का वर्णन रतनजी ने नपे तुले, सीधे-सादे शब्दो मे किया है। वह पाठक के हृदय को छुए बिना नहीं रहता।

रतनजी मालवे से राजस्थान आयी। दोनो प्रदेशो के सुसस्कार उन्होने बिल्कुल स्वाभाविकता से आत्मसात् कर लिये। इस कहानी मे ऐसे प्रसगो का वर्णन है जिनमे इस वीरागना का जौहर निखर उठता है। परन्तु उनके वर्णन मे केवल वस्तु कथन है आत्मश्लाघा बिल्कुल नही है। इसमे उनकी सस्कारिता का सौरभ है।

शिक्षण विभाग के अंग्रेज डायरेक्टर से, पुलिस के अंग्रेज इन्सपेक्टर जनरल, जोबनेर के ठाकुर साहब से, मौलाना आजाद से और गांधीजी से उनकी जो मुलाकातें हुईं उनके वर्णनों में रतनजी की तेजस्विता का परिचय मिलता है। लेकिन अविनय या शैली की बू भी नहीं। शास्त्रीजी जैसे वज्रपुरुष को जब दिल का दौरा हुआ उन दिनों की अपनी मन. स्थिति का चित्र भी उसी शालीनता से खींचा है। उस प्रकरण के अन्त में अपनी भूमिका का वर्णन इन हृदयस्पर्शी शब्दों में किया है —"शास्त्रीजी की दृढता और आस्था पर सांस ले रही हूँ।"

असल में शास्त्रीजी और रतनजी के दो हृदय हैं ही कहां ? विवाह के समापन के अवसर पर वृद्ध पुरुष आशीर्वाद देते थे। "समानानि हृदयानि व ।" "तुम दोनों के हृदय समान हो।" यहां तो समानता की बात ही नहीं है। एकता चरितार्थ हो गयी है। यह अनूठा अद्वैत है। शास्त्रीजी और रतनजी के दोनों के जीवन एक दूसरे के साथ ताने-बाने की तरह अनुस्यूत है। इतने ओतप्रोत हैं कि कौनसा ताना है और कौन सा बाना है इसका भी पता लगाना आसान नहीं है। रतनजी के जीवन में एक आत्म समर्पण है–आत्म समर्पण स्वेच्छा का स्वय प्रेरित। उसमें विवशता का लेश भी नहीं है। इसलिए उसमें कहीं तनाव नहीं, खींचा तानी नहीं, खड़ा उतरी नहीं, आत्मग्लानि नहीं। उस समर्पण की कान्ति इसीलिए उनके व्यक्तित्व पर है।

एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस देव के दो शिष्यों में इस बात को लेकर विवाद छिड़ गया कि हम में से श्रेष्ठ कौन है। निदान दोनों की पेशी परमहंस देव के सामने हुई। उन्होंने व्यवस्था दी कि जो दूसरे को बड़ा समझे वही तुम में श्रेष्ठ है। रतनजी और शास्त्रीजी का मामला कुछ इसी तरह का हो गया है। वे एक दूसरे को बड़ा कहते हैं। इसमें से एक सयुक्त सत्ता खिल उठी है। इस पारस्परिकता में समर्पण भी पारस्परिक ही होता है। इसीलिए उसमें प्रतियोगिता, स्वामित्व की भावना या अनुसरण के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता है। रतनजी का आत्मसमर्पण स्वय स्फूर्त है इसीलिए शास्त्रीजी के व्यक्तित्व को उन्होंने समृद्ध किया है और शास्त्रीजी ने उनके व्यक्तित्व को समृद्ध किया है। ऐसे समर्पण में किसी के भी व्यक्तित्व की ग्लानि नहीं हो सकती। इतना कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि शायद रतन और हीरा के सयुक्त जीवन में रतन ने हीरा की द्युति की उग्रता को कम किया है और दीप्ति को बढ़ाया है। इस दम्पति का जीवन एक अखडित पीताम्बर की तरह है। व्याकरण में पीताम्बर "योग रूढी" सज्ञा है। दो शब्दों के योग से जो वाक्यार्थ व्यक्त होता है उसके अतिरिक्त एक साकेतिक अर्थ का इगित ऐसी सज्ञाओं में होता है। पीताम्बर केवल पीला कपड़ा नहीं है। भगवान जिसे परिधान करते हैं। वह दिव्य और पवित्र वस्त्र भी है। रतनजी और शास्त्रीजी का सयुक्त व्यक्तित्व भी जीवनकुटीर और वनस्थली विद्यापीठ में निहित अनेक सकेतों का प्रतीक है। इसीलिए अहकारमुक्त आत्मप्रत्यय के साथ रतनजी लिख सकी कि मैंने स्वास्थ्य खोया लेकिन उसके बदले में जीवनकुटीर का जीवन और वनस्थली विद्यापीठ का वरदान पाया। शास्त्रीजी के मुख्यमंत्रित्वकाल की अपेक्षा उन्हें जीवनकुटीर के कष्टमय जीवन में अधिक रुचि है। इसीलिए उनका यह निष्कर्ष है कि जिस प्रकार आवश्यकता आविष्कार की जननी है, उसी प्रकार प्रतिकूलता पराक्रम की जननी है। ऐसे

भव्य आत्मप्रत्यय के पीछे आत्मदमन तो हो ही नहीं सकता। यह आत्मप्रत्यय तो विपत्ति को सपत्ति मे परिणत कर देता है।

यह कहना आसान नही है कि रतन की द्युति कहा समाप्त होती है और हीरा की द्युति का आरम्भ कहा से होता है। ये रवि-शशि की दीप्तिया नहीं है। फिर भी एक बात कहने को जी चाहता है।

रतनजी लिखती है कि जब उनका जन्म हुआ तो उनके दादा को कुछ कम खुशी हुई। परन्तु वे ज्योतिषी भी थे। जन्म कुण्डली देखकर उन्होंने कहा था कि यह जिस घर मे जाएगी उसका लाभ होगा। उस घर का इतना लाभ हुआ कि उसकी दीवारें ही यह गयी और कुटुम्ब की कोई सीमाए नही रही। विश्व कुटुम्ब के लक्षण उसमे आ गये। इसीलिए रतनजी के विषय मे भक्त की देवी के बारे मे वह भक्तिपूर्ण उक्ति याद आती है। जिसमे वह कहता है—

"यदे तस्यैश्वर्यं" सव जननि सौभाग्यमहिमा"

इस शिव का जो ऐश्वर्य है, हे जननि, वह तो तेरे सौभाग्य की महिमा है। यह तो श्मशानवासी, फक्कड, जो ठहरा ?

अन्त में यही प्रार्थना हृदय से उठती है कि इस अनुपम दम्पति को जीवन के अन्तिम क्षण तक एक दूसरे का शारीरिक सान्निध्य और मानसिक सामरस्य निरन्तर मिलता रहे। ऋषियों का आशीर्वचन है—

समानीव आकूति, समानानि हृदयानिवः।
समानस्तुवो मनो .... ॥

प्रलय प्रतीक्षा नमो नमो*

पिछले पृष्ठो मे ३१ अगस्त, १९७४ की बात बतायी जा चुकी है। ग्रंथ की छपाई में देर होने से मुझको जरूरी लगा कि तब से लेकर ७ नवम्बर, १९७४ की बात अत्यन्त सक्षेप मे जोड दी जाए। ऐसा करने से मेरे जीवन के करीब ७५ वर्षों के विवरणो का समावेश हो जाएगा।

इस अर्से मे मेरा ध्यान अधिक से अधिक वनस्थली के काम पर रहा। एक ओर मैं हवाई उडान करता रहा जिसकी अभिव्यक्ति विद्यापीठ के स्थापना दिवस के अवसर पर दिये गये मेरे निम्नलिखित प्रकट चिन्तन मे हुई है.—

"आज सूर्योदय के इस शुभ मुहूर्त मे, वनस्थली की दिव्यस्थली मे इकट्ठे होकर हम लोग आस्थापूर्वक शक्ति का आवाहन करते हैं। हम अपनी आन्तरिक चक्षु से देख रहे हैं, हमें वह अदृश्यशक्ति दिखायी दे रही है जो कण-कण मे, हर फूल पत्ते मे व्यापक है और जो अच्छी से अच्छी खुर्दबीन से भी दिखायी नही दे सकती। वह शक्ति हमारे भीतर व्याप्त है। शाश्वत शान्ताबाई की प्रतीक इन बच्चियो मे से प्रत्येक बच्ची शक्ति का पुंज है। तब हमारे पास किस बात की कमी हो सकती है? तब हम क्या कामना करें? हमारे सकल मनोरथ अपना स्पष्ट रूप लेने के साथ पूर्ण ही होते रहते हैं। हम तकलीफ को आराम मानते हैं, दु ख को सुख मानते हैं, बन्धन को मुक्ति मानते हैं, मृत्यु को जीवन मानते हैं !! हमारा शरीर बलिष्ठ है, हमारे शब्द में शक्ति है, हमारा विचार पक्का है, हमारी भावना प्रबल है, हमारा आत्मविश्वास अडिग है। भौतिक साधनो की चिन्ता हमे नहीं होती, वे हमारे आस-पास चक्कर काटते रहते हैं, साधनो की हमारे प्रागण मे वर्षा होती रहती है। हम नि स्पृह

---

* १ सितम्बर, १९७४ से ७ नवम्बर, १९७४ तक की बात।

हैं, हम हर हाल मे मस्त रहने वाले हैं। वनस्थली मे निर्मल नीर की धारा बह रही है, पवित्र पवन प्रवाहित हो रही है। वनस्थली मे सुख-शान्ति का बोलबाला है। वनस्थली मे स्वतन्त्रता है, भेदभाव का अभाव है, भाईचारे का व्यवहार है, स्वानुशासन है, मिशन के लिए जान झोंकने की परम्परा है। हम कल्पना लोक मे विचरते रहते हैं, हमारे पाव धरती पर पक्के जमे हुए हैं। हमे आदर्श का दर्शन बराबर होता रहता है, हमारी भूमिका व्यावहारिक है। हम समस्त की मंगल कामना करते हैं, हम किसी का अनिष्ट चिन्तन नही करते। हम भूत के चिन्तक हैं, वर्तमान के कर्ता हैं भविष्य के द्रष्टा हैं। हम स्वाभिमानी हैं, हीन भावना का हमारे पास कोई काम नही है। हम कठोर है, हम कोमल है, हम बाकुरे हैं, हम विनयशील हैं, हम दबाव नही मानते, हम दबाव नही डालते, हम डरते नही, हम डराते नही। सिंहवाहिनी खड्गधारिणी सकलासुरमर्दिनी भवानी का विशाल छत्र हमारे ऊपर छाया हुआ है। हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही निःसकोच होकर कहने का यत्न करते हैं, हम जैसा कहते हैं वैसा ही कर दिखाने का प्रयास करते हैं। हमारे पास छिपाने को कुछ नही है। हमे सशय नही सताता है। जितने हम यहा भीतर बाहर बैठे हैं, खडे है उनकी समष्टि हम है। हमारे अन्तस् मे जो अपरोक्षानुभूति हो रही है वही हमारी भवानी है। इस सब में कही कुछ सपना जैसा हो, सो वह सच्चा होकर वस्तु स्थिति बन जाए। तथास्तु।

"सत्यमेव जयते, नानृतम्। तन्मे मन. शिवसंकल्पमस्तु।।"

हवाई उड़ान के अलावा मेरा चिन्तन तीन दिशाओ मे चला है:—

(१) वनस्थली के शांत शुद्ध वातावरण की रक्षा के काम को देश की इस कोलाहलपूर्ण और सकुचित स्वार्थपूर्ण हवा मे भी दृढता के साथ जारी रखा जाए। मेरा विश्वास है कैसे भी करके वनस्थली अपने अद्वितीय वातावरण को बनाने मे सदैव समर्थ बनी रहेगी। वनस्थली का आधार भावना शक्ति है और उसका सचालन आत्मशक्ति अर्थात् आत्मविश्वास के द्वारा होता है। ऐसे स्थान पर किसी भी प्रकार के दूषित तत्व का आक्रमण नही हो सकता।

(२) वनस्थली के पचमुखी शिक्षाक्रम मे पुस्तकीय-बौद्धिकशिक्षा के अलावा दूसरे चार अग और शामिल रहे हैं। भविष्य मे शिक्षाक्रम को विशेष व्यावहारिक रूप देना मेरी राय मे बहुत आवश्यक हो गया है। देश की शिक्षाप्रणाली मे सुधार पता नही कब और कैसे होगा। पर हमे तो वनस्थली मे पूरा यत्न करके व्यावहारिक और उपयोगी शिक्षा का चित्र जल्दी से जल्दी प्रस्तुत करना ही होगा। उक्त प्रयत्न मे सफलता मिलेगी तब ही मैं वनस्थली के लिए किये गये अपने परिश्रम को सफल मानूंगा।

(३) वनस्थली की वित्तीय स्थिति को जल्दी से जल्दी ठीक करना होगा। विद्यापीठ के आवर्तक बजट में घाटा किसी हालत मे नही रहने दिया जाएगा। इस सम्बन्ध मे ऐसी योजना बनायी जा रही है कि वनस्थली के सम्बन्धित सभी कार्यकर्ता, सभी छात्राएं और दूसरे सभी लोग घाटे की पूर्ति मे अपनी इच्छा और शक्ति के अनुरूप योगदान दें। विद्यापीठ को अपने पिछले घाटे को भी एकाध साल के भीतर पूरा कर देना होगा। तीसरे, वनस्थली

मे होमसायन्स, पोलीटेकनिक, हॉस्पिटल, सभाभवन आदि जैसे नए कामो के लिए भी साधन जुटाने पडेंगे ।

उपर्युक्त कामो मे मेरी अस्वस्थता ने बहुत बडी बाधा खडी करदी है । मेरे दिल के दौरे का विवरण पहले दिया जा चुका है । पिछले महीनों मे मेरे हर्निया प्रकट हो गया था। जिसका जयपुर के बडे सर्जन ने ऑपरेशन कराना जरुरी बताया । साथ ही उन्होंने हर्निया के ऑपरेशन के पहले मेरा प्रॉस्टेट का ऑपरेशन करना जरूरी बताते हुए यह राय दी कि वह बड़ा ऑपरेशन जयपुर मे न कराकर वेलोर मे कराना ज्यादा अच्छा रहेगा । प्रॉस्टेट का ऑपरेशन कराने के विचार से मैं सौ० रतनजी और चि० श्याम आदि के साथ वेलोर पहुचा । पर वेलोर के सम्बन्धित बड़े सर्जन ने प्रॉस्टेट का ऑपरेशन करने की जरूरत नही बतायी । मैं ऑपरेशन कराए बिना ही वनस्थली लौट आया । फिलहाल हर्निया का ऑपरेशन कराने की जरूरत भी मुझे नही मालूम पड रही है । ऑपरेशनों की इस प्रकार जरूरत न होने से सभी प्रियजनो को बडी राहत मिली । वेलोर के डॉ०भट्ट की राय नीचे लिखे अनुसार है :—

CHRISTIAN MEDICAL COLLEGE HOSPITAL, VELLORE, S.INDIA

Case Summary And Discharge Record

SHASTRI PANDIT HIRALAL

UROLOGY (I) 838420

Admitted on: 20 10.74 **Discharged on: 23.10.74.**

The patient is a case of coronary insufficiency—had an actual infarction 2½ years ago. At present on digoxin and diuretics A right inguinal swelling, clinically consistent with uncomplicated indirect incomplete inguinal hernia, was discovered 2½ months ago. Patient sought medical opinion at Jaipur which was in favour of an early operation to obviate the risk of strangulation and subsequent morbidity in the background of coronary insufficiency. No surgery however was done there since the routine rectal examination revealed prostatomegaly. He has no significant prostatic symptoms, the noctural frequency being ordinarily not more than three times and no feeling of incomplete emptying, urgency. He is referred to CMCH for opinion and prostatectomy to forestall the possibility of urinary obstruction in the post operative period if harnia is repaired as animitial operation. On examination, well built, adequately nourished elderly male BP 140/90. Abdomen—Kidneys not palpable. No hepatosplenomegally. No free fluid External genitalia—NAD. Right side indirect inguinal hernia+ PR: Grade II prostatic enlargement, regular except for a patch of ? induration base of left lobe which may require periodic palpation.

Investigations; Hb 15.3 G Urine—albumin trace, sugar nil, WBC 1–2, RBC 4–6/HPF. Blood sugar AC 101 mg% ESR 30 mm esidual urine 30 CC

> After overall assessment of patient's symptoms and availabuity of good medical facility within a short time, the absence of any evidence of back up of urine in the bladder and kidneys, it is felt that prostatectomy as a preventive procedure with Mr. Shastri's background is not necessary. Hernia may be operated upon and prostate, if it gives trouble by way of retention, could be taken care of as the situation arises

Sd, – (H.S BHAT)
H S. BHAT, M S, F A C S F A.M S,
Professor of Surgery & Urology
& Head of Urology Department
CHRISTIAN MEDICAL COLLEGE & HOSPITAL,
VELLORE 632004 S INDIA

अपने शरीर की वर्तमान अवस्था मे भी और दनम्थली की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर होते हुए भी मैं देश की स्थिति के बारे मे बहुत अधिक चिन्तित और व्याकुल रहा हूँ। मैं बार-बार सोचता हूँ कि मेरे दिल का दौरा न पड़ा होता तो मैं अपने स्वाधीन ग्राम-नगर सगठन के कार्यक्रम को जारी रख सकता। यदि ऐसा हो पाता तो मैं समय आने पर अपने अनुभव से उक्त कार्यक्रम मे आवश्यक परिवर्तन परिवर्धन कर लेता और उसे देश मे चलने वाले प्रमुख क्रान्तिकारी कार्यक्रम के साथ जोड देता। मैं ऊपर के पृष्ठो मे बता चुका हूँ कि मुझे बिल्कुल आशा नही है कि वर्तमान सत्ताधारी पार्टी के द्वारा किये गये प्रयत्नो से देश की स्थिति मे सन्तोषजनक सुधार हो जाएगा। क्योंकि मैं सोचता हूँ कि तमाम बुराइयो की जड़ सत्ताधारी पार्टी की नीति और नीयत मे है। मेरा मानना है कि चालू चुनाव-प्रणाली में वास्तविक सुधार सत्ताधारी पार्टी नही कर सकेगी और जैसे चुनाव होते आय हैं वैसे चुनाव के द्वारा देश मे सच्चे जनतन्त्र की स्थापना नही हो सकेगी। देश में फैले हुए भ्रष्टाचार का मूल कारण चुनाव प्रणाली मे है। भ्रष्टाचार को देखना हो तो पार्टी अपने नेताओ मे और उनके पास पड़ोस में देख ले। मुझे दुख है तो एक ही बात का है कि मैं अपना योगदान देने की स्थिति मे नही हूँ। मेरे हार्ट की बीमारी न होती तो मैं अपने आपको जरूर झोक देता पर जैसा मेरा हार्ट है उसे लिए हुए मेरा जोखिम उठाना किसी की भी राय मे उचित नही जान पड़ता। मैं अपने शरीर के साथ जबर्दस्ती करके कूद भी पड़ू तो नतीजा क्या निकले? इस अन्तर्वेदना का अनुभव करते हुए मैं देश मे आगे पीछे अवश्यभावी क्रान्ति की बाट देखता रहूँगा। जैसा कि मैं निम्न उक्ति के द्वारा पिछली अर्द्ध शताब्दी से कहता रहा हूँ –

"मरणानन्तरजीवनदायकप्रलयप्रतीक्षा नमो नमो।"

प्रलय की अर्थात् क्रान्ति की प्रतीक्षा के साथ-साथ मैं उसकी सफलता के लिए सकलासुर मर्दनि आद्याशक्ति से प्रार्थना करता रहूँगा। इतिशम्।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २)

तथा

अपनी कहानी, अपनी जबानी के विषय में

(डॉ० कुमारी पन्ना द्विवेदी, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ)

पण्डित हीरालाल शास्त्री की जीवनी का दूसरा भाग (प्रत्यक्षजीवनशास्त्र भाग २) उनके वैविध्यपूर्ण कर्मठ जीवनवृत्त को सकलित किये प्रस्तुत हुआ है। शास्त्रीजी अपने आप मे एक सस्थान हैं। वे जीवन को कर्म का सन्देश देने वाले प्रेरक शक्तिपु ज हैं।

पुस्तक दो उपभागो मे बटी हुई है। पहले उपभाग मे मई, १९७० से अगस्त, १९७४ तक का जीवनवृत्त, विचारसार, डायरियो के पृष्ठ, कुछ रचनाएं, गाधीजी और विनोबाजी से वार्तालाप तथा अनेक लोगो से किये हुए पत्र व्यवहार के अश सम्मिलित हैं।

शास्त्रीजी एक और महान् समाज सेवी हैं; तो दूसरी और गहन चिन्तक भी। विचारसार के अन्तर्गत उन्होने आत्मतत्व और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के अतिरिक्त भारत के सामने उपस्थित कई एक सवालो, धर्मनीति, अर्थनीति, राष्ट्रनीति, राजनीति और प्रशासननीति के विषय मे अपने स्पष्ट विचार व्यक्त किये है। जीवनवृत्त से बिलकुल अलग होकर भी विचार मनुष्य के व्यक्तित्व को समझने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। इसलिए अतिरिक्त सामग्री के अन्तर्गत जो भाषण, लेख, पत्र, वार्तालाप, रचनाए और डायरियो के पृष्ठ सकलित हैं, वे सब शास्त्रीजी के व्यक्तित्व के वैविध्य को स्पष्ट करते हुए पूर्ण बनाते है।

इसी उपभाग १ के अन्तर्गत तीन परिशिष्ट भी जुड़े हुए हैं। परिशिष्ट १ में प्रत्यक्ष-जीवनशास्त्र भाग १ की ५ समीक्षाएं हैं। परिशिष्ट २ में लेखक के २१ छन्द जिनके संबंध में उनका कहना है कि वे विचारों का छोटा सा नक्शा पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकेंगे। परिशिष्ट ३ में लेखक अपना मूल्यांकन स्वयं अपनी कलम से करता है। आत्म विश्लेषण की ऐसी सार्वजनिक व्याख्या बड़े जीवट का काम है, जीवनी साहित्य की विधा में मौलिक देन है।

बड़ी से बड़ी जोखिम उठाकर अपने सोचे हुए कार्य को सम्पूर्णता पर पहुँचाना शास्त्रीजी का स्वभाव है। शास्त्रीजी न कठिनाइयों से घबराते हैं, न कष्टों से डरते हैं। इसीलिए तो भयंकर दिल के दौरे की स्थिति में अस्पताल के पलंग पर लेटे हुए भी उन्होंने "पैरोडी" की रचना कर डाली।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) का उपभाग २ उनकी इसी विशेषता का उदाहरण है। पुस्तक पूर्ण हो जाने के बाद भी जब तक वह छपी नहीं तब तक का विवरण इस उपभाग में जोड़ा गया है जिसमें उसी पहले वाले क्रम से जीवनवृत्त, पत्र-व्यवहार, रचनाएं, लेख, डायरियों के पृष्ठ सब कुछ है। इस उपभाग के सम्बन्ध में दो बातें मुख्य हैं। एक तो यह कि शास्त्रीजी वनस्थली में हो रहे कार्य को और अधिक पूर्ण बनाने के लिए चिन्तित हैं, प्रयत्नशील हैं, दूसरी यह है कि गांधी को मानने वाले, स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, सर्वोदय को पसन्द करने वाले कर्मठ कार्यकर्ता शास्त्रीजी देश की वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति से सर्वथा असन्तुष्ट हैं। प्रधानमन्त्री को लिखे हुए पत्रों में उनकी असन्तुष्टि स्पष्ट प्रकट हो रही है। सचमुच शास्त्रीजी की प्रतिक्रिया आज की स्थिति पर यही होनी चाहिए। शास्त्रीजी के मत से देश में व्याप्त भ्रष्टाचार का ज्यादा से ज्यादा जिम्मा सत्ताधारी पार्टी का है और ऐसी स्थिति में देश में शान्तिमय या अशान्तिमय कैसी भी क्रान्ति होकर रहेगी जिसमें एक बार तो सबको रोटी कपड़ा, निवास, इलाज, शिक्षा सुलभ होकर शान्ति स्थापित हो जाएगी।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) के साथ नत्थी किया हुआ है "अपनी कहानी, अपनी जवानी" नाम का सौ० रतन शास्त्री का छोटा सा जीवनवृत्त। कहानी के साथ शास्त्रीजी का "मां" के सम्बन्ध में लिखा हुआ "मां की नजर में मां" नाम का निबन्ध भी लगा हुआ है। रतनजी ने अपनी कहानी को शास्त्रीजी की जीवनी के साथ जोड़ दिया है क्योंकि वे और शास्त्रीजी एक दूसरे में विलीन हो चुके हैं। शास्त्रीजी तो स्पष्ट ही कहते हैं—

जगत को दिखते हम दो जने,
असल में हम एक न दो जने।

इन दोनों का अभिन्न भाव अर्द्धनारीश्वर का सा है, एक आत्मा एक शरीर जैसा है। रतनजी अपनी कहानी में केवल विवाह से पूर्व स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाली हैं। उसके बाद का

उनका अस्तित्व शास्त्रीजी के जीवन से घुलमिल गया है। रतनजी एक आदर्श भारतीय नारी हैं, आदर्श पत्नी, आदर्श माता। शास्त्रीजी की भांति ही उन्होने अपने वात्सल्य को वनस्थली की सारी बच्चियों को दे दिया है। उनका सरल स्वभाव, छल और द्वेष से विहीन है। पद्मश्री की उपाधि को भी अपने लिए उपयोगी न समझने वाली वे कदाचित् अकेली महिला हैं। *आज की भारतीय नारी के लिए उनकी यह कहानी जीवन पथ का आदर्श पाथेय बन सकती* है, उसे सच्ची नारी की तरह जीना सिखा सकती हैं।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (*भाग २*) *एक अत्यन्त उपयोगी, सुन्दर, सरल और प्रेरणादायक* पुस्तक है। भाषा और प्रस्तुतीकरण का ढग पूर्णतया मौलिक है। महान पुरुष की जीवनी, साधारण मनुष्यो को जीना सिखाती है, उनका पथ प्रदर्शन करती है। परन्तु कठिनाइयो से जूझते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने वाले योद्धा पुरुष की कहानी युवा पीढ़ी की रगो मे बहने वाले रक्त मे उबाल ला देती है, उसे जीवन सग्राम में कभी विचलित न होने देने का सदेश देती है। शास्त्रीजी की प्रस्तुत जीवनी मे ये दोनों गुण एक साथ विद्यमान हैं। वैसे ही रतनजी की जीवनी मे जो सच्चाई और सरल स्वाभाविकता व्याप्त है प्रत्येक पाठक को निश्चलता की प्रेरणा देने वाली है।

———

उत्तर कथन

उत्तर कथन

"प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २)" नाम की इस कृति के उपभाग १ व २ पूरे हुए। प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग १) के प्रकाशित होने के बाद इतना जल्दी प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) प्रकाशित करने की कोई खास जरूरत नही थी। पर वैसे मेरे जी मे आ गयी कि बाद के सालो का हाल भी लिख डाला जाए। पुस्तक तय्यार होकर प्रेस मे चली गयी। पर अनेक कठिनाइयो के कारण एक अर्से तक छपाई नही हो सकी तो सारी सामग्री को मगवाकर पुस्तक को अपटूडेट किया गया।

पिछले महीनो मे काका साहेब कालेलकर की प्रेरणा से सौ० रतनजी ने भी अपनी कहानी, अपनी जबानी' लिखदी, लिखादी। रतनजी की कहानी को प्रत्यक्षजीवनशास्त्र (भाग २) के साथ नत्थी करके छापा गया है।

इस सारी सामग्री को तय्यार करने मे सर्वश्री जगदीश प्रसाद बागडा, श्यामसुन्दर माथुर, वीरेन्द्रकुमार मित्तल, जगदीशप्रसाद शर्मा, अरविन्दकुमार दुबे, महेन्द्रसहाय सक्सेना, गजानन्द लूनिया, रामनिवास यादव, गणपतसिंह चौहान, मदनलाल बागडा ने लगन के साथ परिश्रम किया है।

आज की अतिकठिन परिस्थिति मे भी वैशाली प्रिंटिंग प्रेस और अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स ने मिलकर तमाम सामग्री को छापकर देने के लिए कुछ उठा नही रखा।

उक्त सभी भाइयो का मैं आभार मानता हूँ।

———